

आनन्दाश्रमसंस्कृतग्रन्थावांलेः ।

ग्रन्थाङ्कः ७१

त्रिमल्लभट्टविरचिता

बृहद्योगतरङ्गिणी ।

अस्याः द्वितीयो भागः ।

एतत्पुस्तकं

करवीरस्थैः वे० शा० रा० रा० हनुमन्त पाध्येशास्त्री
इत्येतैः संशोधितम् ।

तच्च

हरि नारायण आपटे

इत्यनेन

पुण्याख्यपत्तने

आनन्दाश्रममुद्रणालये

आयसाक्षरैर्मुद्रयित्वा

प्रकाशितम् ।

शालिवाहनशकाब्दाः १८३५

ख्रिस्ताब्दाः १९१४

(अस्य सर्वेऽधिकारा राजशासनानुसारेण स्वायत्तीकृताः)

मूल्यं द्वादशाणकाधिकं रूपकपञ्चकम् (रु० ५४१२)

अथ बृहद्योगतरङ्गिणीस्थविषयानुक्रमणिका ।

| विषयाः । | पृष्ठाङ्काः । | विषयाः । | पृष्ठाङ्काः । |
|-------------------------------|---------------|----------------------------------|---------------|
| तत्र प्रथमस्तरङ्गः । १ | | | |
| मङ्गलाचरणम् | १ | दोषजो व्याधिः | ११ |
| अनुबन्धचतुष्टयम् | १ | चिकित्सालक्षणम् | ११ |
| चिकित्साफलम् | १ | वैद्यलक्षणम्..... | ११ |
| ग्रन्थप्रशस्तिः | १ | ११ वातादिदोषप्रकोपहेतुनिरूप- | |
| रोगशान्त्युपायाः | १ | ११ णम् | ११ |
| चिकित्साया अष्टावङ्गानि... | १ | ११ वातप्रकोपः | ११ |
| चिकित्सापादाः | १ | ११ पित्तप्रकोपः | ११ |
| संक्षेपतो दोषाणां कथनम्. | १ | ११ कफप्रकोपः | ११ |
| देशविशेषेण दोषनिरूपणम्. | १ | ११ वातविकारलक्षणम् | ११ |
| साधारणदेशकथनम् | १ | ११ पित्तविकारलक्षणम् | ११ |
| मात्राचतुष्टयम् | १ | ११ कफविकारलक्षणम् | ११ |
| प्रकृतित्रयम्..... | १ | ११ दोषाणामुत्पत्तिकथनम् ... | ११ |
| मलरेतःसंरक्षणपूर्विका चि- | १ | अथ द्वितीयस्तरङ्गः । २ | |
| कित्सा कार्या | १ | अथ शारीरम् | १७ |
| स्वल्परोगोऽप्यनुपेक्ष्यः ... | १ | ११ शारीरज्ञानप्रयोजनम् ... | ११ |
| आसन्नमरणस्यापि चिकि- | १ | ११ सर्वशारीरसंग्रहः | ११ |
| त्सा कार्या | १ | ११ शरीरोत्पत्तिक्रमः | ११ |
| चिकित्सोत्तरं वैद्यपूजनाकर- | १ | ११ गृहीतगर्भाया लक्षणम् ... | ११ |
| णे दोषः... .. | १ | ११ ऋतुलक्षणम्... .. | ११ |
| छोभेन चिकित्सापण्यविक्रये | १ | ११ अनार्तवकाले गर्भग्रहणामावे | |
| निषेधः | १ | कारणम् | ११ |
| रोगपरीक्षोत्तरं चिकित्सा | १ | ११ गर्भवृद्धिकथनम् | १८ |
| कार्या | १ | ११ प्रतिमासं गर्भवृद्धिव्यवस्था. | ११ |
| व्याधिभेदाः..... | १ | ११ गर्भस्य द्वैविध्ये हेतुः | ११ |
| कर्मजो व्याधिः | १ | ११ विकृतोत्पत्तिहेतुः | ११ |
| कर्मदोषजो व्याधिः | १ | ११ गर्भनष्टहेतुः | ११ |
| | | ११ अङ्गप्रत्यङ्गोत्पत्तिः | ११ |

| विषया । | पृष्ठाङ्काः । | विषया । | पृष्ठाङ्काः । |
|--|---------------|--|---------------|
| प्रत्यङ्गानि | १० | अथ तृतीयस्तरङ्गः । ३ | |
| शब्दादिगुणाः | १० | अथ मानपरिभाषा... .. | २३ |
| कस्माद्धूतात्किमुत्पद्यते तन्नि- रूपणम् | ११ | मामधपरिभाषा | २४ |
| वेहे पितृमातृजप्रत्यङ्गविभागः सत्त्वादिगुणाः | ११ | कालिङ्गपरिभाषा | २५ |
| कलालक्षणम् | ११ | कृष्णात्रेयप्रोक्तं परिमाणम्. | २५ |
| आशयाः | १२ | अथ चतुर्थस्तरङ्गः । ४ | |
| धातवः | १२ | ओषधीनां युक्तायुक्तता | २६ |
| धातुमलाः | १३ | गुडूच्याद्योषधियोजना | २६ |
| उपधातवः | १४ | शुष्काद्रौषधियोजना | २६ |
| सप्त त्वचः | १४ | अनुक्तकालादिव्यवस्था | २६ |
| दोषाः | १४ | ओषधीनां गुणागुणवर्णनम्. | २६ |
| शिराः | १६ | ओषधीनां प्रतिनिधयः | २६ |
| स्नायवः | १६ | गोरक्षमतेनौषधीनां प्रतिनि- धयः | २७ |
| कण्डराः | १६ | अथ पञ्चमस्तरङ्गः । ५ | |
| धमन्यः | १७ | अथ स्नेहपानविधिः | २८ |
| पेश्यः | १७ | स्नेहभेदाः | २८ |
| अस्थीनि | १७ | स्नेहमात्रा | २९ |
| संधयः | १७ | रोगविशेषेण स्नेहविशेषः | २९ |
| रन्धाणि | १८ | कालविशेषेण स्नेहपानम् | २९ |
| स्रोतांसि | १८ | स्नेहनयोग्याः | २९ |
| मर्माणि | १९ | स्निग्धलक्षणम् | २९ |
| अस्थिमर्माणि | १९ | स्नेहपाकविधिः | ३० |
| संधिमर्माणि | २० | तैलशोधनम् | ३० |
| शिरामर्माणि | २० | स्नेहे जलप्रमाणम् | ३० |
| एकादश मांसमर्माणि | २१ | सिद्धस्नेहलक्षणम् | ३१ |
| सप्तविंशतिस्नायुमर्माणि | २१ | स्नेहविधिक्रमः | ३१ |
| आहारादिलक्षणम्... .. | २२ | त्रिविधस्नेहपाकगुणाः | ३२ |
| स्वस्थसमधातोर्मज्जादिमानम् | २३ | | |
| वयोविचारः... .. | २३ | | |

| विषया । | पृष्ठाङ्काः । | विषयाः । | पृष्ठाङ्काः । |
|---------------------------------------|---------------|-----------------------------------|---------------|
| अथ षष्ठस्तरङ्गः । ६ | | विरेकार्हाः | ३८ |
| अथ स्वेदविधिः | ३३ | कोष्ठप्रकाराः | ३९ |
| स्वेदभेदाः | ३३ | विरेकमात्राः | ३९ |
| स्वेदनयोग्याः | ३३ | वर्षाकाले विरेचनम् | ३९ |
| स्वेदनायोग्याः | ३३ | शरदि विरेचनम् | ३९ |
| अतिस्वेदने दोषः | ३३ | हेमन्ते विरेचनम् | ३९ |
| तापाभिधः स्वेदः | ३३ | शिशिरवसन्तकाले विरेचनम् | ३९ |
| उपनाहस्वेदः | ३३ | ग्रीष्मर्तौ विरेचनम् | ३९ |
| द्रवस्वेदः | ३४ | अभयामोदकः | ३९ |
| ब्रीहिभवस्वेदः | ३४ | मृद्वीकादिगणः । विरेकोत्तर- | |
| स्वेदसमाप्तिः | ३४ | नियमः | ४० |
| अथ सप्तमस्तरङ्गः । ७ | | दुर्विरक्तस्य लक्षणम् | ४० |
| अथ वमनविधिः | ३५ | विरेकस्यातियोगः | ४० |
| वमनयोग्यः | ३५ | तस्य शान्त्युपायः | ४० |
| वमनायोग्यः | ३५ | सुविरक्तलक्षणम् | ४० |
| वमनक्रिया | ३५ | रेचकसेवनगुणाः | ४० |
| वमने क्वाथादिप्रमाणम् | ३६ | विरेकमध्ये निषेधः | ४१ |
| वमने वेगप्रमाणम् | ३६ | भोज्यपदार्थाः | ४१ |
| वमनविरेचनयोः प्रस्थप्रमाणम् | ३६ | मलहरौषधानि | ४१ |
| वमनेन कफादीनां जयः | ३६ | नाराचो रसः | ४१ |
| अतिवान्तस्य लक्षणम् | ३६ | विचित्रविद्याधरः | ४१ |
| वमनातियोग उपायः | ३६ | इच्छाविभेदी रसः | ४२ |
| सम्यग्वान्तलक्षणम् | ३७ | नाराचरसः | ४२ |
| वमने पथ्यम् | ३७ | रेचनस्तम्भनोपायः | ४२ |
| वमने कुपथ्यम् | ३७ | अथ नवमस्तरङ्गः । ९ | |
| अथाष्टमस्तरङ्गः । ८ | | अथ वास्तिविधिः | ४३ |
| अथ विरेकविधिः | ४१ | अनुवासनवास्तिः | ४३ |
| विरेकायोग्यः | ४१ | निरुहवास्तिः | ४३ |
| | | उत्तरवास्तिः | ४४ |
| | | नेत्रवास्तिः | ४५ |

| विषयाः । | पृष्ठाङ्काः । | विषयाः । | पृष्ठाङ्काः । |
|---------------------------------|---------------|--|---------------|
| शिरोवस्तिः | ४६ | रक्तमोक्षेऽङ्गुलप्रमाणम् | ५४ |
| वस्तिमात्राः | ४७ | सावशेषरक्तस्रावः | ५५ |
| वस्त्यवगाहनविधिः | ४७ | अतिरक्तस्रावितस्य लक्षणम् | ५५ |
| कर्णपूरणमात्राविधिः | ४८ | रक्तरक्षणोपायः | ५५ |
| तैलाभ्यङ्गविधिः | ४८ | तस्य हितम् | ५५ |
| अथ दशमस्तरङ्गः । १० | | तस्य निषेधः | ५५ |
| अथ नस्यविधिः | ४९ | त्रिदोषरुधिरचिह्नम् | ५५ |
| नस्यनिषेधः | ४९ | अथ त्रयोदशस्तरङ्गः । १३ | |
| नस्यदाने वयोविचारः | ४९ | अथ राजार्हसवत्यादिगुणाः | ५६ |
| नस्यस्य बिन्दुमात्रा | ५० | तत्र माण्डानि | ५६ |
| वैरेचनं नस्यम् | ५० | पाकविधिः | ५६ |
| बृंहणप्रकारः | ५० | महानसोपयोग्युपकरणानि | ५६ |
| नस्यदाने दिनमर्यादा | ५१ | सर्ववस्तूनि | ५६ |
| रोगविशेषेण नस्यविशेषः | ५१ | अन्नरक्षार्थं विदुष्टान्नपरीक्षार्थं च | ५६ |
| बिन्दुप्रमाणम् | ५१ | सद्वैद्यस्थापनम् | ५७ |
| अथैकादशस्तरङ्गः । ११ | | सद्वैद्यलक्षणम् | ५७ |
| अथ धूमपानविधिः | ५२ | कुवैद्यलक्षणम् | ५८ |
| धूमपानानर्हाः | ५२ | अथ चतुर्दशस्तरङ्गः । १४ | |
| धूमपानगुणाः | ५२ | अथ सूपकारलक्षणम् | ५९ |
| धूमपानप्रकारः | ५२ | सूपकारवर्णनम् | ५९ |
| रोगविशेषेण धूमविशेषः | ५२ | सूपकाराध्यक्षवर्णनम् | ५९ |
| अपराजितो धूमः | ५२ | अथ पञ्चदशस्तरङ्गः । १५ | |
| नेत्रसंज्ञिका नलिका | ५२ | अथ ऋतुचर्या | ६० |
| अथ द्वादशस्तरङ्गः । १२ | | प्रत्यह्नि ऋतवः | ६० |
| अथ रक्तमुतिः | ५३ | अयनविचारः | ६१ |
| रुधिरस्वरूपम् | ५३ | हेमन्तः | ६१ |
| रक्तस्रावप्रशस्तिः | ५३ | शिशिरः | ६१ |
| रक्तमोक्षकरणसाधनम् | ५३ | वसन्तः | ६१ |

| विषयाः । | पृष्ठाङ्काः । | विषयाः । | पृष्ठाङ्काः । |
|-----------------------------|---------------|-----------------------------|---------------|
| ग्रीष्मः | ६२ | सामान्यसूपरन्धनप्रकारगुणः | ११ |
| तत्र निषेधः | ११ | कुल्माषः | ६९ |
| तत्र सेव्यम् | ११ | माषसूपः | ११ |
| वर्षाः | ६३ | आढकीसूपः | ११ |
| शरत् | ११ | चाणकसूपः..... | ११ |
| अथ षोडशस्तरङ्गः । १६ | | कलायसूपः | ११ |
| अथ सिद्धान्नादिपाकगुणकथ- | | मकुष्ठसूपः | ११ |
| नम् | ६४ | मसूरसूपः | ११ |
| तत्र भक्तम् | ११ | राजमाषसूपः | ११ |
| नलपाकः | ११ | निष्पावसूपः | ७० |
| भक्तगुणाः | ६५ | वर्तुलसूपः | ११ |
| भृष्टतण्डुलभक्तम् | ११ | कुलित्थसूपगुणाः | ११ |
| नानाधान्यभक्तगुणाः | ११ | द्वित्रिवैदलसूपगुणाः | ११ |
| पीतभक्तम् | ११ | नानान्नसूपगुणाः | ११ |
| इक्षुरससाधितं भक्तम् | ११ | सतुषवितुषसूपगुणागुणौ | ११ |
| तक्रसिद्धभक्तम् | ६६ | पर्पटाः | ११ |
| यवागूः | ११ | मुद्गजपर्पटाः... .. | ११ |
| विलेपी | ११ | तण्डुलपर्पटाः | ७१ |
| पेया | ११ | माषतण्डुलकृशरा | ११ |
| मण्डः | ११ | मुद्गतण्डुलकृशरा | ११ |
| अष्टगुणमण्डः | ६७ | पायसम् | ११ |
| वैदलयूषः | ११ | पोलिका | ११ |
| मुद्गयूषः | ११ | अङ्गारकर्करी | ११ |
| दाडिमामलकयूषः | ११ | मण्डकाः | ७२ |
| मुद्गामलकयूषः | ११ | मण्डपूरिका... .. | ११ |
| कुलित्थयूषः... .. | ११ | यमला रोटिका | ११ |
| सूपमूलकयूषः | ६८ | पूरिका | ११ |
| चाणकयूषः | ११ | वेष्टनी | ७३ |
| मकुष्ठयूषः | ११ | कचवल्ली | ११ |
| कृताकृतयूषौ | ११ | वटकः | ११ |
| | | काञ्चीकवटकः | ११ |

| विषयाः । | पृष्ठाङ्काः । | विषयाः । | पृष्ठाङ्काः । |
|---------------------------|---------------|---------------------|---------------|
| पुष्पवटी | ७४ | क्षीरवटी | ११ |
| मुद्गवटी | ११ | क्षीरमोदकः.... | ११ |
| पक्कवट्यः | ११ | स्वादुलङ्गुकाः | ११ |
| खण्डिता | ७५ | दुग्धमण्डकाः | ११ |
| पत्रवट्यः | ११ | दुग्धकरञ्जिका | ८३ |
| माषमुद्गजेण्डर्यौ | ११ | क्षीरशाकम् | ११ |
| शुष्कवटी | ७६ | लपसी | ११ |
| पानकम् | ११ | भैमी.. | ११ |
| छिन्नपानकम् | ११ | चन्द्रहासा | ११ |
| रागखाडवः.... | ७७ | शुद्धधेवरः ... | ८४ |
| शिखरिणी ... | ११ | नारिकेरजघृतपूरः ... | ११ |
| वासवती | ११ | दुग्धधेवरः ... | ११ |
| निम्बादिसंधानगुणाः | ११ | शालिपिष्टजधेवरः ... | ११ |
| मांससंधानम् | ७८ | कसेरुधेवरः ... | ११ |
| तित्तिरिसंधानम् ... | ११ | आम्ररसधेवरः | ११ |
| वराहमांससंधानम्.... | ११ | गुह्यकः | ११ |
| मत्स्यसंधानम् | ११ | अपूपः | ८५ |
| गोधूमफेणिका | ११ | दधिवटिका.... | ११ |
| माषफेणिका | ७९ | कुण्डली | ११ |
| नवनीतफेणिका | ११ | मण्ठः | ११ |
| माषफेणी ... | ११ | इन्दुरसा | ८६ |
| दधिलङ्गुकाः | ८० | कंसारः | ११ |
| शमितालङ्गुकाः ... | ११ | सक्तुः | ११ |
| माषमुद्गलङ्गुकाः ... | ११ | यवसक्तुः ... | ११ |
| मत्स्यलङ्गुकाः | ११ | यवचणकसक्तवः ... | ११ |
| मांसलङ्गुकाः | ८१ | चणकसक्तवः | ८७ |
| शालूकलङ्गुकाः ... | ११ | लाजसक्तुः ... | ११ |
| बिन्दुमोदकः ... | ११ | सक्तुनिषेधः.... | ११ |
| कूष्माण्डादिबीजमोदकाः.... | ११ | कुल्माषाः ... | ११ |
| दुग्धप्रकाराः | ८२ | लाजाः | ११ |
| स्रोहदुग्धसक्तुकः ... | ११ | धानागुणाः ... | ११ |

| विषया । | पृष्ठाङ्काः । | विषया । | पृष्ठाङ्काः । |
|--------------------------|---------------|--------------------------|---------------|
| पृथुकगुणाः... | ... | व्यायामगुणाः | ... |
| होलकः | ... | अर्धबललक्षणम् | ९३ |
| त्रंविका | ... | व्यायामानर्हाः | ... |
| पुष्करम् | ... | अभ्यङ्गः | ... |
| चणकहोलकः | ... | तैलम्... | ... |
| मांसरन्धनप्रकारगुणागुणाः | ... | अभ्यङ्गगुणाः | ... |
| मृष्टादिलक्षणम् | ... | कर्णे रसपूरणम् | ... |
| सर्वमांसप्रक्षालनप्रकारः | ... | स्नेहावगाहनगुणाः | ९४ |
| मांसरन्धनवेसवारः... | ... | तस्य निषेधः | ... |
| अथ सप्तदशस्तरङ्गः । १७ | | स्नानगुणाः | ... |
| अथ दिनचर्या | ९० | स्नाननिषेधः | ९५ |
| प्रातरभिवाद्याः | ... | भूषणगुणाः... | ९६ |
| मलाद्युत्सर्गनियमः... | ... | देवाद्यभिवादने गुणः | ... |
| मलमार्गशौचगुणाः | ... | भोजनसमयेऽष्टमङ्गलदर्शनम् | ... |
| पादप्रक्षालनम् | ... | नृणामिच्छाचतुष्टयम् | ... |
| दृष्टिप्रसाधनम् | ... | भोजनेच्छाविघाते दोषः | ... |
| जिह्वानिर्लेखनम् | ... | पिपासाविघाते दोषः | ... |
| मुखप्रक्षालनम् | ... | निद्राविघाते दोषः... | ९७ |
| दन्तधावनकाष्ठानि | ... | सुरतस्पृहाविघाते दोषः | ... |
| दन्तधावनायोग्याः... | ९१ | आहारव्यवस्था | ... |
| जिह्वानिर्लेखनसाधनानि... | ... | हेमपात्रम् | ... |
| गण्डूषः | ... | रौप्यम् | ९८ |
| तस्य निषेधः | ... | कांस्यपात्रम् | ... |
| रोगविशेषेण मुखप्रक्षालन- | ... | पैतलम् | ... |
| योग्योदकम् | ... | लोहपात्रम् | ... |
| नस्यम् | ९२ | ताम्रपात्रम् | ... |
| अञ्जनम् | ... | सृन्मयपात्रम् | ... |
| अञ्जने निषेधः | ... | काष्ठपात्रम् | ... |
| केशप्रसाधनकरणम् | ... | दलपात्रम् | ... |
| आदर्शगुणाः | ... | जलपात्रम् | ... |
| | ... | काचादिपात्रम् | ... |

| विषयाः । | पृष्ठाङ्काः । | विषयाः । | पृष्ठाङ्काः । |
|--------------------------|---------------|--------------------------|---------------|
| वृष्टिदोषनिवारणम् | ... ११ | अथाष्टादशस्तरङ्गः । १८ | |
| भोजनक्रमः... | ... ९९ | अथ रात्रिचर्या | ... ११ |
| भोजनात्प्राग्भोज्यानि | ... १०० | संध्यावर्जककर्माणि | ... ११ |
| भोजनोत्तरं भक्षणायोग्याः | ११ | क्षीणशुक्रलक्षणम् | ... ११ |
| अन्नपरीक्षा | ... ११ | स्त्रीणां बालादिसंज्ञाः | ... ११ |
| विषयुक्तान्नम् | ... ११ | बालादिलक्षणम् | ... १०६ |
| उदकपाननियमः | ... १०१ | कालविशेषेण बालादिभो- | |
| भोजनोत्तरं स्मर्यमाणाः | ... ११ | ग्यत्वम् | ... ११ |
| ताम्बूलद्रव्यगुणाः | ... ११ | सद्यः प्राणकराणि | ... ११ |
| ताम्बूलरचना | ... ११ | सद्यः प्राणहराणि | ... ११ |
| ताम्बूलगुणाः | ... १०२ | देशविशेषजातस्त्रीस्वभावः | ... ११ |
| ताम्बूलभक्षणानर्हाः | ... ११ | दिनमर्यादा | ... १०७ |
| भोजनोत्तरं निषिद्धानि | ... ११ | गमनायोग्याः स्त्रियः | ... ११ |
| खट्वानूल्यादिगुणाः | ... १०३ | मैथुननिषेधः | ... ११ |
| प्रवातसेवनगुणाः | ... ११ | अतिव्यवाये दोषः | ... ११ |
| पूर्वादिवातगुणाः | ... ११ | जलपानस्योपक्रमकालः | ... ११ |
| व्यजनाद्यनिलगुणाः | ... ११ | उदकप्रमाणम् | ... १०८ |
| दिवास्वापनिषेधः | ... ११ | अथैकोनविंशस्तरङ्गः । १९ | |
| दिवास्वापार्हाः | ... १०४ | अथ द्रव्यरसविपाकादिवर्ण- | |
| दिवामैथुननिषेधः | ... ११ | नम् | ... ११ |
| उष्णीषगुणाः | ... ११ | मधुरगुणाः | ... १०९ |
| उपानद्धारणगुणाः | ... ११ | अम्लरसः | ... ११ |
| अधारणे दोषाः | ... ११ | लवणरसः | ... ११ |
| छत्रधारणम् | ... ११ | तिक्तः | ... ११ |
| दण्डधारणम् | ... ११ | कटुरसः | ... ११० |
| शिबिकादिवाहनगुणाः | ... ११ | कषायः | ... ११ |
| धातपः | ... १०५ | वह्निगुणाः | ... ११ |
| वृष्टिः | ... ११ | गुणागुणाः | ... ११ |
| अग्निः | ... ११ | वीर्यम् | ... ११ |
| धूमः | ... ११ | | |
| सतताध्ययनादि | ... ११ | | |

| विषया । | पृष्ठाङ्का । | विषया । | पृष्ठाङ्का । |
|------------------------------|--------------|-------------------------------|--------------|
| वीर्यगुणाः १११ | | तडागजलगुणागुणाः ... ११ | |
| विषाकः ११ | | वापीजलगुणागुणाः ... ११ | |
| विषाकगुणाः ११ | | निर्झरजलम् ११ | |
| प्रभावः ११ | | औन्दिदं जलम् ११ | |
| तद्विशेषः ११ | | चौण्ड्यजलम् ११ | |
| रसभेदाः ११ | | केदारजलम् ११७ | |
| रसोत्पत्तिहेतुभूतानि ... ११२ | | चन्द्रकान्तजलम् ११ | |
| अथ विंशस्तरङ्गः । २० | | हंसोदकम् ११ | |
| अथ जलगुणागुणकथनम् . ११ | | ऋतुविशेषे जलविशेषगुणाः ११ | |
| सामान्यवारिगुणाः ११३ | | मासविशेषे जलविशेषः ... ११ | |
| सामान्यदिव्यवारिगुणाः ... ११ | | आनूपजाङ्गलसाधारणजल- | |
| तौषारम् ११ | | गुणाः ११८ | |
| हिमजलम् ११ | | निन्द्यजलम् ११ | |
| धाराजलम् ११ | | व्यापन्नजलसंस्काराः ... ११ | |
| करकाजलम्... .. ११४ | | जलग्रहणविधिः ११ | |
| भौमलक्षणगुणागुणाः ... ११ | | जलपानविधिः ११ | |
| सामान्यनदीजलगुणागुणाः . ११ | | भोजने जलपानविधिः ... ११ | |
| विशेषः ११ | | रात्रिशेषे पीतजलस्य गुणाः ११ | |
| हिमालयोद्भूतनदीवारिगुणा- | | उष्णवारिलक्षणगुणाः ... ११ | |
| गुणाः ११ | | ऋतुविशेषे जलक्राथनियमः १२० | |
| मलयजनदीजले गुणागुणाः ११ | | रात्रिपीतोष्णोदकगुणाः ... ११ | |
| सह्यजनदीजलगुणागुणाः.... ११ | | शीतलकरणविधिः.... ११ | |
| विन्ध्यजनदीजलगुणागुणाः.. ११ | | निषिद्धमुष्णोदकम् ... ११ | |
| पारियात्रजनदीगुणागुणाः ११५ | | उष्णोदकप्रयोगः . . . ११ | |
| तडागोद्भूतनदीगुणागुणाः ११ | | उष्णोदकनिषेधः . . . ११ | |
| कन्दरोद्भूतनदीगुणागुणाः ११ | | उष्णवारिमन्दाचरणम् ... ११ | |
| मरुद्भूतनदीगुणागुणाः ... ११ | | नालिकेरपानीयगुणाः ... १२१ | |
| पूर्वादिसमुद्रगाणां सरितां | | अथैकविंशस्तरङ्गः २१ । | |
| गुणागुणाः ११ | | अथ दुग्धम् . . . १२१ | |
| कूपवारिगुणागुणाः ... ११ | | सामान्यक्षीरगुणागुणाः ... १२१ | |
| सारसाम्बुगुणागुणाः ... ११६ | | | |

| विषयाः । | पृष्ठाङ्काः । | विषयाः । | पृष्ठाङ्काः । |
|--------------------------------|---------------|--------------------------------|---------------|
| गोदुग्धगुणागुणाः ११ | | आजम् ११ | |
| गोवर्णभेददुग्धगुणागुणाः.... ११ | | पक्वदुग्धदधिगुणाः... ११ | |
| बालवत्साविवत्सादुग्धम् .. १२२ | | निःसारदुग्धदधिगुणाः ... ११ | |
| पिण्याकाद्यशनजदुग्धम् ... ११ | | बन्धस्य दध्मो गुणागुणाः ... ११ | |
| माहिषम् ११ | | शर्करादधिगुणाः १२७ | |
| आजम् ११ | | सगुडदधिगुणाः ११ | |
| आविकम् ११ | | दधिभक्षणे कालादिनियमः | |
| औष्ट्रम् ११ | | ऋतुविशेषे दधिगुणागुणाः | ११ |
| हस्तिनीदुग्धम् ११ | | दधिभक्षणविधित्यागे दोषाः | ११ |
| आश्वम् ११ | | सरगुणाः ११ | |
| नारीदुग्धम् १२३ | | मस्तुगुणाः ११ | |
| धारोष्णधाराशीतगुणाः ... ११ | | अथ त्रयोविंशस्तरङ्गः । २३ | |
| अपक्वदुग्धम् ११ | | अथ सामान्यतक्रगुणाः ... १२८ | |
| क्वथितदुग्धम् ११ | | तक्रभेदाः ११ | |
| शर्करासहितदुग्धम् ११ | | तल्लक्षणानि ११ | |
| रात्रिक्षीरगुणाः ११ | | तद्गुणाः ११ | |
| संध्याकालीनं पयः ११ | | मन्दादितक्रगुणाः ११ | |
| रात्रिपीतदुग्धगुणाः १२४ | | तन्वादिगुणाः ११ | |
| निषिद्धदुग्धम् ११ | | दोषविशेषे संयोगविशेषः... १२९ | |
| अधिकारविशेषे गुणविशेषः | ११ | आमतक्रगुणाः ११ | |
| बष्कयणीदुग्धगुणाः ११ | | कालादिभेदे गुणभेदः ... ११ | |
| मथितदुग्धगुणाः ११ | | तक्रनिषेधः ११ | |
| तत्फेनगुणाः.... .. ११ | | तक्रसेवनगुणाः ११ | |
| संतानिकागुणाः ११ | | अच्छाच्छम्... .. ११ | |
| पीयूषादिगुणलक्षणानि .. १२५ | | अथ चतुर्विंशस्तरङ्गः । २४ | |
| अथ द्वाविंशस्तरङ्गः । २२ | | अथ नवनीतम् १३० | |
| अथ सामान्यदधिगुणाः ... ११ | | गव्यम् ११ | |
| दधिभेदाः ११ | | माहिषम् ११ | |
| गोदधिगुणाः १२६ | | आजम् ११ | |
| माहिषम् ११ | | | |

| विषयाः । | पृष्ठाङ्काः । | विषयाः । | पृष्ठाङ्काः । |
|--------------------------|---------------|-----------------------------|---------------|
| सद्योनवनीतम् | ११ | मद्यगुणाः | ११ |
| चिरंतननवनीतम् ... | ११ | मद्योपयोगिद्रव्याणि ... | ११ |
| अथ पञ्चविंशस्तरङ्गः । २५ | | मद्यपानविधिः | ११ |
| अथ घृतम् ... | १३१ | सुरा ... | ११ |
| तत्र सामान्यघृतगुणाः ... | ११ | वारुणी ... | ११ |
| गव्यघृतगुणाः ... | ११ | बैभीतकी सुरा ... | ११ |
| आजम् ... | ११ | यवसुरा ... | ११ |
| माहिषम् ... | ११ | अरिष्टः ... | ११ |
| दुग्धमवं घृतम् | ११ | मार्द्विकम् ... | ११ |
| हैयङ्गवीनं घृतम् ... | ११ | खार्जूरम् ... | १३६ |
| पुराणघृतम् ... | ११ | शार्करः | ११ |
| नूतनम् ... | १३२ | गौडादयो भेदाः ... | ११ |
| घृतमण्डः ... | ११ | अथाष्टाविंशस्तरङ्गः । २८ | |
| रोगविशेषे घृतविशेषः ... | ११ | अथेक्षुगुणाः | १३६ |
| अथ षड्विंशस्तरङ्गः । २६ | | सामान्येक्षुगुणाः ... | ११ |
| अथ तैलम् ... | १३२ | रक्तेक्षुः ... | ११ |
| तिलतैलम् ... | १३३ | पौण्ड्रकः ... | १३७ |
| अतसीतैलम् ... | ११ | कृष्णेक्षुः ... | ११ |
| तुवरीतैलम् | १३४ | वंशेक्षुः ... | ११ |
| सार्धपम् ... | ११ | शतपर्वा ... | ११ |
| राजिकातैलम् | ११ | कान्तारः ... | ११ |
| एरण्डतैलम् ... | ११ | तापसेक्षुः ... | ११ |
| कुसुम्भबीजतैलम् ... | ११ | काठेक्षुः | ११ |
| निम्बतैलम् | ११ | कोशकारः ... | ११ |
| पालाशमाधूकपाटलातैलानि | ११ | सूचीपत्रादयः ... | ११ |
| आम्रतैलम् ... | १३५ | दन्तनिष्पीडितेक्षुगुणाः ... | ११ |
| अथ सप्तविंशस्तरङ्गः । २७ | | यन्त्रनिष्पीडितरसगुणाः ... | ११ |
| अथ मद्यम् ... | ११ | आवर्तितरसगुणाः ... | ११ |
| | | सितोपला ... | १३ |

| विषया । | पृष्ठाङ्काः । | विषया । | पृष्ठाङ्काः । |
|-------------------------------|---------------|----------------------------------|---------------|
| खण्डः १३८ | | आर्द्राकृतमुद्गगुणाः ... ११ | |
| श्वेतशर्करा ११ | | मुद्गशिम्बः ११ | |
| मधुशर्करा यवासशर्करा ... ११ | | स्नेहसिद्धशिम्बाद्रमुद्गगुणाः ११ | |
| फाणितम् ११ | | माषः... .. ११ | |
| गुडः ११ | | राजमाषः ११ | |
| अथैकोनत्रिंशस्तरङ्गः । २९ | | मकुष्ठः ११ | |
| अथ मधु १३९ | | निष्पावः १४३ | |
| मधुवर्णाः ११ | | आढकी ११ | |
| सामान्यमधुगुणाः ११ | | वर्तुलः ११ | |
| माक्षिकादीनां विशिष्टगुणाः ११ | | कलायत्रिपुटगुणाः ११ | |
| मधूच्छिष्टगुणाः ११ | | चणकः ११ | |
| अथ त्रिंशस्तरङ्गः । ३० | | मसूरः ११ | |
| अथ शाल्यादि १४० | | कुलित्थः ११ | |
| सामान्यशालिगुणाः ११ | | तिलाः १४४ | |
| रक्तशालिः ११ | | तुवरी ११ | |
| महाशालिः ११ | | अतसी ११ | |
| षष्टिकाः ११ | | किरटा ११ | |
| महाषष्टिकाः ११ | | सर्षपः ११ | |
| कृष्णव्रीहिः ११ | | राजिका ११ | |
| वृग्धभूजातशालयः ११ | | शणः ११ | |
| सामान्यस्थलजशालिगुणाः १४१ | | प्रियङ्गुगुणाः ११ | |
| केदारजाः ११ | | श्यामाकः ११ | |
| रोपिताः ११ | | कोद्रवः १४४ | |
| गोधूमगुणाः ११ | | नीवारः १४५ | |
| उम्बिका ११ | | यावनालः ११ | |
| यवगुणाः ११ | | गवेधुका ११ | |
| शिम्बीधान्यम् ११ | | नन्दीमुखीवेणुयवादि ... ११ | |
| शिम्बगुणाः १४२ | | गुणहीनधान्यम् ११ | |
| मुद्गः ११ | | नूतनधान्यगुणाः ११ | |
| | | वर्षोषितधान्यगुणाः ११ | |
| | | विशिष्टनूतनान्नगुणागुणाः ११ | |

| विषयाः । | पृष्ठाङ्काः । | विषयाः । | पृष्ठाङ्काः । |
|----------------------------------|---------------|----------------------------|---------------|
| अथैकत्रिंशस्तरङ्गः । ३१ | | | |
| अथ फलानि १४६ | | अञ्जीरम् ११ | |
| द्राक्षा ११ | | अक्षोटम् ११ | |
| आम्रः ११ | | शृङ्गाटम् ११ | |
| सामान्यजम्बूः ११ | | पालेवतमाणवके ११ | |
| राजजम्बूफलम् ११ | | तूतम् ११ | |
| लघुजम्बूः ११ | | गाङ्गेरुतोदने ११ | |
| नारिकेलम् ११ | | तुवरकः . . . ११ | |
| पिण्डखर्जूरीस्वल्पखर्जूरीफलम् ११ | | बीजपूरः ११ | |
| सलेमानी ११ | | मधुकर्कटी १५१ | |
| कदली ११ | | नागरम् ११ | |
| दाडिमम् ११ | | जम्बीरम् ११ | |
| बदरम् ११ | | अम्लवेतसम् ११ | |
| क्षीरिणीफलम् १४८ | | साराम्लम् . . . ११ | |
| चारः ११ | | निम्बूकम् ११ | |
| परुषकम् ११ | | कर्मरङ्गम् ११ | |
| तिन्दुकः ११ | | अम्लिका ११ | |
| किङ्किणी ११ | | वृक्षाम्लम् १५२ | |
| आरुकम् ११ | | करमर्दम् ११ | |
| मधुकः ११ | | कपित्थम् ११ | |
| पनसम् १४९ | | आभ्रातकम् ११ | |
| लकुचम् ११ | | राज.अम्रम् ११ | |
| तालः ११ | | कण्टकम् . . . ११ | |
| खर्बूजम् ११ | | तारपुलम् ११ | |
| शिम्बितिकाफलम् ११ | | राज्यफलम् १५३ | |
| महाच्छिम्बितिकाफलम् ११ | | अथ द्वात्रिंशस्तरङ्गः । ३२ | |
| अमृतफलम् ११ | | अथ शाकानि १५३ | |
| वातामम् १४९ | | सामान्यशाकम् ११ | |
| निकोचकमुकूलके ११ | | शृङ्गाण्डम् ११ | |
| आलुकम् १५० | | कालिङ्गम् ११ | |
| | | अलाबु १५४ | |

| विषयाः । | पृष्ठाङ्काः । | विषयाः । | पृष्ठाङ्काः । |
|----------------------------------|---------------|---|---------------|
| कर्कटी | ११ | चुक्रा | ११ |
| त्रपुसम् | ११ | शतपुष्पा | ११ |
| चिर्मटम् | ११ | मेथिका | ११ |
| वालुकम् | ११ | मीनाक्षी | ११ |
| शीर्णवृन्तम् | ११ | चक्रमर्दम् | ११ |
| कोशातकी | ११ | पुनर्नवाशाकम् | १५८ |
| राजकोशातकी | ११ | उपोदकी | ११ |
| महाकोशातकी | ११ | लोणिका | ११ |
| वृन्ताकम् | १५५ | सुनिषण्णः | १५८ |
| बिम्बी | ११ | तिलपर्णी | ११ |
| कारवेल्लम् | ११ | सितवारः | ११ |
| कर्कोटकम् | ११ | नाली.... | ११ |
| वन्ध्यकर्कोटकी | ११ | सार्षपम् | ११ |
| डोडिका | ११ | कौसुम्मम् | ११ |
| पृथुशिम्बः | ११ | चणकशाकम् | ११ |
| डिण्डिमः | १५५ | कलायशाकम् | १५९ |
| शिम्बी | ११ | चाङ्गेरी | ११ |
| पटोलम् | ११ | कासमर्दः | ११ |
| बृहत्पटोलिका | १५६ | सौमाञ्जनम् | ११ |
| अथ पञ्चशाकं तत्र वास्तूकः | ११ | मधुशिग्रुः | ११ |
| रक्तवास्तूकः | ११ | अथ पुष्पाणि तत्र सौमाञ्जनपुष्प- गुणाः | १५९ |
| चक्रवर्तिशाकम् | ११ | मधुशिग्रुपुष्पम् | ११ |
| चिल्ली | ११ | मधुशिग्रु | ११ |
| कालशाकम् | ११ | कदलीपुष्पम् | १६० |
| चञ्चुः | ११ | मुनिद्रुमपुष्पम् | ११ |
| नाडीकः | ११ | अथ मूलशाकानि | ११ |
| करम्बी | १५७ | सूरणः | ११ |
| तण्डुलीयः | १५७ | आलूकी | ११ |
| फोङ्गः | ११ | मर्जरम् | ११ |
| मारीषः | ११ | माणकः | १६१ |
| पालक्या | ११ | | |

| विषया. । | पृष्ठाङ्काः । | विषया. । | पृष्ठाङ्काः । |
|------------------------------|---------------|-----------------------------------|---------------|
| कसेरुकशालूके | ११ | प्रसहाः | ११ |
| आलूकम् | ११ | ग्राम्याः | ११ |
| पिण्डालु | ११ | कूलेचराणां गणना गुणाश्च १६६ | |
| हस्तालु | ११ | प्लवाः... .. | ११ |
| वाराहीकन्दः | ११ | कोशस्थगुणाः | ११ |
| मुसलीकन्दः | ११ | पादिनः | ११ |
| केलूटम् | ११ | मत्स्याः | ११ |
| कदलीकन्दः | ११ | विशिष्टानां जन्तूनां गुणाः... १६७ | |
| लशुनः | ११ | मेषमांसगुणाः | ११ |
| पलाण्डुः | ११ | मेदःपुच्छः | ११ |
| गृञ्जनः | १६२ | कृष्णसारः | ११ |
| अथ नालशाकं तत्रास्थिशृङ्ख | | हरिणी | ११ |
| लिका | ११ | गोकर्णशम्बरौ | ११ |
| आलूकीनालम् | ११ | गवयः | ११ |
| करीरः | ११ | कस्तूरीमृगः | ११ |
| भूस्वेदजं शाकम् | ११ | मुण्डिनी | १६८ |
| निषिद्धशाकम् | ११ | वातप्रमीचित्रमृगच्छिकार... .. | |
| | | गुणाः | ११ |
| अथ त्रयस्त्रिंशस्तरङ्गः । ३३ | | रुरुः | ११ |
| अथ मांसानि | १६३ | न्यङ्कुः | ११ |
| तत्र सामान्यमांसगुणाः | ११ | शशः... .. | ११ |
| तद्भेदाः | ११ | सल्लकसेन्धे | ११ |
| जाङ्गललक्षणम् | ११ | सूकरः | ११ |
| आनूपलक्षणगुणाः... .. | ११ | गण्डकः | १६९ |
| जाङ्गलानां गणनाविशिष्ट- | | महिषः | ११ |
| गुणाः | १६४ | उष्ट्रमांसगुणाः | ११ |
| बिलेशयलक्षणगुणाः | ११ | घोटकः | ११ |
| गुहाशयलक्षणगुणाः | ११ | शृगालः | ११ |
| पर्णमृगः | १६५ | मूषकः | ११ |
| विष्किराः | ११ | राजीमृगः | ११ |
| मन्दाः | ११ | वक्षिमांसगुणाः | ११ |
| | | लावाः | १७० |

| विषयाः । | पृष्ठाङ्काः । | विषयाः । | पृष्ठाङ्काः । |
|------------------------------|---------------|--------------------------------|---------------|
| वार्तिकः | ११ | कुम्भायाः | ११ |
| कृष्णतित्तिरो गौरतित्तिरश्च. | ११ | जतिबुद्धमत्स्याः | ११ |
| चटकः | १७० | पत्तवाण्डगुणाः | ११ |
| कुक्कुटाः | ११ | गुण्यमत्स्याः | ११ |
| हारीतः | १७१ | सूयमत्स्याः | ११ |
| पाण्डुधवलौ | ११ | कूपजादिमत्स्यगुणाः | ११ |
| चित्रपक्षः | ११ | ऋतुविशेषे मत्स्यविशेषाः | ११ |
| पारावतः | ११ | सद्योहतमांसादिगुणाः | १७५ |
| पक्ष्यण्डस्य गुणाः | ११ | अथ चतुर्विंशस्तरङ्गः ३४ । | |
| मयूरमांसम् | ११ | अथ हरीतकीगुणाः | ११ |
| सारसः | ११ | हरीतकीलक्षणम् | ११ |
| हंसः | १७२ | सामान्यहरीतकी | १७६ |
| चक्रवाकादिगुणाः | ११ | विशेषः | ११ |
| मत्स्याः | ११ | ऋतुहरीतकी | ११ |
| शिलीन्धः | ११ | सामान्यहरीतकीगुणाः | ११ |
| भकुडः | ११ | आमलकी | १७७ |
| मोयिका | ११ | विभीतकः | ११ |
| पाठीनः | ११ | त्रिफला | ११ |
| शृङ्गी.... | ११ | भूम्यामलकी | १७८ |
| हिल्लिशः | १७३ | राजामलकम् | ११ |
| शकुली | ११ | वासकः | ११ |
| गर्गरः | ११ | गुडूची | ११ |
| कविका | ११ | तत्सत्त्वगुणाः | ११ |
| वर्मिः | ११ | बिल्वम् | ११ |
| डण्डमत्स्यः | ११ | अग्निमन्थः | १७९ |
| एरङ्गः | ११ | पाटला | ११ |
| महाशकरः | ११ | काश्मरी | ११ |
| गरुडी | ११ | श्यानाकः | ११ |
| मकुरः | ११ | महत्पञ्चमूलम् | ११ |
| सपादमत्स्यः | १७४ | गोक्षुरः | ११ |
| प्रोष्ठी | ११ | | |

| विषया । | पृष्ठाङ्का । | विषया । | पृष्ठाङ्का । |
|------------------------------|--------------|---------------------------|--------------|
| शालिपर्णी ... | १८० | कटुकी ... | ११ |
| पृश्निपर्णी ... | ११ | अङ्गोलः ... | ११ |
| बृहती | ११ | निम्बगुणाः ... | ११ |
| लघुकण्टकारी ... | ११ | महानिम्बः . | ११ |
| लघुपञ्चमूलम् ... | ११ | किरातः ... | १८६ |
| अष्टवर्गः ... | ११ | कुटजः ... | ११ |
| तत्र जीवकर्षभकयोरुत्पत्ति- | | इन्द्रयवः | ११ |
| लक्षणम् ... | १८१ | मदनफलम् ... | ११ |
| मेदामहामेदयोरुत्पत्तिलक्ष- | | कङ्कुष्ठम् | ११ |
| णम् ... | ११ | चोकः | ११ |
| काकोलीक्षीरकाकोल्योरु- | | सातला | ११ |
| त्पत्तिलक्षणम् ... | ११ | अश्मन्तः काञ्चनारमेदः ... | १८७ |
| ऋद्धिवृद्धयोरुत्पत्तिलक्षणम् | ११ | काञ्चनारकोविदारौ ... | ११ |
| अष्टकवर्गप्रतिनिधिः ... | १८२ | निर्गुण्डी ... | ११ |
| जीवन्ती ... | ११ | मेषशृङ्गी ... | ११ |
| मधुयष्टी | ११ | श्वेतपुनर्नवा ... | ११ |
| माषपर्णीमुद्गपर्ण्यौ .. | ११ | रक्तपुनर्नवा ... | ११ |
| जीवनीयगणः ... | ११ | रास्ना ... | १८८ |
| एरण्डद्वयगुणः ... | १८३ | अश्वगन्धा ... | ११ |
| सारिवाद्वयम् ... | ११ | प्रसारिणी ... | ११ |
| यासमुण्डयौ . | ११ | शतावरी ... | ११ |
| बृहन्मुण्डी ... | ११ | महाशतावरी ... | ११ |
| श्वेतापामार्गः .. | ११ | बलाचतुष्टयम् | ११ |
| रक्तापामार्गः | १८४ | तेजस्विनी ... | १८९ |
| कपिला .. | ११ | ज्योतिष्मती.... | ११ |
| दातिनी ... | ११ | देवदारु ... | ११ |
| त्रिवृत् ... | ११ | सरलः ... | ११ |
| श्यामा त्रिवृत् ... | ११ | पुष्करमूलम् ... | ११ |
| ऐन्द्रवारुणीद्वयम् ... | ११ | कुष्ठम् ... | १९० |
| राजवृक्षः ... | ११ | शृङ्गी ... | ११ |
| नीलिनी ... | १८५ | रोहिषम् ... | ११ |

| विषयाः । | पृष्ठाङ्काः । | विषयाः । | पृष्ठाङ्काः । |
|----------------------|---------------|-------------------------|---------------|
| कटफलम् | ११ | मुसलीकन्दः | ११ |
| मार्गी | ११ | कपिकच्छुः | ११ |
| पाषाणभेदः | ११ | पुत्रजीवः | १९५ |
| मुस्ता | ११ | वन्ध्यकर्कोटकी | ११ |
| धातकी | १९१ | विष्णुकान्ता | ११ |
| मोचिका | ११ | शङ्खपुष्पी | ११ |
| विदारीकन्दः | ११ | दुग्धिकोष्णा | ११ |
| वाराहीकन्दः | ११ | नागार्जुनी | ११ |
| पाठा | ११ | अधःपुष्पी | ११ |
| मूर्वा | ११ | मल्लतकः | १९६ |
| मञ्जिष्ठा | ११ | चिरपोटी | ११ |
| हरिद्रा | १९२ | इन्द्रशाकम् | ११ |
| दार्वा | ११ | द्रोणपुष्पी | ११ |
| प्रपुन्नाडः | ११ | बाह्मीमाण्डूक्यौ | ११ |
| बाकूची | ११ | सूर्यभक्ताद्वयम् | ११ |
| भृङ्गराजगुणाः | ११ | मत्स्याक्षी | १९७ |
| पर्पटः | ११ | जलपिप्पली | ११ |
| शणपुष्पी | १९३ | गोजिह्वा | ११ |
| अयमाणा | ११ | नागदमनी | ११ |
| सहाजालिनी | ११ | विरवेली | ११ |
| विषा | ११ | वन्दाकः | ११ |
| काकमात्री | ११ | पिण्डारुः | ११ |
| काकजङ्घा | ११ | छिक्रिणी | ११ |
| लोधद्वयम् | ११ | रोहीतकः | १९८ |
| वृद्धदारुः | ११ | मोचकः | ११ |
| देवदाली | १९४ | अजगन्धा | ११ |
| हंसपादी | ११ | सैरेयकः | ११ |
| सोमवल्ली | ११ | गिरिकर्णोद्वयम् | ११ |
| जाकुली | ११ | क्षुरकः | ११ |
| वटपत्री | ११ | कार्पासः | ११ |
| लज्जालुः | ११ | आरामशीतला | १९९ |

| विषयाः । | पृष्ठाङ्काः । | विषयाः । | पृष्ठाङ्काः |
|------------------------------|---------------|-------------------------|-------------|
| कुकुरुन्दुः ११ | | कदम्बः ११ | |
| बामी १२ | | ककुभः ११ | |
| बलामोटा ११ | | शिरीषः ११ | |
| शरपुङ्खः ११ | | अर्गटः ११ | |
| मयूरशिखा ११ | | वेतसः २०४ | |
| लक्ष्मणकन्दः ११ | | जलवेतसः ११ | |
| मांसरोहिणी २०० | | वज्जुलः ११ | |
| उच्चटा ११ | | श्लेष्मान्तकः ११ | |
| अस्थिसंधानकृत ११ | | पीलु ११ | |
| रुदन्ती ११ | | शाकवृक्षः ११ | |
| मङ्गाशुद्धिः ११ | | शालवृक्षः ११ | |
| मङ्गागुणाः ११ | | तमालः ११ | |
| दूर्वाद्वयम् ११ | | खदिरः २०५ | |
| काशः २०१ | | इरिमेदः ११ | |
| कुशः ११ | | बम्बूलः ११ | |
| मुञ्जः ११ | | बीजकः ११ | |
| नलः ११ | | तिनिसः ११ | |
| वंशः ११ | | भूर्जः ११ | |
| यवानी ११ | | पलाशः ११ | |
| बृष्यः ११ | | धवः २०६ | |
| पातालमारुडी २०२ | | धन्वनः ११ | |
| अथ पञ्चत्रिंशस्तरङ्गः । ३५ | | सर्जः ११ | |
| बटः ११ | | वरणवृक्षः ११ | |
| पिप्पलः ११ | | जिङ्गिणी ११ | |
| पारिसपिप्पलः ११ | | शलकी ११ | |
| उदुम्बरः ११ | | इक्षुदी ११ | |
| काकोदुम्बरी ११ | | कट्ममसा ११ | |
| पृक्षः ११ | | मोषकः २०७ | |
| पञ्चक्षीरिवृक्षाः २०३ | | पारिमद्रः ११ | |
| वन्दीवृक्षः ११ | | शाल्मली ११ | |
| | | नन्दीवृक्षः ११ | |

| विषया. । | पृष्ठाङ्का. । | विषया. । | पृष्ठाङ्काः । |
|----------------------------|---------------|-----------------------------|---------------|
| सप्तपर्णः | ११ | बोहारः | ११ |
| हारिद्रकः | ११ | अजगन्धा | ११ |
| करञ्जः | ११ | वचा | २१३ |
| बृहत्करञ्जः | २०८ | हपुषा | ११ |
| करञ्जिका | ११ | विडङ्गम् | ११ |
| तिरिगिच्छिः | ११ | धान्यकम् | ११ |
| शमी | ११ | हिङ्गुपत्री | ११ |
| शिरीषिका | ११ | हिङ्गु | ११ |
| अरिष्टकः | ११ | वंशरोचना | २१४ |
| शिंशिषा | ११ | सेन्धवम् | ११ |
| अगस्त्यवृक्षः | २०९ | सौवर्चलम् | ११ |
| अथ षट्त्रिंशस्तरङ्गः । ३६ | | विडलवणम् | ११ |
| शुण्ठ्यादिगुणकथनम् | ११ | सामुद्रलवणम् | ११ |
| आर्द्रकम् | ११ | भूमिजलवणम् | ११ |
| मरिचगुणाः | ११ | गडलवणम् | ११ |
| पिप्पली | २१० | औखरम् | २१५ |
| ज्युषणम् | ११ | काचलवणम् | ११ |
| पिप्पलीमूलम् | ११ | यवक्षारः | ११ |
| चतुर्षणम् | ११ | स्वर्जिका | ११ |
| चव्यम् | ११ | टङ्कणः | ११ |
| गजपिप्पली | २११ | सोमक्षारः | ११ |
| चित्रकद्वयम् | ११ | लवणक्षारः | ११ |
| पञ्चकोलम् | ११ | सर्वे क्षाराः | ११ |
| षड्ढूषणम् | ११ | चिञ्चाक्षारः | २१६ |
| शतपुष्पा बृहच्छतपुष्पा च | ११ | अथ सप्तत्रिंशस्तरङ्गः । ३७ | |
| मेथिका | ११ | अथ कर्पूरादिगुणकथनम् | ११ |
| अहिंथः | २१२ | कर्पूरः | ११ |
| अजमोदा | ११ | कस्तूरीद्वयम् | ११ |
| श्वेतकृष्णजीरकं बाष्पिका च | ११ | जवादिमार्जारी | ११ |
| जवानी | ११ | श्वेतचन्दनम् | ११ |

| विषयाः । | पृष्ठाङ्काः । | विषयाः । | पृष्ठाङ्काः । |
|------------------------|---------------|-----------------------------|---------------|
| रक्तचन्दनम् | २१७ | स्थौणेयम् | ११ |
| मलयाद्रिचन्दनम् | " | चोरकः | ११ |
| अगुरुः | " | मुरा | ११ |
| अगुरुसत्त्वम् | " | कर्चूरः | ११ |
| कुङ्कुमं केसरम् | " | सटी | ११ |
| सिंहकः | २१८ | स्पृक्का | ११ |
| एलावालुकम् | " | ग्रन्थिपर्णः | ११ |
| जातीफलम् | " | नली | ११ |
| जातीपत्री | " | पद्माख्यम् | २२३ |
| लवङ्गम् | " | पपौण्ड्रकम् | ११ |
| कङ्कोलम् | " | तगरम् | ११ |
| स्थूलैला | " | गोरोचना | ११ |
| सूक्ष्मैला | " | नखद्वयम् | ११ |
| त्वचम् | " | पतङ्गम् | ११ |
| पत्रम् | " | लाक्षालक्तकौ | ११ |
| नागकेसरम् | " | पर्पटीलाक्षा | २२४ |
| त्रिजातचतुर्जते | " | पद्मिनीकुमुदिन्यौ | ११ |
| तालीसपत्रम् | " | पद्मचारिणी | ११ |
| श्रीवासः | " | कमलादि | ११ |
| व्रीडः | २२० | केसरः | ११ |
| वालकम् | " | पद्मबीजम् | ११ |
| मांसी | " | मृणालशालूके | ११ |
| उशीरम् | " | मालती | २२५ |
| कौन्ती | " | मल्लिका | ११ |
| प्रियङ्गुः | " | यूथिकाद्वितयम् | ११ |
| परिपेलम् | " | शतपर्णीत्रयम् | ११ |
| शैलेयम् | " | केतकीस्वर्णकेतक्यौ | ११ |
| उशीरमेदः | " | नेवाली | ११ |
| कुन्दुरुः | २२१ | वननेवाली | ११ |
| गुग्गुलुः | " | माधवी | २२६ |
| राला | २२२ | लघुचम्पकबृहच्चम्पकौ | ११ |

| विषयाः । | पृष्ठाङ्काः । | विषयाः । | पृष्ठाङ्काः । |
|----------------------------|---------------|------------------------------|---------------|
| नागचम्पकः... | ११ | रसायनम् ... | ११ |
| बकुलः ... | ११ | बृंहणम् ... | ११ |
| बकपुष्पम् | ११ | वाजिकरम् | ११ |
| कुन्दः ... | ११ | शुक्रलम् ... | ११ |
| विचकिलः | ११ | रेतसो जनकानि ... | ११ |
| मुञ्चुकुन्दः . . | ११ | विकाशि ... | ११ |
| तिलकः ... | ११ | मदकारि ... | ११ |
| गणेरुका कर्णिकारः ... | २२७ | अभिष्यन्दि ... | ११ |
| बन्धूकः | ११७ | अथैकोनचत्वारिंशस्तरङ्गः । ३९ | |
| जपा . . | ११ | अथ विरुद्धाहारकथनम् ... | २३० |
| सिन्दूरी ... | ११ | विरुद्धाशननिषेधः ... | ११ |
| तुलसी ... | ११ | निषिद्धदुग्धम् ... | ११ |
| फणिज्जकः ... | ११ | निषिद्धं दधि ... | ११ |
| दमनः ... | ११ | निषिद्धतक्रम् ... | ११ |
| बर्बरी ... | ११ | कालविशेषेण दुग्धादीनां | |
| बाणपुष्पत्रयम् ... | ११ | पथ्यापथ्यत्वम् ... | ११ |
| अथाष्टात्रिंशस्तरङ्गः । ३८ | | दुष्टमांसम् ... | २३१ |
| पाचनलक्षणम् ... | ११ | वृन्ताकादीनां दुष्टप्रकथनम् | ११ |
| दीपनपाचनलक्षणम् ... | ११ | अथ चत्वारिंशस्तरङ्गः । ४० | |
| शमनम् ... | ११ | अथ रास्त्रादिगणः | ११ |
| अनुलोमनम् ... | २२८ | काकोल्यादिगणः ... | २३२ |
| संसनम् ... | ११ | कृष्णादिगणः ... | ११ |
| भेदनम् ... | ११ | स्थिरादिगणः ... | ११ |
| रेचनम् | ११ | त्रायन्तिकागणः ... | ११ |
| धमनम् ... | ११ | बिभीतकादिगणः ... | ११ |
| संशोधनम् ... | ११ | विश्वोपकुल्यादिगणः ... | ११ |
| छेदनम् ... | ११ | पिप्पल्यादिगणः | ११ |
| लेखनम् | ११ | वटादिगणः... | ११ |
| दीपनपाचनम्... | ११ | एलादिगणः . . . | ११ |
| आहि ... | २२९ | | |

| विषयाः । | पृष्ठाङ्काः । | विषयाः । | पृष्ठाङ्काः । |
|----------------------------|---------------|----------------------------|---------------|
| अष्टवर्गः | ११ | लोहगुणाः | ११ |
| चतुर्जातिकम् | २३३ | निषेधः | ११ |
| चरणादिगणः | ११ | किट्टम् | ११ |
| दशमूलगणः | ११ | किट्टप्रकाराः | ११ |
| अथैकचत्वारिंशस्तरङ्गः । ४१ | | तल्लक्षणानि | ११ |
| अथ धात्वादीनां लक्षणशो- | | सामान्यकिट्टम् | २४३ |
| धनमारणगुणाः | | किट्टगुणाः | ११ |
| स्वर्णाद्यष्टधातवः | २३४ | वङ्गम् | ११ |
| स्वर्णोत्पत्तिः | ११ | वङ्गशोधनम् | ११ |
| हेमशोधनम् | ११ | वङ्गगुणाः | २४४ |
| हेममारणम् | ११ | सीसकशोधनम् | ११ |
| हेमगुणाः | २३५ | सीसकगुणाः | २४५ |
| रूप्योत्पत्तिः | ११ | अथोपधातवः | ११ |
| तस्य नव गुणाः | २३६ | अभ्रकोत्पत्तिः | ११ |
| तस्य दश दोषाः | ११ | अभ्रशोधनम् | २४६ |
| रूप्यशोधनम् | ११ | अभ्रमारणम् | २४७ |
| रजतमारणम् | ११ | धान्याभ्रकस्य विधिः | ११ |
| रजतगुणाः | २३७ | अमृतीकरणम् | २४८ |
| ताम्रोत्पत्तिः | ११ | निषेधः | ११ |
| सदीपत्वम् | ११ | अभ्रगुणाः | ११ |
| ताम्रशोधनम् | ११ | स्वर्णमाक्षिकम् | २४९ |
| ताम्रमारणम् | २३८ | अशुद्धत्वम् | ११ |
| ताम्रगुणाः | ११ | शुद्धिप्रकारः | ११ |
| रीतिकस्ये | २३९ | मारणविधिः | ११ |
| तच्छोधनम् | ११ | गुणाः | ११ |
| तद्वुणाः | ११ | तारमाक्षिकम् | २५० |
| लोहोत्पत्तिः | ११ | तन्मारणम् | ११ |
| कान्तलक्षणम् | २४० | तालकविधिः | ११ |
| लोहशोधनम् | २४२ | तालकस्य शोधनम् | ११ |
| लोहमारणम् | ११ | तालकमारणम् | ११ |
| | | तालकगुणाः | २५१ |

| विषयाः । | पृष्ठाङ्काः । | विषयाः । | पृष्ठाङ्काः । |
|-------------------------------|---------------|----------------------------|---------------|
| मनःशिला | ॥ | गण्डूकायन्त्रम् | ॥ |
| मनःशिलाशोधनम्... | ॥ | वालुकायन्त्रम् ... | २६१ |
| मनःशिलागुणाः ... | ॥ | भूधरयन्त्रम् | ॥ |
| खर्परम् ... | ॥ | स्वर्णजारणम् ... | २६२ |
| खर्परगुणाः ... | २५२ | विडानि ... | ॥ |
| तुत्थम् ... | ॥ | दोलायन्त्रेण हेमजारणम् ... | २६३ |
| तुत्थगुणाः ... | ॥ | कच्छपयन्त्रेण हेमजारणम् | ॥ |
| स्रोतोऽञ्जनम् ... | ॥ | घनसत्त्वजारणम् ... | २६४ |
| स्रोतोऽञ्जनगुणाः ... | ॥ | अध्रकसत्त्वजारणम् | ॥ |
| अथ द्विचत्वारिंशस्तरङ्गः । ४२ | | गर्भदुतिः ... | २६५ |
| अथ रसोत्पत्तिः ... | २५३ | तल्लक्षणम् | ॥ |
| रसदोषाः ... | ॥ | दोलायन्त्रजारणम् .. | ॥ |
| दोषविकाराः ... | २५४ | प्रमाणजारणम् ... | ॥ |
| कञ्चुकाः ... | ॥ | अञ्जनवेधने ... | २६६ |
| कञ्चुकविकाराः ... | ॥ | तारबीजम् ... | ॥ |
| रसस्य संस्काराः ... | ॥ | हेमबीजम् ... | २६७ |
| पटसारणम् ... | २५५ | रञ्जनसारणार्थं तैलम् | ॥ |
| मर्दनम् | ॥ | द्वन्द्वमेलापकौषधानि | ॥ |
| मूर्छनम् .. | २५६ | अन्यद्रसरञ्जनम् ... | ॥ |
| उत्थापनम् | ॥ | पत्रलेपाधिकारः ... | २६८ |
| स्वेदनम् ... | ॥ | सिद्धमतखोटः ... | २६९ |
| ऊर्ध्वपातनम् ... | ॥ | खोटान्तरम् ... | ॥ |
| अधःपातनम् ... | २५७ | बाह्यदुतयः | ॥ |
| तिर्यक्पातनम् ... | ॥ | सारणा ... | २७० |
| पातनम् ... | ॥ | कामणम् ... | ॥ |
| बोधनम् ... | ॥ | खोटमार्गेण जारणम् | ॥ |
| नियमनम् ... | २५८ | सिद्धचूर्णकल्कः ... | २७१ |
| दीपनम् ... | २५९ | सिद्धयोगाः | २७२ |
| जारणम् ... | ॥ | हेमकरणप्रयोगः ... | ॥ |
| गन्धकजारणम् ... | २६० | तारकृष्णी ... | २७४ |
| | | अन्या तारकृष्णी ... | २७५ |

| विषयाः । | पृष्ठाङ्काः । | विषया । | पृष्ठाङ्काः । |
|-------------------------------|---------------|--------------------------------|---------------|
| हेमरक्ती | २७६ | बोलम् | ११ |
| लघुताम्रयोगः | ११ | श्यामबोलम् .. | ११ |
| हेमविद्या | २७७ | मानुषबोलम् ... | ११ |
| रसबन्धनम् | ११ | गैरिकत्रयम् ... | ११ |
| दरदाकृष्टिः | ११ | समुद्रफेनः ... | २८२ |
| जलयन्त्रद्वयम् | २७८ | खटिकाद्वयम् ... | ११ |
| मुद्राद्वयम् | २७९ | शम्बूकः . | ११ |
| वज्रमुद्रा | ११ | रसाञ्जनम् . | ११ |
| मदनमुद्रा | ११ | कासीसद्वयम् ... | ११ |
| अपरा मदनमुद्रा | २८० | कान्तपाषाणः ... | ११ |
| पारदः | २८१ | कपर्दिका . . | २९० |
| ऊर्ध्वभस्म . . | ११ | शुक्तिका ... | ११ |
| पारदगुणाः | २८२ | दरदः .. | ११ |
| तलभस्म .. | ११ | कङ्कुष्ठम् ... | ११ |
| भस्मसूतगुणाः . . | २८३ | शङ्खः . | २९१ |
| कर्पूररसप्रकारः | ११ | दक्षिणावर्तशङ्खः ... | ११ |
| रसराजः | २८४ | भूनागसत्त्वमयूरपक्षसत्त्वगुणाः | ११ |
| दरदेशः | ११ | टङ्कणः . | ११ |
| अथ त्रिचत्वारिंशस्तरङ्गः । ४३ | | अपरटङ्कणः . | ११ |
| अथोपरसाः | २८५ | शिलाजतु . . | ११ |
| तत्र गन्धकम् | ११ | शिलाजतुशोधनम् . | ११ |
| गन्धकशुद्धिः . . | ११ | शुद्धशिलाजतुपरीक्षा . . | ११ |
| गन्धकगुणाः | ११ | अशुद्धशिलाजतुवैगुण्यम् ... | ११ |
| वज्रम् | ११ | शुद्धशिलाजतुगुणाः | ११ |
| तद्वर्णः | २८६ | पङ्कः ... | ११ |
| वज्रपरीक्षा | ११ | वालुका ... | ११ |
| वज्रशोधनम् . | ११ | रत्नानि ... | २९४ |
| वज्रमारणम् . | ११ | उपरत्नानि ... | ११ |
| वैक्रान्तगुणाः | २८७ | तेषां लक्षणानि ... | ११ |
| वैक्रान्तमारणम् | ११ | तेषां शोधनम् ... | ११ |
| सिन्दूरम् | २८८ | तेषां मारणम् | ११ |

| विषया । | पृष्ठाङ्काः । | विषया । | पृष्ठाङ्काः । |
|--------------------------------|---------------|-------------------------------|---------------|
| रत्नोपरत्नगुणाः ... | २९५ | अथ पञ्चचत्वारिंशस्तरङ्गः । ४५ | |
| विषाणि ... | ११ | नाडीपरीक्षा ... | ३०७ |
| कालकूटादिविषभेदाः ... | २९६ | अथ षट्चत्वारिंशस्तरङ्गः । ४६ | |
| विषशोधनम् ... | २९७ | जिह्वापरीक्षा ... | ३०९ |
| विषमारणम् ... | २९८ | अथ सप्तचत्वारिंशस्तरङ्गः । ४७ | |
| विषसेवनमात्राविधिः .. | ११ | स्वप्नाः ... | ३०९ |
| विषे पथ्यम् ... | २९९ | अथाष्टचत्वारिंशस्तरङ्गः । ४८ | |
| विषगुणाः . | ११ | दूतविज्ञानीयम् ... | ३१२ |
| उपविषाणि ... | ११ | रोगमुक्तिविज्ञानकोष्टकम् . | ३१३ |
| गुग्गुलाशुद्धिः .. | ३०० | अथैकोनपञ्चाशस्तरङ्गः । ४९ | |
| लाङ्गलीशुद्धिः ... | ११ | शकुनाः ... | ३१४ |
| विषमुष्टिशोधनम् ... | ११ | अथ पञ्चाशस्तरङ्गः । ५० | |
| जेपालशुद्धिः ... | ११ | वर्णस्वरविचारः | ३१५ |
| धत्तूरबीजशोधनम् . | ११ | तत्कोष्टकम् ... | ३१६ |
| अहिफेनशुद्धिः ... | ११ | अथैकपञ्चाशस्तरङ्गः । ५१ | |
| अर्काद्युपविषाणां गुणाः ... | ३०१ | मूत्रपरीक्षा ... | ११ |
| सेहुण्डगुणाः | ११ | अथ द्विपञ्चाशस्तरङ्गः । ५२ | |
| कलिकारीगुणाः ... | ११ | मलपरीक्षा ... | ३१७ |
| गुग्गुलगुणाः ... | ११ | अथ त्रिपञ्चाशस्तरङ्गः । ५३ | |
| करवीरगुणाः ... | ११ | दृष्टिपरीक्षा ... | ३१८ |
| विषमुष्टिः ... | ११ | | |
| जैपालगुणाः | ३०२ | | |
| धत्तूरः ... | ११ | | |
| अहिफेनः . . | ११ | | |
| अभ्रमत्स्वपातनविधिः ... | ११ | | |
| तालकसत्त्वम् ... | ११ | | |
| अभ्रकद्युतिः ... | ३०३ | | |
| अथ चतुश्चत्वारिंशस्तरङ्गः । ४४ | | | |
| अरिष्टज्ञानोपायः ... | ११ | | |
| छायापुरुषलक्षणम् | ३०६ | | |

| विषयाः । | पृष्ठाङ्काः । | विषयाः । | पृष्ठाङ्काः । |
|----------------------------------|---------------|-----------------------------------|---------------|
| अथ चतुष्पञ्चाशस्तरङ्गः । ५४ | | बलवलक्षणम् ३२८ | |
| ससाध्यव्याधिनिरूपकः ११ | | अथ सप्तपञ्चाशस्तरङ्गः । ५७ | |
| अथ पञ्चपञ्चाशस्तरङ्गः । ५५ | | अथ ज्वराधिकारः... .. ११ | |
| भैषज्यग्रहणविधिः... .. ३१९ | | रोगज्ञानोपायः ११ | |
| भैषज्यग्रहणे मङ्गलम् ११ | | ज्वरोत्पत्तिः ३२९ | |
| भैषज्यकालाः ११ | | ज्वरस्वरूपम्.... .. ११ | |
| मात्राः ३२१ | | ज्वरहेतुः ११ | |
| अथ षट्पञ्चाशस्तरङ्गः । ५६ | | वातज्वरनिदानम् ३३० | |
| ज्वरादिरोगोद्देशः ३२२ | | पित्तज्वरलक्षणम् ११ | |
| दोषभेदाः ११ | | श्लेष्मज्वरलक्षणम् ३३१ | |
| दोषादिवृद्धेर्निदानम् ३२३ | | वातपित्तज्वरलक्षणम् ११ | |
| अतिवृद्धदोषधातुमलानां | | वातश्लेष्मज्वरलक्षणम् ११ | |
| ह्रासनम् ३२४ | | पित्तश्लेष्मज्वरलक्षणम् ११ | |
| दोषधातुमलानां क्षयस्य | | संनिपातज्वरलक्षणम् ११ | |
| निदानम् ११ | | संनिपातभेदाः ३३२ | |
| क्षीणानां लक्षणानि ११ | | नामानि ११ | |
| ओजःक्षयस्य निदानम् ३२५ | | विद्धाख्यः ११ | |
| क्षीणौजसो लक्षणम् ११ | | शर्कराख्यः ११ | |
| क्षीणानां दोषधातुमलानां | | मल्लाख्यः ११ | |
| वर्धनम् ११ | | विस्फुरणाख्यः ११ | |
| क्षैण्यकारणं क्षीणस्येच्छावि- | | शीघ्रकारी ३३३ | |
| शेषः ३२६ | | फम्फणाख्य... .. ११ | |
| दोषधातुमलानां वृद्धानां च | | व्यालाकृत्याख्यः ११ | |
| चिकित्सा ३२७ | | संग्रामाख्यः ११ | |
| बललक्षणम्... .. ११ | | क्रकचाख्यः... .. ११ | |
| बलस्य क्षयनिदानम् ११ | | कर्कटाख्यः ११ | |
| बलक्षयलक्षणम् ११ | | पाकलाख्यः ११ | |
| बलवृद्धिलक्षणम् ११ | | संमोहः ११ | |
| | | कूटपालः ११ | |

| विषया । | पृष्ठाङ्का । | विषयाः । | पृष्ठाङ्का । |
|-----------------------------|--------------|----------------------------|--------------|
| तन्त्रान्तरस्थसंनिपातभेदना- | | अन्तर्वेगलक्षणम् . . . | ३४० |
| मानि | ३३४ | बहिर्वेगलक्षणम् . . . | ११ |
| तेषां कालावधिः | ११ | आमज्वरः | ११ |
| संधिगः | ११ | विषमहेतुः | ११ |
| अन्तकः | ११ | पच्यमानलक्षणम् . . . | ११ |
| रुग्दाहकः | ३३५ | निरामज्वरलक्षणम् . . . | ११ |
| चित्तभ्रमः | ११ | ज्वरस्य दशोपद्रवाः . . . | ११ |
| कर्णकः | ११ | विषमे पञ्च गदाः . . . | ३४१ |
| कण्ठकुब्जः | ११ | बहुलक्षणम् | ११ |
| शीताङ्गः | ११ | तत्रासाध्यत्वम् | ११ |
| तन्द्रिकः | ११ | धातुपाकलक्षणम् . . . | ११ |
| प्रलापकः | ३३६ | दोषपाकलक्षणम् . . . | ११ |
| रक्तशीवी | ११ | तत्रौषधदानम् | ११ |
| भुग्नेत्रः | ११ | ज्वरमोक्षलक्षणम् . . . | ३४२ |
| अभिन्यासः | ११ | ज्वरस्वेदः | ११ |
| जिह्वकः | ११ | विगतज्वरलक्षणम् . . . | ११ |
| त्रिदोषमर्यादा | ११ | अथाष्टपञ्चाशस्तरङ्गः । ५८ | |
| साध्यासाध्यत्वम् | ३३७ | अथ सर्वज्वरोपक्रमः . . . | ११ |
| आगन्तुः | ११ | निवातसेवनगुणाः . . . | ११ |
| विषमज्वरप्रकरणम् | ११ | व्यजनानिलस्य | ११ |
| पञ्च प्रकाराः | ११ | चर्मव्यजनस्य | ११ |
| तेषां स्थानानि | ११ | वंशव्यजनस्य | ३४३ |
| संततः | ३३८ | खार्जूरानिलस्य | ११ |
| सततकः | ११ | मायूरवस्त्रवेत्रजाः . . . | ११ |
| अन्येष्टुष्कः | ११ | तरुणज्वरे निषेधः . . . | ११ |
| तृतीयकचतुर्थकौ | ११ | परिषेकादिसेवनापगुणाः . . . | ११ |
| विषमलक्षणम् | ११ | लङ्घनाचरणम् | ११ |
| त्रिविधस्तृतीयकः | ११ | लङ्घनसहत्वम् | ३४४ |
| अङ्गग्रहज्वरः | ११ | दोषप्रमाणम् | ११ |
| सप्तधातुगतज्वरलक्षणम् . . . | ३३९ | तरुणज्वरः | ११ |
| साध्यासाध्यत्वम् | ११ | | |

| विषया. । | पृष्ठाङ्का । | विषया. । | पृष्ठाङ्काः । |
|--|--------------|-------------------------------------|---------------|
| हीनलङ्घनम् | ११ | दुरालभादिः.... . | ३५१ |
| लङ्घनातिक्रमे दोषाः | ११ | पर्पटककाथः | ११ |
| लङ्घनगुणाः | ११ | श्लेष्मजे बीजपूरादिः | ११ |
| जलदानयोग्यः | ३४५ | भूनिम्बादिः.... . | ११ |
| मन्दपानीयदानयोग्यः | ११ | आमलक्यादिः | ११ |
| शीतलजलदानयोग्यः | ११ | चातुर्भद्रावलेहिका | ११ |
| उष्णजलपानप्रशस्तिः | ११ | सर्वज्वरे गुडूच्यादिः | ११ |
| उष्णोदकलक्षणम् | ११ | वातपित्ते पञ्चभद्रं जलम् | ११ |
| रोगकालादिभेदेनोष्णोदकप्र- माणम् | ३४६ | वातश्लेष्मजे क्षुद्रादिः | ३५२ |
| उष्णोदकपानगुणाः | ११ | आरोग्यपञ्चकम् | ११ |
| तस्य क्रिया | ३४७ | पित्तश्लेष्मजेऽमृताष्टकम् | ११ |
| समयान्तरगुणाः | ११ | संनिपातजे दशमूलादिः | ११ |
| कषायनिषेधः | ११ | भाग्यादिकाथः | ३५३ |
| वमने क्रमः | ११ | अष्टादशाङ्गः | ११ |
| औषधदानसमयान्तरगुणागु- णाः | ३४८ | पञ्चतिक्तकषायः | ११ |
| तत्रविशेषः | ११ | अष्टाङ्गावलेहिका | ३५४ |
| अथैकोनषष्टितमस्तरङ्गः । ५९ | | दशमूलाद्यष्टादशाङ्गः | ११ |
| ज्वरे पथ्यानि | ३४९ | चतुर्दशाङ्गः | ११ |
| शाकानि | ११ | वालुकास्वेदः | ३५५ |
| अन्नम् | ११ | नस्यम् | ११ |
| ज्वरे मांसानि | ११ | निष्ठीवनम् | ११ |
| फलानि | ३५० | शिरीषाद्यञ्जनम् | ११ |
| पुराणधान्यम् | ११ | धातुगतज्वरक्रिया | ११ |
| ज्वरे पाचनम् | ११ | सिद्धार्थादिः | ३५६ |
| तत्संप्रदानकालः | ११ | उद्धूलनम् | ११ |
| वातज्वरे शालिपर्ण्यादिः | ११ | दम्भादिक्रियाः | ११ |
| किरातादिः | ११ | संधिगादीनां चिकित्सा | ११ |
| काश्मर्यादिः.... . | ११ | संधिगः | ३५७ |
| पैत्ते कट्फलानि | ११ | अन्तकचिकित्सा | ११ |
| | | रुग्दाहप्रतीकारः | ११ |
| | | चित्तविभ्रमप्रतीकारः | ३५८ |

| विषया । | पृष्ठाङ्का । | विषया । | पृष्ठाङ्काः |
|---------------------------|--------------|----------------------------|-------------|
| कर्णिकाचिकित्सा ... | ३६० | नारायणास्त्रम् | ११ |
| कण्ठकुब्जचिकित्सा ... | ११ | सुदर्शनचूर्णम् ... | ११ |
| शीताङ्गचिकित्सा ... | ३६१ | लघुसुदर्शनम् ... | ३७५ |
| तन्द्रिकाचिकित्सा ... | ११ | तालीसाद्यम् | ११ |
| प्रलापकचिकित्सा ... | ३६२ | सितोपलाद्यम् | ११ |
| रक्तष्ठीविप्रतीकारः ... | ११ | जीर्णज्वरे तैलानि ... | ११ |
| भुग्नेत्रचिकित्सा ... | ११ | षट्कृततैलम् ... | ११ |
| अभिन्यासचिकित्सा ... | ३६३ | लाक्षारसविधिः .. | ३७६ |
| संनिपातभैरवो रसः ... | ३६४ | लघुलाक्षातैलम् ... | ११ |
| संनिपातारिः ... | ३६५ | बृहलाक्षादितैलम् ... | ११ |
| जिह्वकचिकित्सा ... | ११ | मध्यमलाक्षातैलम् ... | ११ |
| आगन्तुज्वराधिकारः .. | ११ | षट्चरणतैलम् ... | ११ |
| विषमज्वरचिकित्सा ... | ३६७ | अङ्गारकं तैलम् ... | ११ |
| विषमे क्रिया .. | ११ | दाहज्वरप्रतीकारः .. | ३७७ |
| चातुर्थिकज्वरचिकित्सा ... | ३६८ | सप्तधातुगतज्वरचिकित्सा ... | ११ |
| मुस्तादिकाथः ... | ३६९ | अथ रसाः .. | ३७८ |
| पिप्पलीवर्धमानम् | ११ | संनिपाते वीरभद्रारव्यो रसः | ११ |
| क्षुद्रादिः ... | ३७० | ब्रह्मास्त्ररसः ... | ११ |
| तत्रापराजितो धूपः ... | ११ | विद्याधररसः | ३७९ |
| माहेश्वरो धूपः .. | ११ | विनोदविद्याधरः .. | ११ |
| दाव्यादिः ... | ३७१ | ज्वरमुरारिः .. | ११ |
| शृङ्ग्यादिचतुःषष्टिककाथः | ११ | महाज्वराङ्कुशः ... | ३८० |
| कल्याणकं घृतम् ... | ३७२ | चिन्तामणिरसः ... | ११ |
| लघुषट्पलं घृतम् ... | ११ | सूचिकाभरणो रसः | ११ |
| महाषट्पलं घृतम् ... | ११ | महाशीतज्वराङ्कुशः | ३८१ |
| जीर्णज्वरप्रकरणम्... | ३७३ | चन्द्रशेखरः | ११ |
| निदिग्धिकादिः | ११ | मृतसंजीवनी गुटिका | ११ |
| अथ चूर्णानि ... | ११ | भस्मेश्वरः ... | ११ |
| द्राक्षादिचूर्णम् ... | ११ | पञ्चवक्त्रो रसः ... | ३८२ |
| आमलक्यादि ... | ३७४ | स्वर्णमालिनीवसन्तः | ११ |
| अनन्तादि.... | ११ | ज्वरघ्नी वटिका ... | ११ |

| विषया । | पृष्ठाङ्काः । | विषयाः । | पृष्ठाङ्काः । |
|------------------------------|---------------|-----------------------------------|---------------|
| नवज्वरहरा वटी ११ | | ज्वरातिसारे.... ... ११ | |
| उदकमञ्जरीरसः ३८३ | | हिक्रायाम् ११ | |
| ज्वराङ्कुशः ११ | | वमनशान्तिः ११ | |
| हुताशनो रसः ११ | | कासारिः ११ | |
| शीतमञ्जरी रसः ११ | | निद्रानाश उपायाः ... ११ | |
| भिषभारसः ३८४ | | ज्वरशान्त्यर्थं विष्णुस्तवनम् ३९१ | |
| शीतारिः ११ | | अथ द्विषष्टितमस्तरङ्गः । ६२ | |
| चातुर्थिकारिः ११ | | अथ दुर्जलजनितज्वरचिकित्सा ११ | |
| अथ षष्टितमस्तरङ्गः । ६० | | शुण्ठीकाथः.... ... ११ | |
| संनिपाते मूर्छायां लोकनाथो | | पटोलादिः ३९२ | |
| रसः ११ | | किराततित्कादिचूर्णम् ... ११ | |
| संनिपातसूर्यः ३८५ | | दुर्जलजेता रसः ११ | |
| जलयौगिकः ३८६ | | अथ त्रिषष्टितमस्तरङ्गः । ६३ | |
| त्रिदोषनीहारसूर्यः ११ | | अथातीसारनिदानम् ११ | |
| रसचूडामणिः ११ | | असाध्यलक्षणम् ३९४ | |
| वाडवाख्यो रसः ३८७ | | अतीसारनिवृत्तिलक्षणम् ... ११ | |
| सूचिकाभरणो रसः ११ | | अथ चतुःषष्टितमस्तरङ्गः । ६४ | |
| सूचिकाभरणो रसो रससि- | | अतीसारपूर्वरूपचिकित्सा... ३९५ | |
| न्धूक्तः ३८८ | | षडङ्गयूषः ११ | |
| त्रिपुरभैरवः ११ | | आमातिसारः ११ | |
| गन्धलोहः ३८९ | | धान्यपञ्चकं चतुष्कं च ... ११ | |
| अथैकषष्टितमस्तरङ्गः । ६१ | | अभयादचतुःसमा गुटिका ३९७ | |
| अथ प्रत्येकं ज्वरोपद्रवाणां | | कलिङ्गादिचूर्णम् ११ | |
| चिकित्सा ११ | | शूलातीसारशान्त्यर्थं सर्पि- | |
| मूर्छायाम् ११ | | ष्पानम् ३९८ | |
| अरुचौ ११ | | पक्वातीसारः.... ... ११ | |
| श्वासे ११ | | समङ्गाद्या गुटिका... .. ३९९ | |
| अरतौ ११ | | कञ्चदकादि... .. ११ | |
| पिपासायाम् ३९० | | | |

| विषयाः । | पृष्ठाङ्काः । | विषयाः । | पृष्ठाङ्काः । |
|-------------------------------|---------------|-----------------------------|---------------|
| लघुगङ्गाधरं चूर्णम् | ११ | प्रवाहिकाः | ११ |
| अङ्गोलमूलकल्कः ... | ११ | त्र्यूषणाद्यं घृतम् ... | ११ |
| वातातीसारचिकित्सा . . . | ४०० | पुरीषक्षयः ... | ११ |
| पित्तातीसारचिकित्सा . . . | ११ | सामान्योपचारः ... | ४११ |
| रक्तातीसारः . . . | ४०१ | सर्वातीसार उपचारः | ११ |
| कुटजाष्टककाथः ... | ११ | कुटजाष्टकावलेहः . . . | ११ |
| वत्सकादिकाथः ... | ११ | कपित्थाष्टकम् ... | ११ |
| ह्नीबेरादिः ... | ४०२ | लघुलाईचूर्णम् ... | ४१२ |
| रजाश्रनादिचूर्णम् . . . | ११ | बृहलाईचूर्णम् ... | ११ |
| पिच्छावस्तिः ... | ४०३ | मृतसंजीवनो रसः ... | ११ |
| क्षीरिवृक्षाद्यं घृतम् ... | ११ | चन्द्रप्रभा वटी | ११ |
| कुटजक्षीरम् . . . | ११ | अथ पञ्चषष्टितमस्तरङ्गः । ६५ | |
| शतावरीकल्कः .. | ११ | अथ ज्वरातीसारः ... | ४१३ |
| नवनीतावलेहः ... | ४०४ | पाठासप्तककाथः | ४१४ |
| चन्दनकल्कः . . . | ११ | नागरादिः . . . | ११ |
| गुदपाके भ्रशे दाहे चोपचारः | ११ | बृहद्गुदूच्यादिः ... | ११ |
| गुदव्यथायामुपचारः ... | ११ | ह्नीबेरादिः .. | ११ |
| श्लेष्मातिसारः . . . | ४०५ | कलिङ्गादिकाथः ... | ११ |
| संनिपातातिसारः | ४०६ | उशीरादिकाथः ... | ४१५ |
| बृहच्छालिपर्ण्यादि . . . | ११ | बिल्वादिः ... | ११ |
| कुटजपुटपाकः ... | ११ | व्योषाद्यं चूर्णम् ... | ११ |
| स्योनाकपुटपाकः ... | ११ | अथ षट्षष्टितमस्तरङ्गः । ६६ | |
| कुटजावलेहः . . . | ४०७ | अथ ग्रहण्यधिकारः ... | ४१६ |
| षडङ्गघृतम् ... | ४०८ | ग्रहणीनिदानम् ... | ११ |
| श्लेष्मपित्तातिसारः ... | ११ | ग्रहणीलक्षणम् ... | ११ |
| वातश्लेष्मातिसारः ... | ११ | कलालक्षणम् ... | ११ |
| छर्द्यतीसारः ... | ४०९ | पूर्वरूपम् ... | ११ |
| शोफातीसारः ... | ११ | वातजा ... | ११ |
| भयशोकजावतीसारौ ... | ११ | तत्र व्यथाः ... | ११ |
| कल्याणकावलेहः ... | ११ | | |
| आमपाचनविधिः ... | ४१० | | |

| विषयाः । | पृष्ठाङ्काः । | विषयाः । | पृष्ठाङ्काः । |
|-------------------------------|---------------|----------------------------------|---------------|
| पित्तजा ४१७ | | सुवर्णरसपर्वटी ११ | |
| कफजा ११ | | ग्रहणीकपाटः ११ | |
| त्रिदोषजा ११ | | ग्रहणीगजकेसरीरसः ... ४२५ | |
| घटीयन्त्राख्यो ग्रहणीरोगः ११ | | ग्रहणीकपाटम् ११ | |
| संग्रहणीलक्षणम् ११ | | रसपर्वटी ११ | |
| साध्यासाध्यलक्षणम् ... ४१८ | | शम्बूकमस्मयोगः . . . ११ | |
| अथ सप्तषष्टितमस्तरङ्गः । ६७ | | ग्रहण्यां निषिद्धान्नानि ... ४२६ | |
| अथ ग्रहणीचिकित्सा ... ११ | | अगस्तिसूतराजः . . . ११ | |
| तत्र वातजा ११ | | अथाष्टषष्टितमस्तरङ्गः । ६८ | |
| तस्या उपचारः ११ | | अथाशोधिकारः ११ | |
| पञ्चमूलाद्यं घृतम् ४१९ | | निदानम् ११ | |
| शुण्ठीघृतम् ११ | | वाताशोहेतुः ११ | |
| अथ पित्तग्रहणी ११ | | पित्ताशोहेतुः ४२७ | |
| रसाञ्जनादिचूर्णम् ११ | | कफाशोहेतुः... .. ११ | |
| नागराद्यं चूर्णम् ११ | | त्रिदोषाशोहेतुः . . . ११ | |
| चन्दनाद्यं घृतम् ४२० | | पूर्वरूपम् ११ | |
| अथ श्लेष्मग्रहणी ११ | | वाताशोलक्षणम् ११ | |
| रास्नादिचूर्णम् ११ | | पित्ताशोलक्षणम् ४२८ | |
| अथ सर्वजा ग्रहणी... .. ११ | | कफाशोलक्षणम् ११ | |
| शुण्ठ्यादिः ११ | | त्रिदोषाशोलक्षणम् ११ | |
| चित्रकादिगुटिका ४२१ | | रक्ताशोलक्षणम् ११ | |
| कल्याणकावलेहः ११ | | वातानुबन्धः ४२९ | |
| वृद्धगङ्गाधरं चूर्णम् ११ | | कफानुबन्धः . . . ११ | |
| बृहल्लवङ्गादिचूर्णम् ४२२ | | साध्यत्वादि . . . ११ | |
| जातीफलाद्यं चूर्णम् . . . ११ | | अथैकोनसप्ततितमस्तरङ्गः । ६९ | |
| महाकल्याणगुडः ११ | | अथार्शश्चिकित्सा ४३० | |
| सर्जरसचूर्णम् ४२३ | | तस्य प्रतिक्रिया ११ | |
| बिल्वादिघृतम् ११ | | तिलादिमोदकः ४३१ | |
| तक्रहरीतकी.... .. ११ | | मरीचादिमोदकः ११ | |
| अथ रसाः ४२४ | | | |

| विषयाः । | पृष्ठाङ्काः । | विषयाः । | पृष्ठाङ्काः । |
|------------------------------|---------------|--------------------------------|---------------|
| नागकेसराद्यवलेहिका ... | ॥ | विष्टब्धाजीर्णम् ... | ॥ |
| शिरीषद्योजादिलेपः | ४३२ | विदग्धाजीर्णम् ... | ॥ |
| रालाधूमादिः ... | ॥ | रसशेषाजीर्णम् | ॥ |
| सूरणपिण्डी... .. | ॥ | विषूचीलक्षणम् ... | ॥ |
| काङ्कायनगुडाचिकित्सा ... | ४३३ | पञ्चोपद्रवाः... .. | ४४० |
| समशर्करं चूर्णम् ... | ॥ | अलसकलक्षणम् ... | ॥ |
| चतुःसमो मोदकः ... | ॥ | दण्डालसकलक्षणम् ... | ॥ |
| सिन्धूत्थदेवदाल्यादिलेपः ... | ४३४ | विलम्बिका ... | ॥ |
| क्षारसूत्रम् .. | ॥ | देशजातामसमुद्भवलक्षणम् | ॥ |
| प्राणप्रदो मोदकः ... | ॥ | अलसे विषूच्यामारिष्टम् ... | ॥ |
| श्रीबाहुशालो गुडः.. | ॥ | भस्मकलक्षणम् ... | ॥ |
| अगस्तिमोदकः ... | ४३५ | अजीर्णोपचारः ... | ४४१ |
| व्योषाद्यं चूर्णम् ... | ॥ | षट्प्रकाराजीर्णोपशमः | ॥ |
| विजयचूर्णम् ... | ४३६ | तत्र लेपः .. | ॥ |
| बृहज्जलातकलेहः .. | ॥ | दिवास्वापार्हाः ... | ॥ |
| अग्निदाहादि ... | ॥ | गुडाष्टकम् ... | ॥ |
| नित्योदितो रसः ... | ॥ | अजीर्णभेदेन वमनाद्युपचाराः ४४२ | |
| अर्शःकुठारो रसः ... | ४३७ | चित्रकादियवागूः ... | ॥ |
| पथ्यापथ्यम्... .. | ॥ | संजीवनी गुटिका ... | ॥ |
| अथ सप्ततितमस्तरङ्गः । ७० | | विषूचिकाश्लनम् ... | ४४३ |
| अथाग्निमान्याधिकारः ... | ॥ | अग्निमुखं चूर्णम् ... | ॥ |
| मन्दाद्यग्निचतुष्टयम् | ॥ | हिङ्गवष्टकं चूर्णम् | ॥ |
| त्रिदोषजः ... | ४३८ | लघुवैश्वानरं चूर्णम् ... | ॥ |
| तद्रक्षणक्रमः... .. | ॥ | लवणभास्करं चूर्णम् ... | ॥ |
| तस्योपचारः... .. | ॥ | अथान्यल्लवणभास्करं चूर्णम् | ४४४ |
| अथैकसप्ततितमस्तरङ्गः । ७१ | | धनंजयवटी .. | ॥ |
| अजीर्णनिदानम् ... | ॥ | शङ्खद्रावः .. | ४४५ |
| अजीर्णसामान्यलक्षणम् ... | ४३९ | अमृतार्णवो रसः ... | ॥ |
| आर्माजीर्णम् ... | ॥ | बृहदग्निमुखं चूर्णम्... .. | ४४६ |
| | | एकैकाहारजनिताजीर्णस्यैकै- | |
| | | कमौषधम् ... | ॥ |

| विषया । | पृष्ठाङ्का । | विषया । | पृष्ठाङ्काः । |
|--|--------------|------------------------------|---------------|
| शङ्खवटी | ४४९ | अथ त्रिसप्ततितमस्तरङ्गः । ७३ | |
| अपरा शङ्खवटी | " | अथ कृमिनिदानम् | " |
| अग्निकुमारः | ४५० | कफोद्भवाः कृमयः | " |
| शङ्खवटीरसः | " | शोणितोद्भवाः | ४५८ |
| बृहन्महोदधिः | " | पुरीषजाः | " |
| क्रव्यादरसः | ४५१ | आभ्यन्तरकृमिलक्षणम् | " |
| बृहत्क्रव्यादरसः | " | कृमिरोगचिकित्सा | ४५९ |
| रामबाणः | ४५२ | विदकफोत्थकृमिनाशोपायाः .. | " |
| अग्निमुखो रसः | ४५३ | रक्तजकृमिनाशो धूपः .. | ४६० |
| अजीर्णारिः | " | विडङ्गादितैलम् | " |
| विषूच्यादिचिकित्सा | " | कृमिमुद्गरो रसः | " |
| अनुभूतमौषधम् | ४५४ | निषेधः | " |
| चुक्राद्यं तैलम् | " | अथ चतुःसप्ततितमस्तरङ्गः । ७४ | |
| उत्क्लेशलक्षणम् | " | अथ पाण्डुरोगनिदानम् | ४६१ |
| दारुषट्कम् | " | सृज्जलक्षणम् | ४६२ |
| अमृता हरीतकी | ४५५ | असाध्यत्वम् | " |
| हुताशनः | " | कामला | " |
| लघुक्रव्यादः | " | कोष्ठशाखाश्रया कामला | " |
| अथ द्विसप्ततितमस्तरङ्गः । ७२ | | कुम्भकामला | " |
| अथ मस्मकरोगनिदानं चिकि- त्सा च | ४५६ | हलीमकम् | ४६३ |
| उपद्रवाः | " | अथ चिकित्सा | " |
| तस्य क्रिया | " | अयोमोदकः | " |
| विरेचनम् | " | मण्डूरवटकाः | " |
| तस्य हितम् | " | मण्डूरलवणम् | ४६४ |
| तस्य विशिष्टत्वम् | " | नवप्यसं चूर्णम् | " |
| दोषधात्वग्निपक्वापक्वता | " | हलीमकविधिः | ४६५ |
| तस्योपचाराः | ४५७ | त्रिफलाद्यो लोहः | ४६६ |
| विदार्यादिघृतम् | " | त्रैलोक्यनाथः | " |
| | | अमृताद्यं घृतम् | " |

| विषया । | पृष्ठाङ्का । | विषयाः । | पृष्ठाङ्काः । |
|---------------------------------|--------------|----------------------------------|---------------|
| अथ पञ्चसप्ततितमस्तरङ्गः । ५५ | | क्षयलक्षणम्... .. ४७७ | |
| रक्तपित्तनिदानम् ४६७ | | शोषलक्षणम् ११ | |
| साध्यासाध्यत्वम् ११ | | स्वप्नदृष्टत्वम्... .. ११ | |
| रक्तपित्तचिकित्सा ४६८ | | राजयक्ष्मणो लक्षणम् ११ | |
| रेचनम् ११ | | व्यवायशोषिशोकशोषिणौ ४७८ | |
| रक्तपित्तस्योपचारः ४६९ | | जराशोषी ११ | |
| तस्यान्नम् ११ | | व्यायामशोषी ११ | |
| यूषार्थेऽन्नम् ११ | | अध्वप्रशोषी ११ | |
| अम्लदानम् ११ | | रक्तशोषी ४७९ | |
| दानार्थं फलानि ११ | | अथ क्षयरोगचिकित्सा ११ | |
| शाकम् ११ | | षडङ्गयूषः ११ | |
| मांसरसदानम् ११ | | सप्तामृतलौहम् ४८० | |
| चन्दनाद्यं चूर्णम् ४७० | | दशमूलादिकाथः ११ | |
| राजमार्तण्डोक्तोपचारः ११ | | तालीसाद्यं चूर्णम् ११ | |
| एलादिगुटिका ११ | | सितोपलाद्यं चूर्णम् ४८१ | |
| प्रियङ्ग्वादिचूर्णम् ४७१ | | च्यवनप्राशविभीतकावलेहौ ११ | |
| दूर्वाद्यं घृतम् ४७२ | | चतुर्दशाङ्गलोहम् ११ | |
| वासाद्यं घृतम् ११ | | अगस्त्यहरीतकी ४८२ | |
| शतावरीघृतम् ४७३ | | च्यवनप्राशः... .. ११ | |
| बृहच्छतावरीघृतम्... .. ११ | | खण्डपिप्पल्यवलेहः ११ | |
| कुष्माण्डावलेहः ११ | | शिवगुटिका ४८३ | |
| खण्डकुष्माण्डः ४७४ | | लघुशिवगुटिका ४८४ | |
| वासाखण्डः... .. ११ | | शिलाजतुप्रयोगः ४८५ | |
| खण्डसाद्यो लेहः ४७५ | | यवान्याद्यं चूर्णम् ११ | |
| खण्डामलकं खण्डहरीतकी च ४७६ | | द्विपञ्चमूलाद्यं घृतम् ११ | |
| रसाः... .. ११ | | बलाद्यं घृतम् ११ | |
| वासासूतः ११ | | द्राक्षासवः ४८६ | |
| अथ षट्सप्ततितमस्तरङ्गः । ७६ | | पिप्पल्याद्यरिष्टः ११ | |
| अथ क्षयरोगनिदानम् ११ | | छागलादिघृतम् ११ | |
| | | चन्दनादितैलम् ४८७ | |
| | | बृहन्नवायसम् ११ | |

| विषया । | पृष्ठाङ्का । | विषया । | पृष्ठाङ्का । |
|------------------------------|--------------|-----------------------------|--------------|
| लाक्षादितैलम् | ११ | अग्निरसः | ११ |
| महालाक्षादितैलम् | ४८८ | हिताहितम् | ५०० |
| रत्नगर्भपोटलीरसः | ११ | अथाष्टसप्ततितमस्तरङ्गः । ७८ | |
| कुमुदेश्वरो रसः | ४८९ | अथ कासनिदानम् | ११ |
| पञ्चामृताख्यो रसः | ११ | पञ्च प्रकाराः | ११ |
| राजमृगाङ्कः | ११ | पूर्वरूपम् | ५०१ |
| मृगाङ्कः | ४९० | वातजः कासः | ११ |
| कनकसुन्दरो रसः | ११ | पित्तजः | ११ |
| सुवर्णपर्पटीरसः | ११ | कफजः | ११ |
| प्राणप्रदा पर्पटी | ४९१ | क्षयजः | ११ |
| लोकेश्वररसः | ११ | कासचिकित्सा | ५०२ |
| लोकेश्वरपोटलीरसः | ११ | पथ्यम् | ११ |
| द्वितीयो राजमृगाङ्कः | ४९२ | तस्योपचारः | ११ |
| शिलाजत्वादिलौहम् | ११ | अपराजितो लेहः | ११ |
| वसन्तकुसुमाकरः | ४९३ | भाग्याद्यवलेहः | ११ |
| त्रैलोक्यचिन्तामणिः | ११ | विश्वादिलेहः | ५०३ |
| सूर्यप्रभा गुटिका | ४९४ | दशमूलादिघृतम् | ११ |
| अथ सप्तसप्ततितमस्तरङ्गः । ७७ | | कण्टकारीलेहः | ११ |
| अथोरःक्षतनिदानम् | ४९५ | बलादिकाथ | ११ |
| उरःक्षतचिकित्सा | ४९६ | शक्यादिकाथः | ११ |
| एलादिगुटिका | ११ | खर्जूरादिलेहः | ५०४ |
| यष्ट्याह्वयं घृतम् | ४९७ | क्षीरामलघृतम् | ११ |
| बलाद्यं घृतम् | ११ | नवाङ्गयूषः | ११ |
| श्वदंष्ट्राद्यं घृतम् | ११ | शक्याद्यवलेहः | ११ |
| कल्याणघृतम् | ११ | व्योषाद्यं घृतम् | ११ |
| द्राक्षादिघृतम् | ४९८ | अथ द्वन्द्वजकासचिकित्सा | ११ |
| अमृतप्राशावलेहः | ११ | कट्फलादिः... .. | ११ |
| रसरजः | ११ | अथ क्षतकासचिकित्सा | ५०५ |
| अमृतेश्वरो रसः | ४९९ | इक्ष्वाद्यवलेहः | ११ |
| राजमृगाङ्को रसः | ११ | अथ क्षयकासचिकित्सा | ११ |

| विषया । | पृष्ठाङ्काः । | विषया । | पृष्ठाङ्काः । |
|----------------------------|---------------|-------------------------|---------------|
| पिप्पल्यवलेहः | ११ | असाध्यलक्षणम् ... | ११ |
| काकुभचूर्णम् ... | ११ | हिक्काचिकित्सा ... | ११ |
| पिप्पल्यादिघृतम् ... | ५०६ | | |
| पिप्पल्याद्यवलेहः ... | ११ | अथाशीतितमस्तरङ्गः । ८३ | |
| अथ कासश्वासः .. | ११ | अथ श्वासनिदानम् ... | ५१६ |
| अमृतादिकाथः .. | ११ | पञ्चधाश्वासनिरोधनिदानम् | ११ |
| भाग्यादिकाथः ... | ११ | पूर्वरूपम् .. | ५१७ |
| पथ्यादिगुटिका .. | ११ | श्वाससंप्राप्तिः .. | ११ |
| अथ सर्वकासः ... | ५०७ | महाश्वासलक्षणम् ... | ११ |
| कुनठ्यादिलेहः ... | ११ | ऊर्ध्वश्वासः .. | ११ |
| हरीतक्याद्यो मोदकः .. | ११ | छिन्नश्वासः ... | ११ |
| शर्करासमं चूर्णम् ... | ५०८ | तमकश्वासः ... | ११ |
| कर्पूराद्यं चूर्णम् ... | ११ | प्रतमकश्वासः ... | ५१८ |
| मरिचाद्यं चूर्णम् .. | ११ | क्षुद्रश्वासलक्षणम् ... | ११ |
| कण्टकारीघृतम् .. | ११ | अथ श्वासप्रतीकारः ... | ५१९ |
| व्याघ्रीहरीतकी ... | ११ | कुलत्थादिकाथः .. | ११ |
| कासकण्डनोऽवलेहः | ५०९ | दशमूलदिकाथः .. | ११ |
| पारदादिचूर्णम् ... | ११ | देवदारवादिकाथः ... | ११ |
| कासकर्तरी गुटिका ... | ११ | गुडादिगुटिका | ११ |
| निषेधः ... | ५१० | कूष्माण्डमूलचूर्णम् | ५२० |
| अथैकोनाशीतितमस्तरङ्गः । ७९ | | गृङ्ग्यादिचूर्णम् | ११ |
| अथ हिक्कानिदानम् ... | ५१३ | गुडावलेहः ... | ११ |
| हिक्कालक्षणम् ... | ११ | हरिद्रावलेहः ... | ११ |
| पञ्चप्रकाराः... .. | ११ | शक्याद्यं चूर्णम् ... | ११ |
| पूर्वरूपम् ... | ११ | भाग्यादिलेहः .. | ११ |
| अन्नजा हिक्का ... | ११ | चित्रकहरीतक्यवलेहः | ५२१ |
| यमला | ११ | मार्गीहरीतक्यवलेहः ... | ११ |
| क्षुद्रिका ... | ११ | क्षुद्रावलेहः ... | ११ |
| गम्भीरा ... | ५१४ | गुटी ... | ११ |
| महाहिक्का ... | ११ | श्वासकुठारः ... | ११ |

| विषया । | पृष्ठाङ्का । | विषया । | पृष्ठाङ्काः । |
|---|--------------|---|---------------|
| अथैकाशीतितमस्तरङ्गः । ८१ | | खाडवं चूर्णम् ५२९ | |
| अथ स्वरभेदनिदानम् ... ५२२ | | सूतादिगुटी ॥ | |
| वातजस्वरभेदः ॥ | | अथ त्र्यशीतितमस्तरङ्गः । ८३ | |
| पित्तजः ॥ | | अथ छर्दिनिदानम् ॥ | |
| कफजः ॥ | | पूर्वरूपम् ५३० | |
| सर्वाल्लिङ्गजः ॥ | | वातजा ॥ | |
| असाध्यः स्वरभेदः ... ५२३ | | पित्तजा ॥ | |
| अथ स्वरभेदचिकित्सा ... ॥ | | कफजा ॥ | |
| कासमर्दघृतम् ॥ | | त्रिदोषजा ॥ | |
| पित्तस्वरभेदे शुण्ठ्यादिघृतम् ॥ | | बीभत्सजा ॥ | |
| कफस्वरभेदे पिप्पल्यादि- घृतम् ५२४ | | साध्यासाध्यत्वम् ॥ | |
| संनिपातस्वरभेदचिकित्सा .. ॥ | | तदुपद्रवाः ५३१ | |
| क्षयजस्वरभेदचिकित्सा ॥ | | अथ छर्दिचिकित्सा . . ॥ | |
| अथ सामान्यविधिः ... ॥ | | धान्यकादिः ॥ | |
| चव्यादिचूर्णम् ॥ | | लाजादियूषाः' ॥ | |
| व्याघ्रीघृतम् ॥ | | चन्दनपानकम् ॥ | |
| बद्रीपत्रावलेहः . . . ५२५ | | चन्दनाद्यवलेहः . . . ॥ | |
| निदिग्धिकावलेहः ॥ | | मुद्गकषायः ५३२ | |
| गोरक्षवटी ॥ | | पर्पटकाथः ॥ | |
| अथ द्वाशीतितमस्तरङ्गः । ८२ | | हरीतक्यवलेहः ॥ | |
| अथारोचकनिदानम् ५२६ | | मक्षिकाविडवलेहः ॥ | |
| अरोचकचिकित्सा ॥ | | लाजसक्तवलेहिका ॥ | |
| अम्लिकापानकम् ५२७ | | कफच्छर्दिचिकित्सा ॥ | |
| मदः ॥ | | धात्रीफलादिपानकम् ... ५३३ | |
| चत्वारः कवलग्रहाः ... ५२८ | | मसूरसक्तुः ॥ | |
| कारव्यादिगुटिका ॥ | | एलाद्यं चूर्णम् ॥ | |
| यवानीखाडवं चूर्णम् ... ॥ | | त्रिदोषच्छर्दिचिकित्सा ... ॥ | |
| लवङ्गादिचूर्णम् ॥ | | सामान्यच्छर्दिचिकित्सा को- लाद्यवलेहः ॥ | |
| | | लाजादियोगत्रयम् ॥ | |

| विषयाः । | पृष्ठाङ्काः । | विषयाः । | पृष्ठाङ्काः । |
|-----------------------------|---------------|--------------------------|---------------|
| आम्रास्थ्यादिकाथः | ... ५३४ | पृथिव्यादिकमूर्च्छा | ... ११ |
| बिल्वादिः | ... ११ | विषमद्यजे मूर्च्छे | ... ११ |
| जम्बूषलवादि | ... ११ | तन्द्रालक्षणम् | ... ११ |
| पद्मकाद्यं घृतम् | ... ११ | कुमलक्षणम् | ... ५४१ |
| मयूरपक्षमस्मावलेहः | ... ११ | तत्र संन्यासः | ... ११ |
| अथ सामान्यविधिः | ... ११ | मूर्च्छाचिकित्सा | ... ११ |
| अथ चतुरशीतितमस्तरङ्गः । ८४ | | भ्रमचिकित्सा | ... ५४२ |
| अथ तृष्णानिदानम् | ... ५३५ | तन्द्राचिकित्सा | ... ११ |
| वातजा तृष्णा | ... ११ | संन्यस्तचिकित्सा | ... ५४३ |
| पित्तजा | ... ११ | मरितताम्रचूर्णम् | ... ११ |
| कफजा | ... ५३६ | अथ षडशीतितमस्तरङ्गः । ८६ | |
| क्षतजा | ... ११ | अथ पानात्ययनिदानम् | ... ११ |
| क्षयजा | ... ११ | प्रथममदगुणाः | ... ५४४ |
| रसक्षयजा | ... ११ | द्वितीयमदगुणाः | ... ११ |
| त्रिदोषजा | ... ११ | तृतीयमदगुणाः | ... ११ |
| असाध्यत्वम् | ... ११ | चतुर्थमदगुणाः | ... ११ |
| अथ तृष्णाचिकित्सा | ... ११ | वातजमदात्ययः | ... ५४५ |
| पित्तजतृष्णाचिकित्सा | ... ५३७ | पित्तजः | ... ११ |
| कफजतृष्णाचिकित्सा | ... ११ | कफजः | ... ११ |
| अथ सामान्यविधिः | ... ११ | त्रिदोषजः | ... ११ |
| रसादिगुटी | ... ५३८ | परमदालिङ्गम् | ... ११ |
| अथ पञ्चाशीतितमस्तरङ्गः । ८५ | | पानार्जीर्णम् | ... ११ |
| अथ मूर्च्छानिदानम् | ... ५३९ | पानविभ्रमः | ... ११ |
| पूर्वरूपम् | ... ११ | अथैतच्चिकित्सा | ... ५४६ |
| वातजा मूर्च्छा | ... ११ | मद्यपानमात्रा | ... ११ |
| पित्तजा | ... ११ | पानस्य प्रशस्तिः | ... ११ |
| कफजा | ... ५४० | वातपानात्ययः | ... ५४७ |
| संनिपातजा | ... ११ | पित्तपानात्ययः | ... ११ |
| | | कफपानात्ययः | ... ११ |

| विषयाः । | पृष्ठाङ्काः । | विषयाः । | पृष्ठाङ्काः |
|------------------------------|---------------|---------------------------|-------------|
| अष्टाङ्गलवणम् | ५४८ | ब्रह्मराक्षससेवितः | ५५५ |
| सामान्यचिकित्सा ... | ५५ | असाध्यमर्यादा | ५५ |
| कज्जलीरसः..... | ५४९ | ग्रहसमयः | ५५ |
| अथ सप्ताशीतितमस्तरङ्गः । ८७ | | तस्य व्याप्तिः | ५५ |
| अथ दाहनिदानम् | ५५ | अथैतत्प्रतीकारः | ५५ |
| दाहचिकित्सा ... | ५५० | बाह्म्यादिकल्कः ... | ५५६ |
| चन्दनादिक्राथः | ५५ | सिद्धार्थकादियोगः | ५५ |
| कुशादितैलघृते | ५५१ | ऽयूषणवर्तिः | ५५ |
| रसादिगुटी ... | ५५ | आगन्तून्मादचिकित्सा ... | ५५ |
| अथाष्टाशीतितमस्तरङ्गः । ८८ | | महापैशाचिकं घृतम् ... | ५५७ |
| अथोन्मादनिदानम् ... | ५५ | चैतसं घृतम्... .. | ५५ |
| उन्मादस्य सामान्यं रूपम् ५५२ | | पानीयकल्याणकघृतम् ... | ५५८ |
| वातजोन्मादः ... | ५५ | सारस्वतं चूर्णम् | ५५ |
| पित्तजः ... | ५५ | विश्वाद्यं चूर्णम् ... | ५५९ |
| कफजः ... | ५५ | हिङ्गवाद्यं घृतम् ... | ५५ |
| संनिपातजः... .. | ५५ | महाचैतसं घृतम् ... | ५५ |
| मनोविकारजः ... | ५५३ | कृष्णाद्यञ्जनम् ... | ५६० |
| विषजः ... | ५५ | ऋक्षलोमादिधूपः | ५५ |
| असाध्यत्वम्... .. | ५५ | विगतोन्मादलक्षणम् | ५५ |
| भूतजः ... | ५५ | नस्यम् | ५६१ |
| देवजुष्टलक्षणम् | ५५ | भूतभैरवो रसः | ५५ |
| दैत्यजुष्टलक्षणम् ... | ५५ | उन्मादगजकेसरी ... | ५५ |
| गन्धर्वग्रहपरिपीडितः ... | ५५४ | अथैकोननवतितमस्तरङ्गः । ८९ | |
| यक्षग्रहपरिपीडितः... .. | ५५ | अथापस्मारनिदानम् ... | ५६२ |
| पितृग्रहाभिजुष्टः ... | ५५ | वातजोऽपस्मारः ... | ५५ |
| भुजङ्गमजुष्टः ... | ५५ | पित्तजः ... | ५५ |
| राक्षसगृहीतैः ... | ५५ | कफजः ... | ५५ |
| पिशाचजुष्टः ... | ५५ | त्रिदोषजः | ५५ |
| | | अथापस्मारचिकित्सा ... | ५६४ |
| | | नस्यम् ... | ५५ |

| विषयाः । | पृष्ठाङ्काः । | विषयाः । | पृष्ठाङ्काः । |
|----------------------------------|---------------|------------------------|---------------|
| अञ्जनम् | ११ | धनुस्तम्भः | ११ |
| धूपः | ११ | व्रणायामः | ५७० |
| कल्याणकं चूर्णम् | ११ | बाह्याभ्यन्तरायामौ.... | ११ |
| ब्राह्मीघृतम् | ११ | कफपित्तान्वितः | ११ |
| स्वल्पपञ्चगव्यघृतम् | ११ | असाध्यत्वम् | ११ |
| वचाद्यं घृतम् | ५६५ | पक्षघातः | ११ |
| कटभ्यादितैलम् | ११ | वातपित्तसमान्वितः.... | ११ |
| कपित्थादिर्वार्तिः | ११ | पक्षाघातासाध्यत्वम् | ५७१ |
| जलमृतलक्षणम् | ११ | अर्दितः | ११ |
| स्मृतिसागरः | ११ | अर्दितस्य वर्षावधिः | ११ |
| अथ नवतितमस्तरङ्गः । ९० | | हनुग्रहः | ११ |
| अथ वातव्याधिनिदानम् ... | ५६६ | मन्यास्तम्भः | ११ |
| आक्षेपकादयोऽशीतिर्वार्तिरोगाः ११ | | जिह्वास्तम्भः | ५७२ |
| गुदस्थः | ५६७ | शिरोग्रहः | ११ |
| आमाशयस्थः | ११ | गूध्रसी | ११ |
| पक्वाशयस्थः.... | ११ | विश्वाची | ११ |
| वातप्रकोपः | ११ | क्रोष्टुकशीर्षं | ११ |
| त्वग्गतः | ५६८ | खञ्जपङ्कगू | ११ |
| रुधिरगतः | ११ | कलायखञ्जः | ११ |
| मांसमेदोगतः | ११ | वातकण्टकः | ११ |
| मज्जास्थिगतः | ११ | पाददाहः | ११ |
| शुक्रगतः | ११ | पादहर्षः | ५७३ |
| शिरागतः | ११ | अवबाहुकः | ११ |
| स्नायुगतः | ११ | मूकमिमिणगद्गदाः | ११ |
| कफावृतलक्षणम् | ११ | तूनी | ११ |
| आक्षेपकः | ५६९ | प्रतूनी | ११ |
| अपतन्त्रकः | ११ | आध्मानः | ११ |
| अपतानकः | ११ | प्रत्याध्मानः | ११ |
| दण्डापतानकः | ११ | वाताष्ठीला | ११ |
| तस्याऽऽयुष्प्रमाणम् | ११ | प्रत्यष्ठीला | ११ |
| | | वेपथुः | ५७४ |

| विषयाः । | पृष्ठाङ्काः । | विषयाः । | पृष्ठाङ्काः । |
|---------------------------------|---------------|----------------------------|---------------|
| ऊर्ध्ववातः | ११ | महामाषाद्यं तैलम् | ११ |
| असाध्यत्वम् | ११ | शतावरीतैलम् | ५८४ |
| अथैतच्चिकित्सा | ११ | महाबलातैलम् | ११ |
| यूषः | ११ | नारायणं तैलम् | ११ |
| प्रदेहः | ५७५ | जीवनारायणतैलम् | ११ |
| वेसवारः | ११ | शतावरीनारायणं तैलम् .. | ५८६ |
| स्वेदः | ११ | दशविधताशवरीतैलम् | ५८७ |
| माषादिसप्तकम् | ५७६ | लघुनारायणं तैलम् | ५८८ |
| माषादिकाथः | ११ | शतावरी तैलम् | ११ |
| रसोनसप्तकम् | ११ | दशमूलादि तैलम् | ११ |
| माषोण्डरी | ५७७ | सुगन्धितैलम् | ११ |
| दशमूल्यादिकाथः | ११ | एलादितैलम् | ११ |
| सहचरादिकाथः | ११ | विष्णुतैलम् | ५८९ |
| दशमूलादिकाथः | ११ | वातनाशनं तैलम् | ११ |
| दशमूल्यादिः | ११ | छागलंघ्यं घृतम् | ५९० |
| दारुषट्कम् | ११ | त्वक्शून्यतालक्षणम् | ५९१ |
| जिह्वास्तम्भे कल्याणकावलेहः ५७८ | | नारायणं चूर्णम् | ११ |
| एरण्डबीजषायसः | ५७९ | अथ रसाः | ११ |
| तैलादियोगाः | ११ | महानाराचो रसः | ११ |
| रास्नाद्यो गुग्गुलुः | ५८० | वातनाशनो रसः | ५९२ |
| हिङ्गवादिचूर्णम् | ११ | स्वच्छन्दमैस्वो रसः | ११ |
| गृध्रस्युत्तारणप्रकारः | ११ | वातविध्वंसनो रसः | ११ |
| शिरावेधविधिः | ११ | वातराक्षसः | ५९३ |
| आदित्यगुग्गुलुः | ११ | द्वितीयो वातराक्षसः | ५९४ |
| त्रयोदशाङ्गो गुग्गुलुः | ५८१ | अथैकनवतितमस्तरङ्गः । ९१ | |
| महारास्नादिकाथः | ५८२ | अथ वातरक्तनिदानम् | ११ |
| योगराजो गुग्गुलुः | ११ | वातजम् | ५९५ |
| रास्नाद्यो गुग्गुलुः | ११ | पित्तजम् | ११ |
| द्वात्रिंशको गुग्गुलुः | ११ | कफजम् | ११ |
| लघुविषगर्भतैलम् | ५८३ | द्रुन्दजम् | ११ |
| अतिप्रसारिणीतैलम् | ११ | | |

| विषया । | पृष्ठाङ्काः । | विषयाः । | पृष्ठाङ्काः । |
|-----------------------------|---------------|-------------------------------|---------------|
| याप्यत्वम् | ११ | कुष्ठादितैलम् ... | ६०५ |
| अथ वातरक्तचिकित्सा ... | ५९६ | कद्वरं तैलम् ... | ११ |
| द्वैविध्यम् | ११ | अथ त्रिनवतितमस्तरङ्गः । ९३ | |
| निषेधः ... | ५९७ | अथाऽऽमवातनिदानम् | ११ |
| तस्यान्नम् ... | ११ | आमलक्षणम् ... | ६०६ |
| मांसम् ... | ११ | आमवातस्य सामान्यलक्षणम् | ११ |
| शाकान्नम् | ११ | आमचिकित्सा ... | ११ |
| भक्ष्यम् ... | ११ | शतपुष्पादिलेपः | ६०७ |
| वासादिकाथः ... | ११ | अहिंसादिलेपः ... | ११ |
| मास्त्रिष्ठादिनवकार्षिककाथः | ११ | रास्नादिपञ्चकम् ... | ११ |
| गुडूच्यादिकाथः ... | ५९८ | रास्नादिसप्तकम् | ६०८ |
| गुडूचीयोगः .. | ११ | महारास्नादिकाथः ... | ११ |
| द्वितीयो गुडूच्यादिकाथः.... | ११ | चित्रकादिचूर्णम् | ११ |
| काश्मर्यादिकाथः | ११ | पुनर्नवाद्यं चूर्णम् | ६०९ |
| लघुमास्त्रिष्ठादिकाथः ... | ५९९ | गुडूच्यादिचूर्णम् ... | ११ |
| बृहन्मास्त्रिष्ठादिः ... | ११ | वैश्वानरं चूर्णम् | ११ |
| अमृताद्यवलेहिका ... | ११ | सिंहनादो गुग्गुलुः.... | ११ |
| कैशोरको गुग्गुलुः ... | ११ | बृहद्रसोनपिण्डः ... | ११ |
| पुनर्नवाद्यो गुग्गुलुः ... | ६०० | एरण्डगुटी | ६१० |
| अमृताद्यो गुग्गुलुः.... | ११ | एरण्डतैलम् ... | ११ |
| लघुमरिचादितैलम्... | ६०१ | कास्त्रिकषट्पलकं घृतम् ... | ११ |
| अथ रसाः . . | ११ | सैन्धवाद्यं तैलम् ... | ११ |
| सर्वेश्वरो रसः ... | ११ | शुण्ठीखण्डपाकः ... | ६११ |
| शिलाजतुयोगः | ६०२ | पञ्चाननवटी ... | ११ |
| अर्केश्वरो रसः ... | ११ | अजमोदावटी ... | ११ |
| चोपचिनीबाष्पः ... | ११ | अथ चतुर्नवतितमस्तरङ्गः । ९४ | |
| अथ द्विनवतितमस्तरङ्गः । ९२ | | अथ शूलनिदानम् ... | ६१२ |
| अथोरुस्तम्भनिदानम् | ६०३ | तत्र हेतुः ... | ११ |
| पूर्वरूपम् ... | ११ | तन्त्रान्तरोक्तान्नदोषशूलः... | ६१३ |
| ऊरुस्तम्भचिकित्सा ... | ११ | | |

| विषयाः । | पृष्ठाङ्काः । | विषयाः । | पृष्ठाङ्काः । |
|---|---------------|-----------------------------|---------------|
| शूलचिकित्सा | ६१४ | अग्निमुखो रसः | ११ |
| तिलकल्कस्वेदः | ११ | शूलगजकेसरी | ११ |
| कार्पासादिस्वेदः | ११ | | |
| कुलत्थयूषः | ११ | अथ पञ्चनवतितमस्तरङ्गः । ९५ | |
| बलादिकाथः | ६१५ | अथ परिणामशूलनिदानम् । ६२१ | |
| करञ्जाद्यं चूर्णम् | ११ | वातजः | ११ |
| एरण्डादिकाथः | ११ | पित्तजः | ११ |
| हिङ्गवाद्यं चूर्णम् | ११ | कफजः | ६२२ |
| पित्तशूले शतावर्यादिकाथः ६१६ | | त्रिदोषजः | ११ |
| धात्रीचूर्णम्... .. | ११ | परिणामशूलचिकित्सा | ११ |
| श्लेष्मशूले त्रिलवणादि- चूर्णम् | ११ | विडङ्गाद्यो मोदकः.... | ११ |
| त्रिदोषशूले शम्बूकचूर्णयोगः ११ | | नागरादिकल्कः | ११ |
| मण्डूरावलेहः | ६१७ | एरण्डादिमस्मयोगः | ६२३ |
| एरण्डद्वादशकम् | ११ | शम्बूकमस्मयोगः | ११ |
| आमशूले चित्रकादिकाथः ११ | | शम्बूकादिगुटिका | ११ |
| एरण्डसप्तकम् | ११ | शम्बूकाद्यो मोदकः | ११ |
| द्वन्द्वजशूले कण्टकार्यादि ... ११ | | कृष्णाद्यं लोहम् | ११ |
| क्षाराम्बुयोगः | ६१८ | पथ्याद्यं लोहम् | ६२४ |
| द्राक्षादिः | ११ | त्रिफलाद्यं लोहम् | ११ |
| शूले साधारणो विधिः | ११ | चतुःसमो लोहः | ११ |
| तुम्बुर्वाद्यं चूर्णम् | ११ | सामुद्राद्यं चूर्णम् | ११ |
| द्विक्षाराद्यं चूर्णम् | ११ | मीममण्डूरवटकः | ६२५ |
| रुचकादिचूर्णम् | ११ | शतावरीमण्डूरः | ११ |
| तैलधाराबस्तिः | ११ | तारामण्डूरवटकः | ६२६ |
| पथ्यादिचूर्णम् | ६१९ | लोहगुग्गुलुः.... .. | ११ |
| हिङ्गवाद्या वटी | ११ | गुडाद्यं लोहम् | ६२७ |
| शूलिघृतम् | ११ | त्रिनेत्राख्यो रसः | ११ |
| सूर्यप्रभा वटी | ११ | दशोपद्रवाः | ६२८ |
| हिङ्गवादिचूर्णम् | ६२० | निषेधः | ११ |
| शूलगजकेसरी रसः | ११ | | |

| विषयाः । | पृष्ठाङ्काः । | विषयाः । | पृष्ठाङ्काः |
|----------------------------|---------------|------------------------------------|-------------|
| अथ षण्णवतितमस्तरङ्गः । ९६ | | अथ सामान्यविधिः | ... |
| अथ वेगग्रहनिदानम् | ... | हिङ्गवाद्यं घृतम् | ... ६३८ |
| अथोदावर्तनिदानम् | ... ६२९ | सामुद्रादिवर्तिः | ... ११ |
| अथैतयोश्चिकित्सा... | ... ६३० | नादेयीक्षारः... | ... ११ |
| द्विरुत्तरं चूर्णम् | ... ६३१ | वज्रक्षारः | ... ११ |
| प्रलेपः | ... | अपरो वज्रक्षारः | ... ६३९ |
| मदनादिफलवर्तिः | ... | दाधिकं घृतम् | ... ११ |
| नाराचचूर्णम् | ... | रक्तगुल्मचिकित्सा... | ... ११ |
| नाराचरसः | ... | शताह्वादिकल्कः | ... ११ |
| | | तिलकाथः | ... ६४८ |
| अथ सप्तनवतितमस्तरङ्गः । ९७ | | पलाशक्षारघृतम् | ... ११ |
| अथाऽऽनाहोपक्रमः | ... ६३२ | कल्लाराद्यं घृतम् | ... ११ |
| वचाद्यं चूर्णम् | ... | अथ रसाः | ... ११ |
| फलवर्तिः | ... | विद्याधररसः | ... ११ |
| | | बङ्गेश्वरः | ... ६४१ |
| अथाष्टनवतितमस्तरङ्गः । ९८ | | गुल्मारिः | ... ११ |
| अथ गुल्मनिदानम्... | ... | अथैकोनशततमस्तरङ्गः । ९९ | |
| अथ गुल्मचिकित्सा | ... ६३४ | अथ हृद्रोगनिदानम् | ... ११ |
| मातुलुङ्गाद्यवलहः | ... | वातहृद्रोगे पिप्पल्यादिचूर्णम् | ... ६४२ |
| नागराद्यवलेहः | ... | पुष्करमूलाद्यं चूर्णम् | ... ११ |
| हिङ्गुपञ्चकचूर्णम् | ... | पित्तहृद्रोगे द्राक्षाद्यं चूर्णम् | ... ६४३ |
| केतकीक्षारयोगः | ... | कफहृद्रोगे त्रिवृताद्यौ चूर्ण- | |
| चित्रकाद्यं घृतम् | ... | काथौ... | ... ११ |
| पित्तगुल्मचिकित्सा... | ... ६३५ | त्रिदोषहृद्रोगचिकित्सा | ... ११ |
| कफगुल्मचिकित्सा... | ... | कृमिजहृद्रोगचिकित्सा | ... ६४४ |
| क्षीरषट्पलकं घृतम् | ... | अथ सामान्यहृदामयप्रतीकारः | ... ११ |
| मिश्रकस्नेहः | ... ६३६ | हिङ्गवाद्यं चूर्णम् | ... ११ |
| संसृष्टगुल्मचिकित्सा | ... | पुष्कराद्यं चूर्णम् | ... ११ |
| हिङ्गवादिचूर्णगुटिका | ... | ककुमाद्यं चूर्णम् | ... ११ |
| त्रिदोषगुल्मचिकित्सा | ... ६३७ | दशमूलीकाथः | ... ११ |

| विषयाः । | पृष्ठाङ्काः । | विषयाः । | पृष्ठाङ्काः । |
|---------------------------------|---------------|----------------------------------|---------------|
| चलभघृतम् | ११ | पित्तमारुतजः | ११ |
| त्रिनेत्रो रसः | ६४५ | पित्तकफजः... .. | ६५२ |
| अथ शततमस्तरङ्गः । १०० | | उदरान्तर्गतपार्श्वगमनम् | ११ |
| अथ मूत्रकृच्छ्रनिदानम् .. | ११ | उपचितपित्तः | ११ |
| वातजमूत्रकृच्छ्रचिकित्सा... .. | ६४६ | कफेन कुण्डलीभूतोऽसाध्यः ६५३ | |
| पित्तजमूत्रकृच्छ्रचिकित्सा .. | ११ | अथ मूत्राघातचिकित्सा .. | ११ |
| तृणपञ्चमूलकाथपयसी | ११ | नलादिकाथः | ११ |
| शतावर्यादिकाथः | ६४७ | वीरतर्वादिकाथः | ११ |
| हरीतक्यादिकाथः | ११ | दशमूलीकाथः | ११ |
| शतावरीसर्पिःपयसी | ११ | गोक्षुरकाथः | ६५४ |
| श्लेष्मकृच्छ्रचिकित्सा | ११ | शुद्धशिलाजतुयोगः | ११ |
| त्रिदोषकृच्छ्रचिकित्सा | ११ | चित्रकाद्यं घृतम् | ११ |
| बृहत्यादिकाथः | ११ | धान्यगोक्षुराद्यं घृतम् | ११ |
| अभिघातमूत्रकृच्छ्रचिकित्सा ६४८ | | स्वगुप्ताद्यं चूर्णम् | ६५५ |
| शुक्रविवन्धजकृच्छ्रचिकित्सा ११ | | क्षौद्रार्धभागं घृतम्... .. | ११ |
| शकृद्विघातजकृच्छ्रचिकित्सा ११ | | अथ द्वाधिकशततमस्तरङ्गः । १०२ | |
| गोक्षुरादिकाथः | ११ | अथाश्मरीनिदानम् | ६५६ |
| अश्मरीजकृच्छ्रचिकित्सा | ११ | तद्भेदाः | ११ |
| एलादिकाथः | ११ | पूर्वरूपम् | ११ |
| अथ सामान्यमूत्रकृच्छ्रविधिः ६४९ | | अथ चिकित्सा | ६५७ |
| एलाद्यवलेहः | ११ | शुण्ठ्यादिकाथः | ११ |
| गोक्षुराद्यो गुग्गुलुः... .. | ११ | वरुणकाथः | ११ |
| त्रिकण्टकादिकाथः | ११ | वीरतर्वादिः... .. | ११ |
| लोहमस्मयोगः | ११ | पित्ताश्मर्या पाषाणभेदकाथः ६५८ | |
| त्रिकण्टकाद्यं घृतम् | ६५० | श्लेष्माश्मर्या शिञ्जादिः | ११ |
| महाचन्द्रकलानामरसः | ११ | शुक्राश्मर्या कूष्माण्डरसः... .. | ६५९ |
| अथैकाधिकशततमस्तरङ्गः । १०१ | | तिलादिकाथः | ११ |
| अथ मूत्राघातनिदानम् | ६५१ | पाषाणभेदादिकाथः | ११ |
| वातजः | ११ | हरिद्रायोगः... .. | ११ |
| | | कुटजयोगः | ११ |

| विषयाः । | पृष्ठाङ्काः । | विषयाः । | पृष्ठाङ्काः । |
|-------------------------------|---------------|------------------------------|---------------|
| त्रापुसबीजनालिकेरकुसुम- | | अथ प्रमेहचिकित्सा | ... ६६७ |
| योगः | ६६० | यवप्रशस्तिः | ११ |
| वरुणक्वाथकुटजकल्को | ... ११ | मेहेषु हितम् | ११ |
| वरुणाद्यं घृतम् | ११ | निषेधः | ११ |
| अश्मरीकण्डनो रसः ... | ११ | कफप्रमेह उपचारः... | ११ |
| त्रिविक्रमो रसः | ६६१ | पित्तप्रमेहे | ६६८ |
| पथ्यम् | ११ | वातप्रमेहेषु... .. | ११ |
| अथ त्र्यधिकशततमस्तरङ्गः । १०३ | | द्वन्द्वजप्रमेहेषु | ११ |
| अथ प्रमेहनिदानम्... | ... ६६२ | दुष्टरक्तजप्रमेहे | ११ |
| कफजप्रमेहोपद्रवाः... | ... ६६३ | सामान्यप्रमेहचिकित्सा | ... ११ |
| पित्तजप्रमेहोपद्रवाः | ... ११ | शिवादिक्वाथः | ११ |
| असाध्यत्वम् | ११ | त्रिफलाद्यं चूर्णम् | ६६९ |
| कटसाध्यत्वम् | ६६४ | कतकयोगः | ११ |
| मधुमेहः | ११ | त्रिफलादिक्वाथः | ११ |
| मेहशुद्धिः | ११ | न्यग्रोधाद्यं चूर्णम् | ११ |
| प्रमेहजपिटकानामानि | ... ११ | आमलकाद्यवलेहिका | ... ६७० |
| शराविका | ११ | गोक्षुरादिगुटी | ११ |
| कच्छपिका | ६६५ | दाडिमाद्यं घृतम् | ११ |
| जालिनी | ११ | सिंहामृतं घृतम् | ६७१ |
| विनता | ११ | धन्वन्तरिसर्पिः | ११ |
| अलजी | ११ | गुडूचीयोगः..... | ६७२ |
| मसूरिका | ११ | शाल्मलीयोगः | ११ |
| सर्षपिका | ११ | त्रिफलादियोगः | ११ |
| पुत्रिणी | ११ | गन्धकयोगः..... | ११ |
| विदारिका | ११ | गुडूचीयोगः... .. | ११ |
| विद्रधिका | ११ | चन्द्रप्रभा वटी | ११ |
| जन्मजाः पिटकाः | ६६६ | पूगपांसुः | ६७३ |
| पिटकाया असाध्यत्वम् | ... ११ | बृहत्पूगपाकः | ११ |
| स्त्रियो न प्रमेहन्ति | ११ | नागभस्मयोगः | ६७४ |
| पिटकानामुपद्रवाः | ११ | वङ्गभस्मयोगः | ११ |
| | | अभ्रकयोगः..... | ११ |

| विषया । | पृष्ठाङ्काः । | विषयाः । | पृष्ठाङ्काः । |
|-------------------------------|---------------|--------------------------|---------------|
| हरिशंकरो रसः | ११ | दूष्योदरम् | ११ |
| भेघनादो रसः | ११ | प्लीहोदरम् | ११ |
| बोलबद्धो रसः | ११ | बद्धोदरम् | ६८२ |
| लघुवक्त्रेश्वरः | ६७५ | क्षतोदरम् | ११ |
| प्रमेहकुठारो रसः | ११ | उदकोदरम् | ११ |
| सर्वेश्वरो रसः | ११ | यत्नसाध्यम् | ६८३ |
| अथ चतुरधिकशततमस्तरङ्गः । १०४ | | असाध्यत्वम् | ११ |
| अथ मेदोरोगनिदानम् | ६७६ | अथ चिकित्सा | ११ |
| मेदोपक्रमः | ११ | उपचारः | ११ |
| अथ चिकित्सा | ६७७ | कुष्ठादिचूर्णम् | ११ |
| मेदोवर्धनम् | ११ | सामुद्रायं चूर्णम् | ११ |
| तस्योपचारः | ११ | दशमूलाद्यं घृतम् | ११ |
| व्योषादिसक्तुप्रयोगः | ११ | पित्तोदरोपचारः | ११ |
| त्रिफलाद्यं तैलम् | ११ | श्लेष्मोदरोपचारः | ६८५ |
| नवकगुग्गुलुः | १ | त्रिदोषजोदरे नागराद्यं | |
| हरीतक्यादियोगः | ११ | यमकम् | ११ |
| महामुगन्धतैलम् | ११ | दूष्योदरत्रिलिङ्गोदरचि- | |
| बिल्वाद्यौ योगौ | ११ | कित्सा | ६८६ |
| तिलाद्युद्वर्तनम् | ११ | पथ्यम् | ११ |
| रसमस्मयोगः | ११ | निषेधः | ११ |
| ज्यूषणाद्यं चूर्णम् | ११ | कङ्कुष्ठचूर्णम् | ११ |
| मूर्तिः | ११ | चव्यादिकाथः | ११ |
| अथ पञ्चाधिकशततमस्तरङ्गः । १०५ | | बब्बूलपाकः | ६८७ |
| अथोदरनिदानम् | ६८० | पटोलाद्यं चूर्णम् | ६८८ |
| अष्टधोदराणि | ११ | नारायणं चूर्णम् | ११ |
| वातोदरम् | ११ | तस्यानुपानम् | ११ |
| पित्तोदरम् | ६८१ | महाक्षारः | ६८९ |
| कफोदरम् | ११ | नाराचघृतम् | ६९० |
| त्रिलिङ्गजठरम् | ११ | द्वितीयं नाराचघृतम् | ११ |
| | | त्रिवृताद्यं घृतम् | ११ |
| | | बिन्दुघृतम् | ११ |

| विषयाः । | पृष्ठाङ्काः । | विषयाः । | पृष्ठाङ्काः । |
|-----------------------------|---------------|----------------------------|---------------|
| शालिपर्णीतैलम् ... | ६९१ | वङ्गेश्वरो रसः ... | ११ |
| प्रीहाचिकित्सा | ११ | उदरारिः ... | ६९९ |
| वातजः | ११ | जलोदरारिः.... | ११ |
| रक्तजः | ६९२ | चण्डभास्करो रसः.... | ११ |
| त्रिदोषजः ... | ११ | इच्छाभेदी रसः ... | ११ |
| तस्योपचाराः ... | ११ | नाराचो रसः . . | ७०० |
| सिन्ध्वादिचूर्णम् ... | ११ | जलोदरारिरसः ... | ११ |
| द्रवन्तीनामवटी ... | ११ | | |
| शिशुक्राथः ... | ६९३ | अथ षडधिकशततमस्तरङ्गः । १०६ | |
| कुष्ठादिचूर्णम् ... | ११ | अथ शोथनिदानम्... | ११ |
| अर्कपत्रक्षारः ... | ११ | तस्य हेतुः ... | ७०१ |
| लघुहिङ्गवादिचूर्णम् ... | ११ | सामान्यालिङ्गम् ... | ११ |
| शङ्खनाभिचूर्णम् .. | ११ | वातजः | ११ |
| शरपुङ्खामूलचूर्णम् ... | ११ | पित्तजः ... | ११ |
| शाल्मलीपुष्पक्राथः ... | ६९४ | कफजः ... | ११ |
| यवान्यादिचूर्णम् | ११ | द्वन्द्वजः ... | ११ |
| विडङ्गादिचूर्णम् | ११ | संनिपातजः.... | ११ |
| विडङ्गादिक्षारः | ११ | अभिघातादिजः ... | ११ |
| मल्लतक्रमोदकः ... | ११ | विषजशोथः ... | ७०२ |
| अमयामोदकाः ... | ६९५ | सर्वदेहगशोथः ... | ११ |
| वज्रक्षारः ... | ११ | कष्टसाध्यत्वम् ... | ११ |
| अग्निमुखं लवणम् ... | ११ | असाध्यत्वम् ... | ११ |
| चित्रकाद्यं घृतम् ... | ६९६ | आमान्वितशोफः ... | ११ |
| महारोहीतकं घृतम् ... | ११ | शोथचिकित्सा ... | ७०३ |
| यकृद्वात्युदरे पिप्पलीघृतम् | ११ | वातजशोथचिकित्सा ... | ११ |
| बृद्धगुदप्रतीकारः ... | ६९७ | पित्तजशोथचिकित्सा ... | ११ |
| क्षतोदरवृकोदरप्रतीकारः ... | ११ | कफजशोथचिकित्सा | ११ |
| हरीतक्यादिक्राथः ... | ६९८ | पथ्यादिक्राथः ... | ७०४ |
| बृहत्पुनर्नवादिः ... | ११ | गुडाद्यं चूर्णम् ... | ७०५ |
| लघुपुनर्नवादिक्राथः ... | ११ | पुनर्नवाद्यं चूर्णम् ... | ७०५ |
| अथ रसाः ... | ११ | | |

| विषया । | पृष्ठाङ्काः । | विषया । | पृष्ठाङ्काः । |
|-------------------------------|---------------|-----------------------------|---------------|
| गोमूत्रमण्डूरः | ७०६ | गण्डमालायामुपचाराः ... | ११ |
| पुनर्नवाद्यं घृतम् ... | ११ | ग्रन्थिचिकित्सा ... | ७१७ |
| शुष्कमूलकाद्यं तैलम् | ११ | शस्त्रकर्म ... | ११ |
| पञ्चमूलाद्यं तैलम् | ११ | अर्बुदचिकित्सा ... | ७१८ |
| कंसहरीतकी ... | ७०७ | शाखोटकबिल्वतैलम् ... | ७१९ |
| दशमूलहरीतकी ... | ११ | काञ्चनारगुग्गुलुः ... | ११ |
| श्वयथुवाती रसः | ११ | निर्गुण्डीतैलम् ... | ७२० |
| निषेधः ... | ७०८ | छुच्छुन्दरीतैलम् ... | ११ |
| अथ सप्ताधिकशततमस्तरङ्गः । १०७ | | गुञ्जतैलम् ... | ११ |
| अथान्त्रवृद्धिकुरण्डबध्नरोग- | | चन्दनादितैलम् ... | ११ |
| निदानम् ... | ११ | व्योषाद्यं तैलम् ... | ११ |
| अथ चिकित्सा ... | ७०९ | चक्रमर्दतैलम् ... | ११ |
| षडूषणगुग्गुलुः ... | ११ | निषेधः ... | ७२१ |
| रास्नादिकाथः ... | ७१० | गण्डमालाकण्डनो रसः ... | ११ |
| मांस्यादिघृतम् ... | ७११ | अथ नवाधिकशततमस्तरङ्गः । १०८ | |
| बिल्वाद्यं चूर्णम् ... | ११ | अथ श्लीपदनिदानम् ... | ११ |
| अथाष्टाधिकशततमस्तरङ्गः । १०८ | | वातजम् ... | ११ |
| अथ गलगण्डनिदानम् ... | ७१२ | पित्तजम् ... | ११ |
| पित्तजः ... | ११ | श्लेष्मजम् ... | ११ |
| कफजः ... | ११ | असाध्यत्वम् ... | ११ |
| क्षयवृद्धियुक्तलक्षणम् ... | ११ | देशदोषजम् ... | ११ |
| गण्डमालापचीनिदानम् ... | ७१३ | निषेधः ... | ११ |
| ग्रन्थिनिदानम् ... | ११ | अथ श्लीपदचिकित्सा ... | ११ |
| अर्बुदापचीनिदानम् ... | ११ | गोमूत्रहरीतकी ... | ७२३ |
| अथ चिकित्सा ... | ७१४ | वृद्धदारुकं चूर्णम् ... | ११ |
| पथ्यम् ... | ११ | पिप्पल्याद्यं चूर्णम् ... | ७२४ |
| उपचारः ... | ११ | कृष्णाद्यो मोदकः ... | ११ |
| अमृताद्यं तैलम् ... | ७१६ | सौरेश्वरं घृतम् ... | ११ |
| तुम्बीतैलम् ... | ११ | विडङ्गाद्यं तैलम् ... | ११ |

| विषया । | पृष्ठाङ्का । | विषया । | पृष्ठाङ्का । |
|-------------------------------|--------------|------------------------------|--------------|
| अथ दशाधिकशततमस्तरङ्गः । ११० | | पक्वशोफलक्षणम् ... | ११ |
| अथ विद्रधिनिदानम् ... ७२५ | | रक्तपाकः ... | ७३१ |
| वातजः ... | ११ | वातव्रणः ... | ११ |
| पित्तजः ... | ११ | पित्तव्रणः ... | ११ |
| कफजः ... | ११ | कफव्रणः ... | ११ |
| संनिपातजः ... | ११ | रक्तव्रणः ... | ७३२ |
| आगन्तुविद्रधिः ... | ११ | दुष्टव्रणलिङ्गम् ... | ११ |
| रक्तजः ... ७२६ | | शुद्धव्रणलक्षणम् ... | ११ |
| अधिष्ठानविशेषेण विद्रधि- | | बद्धव्रणः ... | ११ |
| लिङ्गम् ... | ११ | व्रणरोहणम् ... | ११ |
| साध्यासाध्यत्वम् ... | ११ | सम्यग्रूढव्रणः ... | ११ |
| स्तनविद्रधिनिदानम् ... ७२७ | | व्रणाशयः ... | ११ |
| विद्रधिचिकित्सा ... | ११ | साध्यासाध्यत्वम् ... | ७३३ |
| तस्य क्रिया ... | ११ | अथ चिकित्सा ... | ७३४ |
| अपक्वविद्रधिचिकित्सा ... | ११ | विम्लापनम् ... | ११ |
| वातजविद्रधावुपचारः ... ७२८ | | अवसेचनम् ... | ११ |
| पित्तजविद्रधावुपचारः ... | ११ | वातजशोथे लेपः ... | ११ |
| परिधेकः ... | ११ | पित्तजशोथे लेपः ... | ११ |
| प्रियङ्गुदाद्यं तैलम् ... ७२९ | | शोथनिर्वापणलेपः ... | ७३५ |
| वरुणकाथः ... | ११ | श्लेष्मजशोथे लेपः ... | ११ |
| हरीतक्याद्विचूर्णम् ... | ११ | कफवातकृतशोथे कोष्णलेपः | ११ |
| वरुणादिघृतम् ... | ११ | बृहन्न्यग्रोधादिलेपः ... | ११ |
| कज्जलीयोगः ... | ११ | उपनाहः ... | ७३६ |
| अथैकादशाधिकशततम- | | क्वचिच्छन्ननिक्षेपापवादः ... | ११ |
| स्तरङ्गः । १११ | | पाचनभेदनम् ... | ११ |
| अथ व्रणशोथनिदानम् ... ७३० | | रोपणम् ... | ७३७ |
| रक्तागन्तुव्रणः ... | ११ | वर्तिः ... | ११ |
| आमव्रणः ... | ११ | दुष्टव्रणलेपः ... | ११ |
| पच्यमानव्रणः ... | ११ | अग्निदग्धप्रतीकारः ... | ७३८ |
| | | यवादिधूपः ... | ११ |
| | | त्रिफलागुग्गुलुः ... | ११ |

| विषया. । | पृष्ठाङ्का । | विषया. । | पृष्ठाङ्काः । |
|--------------------------------------|--------------|---------------------------------------|---------------|
| गुग्गुलुवटकः | ॥ | जात्यादितैलम् | ७४५ |
| विडङ्गादिगुग्गुलुः | ७३९ | विपरीतमल्लतैलम् | ॥ |
| अमृताद्यो गुग्गुलुः... .. | ॥ | दूर्वादितैलम्.... .. | ॥ |
| जात्यादिघृतं तैलं वा | ॥ | सप्तविंशतिको गुग्गुलुः | ७४६ |
| स्वर्जिकाद्यं घृतम् | ॥ | अथ त्रयोदशाधिकशततम- स्तरङ्गः । ११३ | |
| पारदादिमलहरः | ॥ | अथाग्निदग्धव्रणनिदानम् | |
| मनःशिलादिलेपः | ७४० | सिक्थकादिघृतम् | ७४७ |
| अथ द्वादशाधिकशततम- स्तरङ्गः । ११२ | | लाङ्गलीकं घृतम् | ॥ |
| अथ सद्योव्रणनिदानम् | ॥ | चन्दनाद्यं यमकम् | ७४८ |
| छिन्नलक्षणम् | ७४१ | अथ चतुर्दशाधिकशततम- स्तरङ्गः । ११४ | |
| भिन्नलक्षणम् | ॥ | अथ मग्ननिदानम् | ॥ |
| तस्य कोष्ठः | ॥ | मग्नचिकित्सा | ७४९ |
| विद्धलक्षणम्... .. | ॥ | लाक्षागुग्गुलुः | ७५० |
| क्षतलक्षणम्... .. | ॥ | आमाद्यो गुग्गुलुः | ॥ |
| पिच्छितम् | ॥ | गोधूमयोगः | ७५१ |
| घृष्टलक्षणम् | ७४२ | बोलयोगः | ॥ |
| सशल्यः सरुजो व्रणः | ॥ | निषेधः | ॥ |
| शल्योपद्रवः... .. | ॥ | अथ पञ्चदशाधिकशततम- स्तरङ्गः । ११५ | |
| असाध्यत्वम्... .. | ॥ | अथ नाडीव्रणनिदानम् | ॥ |
| वातकृता रुजः | ॥ | नाडीव्रणचिकित्सा.... .. | ७५२ |
| सामान्यमर्मलिङ्गम्... .. | ॥ | सप्ताङ्गो गुग्गुलुः | ७५३ |
| स्नायुविद्धत्वम् | ॥ | अथ षोडशाधिकशततम- स्तरङ्गः । ११६ | |
| अस्थिविद्धत्वम् | ॥ | अथ मगंदरनिदानम् | ॥ |
| उपद्रवाः | ७४३ | | |
| अथ सद्योव्रणचिकित्सा | ॥ | | |
| वंशत्वगादिकाथः | ७४४ | | |
| गौरादिघृतम् | ॥ | | |
| तिक्तादिघृतम् | ॥ | | |

| विषयाः । | पृष्ठाङ्काः । | विषयाः । | पृष्ठाङ्काः । |
|--------------------------------------|---------------|---|---------------|
| पञ्चविधत्वम् | ११ | स्त्रीपुंसयोर्दार्ढ्योपदंशः | ११ |
| पूर्वरूपम् ... | ७५४ | अथोपदंशचिकित्सा ... | ११ |
| शतपोनको दोषः ... | ११ | उपचारः ... | ७६० |
| उष्ट्रशिरोधरो दोषः... | ११ | वातजोपचारः ... | ११ |
| परिस्रावी ... | ११ | पित्तजोपचारः ... | ११ |
| शम्बूकावर्तकः ... | ७५५ | पित्तास्रजोपचारः ... | ११ |
| उन्मार्गी ... | ११ | कफजोपचारः ... | ११ |
| असाध्यत्वम् | ११ | प्रक्षालने योगः ... | ११ |
| अथ चिकित्सा ... | ११ | मूनिम्बादिघृतम् ... | ७६१ |
| लेपः... .. | ११ | करञ्जाद्यं घृतम् ... | ११ |
| भिन्नक्रिया ... | ११ | आगारधूमाद्यं तैलम् ... | ११ |
| तिलादिलेपः ... | ७५६ | पारदाद्यं सर्पिः | ११ |
| निशादितैलम् ... | ११ | उपदंशगजकेसरी रसः | ११ |
| सिक्थकघृतम् | ११ | उपदंशगजकेसरी ... | ७६२ |
| बिडालास्थिलेपः ... | ११ | उपदंशान्धसूर्यः | ११ |
| नवकार्षिको गुग्गुलुः | ७५७ | अथाष्टादशाधिकशततम- स्तरङ्गः । ११८ | |
| जम्बूकप्रकारः ... | ११ | | |
| विष्यन्दनं तैलम् | ११ | अथ रतिदोषनिदानम् ... | ११ |
| क्रूरवीराद्यं तैलम् | ११ | अथ चिकित्सा ... | ७६३ |
| रूपराजरसः... .. | ११ | रसकर्पूरः ... | ११ |
| त्रिनेत्रो रसः... .. | ७५८ | तालकभस्म ... | ७६४ |
| अथ सप्तदशाधिकशततम- स्तरङ्गः । ११७ | | अन्यो रसकर्पूरः ... | ११ |
| | | गन्धकरसायनम् ... | ११ |
| अथोपदंशनिदानम्... | ११ | अन्यद्वन्द्वकरसायनम् ... | ७६५ |
| पञ्च प्रकाराः... | ११ | सिन्दूररसः ... | ७६६ |
| वातजः | ७५९ | वीरविक्रमो रसः ... | ७६७ |
| पित्तजः ... | ११ | अथैकोनविंशत्यधिकशततम- स्तरङ्गः । ११९ | |
| कफजः ... | ११ | | |
| असाध्यत्वम् | ११ | अथ शुक्रदोषनिदानम् ... | ११ |
| लिङ्गाशैरोगः ... | ११ | | |

| विषयाः । | पृष्ठाङ्काः । | विषयाः । | पृष्ठाङ्काः । |
|--------------------------------------|---------------|-------------------------------|---------------|
| सार्पपिका | ११ | मेदस्थानगतम् ... | ११ |
| अलजी ... | ११ | मज्जाघृतम् ... | ११ |
| पुष्करिका ... | ७६८ | असाध्यत्वम् ... | ७७४ |
| शतपोनकः ... | ११ | दोषाश्रितकुष्ठम् ... | ११ |
| शोणितार्बुदः | ११ | सप्तधामहाकुष्ठम् ... | ११ |
| मांसपाकः ... | ११ | कुष्ठभेदवर्णः ... | ११ |
| तिलकालकाः ... | ११ | तन्मध्ये वर्जनम् ... | ११ |
| असाध्यत्वम् ... | ७६९ | विशेषवर्जनम् ... | ११ |
| अथ चिकित्सा ... | ११ | अथ चिकित्सा ... | ७७५ |
| रसाञ्जनलेपः ... | ७७० | रक्तस्रावः ... | ११ |
| अथ विंशत्यधिकशततम- स्तरङ्गः । १२० | | तस्य क्रिया ... | ११ |
| अथ कुष्ठनिदानम् ... | ११ | तस्योपचारः | ११ |
| विषमकुष्ठम् ... | ७७१ | पथ्यादिलेपः ... | ११ |
| औदुम्बरं कुष्ठम् ... | ११ | सोमराजीबाकुचीचूर्णम् ... | ७७६ |
| मण्डलाख्यं कुष्ठम् | ११ | तस्य प्रदेहः ... | ११ |
| ऋक्षजिह्वाख्यं कुष्ठम् | ११ | धात्र्यादिलेपः ... | ११ |
| पुण्डरीककुष्ठम् ... | ७७२ | केसरषष्ठयोगः ... | ७७७ |
| काकणं कुष्ठम् ... | ११ | प्रपुन्नाटादिलेपः ... | ११ |
| चर्माख्यं कुष्ठम् ... | ११ | खादिरोदकम् | ११ |
| किटिभं कुष्ठम् ... | ११ | खदिराष्टकक्राथः ... | ७७८ |
| अलसककुष्ठम् ... | ११ | नवकषायः ... | ११ |
| चर्मदलाख्यं कुष्ठम् ... | ११ | लघुमस्त्रिष्ठादिकषायः ... | ११ |
| कच्छुकुष्ठम् ... | ११ | सामान्यमस्त्रिष्ठादिकषायः ... | ११ |
| स्फोटकुष्ठम् ... | ११ | मध्यममस्त्रिष्ठादिकषायः ... | ७७९ |
| शतारुः ... | ७७३ | वृद्धमस्त्रिष्ठादिकषायः | ११ |
| विचर्चिका ... | ११ | गुडूच्यादिकषायः ... | ११ |
| श्वित्रम् | ११ | शुण्ठ्यादिमहाकषायः ... | ७८० |
| कुष्ठकण्डूभेदविशेषः | ११ | धतूरकादितैलम् | ११ |
| मांसाश्रितम् ... | ११ | सिन्दूराद्यं तैलम् ... | ७८१ |
| | | बृहत्सिन्दूराद्यं तैलम् | ७८२ |
| | | निशादिप्रलेपः ... | ११ |

| विषया । | पृष्ठाङ्का । | विषया । | पृष्ठाङ्का । |
|----------------------------------|--------------|-----------------------------|--------------|
| जीरकतैलम् | ७८३ | शशिलेखावटी | ७९६ |
| अर्कतैलम् | ७८४ | श्वेतारिः | ७९७ |
| त्रिफलागुटिका | ७८५ | कुष्ठाद्युपदंशादौ तालादिले- | |
| शशाङ्कलेखादिलेहः | ७८६ | पनम् | ७९८ |
| त्रिफलामोदकः | ७८७ | तालकभस्म | ७९९ |
| पञ्चनिम्बचूर्णम् | ७८८ | तालकभूतिक्रिया | ८०० |
| सर्वाङ्गसुन्दरीगुटिकाः | ७८९ | अथैकविंशत्यधिकशततम- | |
| एकविंशतिको गुग्गुलुः | ७९० | स्तरङ्गः । १२१ | |
| तिक्तषट्पलकं घृतम् | ७९१ | अथोददर्शितपित्तकोठनि- | |
| पञ्चतिक्तकं घृतम् | ७९२ | दानम् | ८०१ |
| तिक्तकं घृतम् | ७९३ | अथ चिकित्सा | ८०२ |
| महातिक्तकं घृतम् | ७९४ | सिद्धार्थककाथः | ८०३ |
| महाखादिरं घृतम् | ७९५ | आर्द्रकखण्डम् | ८०४ |
| गुग्गुलुपञ्चतिक्तकं घृतम् | ७९६ | ताम्रयोगः | ८०५ |
| वज्रतैलम् | ७९७ | अथ द्वाविंशत्यधिकशततम- | |
| तृणतैलम् | ७९८ | स्तरङ्गः । १२२ | |
| अन्यद्वज्रतैलम् | ७९९ | अथाम्लपित्तनिदानम् | ८०६ |
| लघुमरिचाद्यं तैलम् | ८०० | पित्तजम् | ८०७ |
| बृहन्मरिचाद्यं तैलम् | ८०१ | वातजम् | ८०८ |
| सर्षपादिचूर्णम् | ८०२ | कफजम् | ८०९ |
| विषतैलम् | ८०३ | वातकफजम् | ८१० |
| अथ प्रक्रिया | ८०४ | कफपित्तजम् | ८११ |
| महातालकेश्वरो रसः | ८०५ | अथ चिकित्सा | ८१२ |
| मलातकावलेहः | ८०६ | पथ्यम् | ८१३ |
| कुष्ठकुठारः | ८०७ | चित्रकादिकाथः | ८१४ |
| अथाष्टादशविधकुष्ठचिकित्सा | ८०८ | द्राक्षादिगुटी | ८१५ |
| श्वित्रचिकित्सा | ८०९ | अविषात्तिकरं चूर्णम् | ८१६ |
| स्वल्पनीलीघृतम् | ८१० | एलादिचूर्णम् | ८१७ |
| महानीलीघृतम् | ८११ | अमयाद्यवलेहः | ८१८ |
| ज्योतिष्मतीतैलम् | ८१२ | | |
| श्वित्रेभसिंहो रसः | ८१३ | | |

| विषयाः । | पृष्ठाङ्काः । | विषयाः । | पृष्ठाङ्काः । |
|---|---------------|---|---------------|
| शवादिक्वाथः | ८०२ | अथ चिकित्सा | ११ |
| गुडूच्यादिः | ११ | रास्नादिलेपः.... | ८१० |
| दशाङ्ग-क्वाथः | ११ | पटोलादिक्वाथः | ११ |
| पटोलादिकषायः | ११ | त्रायमाणादिक्वाथः .. | ११ |
| त्रिकटुकाद्यं चूर्णं लेहश्च ... | ११ | दशाङ्ग-लेपः | ८११ |
| पिप्पलीघृतम् | ११ | मांस्यादिलेपः | ११ |
| शतावरीतैलम् | ८०३ | द्वितीयस्त्रायमाणादिक्वाथः | ११ |
| द्राक्षाद्यं घृतम् | ११ | गुडूच्यादिक्वाथः | ११ |
| नारिकेलखण्डपाकः | ११ | वृषाद्यं घृतम् | ८१२ |
| खण्डपिप्पल्यबलेहः | ८०४ | गौराद्यं सर्पिः | ११ |
| रसामृतम् | ११ | करञ्जाद्यं तैलम् | ११ |
| लीलाविलासो रसः | ११ | अथ चतुर्विंशत्यधिकशत- तमस्तरङ्गः । १२४ | |
| धात्रीलोहम्... .. | ८०५ | अथ स्नायुकनिदानम् | ११ |
| वृषपुष्पादिचूर्णम् .. | ११ | अथ चिकित्सा | ८१३ |
| गुडाद्यो मोदकः | ११ | अतिविषाद्यं चूर्णम् | ११ |
| खण्डकूष्माण्डकाबलेहः | ११ | शिशुमूलादिलेपः | ८१४ |
| नारिकेलखण्डपाकः | ८०६ | अथ पञ्चविंशत्यधिकशत- तमस्तरङ्गः । १२५ | |
| बृहन्नारिकेलपाकः | ११ | अथ बिसर्पनिदानम् .. | ८०७ |
| अथ त्रयोविंशत्यधिकशत- तमस्तरङ्गः । १२३ | | वातजः | ११ |
| अथ बिसर्पनिदानम् .. | ८०७ | पित्तजः | ८०८ |
| वातजः | ११ | कफजः | ११ |
| पित्तजः | ८०८ | संनिपातजः | ११ |
| कफजः | ११ | वातपित्तविसर्पः | ११ |
| संनिपातजः | ११ | ग्रन्थ्याख्यः .. | ११ |
| वातपित्तविसर्पः | ११ | कर्दमाख्याः | ८०९ |
| ग्रन्थ्याख्यः .. | ११ | तस्योपद्रवाः.... | ११ |
| कर्दमाख्याः | ८०९ | साध्यासाध्यत्वम् | ११ |
| तस्योपद्रवाः.... | ११ | अथ विस्फोटनिदानम् ... | ११ |
| साध्यासाध्यत्वम् | ११ | अष्टधात्वम् .. | ११ |
| | | वातजः | ११ |
| | | पित्तजः | ११ |
| | | कफजः | ८१५ |
| | | कफपित्तजः .. | ११ |
| | | वातपित्तजः | ११ |
| | | कफवातजः | ११ |
| | | त्रिदोषजः | ११ |
| | | पित्तहेतुजः | ११ |

| विषयाः । | पृष्ठाङ्काः । | विषयाः । | पृष्ठाङ्काः । |
|---|---------------|--|---------------|
| असाध्यत्वम् | ११ | कोट्वाकारः ... | ८२० |
| तस्योपद्रवाः ... | ११ | अथ चिकित्सा ... | ११ |
| अथ चिकित्सा ... | ८१६ | वेणुत्वगादिधूपः ... | ११ |
| द्विपञ्चमूलादिकाथः ... | ११ | वानर्यादिकाथः | ८२१ |
| द्राक्षादिकाथः ... | ११ | बृहत्पटोलादिकाथः ... | ११ |
| भूनिम्बादिकाथः ... | ११ | निम्बादिकाथः | ११ |
| द्वादशाङ्गः ... | ११ | द्राक्षादिकाथः ... | ८२२ |
| अमृतादिकाथः ... | ८१७ | पञ्चमूलादिकाथः | ११ |
| दशाङ्गलेपः ... | ११ | दुरालभादिकाथः ... | ११ |
| कम्पिल्लाद्यं तैलम् ... | ११ | गुडूच्यादिः ... | ८२३ |
| पञ्चतिक्तकं घृतम् ... | ११ | नागरादिः | ११ |
| अथ षड्विंशत्यधिकशतत- मस्तरङ्गः । १५६ | | निम्बादिकाथः ... | ११ |
| अथ मसूरिकाविदानम् ... | ११ | काञ्चनारादिः ... | ११ |
| वातमसूरिका ... | ८१८ | पटोलादिः ... | ११ |
| पित्तजा ... | ११ | खदिराष्टकम् | ११ |
| रक्तपित्तजा ... | ११ | पटोलादिकाथः ... | ८२४ |
| कफजा ... | ११ | शिरीषादिचूर्णम् | ११ |
| त्रिदोषजा ... | ११ | निम्बादिधावनम् ... | ११ |
| चर्मसंज्ञिता ... | ११ | अथाञ्जनम् ... | ११ |
| कफपित्तजा ... | ११ | मसूरीधूपनम् ... | ११ |
| त्वग्गता ... | ८१९ | शीतलाष्टकम् ... | ८२६ |
| रसगता | ११ | अथ सप्तविंशत्यधिकशततम- स्तरङ्गः । १२७ | |
| रक्तगता | ११ | अथ क्षुद्ररोगनिदानम् ... | ८२७ |
| मांसगता ... | ११ | अजगल्लिका ... | ११ |
| मेदोगता ... | ११ | यवप्रख्या ... | ११ |
| मज्जागता ... | ११ | अन्धालजी ... | ११ |
| शुक्रगता ... | ११ | विवृता ... | ११ |
| सदोषा ... | ११ | कच्छपिका ... | ११ |
| साध्यासाध्यत्वम् ... | ११ | वल्मीकम् ... | ८२८ |

| विषयाः । | पृष्ठाङ्काः । | विषयाः । | पृष्ठाङ्काः । |
|--------------------|---------------|--|---------------|
| इन्द्रवृद्धा | ... | विवर्तिका ... | ... |
| गर्दभिका | ... | अवपाटिका | ८३२ |
| पाषाणगर्दभः ... | ... | निरुद्धप्रकशः | ... |
| पनसिका ... | ... | संनिरुद्धगदः ... | ... |
| जालगर्दभः ... | ... | अहिपूतनः ... | ... |
| हरिवेल्लिका ... | ... | वृषणकच्छूः ... | ... |
| कक्षा ... | ... | गुदभ्रंशः | ८३३ |
| गन्धनामा | ८२९ | सूकरदंष्ट्रकः ... | ... |
| अग्निरोहिणी ... | ... | अथ क्षुद्ररोगचिकित्सा ... | ... |
| चिप्पः ... | ... | उपोदकाद्यं तैलम् ... | ८३४ |
| कुनखः ... | ... | चाङ्गेरीघृतम् ... | ... |
| अनुशयी ... | ... | हरिद्रालेपस्तैलं च ... | ८३५ |
| विदारिका .. | ... | कनकतैलम् ... | ८३६ |
| शर्कराबुंदः ... | ... | मस्त्रिष्टायं तैलम् ... | ८३७ |
| षाददारी | ८३० | कुङ्कुमाद्यं तैलम् ... | ... |
| कदरम् ... | ... | अपरं कुङ्कुमाद्यं तैलम् ... | ... |
| अलसः | ... | हरिद्राद्यं तैलम् ... | ८३८ |
| इन्द्रलुप्तम् | ... | विषतैलम् ... | ... |
| वारुणकम् ... | ... | गुञ्जातैलम् ... | ८३९ |
| अरुंधिका ... | ... | भृङ्गराजतैलम् ... | ... |
| पलितम् ... | ... | प्रपौण्डरीकाद्यं तैलम् ... | ... |
| मुखदूषिका ... | ... | चन्दनाद्यं तैलम् | ... |
| पद्मिनीकण्टकः ... | ... | कृष्णीकरणम् ... | ८४० |
| जतुमाणिः | ८३१ | पटोलघृतम् ... | ८४१ |
| मशः ... | ... | अथाष्टाविंशत्यधिकशततम- स्तरङ्गः । १२८ | |
| तिलकालकाः ... | ... | | |
| न्यच्छम् ... | ... | अथ मुखरोगनिदानम् ... | ८४२ |
| व्यङ्गः ... | ... | वातजः ... | ... |
| नीलिका ... | ... | पित्तजः ... | ... |
| पाण्डुत्वम् ... | ... | कफजः ... | ... |
| प्रसुप्तिः ... | ... | | |

| विषयाः । | पृष्ठाङ्काः । | विषयाः । | पृष्ठाङ्काः । |
|------------------------|---------------|--------------------------|---------------|
| संनिपातजः.... | ११ | कण्ठशुण्डी ... | ११ |
| रक्तजः ... | ११ | तुण्डिकेरी ... | ११ |
| अथाष्टौ दन्तमूलजाः ... | ८४३ | ध्रुवः | ११ |
| शीतादव्याधिः ... | ११ | कच्छपः | ११ |
| दन्तपुष्पुटकः | ११ | अर्बुदः ... | ११ |
| दन्तवेष्टः ... | ११ | मांससंघातः | ८४७ |
| लालास्रावी ... | ११ | पुष्पुटः ... | ११ |
| महासौषिरः ... | ११ | तालुपाकः ... | ११ |
| परिदरः | ८४४ | अथ कण्ठगताः ... | ११ |
| अपकुशः ... | ११ | रोहिणी ... | ११ |
| विदर्भः ... | ११ | कण्ठशालूकः ... | ११ |
| अथ दन्तवेष्टगताः ... | ११ | अधिजिह्वः | ८४८ |
| खलिवर्धनः . . | ११ | बलयः | ११ |
| कैरालः ... | ११ | बलाससंज्ञकः ... | ११ |
| अधिमांसकः ... | ११ | एकवृन्दः ... | ११ |
| अथ दन्तरोगनिदानम् | ११ | वृन्दम् ... | ११ |
| दन्तविद्रधिः.... | ११ | शतघ्नी ... | ११ |
| दालनः ... | ८४५ | गिलायुः ... | ११ |
| क्रिमिदन्तकः ... | ११ | गलविद्रधिः ... | ११ |
| मञ्जनकः . . | ११ | गलीधः ... | ८४९ |
| दन्तहर्षः ... | ११ | स्वरघ्नः | ११ |
| दन्तशर्करा ... | ११ | विदारी . . | ११ |
| कपालिका ... | ११ | अथ सर्वमुखरोगनिदानम् ... | ११ |
| श्यावदन्तकः ... | ११ | असाध्याः . . | ११ |
| हनुमोक्षः ... | ११ | ओष्ठरोगोपक्रमः ... | ८५० |
| अथ जिह्वाविकाराः ... | ८४६ | दन्तरोगोपक्रमः ... | ११ |
| वातजः ... | ११ | कुष्ठादिचूर्णम् | ८५१ |
| पित्तजः ... | ११ | जातीपत्रादिचूर्णम् ... | ११ |
| कफजः | ११ | कणाद्यं चूर्णम् ... | ११ |
| कफरक्तजः . . | ११ | जीरकादिचूर्णम् ... | ११ |
| अथ तालुगताः ... | ११ | भद्रमस्तादिर्गदी ... | ११ |

| विषया । | पृष्ठाङ्काः । | विषया । | पृष्ठाङ्काः । |
|---|---------------|---------------------------------|---------------|
| इशमूल्यादितैलघृते... | ... ८५२ | परिपोटकः ... | ... ११ |
| लोध्राद्यं तैलम् | ... ११ | उत्पातः ... | ... ११ |
| सहचरकाथः ... | ... ११ | उन्मन्थकः ... | ... ११ |
| सहचराद्यं तैलम् | ... ११ | दुर्विच्छे दोषः ... | ... ११ |
| जिह्वारोगोपक्रमः ... | ... ८५३ | परिलेही ... | ... ११ |
| तालुरोगोपक्रमः | ... ११ | अथ कर्णरोगचिकित्सा ... | ... ११ |
| गलरोगोपक्रमः ... | ... ८५४ | खलुतैलम् ... | ... ८६० |
| कालकं चूर्णम् ... | ... ८५५ | हिङ्गवाद्यं तैलम् ... | ... ११ |
| पीतकं चूर्णम् ... | ... ११ | अपामार्गतैलम् ... | ... ११ |
| तेजोवत्यादिगुटिका . | ११ | भूलतातैलम् | ... ८६१ |
| सर्वमुखपाकचिकित्सा ... | ११ | शम्बुरुतैलम् ... | ... ११ |
| पञ्चपल्लवकषायः .. | ... ११ | चत्वारि तैलानि ... | ... ११ |
| सप्तच्छदादिकाथः ... | ... ८५६ | क्षारतैलम् ... | ... ११ |
| पटोलादिकाथः ... | ... ११ | मधुसूक्तम् | ... ११ |
| खादिरादिगुटिकाः... | ... ११ | दीपिकातैलम् ... | ... ८६२ |
| अथैकोनत्रिंशदधिकशततम- स्तरङ्गः । १२९ | | समुद्रफेनचूर्णम् ... | ... ११ |
| अथ कर्णरोगनिदानम् .. | ... ८५७ | विषयोगः .. | ... ११ |
| कर्णनादः ... | ... ११ | रास्नाद्यो गुग्गुलुः ... | ... ११ |
| बाधिर्यम् | ... ११ | पञ्चकषायः . | ... ११ |
| कर्णक्ष्वेडः . | ... ११ | कुष्ठाद्यं तैलम् ... | ... ८६३ |
| कर्णसंस्त्रावः | ... ११ | गन्धकतैलम्... | ... ११ |
| कर्णगूथकः | ... ११ | कर्णकृमां योगत्रयम् .. | ... ११ |
| कर्णप्रतिनाहः ... | ... ८५८ | कृमिकर्णे योगचतुष्टयम् .. | ... ११ |
| क्रिमिकर्णः .. | ... ११ | कृमिकर्णयोगः ... | ... ११ |
| कर्णगतकीटलक्षणम् ... | ११ | कर्णमलहरणोपायः ... | ... ८६४ |
| क्षताभिघातजो विद्रधिः ... | ११ | कर्णप्रतीनाहे क्रिया.... | ... ११ |
| पूतिकर्णकः | ११ | निषेधः ... | ... ११ |
| वातादिजन्यस्त्रावः ... | ११ | अथ कर्णपालिरोगचि- कित्सा ... | ... ११ |
| अथ कर्णपालिगताः | ... ८५९ | शतावरीतैलम् ... | ... ११ |
| | | जीवनीयतैलम् | ... ११ |

| विषयाः । | पृष्ठाङ्काः । | विषयाः । | पृष्ठाङ्काः । |
|--------------------------------------|---------------|---|---------------|
| जीवन्त्याद्यं तैलम् | ११ | पीनसादिषूपायः | ११ |
| अथ त्रिंशदधिकशतत- मस्तरङ्गः । १३० | | व्याघ्रीतैलम् | ८७० |
| अथ नासारोगोपक्रमः | ८६५ | शिथुतैलम् | ११ |
| पूतिनासः | ११ | प्रतिश्यायप्रतीकारः... | ११ |
| नासिकापाकः | ११ | सत्याद्यं चूर्णम् | ८७१ |
| पूयरक्तः | ११ | चित्रकहरीतकी | ११ |
| क्षवथुः | ११ | हिङ्गवादितैलम् | ८७२ |
| क्षवथुभेदः | ८६६ | अथैकत्रिंशदधिकशततम- स्तरङ्गः । १३१ | |
| भ्रंशथुः | ११ | अथ नेत्ररोगनिदानम् | ११ |
| दीप्तः.... | ११ | वातजविकाराः | ११ |
| प्रतीनाहः | ११ | पित्तजविकाराः | ८७३ |
| स्रावः | ११ | कफजविकाराः | ११ |
| नासापरिशोषः | ११ | रक्तजविकाराः | ११ |
| आमपीनसलक्षणम् | ११ | अधिमन्थदोषः | ११ |
| प्रतिश्यायः | ११ | दोषजदृष्टिघातस्य नियमवि- नानि | ११ |
| पूर्वरूपम् | ८६७ | आमान्वितं नेत्रम् | ११ |
| वातजप्रतिश्यायः | ११ | पक्वदोषः | ११ |
| पित्तजप्रतिश्यायः | ११ | नेत्रपाकः | ११ |
| कफजप्रतिश्यायः | ११ | हृत्ताधिमन्थरोगः | ८७४ |
| संनिपातजप्रतिश्यायः | ११ | वातपर्ययः | ११ |
| कष्टसाध्यत्वम् | ११ | शुष्कनेत्रपाकः | ११ |
| असाध्यत्वम् | ८६८ | अन्यतोवातः | ११ |
| अथ चिकित्सा | ११ | अम्लाध्युषितनेत्रम् | ११ |
| गुडाद्यो योगः | ११ | शिरोत्पातनेत्रदोषः... | ११ |
| मरिचादियोगः | ११ | कृष्णगता विकाराः | ११ |
| चित्रकादिगुटी | ८६९ | दृष्टिगता विकाराः | ८७५ |
| कट्फलादिचूर्णं क्वाथश्च | ११ | प्रथमपटलगतदोषजविकाराः | ११ |
| पाठाद्यं तैलम् | ११ | द्वितीयपटलगतदोषजविकाराः | ११ |
| सर्जादिकषायो घृतं च | ११ | | |

| विषयाः । | पृष्ठाङ्काः । | विषयाः । | पृष्ठाङ्काः । |
|-------------------------|---------------|--|---------------|
| तृतीयपटलगतदोषजविकाराः | ॥ | धात्र्यादिक्राथः | ... ॥ |
| चतुर्थपटलगतदोषजविकाराः | ॥ | त्रिफलायोगः | ... ८८५ |
| लिङ्गनाशः | ... ८७६ | चन्द्रोदयवर्तिः | ... ॥ |
| वातजदोषे रूपदर्शनम् | ... ॥ | चन्द्रकलावर्तिः | ... ॥ |
| पित्तजदोषे रूपदर्शनम् | ... ॥ | नयनामृतम् | ... ॥ |
| कफजदोषे रूपदर्शनम् | ... ॥ | गुटिकाञ्जनम् | ... ८८६ |
| रक्तजदोषे रूपदर्शनम् | ... ॥ | नारायणाञ्जनम् | ... ॥ |
| संनिपातजदोषे रूपदर्शनम् | ॥ | नक्तान्ध्यकेतुः | ... ॥ |
| षड्विधरागलक्षणम् | ... ८७७ | नागार्जुनी शलाका | ... ॥ |
| षड्रोगाः | ... ॥ | शशिकलावर्तिः | ... ८८७ |
| पित्तविदग्धदृष्टिः | ... ॥ | चन्द्रप्रभा वर्तिः | ... ॥ |
| श्लेष्मविदग्धदृष्टिः | ... ८५८ | रत्नाञ्जनम् | ... ॥ |
| गूमदर्शी | ... ॥ | वैदेहीवर्तिः | ... ८८८ |
| द्वस्वजात्यः | ... ॥ | त्रिफलाघृतम् | ... ॥ |
| गकुलान्ध्यम् | ... ॥ | मध्यमं त्रैफलं घृतम् | ... ॥ |
| गम्भीरसंज्ञकः | ... ॥ | महात्रैफलं घृतम् | ... ८८९ |
| गुक्कगतविकाराः | ... ॥ | अथ द्वात्रिंशदधिकशततम- स्तरङ्गः । १३२ | |
| गंधिगतविकाराः | ... ८७९ | | |
| गर्भपक्ष्मजाः | ... ॥ | अथ शिरोरोगनिदानम् | ... ८९० |
| अथ नेत्ररोगचिकित्सा | ... ८८१ | वातजः | ... ॥ |
| स्य क्रिया.... | ... ॥ | पित्तजः | ... ॥ |
| गञ्जनस्यर्तुसमानकालः | ... ॥ | कफजः | ... ॥ |
| गश्च्योतनमात्रा | ... ८८२ | त्रिदोषजः | ... ॥ |
| गञ्जात्रा | ... ॥ | रक्तजः | ... ॥ |
| गश्च्योतनम् | ... ॥ | क्रिमिजः | ... ८९१ |
| गपनाहौ | ... ८८३ | सूर्यावर्तः | ... ॥ |
| टोलादिक्राथः | ... ॥ | अनन्तवातः | ... ॥ |
| गसादिक्राथः | ... ॥ | अर्धावभेदकः | ... ॥ |
| हावासादिक्राथः | ... ८८४ | शङ्खकः | ... ॥ |
| गम्लिकाञ्जनम् | ... ॥ | अथ चिकित्सा | ... ८९२ |
| वेत्रकादिक्राथः | ... ॥ | | |

| विषया । | पृष्ठाङ्का । | विषया । | पृष्ठाङ्काः |
|--|--------------|---|-------------|
| षड्बिन्दुघृतम् | ११ | काश्मीरघृतम् | ११ |
| षड्बिन्दुतैलम् | ११ | प्रदरारिः | ९०१ |
| शिरोवस्तिविधिः | ८९३ | अथ पञ्चत्रिंशदधिकशततम- स्तरङ्गः । १३५ | |
| विडङ्गाद्यं तैलम् | ११ | अथ सोमरोगनिदानम् ... | ११ |
| कुङ्कुमयोगः | ११ | तस्य लक्षणम् | ११ |
| इन्द्रलुप्ते योगचतुष्टयम् | ८९४ | अथ चिकित्सा | ११ |
| महानीलीतैलम् | ८९५ | अथ षट्त्रिंशदधिकशततम- स्तरङ्गः । १३६ | |
| शांकरी कृतिः | ८९६ | अथ नागार्जुनकृतयोगसारो- क्तस्त्रीद्वेषचिकित्सा ... | ९०२ |
| तैलकृष्णीकृतिः | ११ | अथ सप्तत्रिंशदधिकशततम- स्तरङ्गः । १३७ | |
| अथ त्रयस्त्रिंशदधिकशततम- स्तरङ्गः । १३३ | | अथ योनिरोगनिदानम् | ९११ |
| अथ स्त्रीरोगाः | ८९७ | वातजो दोषः | ९०४ |
| स्त्रीपुष्पजननोपायः | ११ | पित्तजः | ११ |
| अथ चतुस्त्रिंशदधिकशततम- स्तरङ्गः । १३४ | | श्लेष्मजः | ११ |
| अथ प्रदरनिदानम्.... | ११ | सर्वदोषप्रकोपजः | ११ |
| वातजः | ११ | अथ चिकित्सा | ९०५ |
| कफजः | ११ | वचाद्यवलेहः | ११ |
| पित्तजः | ११ | योनिविशोधनम् | ११ |
| द्वन्द्वजः | ८९८ | अथाष्टात्रिंशदधिकशततमस्त- स्तरङ्गः । १३८ | |
| त्रिदोषजः | ११ | अथ योनिकन्दनिदानम् ... | ९०६ |
| शुद्धार्तवम् | ११ | अथ चिकित्सा | ९०७ |
| असाध्यत्वम् | ११ | अथैकोनचत्वारिंशदधिकश- ततमस्तरङ्गः । १३९ | |
| अथ चिकित्सा | ११ | अथ गर्भोत्पादनविधिः ... | ११ |
| दाव्यादिः | ८९९ | | |
| जीरकावलेहः | ९०० | | |
| मुद्गघृतम् | ११ | | |
| शाल्मलीघृतम् | ११ | | |

| विषयाः । | पृष्ठाङ्काः । | विषयाः । | पृष्ठाङ्काः । |
|---|---------------|---|---------------|
| नष्टार्तवचिकित्सा | १०८ | निर्गुण्ड्यादिकाथः | ११ |
| गर्भाविस्था | १०८ | देवदावादिक्वाथः | ११ |
| पुत्रकारकयोगः | १०९ | अमृतादिक्वाथः | ११ |
| फलघृतम् | १०९ | सहचरादिक्वाथः | ११ |
| अथ चत्वारिंशदधिकशततम- स्तरङ्गः । १४० | | मध्यमसौभाग्यशुण्ठ्यवलेहः ११९ | |
| अथ मूढगर्भनिदानम् | ११० | सौभाग्यशुण्ठी | ११ |
| अथ चिकित्सा | १११ | पञ्चजीरावलेहः | ११ |
| स्त्रावप्रतिबन्धोपायः | ११२ | प्रतापलङ्केश्वरो रसः | १२० |
| गर्भरक्षणोपायः | ११ | अथ त्रिचत्वारिंशदधिकशततम- स्तरङ्गः । १४३ | |
| शूलनिवारणोपायः | ११३ | अथ स्तनरोगः | ११ |
| गर्भिणीज्वरादिशान्त्युपायः .. | ११ | स्तनशोथोपक्रमः | ११ |
| हृबिरादिक्वाथः | ११ | स्तन्यरोगः | १२१ |
| गर्भिण्युपद्रवनिवारणोपायः .. | ११ | सप्तविधक्षीरम् | ११ |
| गर्भपातनिवारणोपायः | ११ | वातदुष्टस्तन्य उपायः | १२२ |
| मूढगर्भापकर्षणम् | ११४ | पित्तदुष्टस्तन्ये | ११ |
| सुखप्रसवोपायः | ११ | कफदुष्टस्तन्ये | ११ |
| वातशुष्कगर्भचिकित्सा | ११६ | द्विदोषदुष्टस्तन्ये | ११ |
| अथैकचत्वारिंशदधिकशततम- स्तरङ्गः । १४१ | | त्रिदोषदुष्टस्तन्ये | ११ |
| अथ मक्कलनिदानम् | ११ | क्षीरालसकलक्षणम् | ११ |
| अथ चिकित्सा | ११ | स्तन्यविशुद्धिविधिः | ११ |
| अथ द्विचत्वारिंशदधिकशततम- स्तरङ्गः । १४२ | | स्तन्यवृद्धिः | १२३ |
| अथ सूतिकारोगनिदानम् ... | ११७ | वज्रकाञ्जिकम् | ११ |
| अथ चिकित्सा | ११८ | सूतास्तनरक्षा | ११ |
| दशमूलकाथः | ११ | स्तनमार्जनमन्त्रौ | ११ |
| | | श्रीमल्लतैलम् | १२४ |
| | | कासीसाद्यं तैलम् | ११ |
| | | करवीराद्यं तैलम् | ११ |
| | | कर्पूराद्यं तैलम् | ११ |
| | | योनिस्कोचीकरणम् | ११ |

| विषयाः । | पृष्ठाङ्काः । | विषयाः । | पृष्ठाङ्काः । |
|--------------------------------|---------------|---------------------------------|---------------|
| एण्डादियोषिद्गर्मनिवारण- | | लूताविषम् | ९४१ |
| पातनविधिः | ९२५ | मूषकविषम् | ९४२ |
| अथ चतुश्चत्वारिंशदधिकशतत- | | कृकण्टकविषम् | ११ |
| मस्तरङ्गः । १४४ | | वृश्चिकविषम् | ११ |
| अथ बालरोगनिदानम् | ९२६ | कणभविषम् | ११ |
| ग्रहग्रस्तबालरोगनिदानम् | ९२७ | मण्डूकविषम् | ११ |
| असाध्यलक्षणम् | ९२८ | मत्स्यविषम् | ९४३ |
| अथ चिकित्सा | ११ | जलौकाविषम् | ११ |
| बालानामौषधदानमात्रा | ११ | गृहगोधिकाविषम् | ११ |
| मूर्वाद्यवलेहः | ९२९ | शतपद्यादिविषम् | ११ |
| भद्रमुस्ताक्वाथः | ११ | मक्षिकाविषम् | ११ |
| पलंकषादिधूपः | ११ | चतुष्पदादिजीवविषम् | ११ |
| मूर्वाद्युद्वर्तनम् | ९३० | निर्विषलक्षणम् | ११ |
| बिल्वादिक्वाथावलेहौ | ११ | श्वविषम् | ११ |
| नागरादिक्वाथः | ११ | सर्पविषचिकित्सा | ९४४ |
| लोधाद्यवलेहः | ११ | सर्पविषहरा वर्तिः | ९४५ |
| मुस्ताद्यवलेहः | ११ | आस्तिकागदः | ९४६ |
| समङ्गाद्यवलेहः | ११ | वृश्चिकविषप्रतीकारः | ११ |
| अष्टमङ्गलम् | ९३१ | तत्र मन्त्रः | ११ |
| सोमघृतम् | ९३२ | श्वविषप्रतीकारः | ११ |
| अथ ग्रहग्रस्तबालरोगचि- | | नखदन्तविषप्रतीकारः | ९४७ |
| कित्सा | ९३३ | मक्षिकाविषप्रतीकारः | ११ |
| तत्र सामान्यविधिः.... .. | ११ | वरटीविषप्रतीकारः.... .. | ११ |
| विशेषविधिः | ९३४ | भ्रमरविषप्रतीकारः | ११ |
| अथ पञ्चचत्वारिंशदधिकश- | | मूषकविषप्रतीकारः.... .. | ९४८ |
| ततमस्तरङ्गः । १४५ | | मण्डूकविषप्रतीकारः | ११ |
| अथ विषनिदानम् | ९३९ | स्त्रीविन्दुविषप्रतीकारः | ११ |
| जङ्गमविषम् | ९४० | शृङ्गिमत्स्यविषप्रतीकारः | ११ |
| दूषीविषम् | ११ | पिपीलिकादिविषप्रतीकारः | ११ |
| | | शतपदीविषप्रतीकारः | ११ |
| | | स्थावरविषप्रतीकारः | ११ |

| विषयाः । | पृष्ठाङ्काः । | विषयाः । | पृष्ठाङ्काः । |
|---|---------------|-------------------------------|---------------|
| सर्वविषनाशिनी महाविद्या | ॥ | अथ स्त्रीषाण्ड्यनिदानम् | ... |
| विषज्वरपातो रसः | ॥ | शुक्रार्तवयोर्लक्षणम् | ९५७ |
| लूताविषप्रतीकारः ... | ॥ | वाजीकरणविधिः ... | ॥ |
| विषमुक्तनिषेधः ... | ॥ | स्त्रीगमन क्रतुदिनमर्यादा ... | ॥ |
| अथ षट्चत्वारिंशदधिकशततम- स्तरङ्गः । १४६ | | स्त्रीसङ्गनिषेधः ... | ९५८ |
| विरुद्धाहारकथनम् | ॥ | सेवनयोग्या स्त्री | ॥ |
| संयोगविरुद्धम् | ॥ | मैथुनान्ते हितम् ... | ॥ |
| कालविरुद्धम् ... | ॥ | शुक्रदोषनिवारणार्थं भेषजम् | ॥ |
| विशिष्टसंयोगविरुद्धम् ... | ॥ | अथ सामान्यविधिः ... | ९५९ |
| अथ सप्तचत्वारिंशदधिकशत- तमस्तरङ्गः । १४७ | | पूपलिकापाकः ... | ९६० |
| अथ षाण्ड्याधिकारः ... | ९५४ | रसालाकरणविधिः.... | ॥ |
| स्वहेतुजम् ... | ॥ | बृहदश्वगन्धाद्यं घृतम् | ॥ |
| वातदुष्टशुक्रम् | ॥ | शतावरीघृतम् ... | ९६१ |
| पित्तदुष्टशुक्रम् ... | ॥ | लघुवाजिगन्धाद्यं घृतम् | ॥ |
| श्लेष्मदुष्टशुक्रम् ... | ॥ | गोक्षुरादिचूर्णम् ... | ९६२ |
| रक्तदुष्टम् ... | ॥ | स्वर्णमाक्षिकादिचूर्णम् | ॥ |
| द्विदोषदुष्टम्... | ॥ | पायसविधिः | ॥ |
| त्रिदोषदुष्टम्... | ॥ | माषादिचूर्णम् | ॥ |
| क्लेशजननदोषः ... | ॥ | माषाद्यं घृतम् ... | ९६३ |
| शुक्रक्षयहेतुः ... | ॥ | गोधूमाद्यं घृतम् ... | ॥ |
| शुक्रजननक्रमः ... | ९४६ | जीवन्तीयं घृतम् ... | ९६४ |
| सौगन्धिकदोषः ... | ॥ | गुडकूष्माण्डकावलेहः | ॥ |
| कुम्भीकदोषः ... | ॥ | बृहत्कूष्माण्डपाकः.... | ९६५ |
| ईर्ष्यकदोषः... | ॥ | महाकूष्माण्डपाकः... | ॥ |
| एकाङ्गदोषः ... | ॥ | अश्वगन्धापाकः ... | ९६६ |
| मर्मच्छेददोषः ... | ॥ | गोक्षुरपाकविधिः ... | ९६७ |
| महाषण्डलक्षणम् ... | ॥ | कपिकच्छुपाकः | ॥ |
| | | बृहन्मुसलीपाकः ... | ९६८ |
| | | योगसारोक्तोऽश्वगन्धापाकः | ९६९ |
| | | बृहत्सौभाग्यशुण्ठी... | ॥ |
| | | अमृतभल्लातकम् ... | ९७० |
| | | रतिवल्लभाख्यपूगपाकः ... | ९७१ |

| विषया । | पृष्ठाङ्काः । | विषया । | पृष्ठाङ्काः । |
|---------------------------|---------------|--|---------------|
| महाकामेश्वरः ... | ९७२ | अपरो रसराजः ... | ९९० |
| कामसुन्दरो मोदकः ... | ९७३ | कामिनीमदभञ्जनो रसः ... | ९९१ |
| मूलकामेश्वरो रसः ... | ९७४ | महामुगान्धितेलम् ... | ९९२ |
| कामदेववटी ... | ९७५ | रतिवल्लभाख्यं तैलम् ... | ९९३ |
| कामदेवचूर्णम् ... | ९७६ | पञ्चसायकः ... | ९९४ |
| मदनमञ्जरी वटिका ... | ९७७ | कामिनीविधूननः ... | ९९५ |
| वङ्गेश्वरादिवटी ... | ९७८ | सिद्धलक्ष्मीश्वरो रसः ... | ९९६ |
| कामेश्वरो मोदकः ... | ९७९ | लक्ष्मीविलासो रसः ... | ९९७ |
| महाकामेश्वरो मोदकः ... | ९८० | वीर्यस्तम्भनम् ... | ९९८ |
| चन्द्रोदयो रसः ... | ९८१ | जातीफलवटिका ... | ९९९ |
| कामबाणो रसः ... | ९८२ | लोहादियोगः ... | १००० |
| कामदेवो रसः ... | ९८३ | अन्यप्रकारः ... | १००१ |
| मृत्युञ्जयो रसः ... | ९८४ | भोगपुरंदरवटी ... | १००२ |
| आनन्दो रसः ... | ९८५ | अनङ्गमेखला गुटिका ... | १००३ |
| अनङ्गनिगडो रसः ... | ९८६ | अनङ्गमेखलो मोदकः ... | १००४ |
| प्रमदेभाङ्कुशो रसः ... | ९८७ | कर्पूरादिलेपनम् ... | १००५ |
| गुणधन्वा रसः ... | ९८८ | अहिफेनयोगः ... | १००६ |
| पञ्चसायकः ... | ९८९ | सौरतगुटिका ... | १००७ |
| प्रमदानन्दो रसः ... | ९९० | वीर्यरोधनगुटी ... | १००८ |
| मदनकामेश्वरः ... | ९९१ | जातीफलगुटिका ... | १००९ |
| नारीमत्तगजाङ्कुशः ... | ९९२ | पतङ्गयोगः ... | १०१० |
| स्तम्भने पञ्चबाणो रसः ... | ९९३ | लेपनम् ... | १०११ |
| शृङ्गाराभ्रम् ... | ९९४ | ध्वजवृद्धीकरणम् ... | १०१२ |
| षण्मुखरसः ... | ९९५ | योनिस्कोचीकरणम् ... | १०१३ |
| रसराजः ... | ९९६ | अन्यप्रकारः ... | १०१४ |
| महाराजवटीरसः ... | ९९७ | योषिद्वावणम् ... | १०१५ |
| राजवटीरसः ... | ९९८ | अथाष्टचत्वारिंशदधिकशतत- मस्तरङ्गः । १४८ | |
| मदनकामेश्वरो रसः ... | ९९९ | | |
| पूर्णेन्दुरसः ... | १००० | अथ संक्षेपतः सर्वरोगचिकित्सा .. | १००१ |
| वीर्यरोधिनी गुटिका ... | १००१ | अथ ग्रन्थप्रशस्तिः ... | १००२ |
| हिरण्यगर्भगुटिका ... | १००२ | | |

समाप्तेयं बृहद्योगतरङ्गिणीस्थविषयानुक्रमणिका ।

अथ नवसप्ततितमस्तरङ्गः ।

अथ हिक्कानिदानम्—

विद्वाहिगुरुविष्टम्भिरूक्षामिष्यन्दिमोजनैः ।
 शीतपानाशनस्नानरजोधूमातपानिलैः ॥ १ ॥
 व्यायामकर्मभाराध्ववेगाघातापतर्पणैः ।
 हिक्का श्वासश्च कासश्च नृणां समुपजायते ॥ २ ॥

हिक्कालक्षणम्—

मुहुर्मुहुर्वायुरुद्धेति सस्वनो यकृत्प्लिहान्त्राणि मुखादिवाऽऽक्षिपेत् ।
 स घोषवानाशु हिनस्त्यसून्यतस्ततस्तु हिक्केत्यभिधीयते बुधैः ॥ ३ ॥

पञ्चप्रकारनामान्याह—

अन्नजां यमलां क्षुद्रां गम्भीरां महतीं तथा ।
 वायुः कफेनानुगतः पञ्च हिक्काः करोति च ॥ ४ ॥

पूर्वरूपमाह—

कण्ठोरसोर्गुरुत्वं च वदनस्य कषायता ।
 हिक्कानां पूर्वरूपाणि कुक्षेराटोप एव च ॥ ५ ॥

अन्नजामाह—

पानान्नैरतिसंभुक्तैः सहसा पीडितोऽनिलः ।
 हिक्कयत्यूर्ध्वगो भूत्वा तां विद्यादन्नजां भिषक् ॥ ६ ॥
 करोति हिक्कामरुजां मन्दवेगां क्षयानुगाम् ।
 समं सात्म्यान्नपानेन या प्रयाति च साऽन्नजा ॥ ७ ॥

यमलामाह—

चिरेण यमलैर्वेगैर्ग्रा हिक्का संप्रवर्तते ।
 कम्पयन्ती शिरोग्रीवां यमलां तां विनिर्दिशेत् ॥ ८ ॥

क्षुद्रिकामाह—

विकृष्टकालैर्या वेगैर्मन्दैः समभिवर्तते ।
 क्षुद्रिका नाम सा हिक्का जडमूलात्प्रधावति ॥ ९ ॥

गम्भीरामाह—

नाभिप्रवृत्ता या हिक्का घोरा गम्भीरनादिनी ।
शुष्कोष्ठकर्णठनासास्यकासपार्श्वरुजाकरी ॥ १० ॥
अनेकोपद्रवैर्युक्ता गम्भीरा नाम सा स्मृता ।

महाहिकामाह—

मर्माण्युत्पीडयन्तीव सततं या प्रवर्तते ॥ ११ ॥
देहमायास्य वेगेन घोषयत्यपि तृण्यति ।
महाहिकेति सा ज्ञेया सर्वगात्रावकम्पिनी ॥ १२ ॥

असाध्यत्वमाह—

आयम्यते हिक्कति यस्य देहो
दृष्टिश्चोर्ध्वं ताम्यते यस्य नित्यम् ।
क्षीणोऽन्नद्विद्वक्षौति यश्चातिमात्रं
तौ द्वौ चान्त्यौ वर्जयेद्विक्कमानौ ॥ १३ ॥
अतिसंचितदोषस्य भक्तैर्द्वेषकृतस्य च ।
व्याधिभिः क्षीणदेहस्य बृद्धस्यातिव्यवायिनः ॥ १४ ॥
एषां या सा समुत्पन्ना हिक्का हन्त्याशु जीवितम् ।
यमिका च प्रलापार्तिमोहतृष्णासमन्विता ॥ १५ ॥
अक्षीणश्चाप्यदीनश्च स्थिरधात्विन्द्रियश्च यः ।
तस्य साधयितुं शक्या हन्ति हिक्का ततोऽन्यथा ॥ १६ ॥

इति हिक्कानिदानम् ।

अथ हिक्कायाश्चिकित्सा—

यत्किञ्चित्कफवातघ्नमुष्णं वातानुलोमनम् ।
भैषजं पानमन्नं वा हिक्काश्वासेषु तद्धितम् ॥ १७ ॥
हिक्काश्वासातुरे पूर्वं तैलाक्ते स्वेद इष्यते ।
ऊर्ध्वाधःशोधनं शस्तं दुर्बले शमनं मतम् ॥ १८ ॥
वातेन हिक्काः प्रभवन्ति पञ्च तासामसाध्यत्वमुदाहरन्ति ।
अक्षीणमांसस्य भवेच्च साध्या प्रान्ते च हिक्के परिवर्जनीये ॥ १९ ॥

प्राणावरोधतर्जनविस्मापनेशीतवारिपरिवेकेः ।

चित्रैः कथाप्रयोगैः शमयेद्विक्कां मनोभिघातैश्च ॥२०॥

हिकार्तस्य पयश्छागं हितं नागरसाधितम् ।

रसान्पचेत्फलाम्लांश्च लाजचूर्णं ससैन्धवम् ॥ २१ ॥

नारीपयःपिष्टसुशुक्लचन्दनं घृतं सुखोष्णं च ससैन्धवं च ।

पिष्टं तथा सैन्धवमम्बुना वा निहन्ति हिकां ननु नावनेन ॥२२॥

इति नारायणीयात् ।

सुश्रुतात्—

यष्ट्याह्वं वा माक्षिकेणावलीढं

कृष्णाचूर्णं शर्कराढ्यं च किं वा ।

सार्पिः कोष्णं क्षीरमुष्णं रसो वा

हन्यादिक्षोः पानतः पञ्च हिकाः ॥ २३ ॥

प्रदीपात्—

शिखिपिच्छमस्म कृष्णाचूर्णं मधुमिश्रितं मुहुर्लीढम् ।

हिकां हरति प्रबलां श्वासं चैवातिदुस्तरं छर्दिम् ॥ २४ ॥

वृन्दात्—

कोलमज्जाञ्जनं लाजास्तित्का काञ्चनगैरिकम् ।

कृष्णा धात्री सिता शुण्ठी कासीसं दधिनाम च ॥ २५ ॥

पाटल्याः सफलं पुष्पं कृष्णा खर्जूरमुस्तकम् ।

षडेते पादिका लेहा हिकाघ्ना मधुसंयुताः ॥ २६ ॥

मधुकं मधुसंयुक्तं पिप्पलीशर्करान्वितम् ।

नागरं गुडसंयुक्तं हिकाघ्नं नावनत्रयम् ॥ २७ ॥

स्तन्येन माक्षिकाविष्टा नस्यं वाऽलक्तकाम्बुना ।

योज्यं हिकाभिमूतेभ्यः स्तन्यं वा चन्दनान्वितम् ॥ २८ ॥

मधुसौधर्चलोपेतं मातुलुङ्गरसं पिबेत् ।

हिकार्तो मधुना लिह्याच्छुण्ठीं धात्रीं कणान्विताम् ॥२९॥

कृष्णामलकशुण्ठीनां चूर्णं मधुसितायुतम् ।

मुहुर्मुहुः प्रयोक्तव्यं हिकाश्वासनिवारणम् ॥ ३० ॥

हिक्काश्वासी पिबेद्भार्गी सविश्वामुष्णवारिणा ।
नागरं वा सिताभार्गीसौवर्चलसमन्वितम् ॥ ३१ ॥

रसरत्नप्रदीपात्—

दशमूलीजलयुतं सूतं हिक्कासु योजयेत् ।
श्वासकासहरः सर्वो विधिरत्रापि युज्यते ॥ ३२ ॥

बौद्धसर्वस्वात्—

पाटलाफलतोयेन क्षौद्रेण च समन्वितम् ।
हेममस्म निहन्त्येव हिक्काः पञ्चापि दुस्तराः ॥ ३३ ॥
कटुकागैरिकाम्यां च मुक्तामस्म तथैव च ।
बीजपूरस्य तोयेन ताम्रं तद्वत्समाक्षिकम् ॥ ३४ ॥
हेममुक्तार्ककान्तानां भस्म बलुमितं वरम् ।
बीजपूररसक्षौद्रसौवर्चलसमन्वितम् ॥ ३५ ॥
हन्ति हिक्काशतं सत्यमेकमात्राप्रयोगतः ।
कत कथा पञ्चहिक्कानां हरणे पुनरुच्यते ॥ ३६ ॥

वसन्तराजात्—

प्रवालशङ्खत्रिफलाचूर्णं मधुघृतप्लुतम् ।
पिप्पली गैरिकं चेति लेहो हिक्कानिवारणः ॥ ३७ ॥
दशमूलीकषायेण मधुना च समन्वितम् ।
कान्तायोभस्म हिक्कानां पञ्चानां पञ्चतां नयेत् ॥ ३८ ॥
इति योगतरङ्गिण्यां हिक्कानिदानचिकित्साकथनं नामैकोनाशीति-
तमस्तरङ्गः ॥ ७९ ॥

अथाशीतितमस्तरङ्गः ।

अथ श्वासनिदानम्—

यैरेव कारणैर्हिक्का बहुभिः संप्रवर्तते ।
तैरेव कारणैः श्वासो घोरो भवति बेहिनाम् ॥ १ ॥

अथ पञ्चधाश्वासनिरोधनिदानम्—

महोर्ध्वच्छिन्नतमकक्षुद्रभेदैस्तु पञ्चधा ।
भिद्यते स महाव्याधिः श्वास एको विशेषतः ॥ २ ॥

पूर्वरूपमाह—

प्राग्रूपं तस्य हृत्पीडा शूलमाध्मानमेव च ।
आनाहो वक्त्रवैरस्यं शङ्खनिस्तोद एव च ॥ ३ ॥

संप्राप्तिमाह—

यदा स्रोतांसि संरुध्य मारुतः कफपूर्वकः ।
विष्वग्भजति संरुद्धस्तदा श्वासान्करोति हि ॥ ४ ॥

महाश्वासलक्षणमाह—

उद्धूयमानवातो यः शब्दवद्दुःखितो नरः ।
उच्चैः श्वसिति संरुद्धो मत्तर्षभ इवानिशम् ॥ ५ ॥
प्रनष्टज्ञानविज्ञानस्तथा विभ्रान्तलोचनः ।
विवृताक्षाननो बद्धमूत्रवर्चा विशीर्णवाक् ॥ ६ ॥
दीनः प्रश्वसितं चास्य दूराद्विज्ञायते मृशम् ।
महाश्वासोपसृष्टस्तु क्षिप्रमेव विपद्यते ॥ ७ ॥

ऊर्ध्वश्वासमाह—

ऊर्ध्वं श्वसिति यो दीर्घं न च प्रत्याहरत्यधः ।
श्लेष्मावृतमुखस्रोताः कृद्धगन्धवहार्दितः ॥ ८ ॥
ऊर्ध्वदृष्टिर्विपश्यंश्च विभ्रान्ताक्ष इतस्ततः ।
प्रमुह्यन्वेदनार्तश्च शुष्कास्योऽरतिपीडितः ॥ ९ ॥
ऊर्ध्वश्वासे प्रकुपिते ह्यधःश्वासो निरुध्यते ।
मुह्यतस्ताम्यतश्चोर्ध्वं श्वासस्तस्यैव हन्त्यसून् ॥ १० ॥

छिन्नश्वासमाह—

यस्तु श्वसिति विच्छिन्नं सर्वप्राणेन पीडितः ।
न वा श्वसिति दुःखार्तो मर्मच्छेदरुगर्दितः ॥ ११ ॥
आनाहस्वेदमूर्छार्तो दह्यमानेन बस्तिना ।
विप्लुताक्षः परिक्षीणः श्वसन्नरक्तैकलोचनः ॥ १२ ॥
विचेताः परिशुष्कास्यो विवर्णः प्रलपन्नरः ।
छिन्नश्वासेन विच्छिन्नः स शीघ्रं विजहात्यसून् ॥ १३ ॥

तमकश्वासमाह—

प्रतिलोभं यदा वायुः स्रोतांसि प्रतिपद्यते ।
ग्रीवां शिरश्च संग्रह्य श्लेष्माणं समदीर्य च ॥ १४ ॥

करोति पीनसं तेन रुद्धो घुर्घुरकं तथा ।
 अतीव तीव्रवेगं च श्वासं प्राणप्रपीडकम् ॥ १५ ॥
 प्रताम्यति स वेगेन त्रस्यते संतिरुध्यते ।
 प्रमोहं कासमानश्च स गच्छति मुहुर्मुहुः ॥ १६ ॥
 श्लेष्मणा मुच्यमानेन भृशं भवति दुःखितः ।
 तस्यैव च विमोक्षान्ते मुहूर्तं लभते सुखम् ॥ १७ ॥
 तथाऽस्य ध्वंसते कण्ठः कृच्छ्राच्छक्रोति भाषितुम् ।
 न चापि लभते निद्रां शयानः श्वासपीडितः ॥ १८ ॥
 पार्श्वौ तस्यावगृह्णाति शयानस्य समीरणः ।
 आसीनो लभते सौख्यमुष्णं चैवाभिनन्दति ॥ १९ ॥
 उच्छ्रिताक्षो ललाटेन स्विद्यता भृशमार्तिमान् ।
 विशुष्कास्यो मुहुःश्वासो मुहुश्चैवावधम्यते ॥ २० ॥
 मेघाम्बुशीतप्राग्वातैः श्लेष्मलैश्च विवर्धते ।
 स याप्यस्तमकः श्वासः साध्यो वा स्यान्नवोत्थितः ॥ २१ ॥

प्रतमकश्वासमाह-

ज्वरमूर्छांपरीतस्य विद्यात्प्रतमकं तु तम् ।
 उदावर्तरजोजीर्णक्लिन्नकायनिरोधजः ॥ २२ ॥
 तमसा वर्धतेऽत्यर्थं शीतैश्चाऽऽशु प्रशाम्यति ।
 मज्जतस्तमसीवास्य विद्यात्प्रतमकं तु तम् ॥ २३ ॥

क्षुद्रश्वासलक्षणमाह-

रूक्षायासोद्भवः कोष्ठे क्षुद्रो वातमुदीरयेत् ।
 क्षुद्रश्वासेन सोऽत्यर्थं दुःखेनाङ्गप्रबाधकः ॥ २४ ॥
 हिनस्ति न स गात्राणि न च दुःखो यथेतरे ।
 न च भोजनपानानां निरुणध्युचितां गतिम् ॥ २५ ॥
 नेन्द्रियाणां व्यथां नापि कांचिदापादयेद्भुजम् ।
 स साध्य उक्तो बलिनः सर्वे वाऽव्यक्तलक्षणाः ॥ २६ ॥
 क्षुद्रः साध्यतमस्तेषां तमकः कृच्छ्र उच्यते ।
 त्रयः श्वासा न सिध्यन्ति तमको दुर्बलस्य च ॥ २७ ॥
 कामं प्राणहरा रोगा बहवो न तु ते तथा ।
 यथा श्वासश्च हिक्का च हरतः प्राणमाशु च ॥ २८ ॥

इति श्वासनिदानम् ।

अथ श्वासप्रतीकारः—

स्नेहवास्तिमृते केचिदूर्ध्वं चाधश्च शोधनम् ।
 मृदुप्राणवत्तां श्रेष्ठं श्वासिनामादिशन्ति हि ॥ २९ ॥
 सर्वेषु श्वासरोगेषु वातश्लेष्मनिबर्हणम् ।
 विदधीत विधिं विद्वानादौ स्वेदं मृदुं तथा ॥ ३० ॥
 कुलत्थनागरव्याघ्रीवासाभिः कथितं जलम् ।
 पीतं पौष्करसंयुक्तं श्वासकासनिवारणम् ॥ ३१ ॥

इति कुलत्थादिकाथः ।

अथ दशमूलादिकाथः—

दशमूलीकृतः काथः पौष्करेणावचूर्णितः ।
 श्वासकासप्रशमनः पार्श्वशूलविनाशनः ॥ ३२ ॥

इति दशमूलादिकाथः ।

अथ देवदार्यादिकाथः—

देवदारुवचाभार्गीविश्वकट्फलपौष्करैः ।
 कृतः काथो जयत्याशु श्वासकासावशेषतः ॥ ३३ ॥

इति देवदार्यादिकाथः ।

अथ गुडादिगुटिका—

रम्भाकुन्दशिरीषाणां कुसुमं पिप्पलीयुतम् ।
 पिष्ट्वा तण्डुलतोयेन पीत्वा श्वासमपौहति ॥ ३४ ॥
 शृङ्गीमहौषधकणाघनपौष्कराणां
 चूर्णं शठामरिचयोश्च सिताविमिश्रम् ।
 काथेन पीतममृतावृषपञ्चमूल्याः
 श्वासं त्र्यहेन विनिहन्ति हि घोररूपम् ॥ ३५ ॥
 पञ्चमूली तु सामान्या पित्ते योज्या कनीयसी ।
 महती मारुते देया सैव देया कफेऽधिके ॥ ३६ ॥
 स्वरसं शृङ्गवेरस्य माक्षिकेण समन्वितम् ।
 पाययेच्छ्वासकासघ्नं प्रतिश्यायकफापहम् ॥ ३७ ॥
 गुडशुण्ठीशिवामुस्तैर्धारयेद्गुटिकां मुखे ।
 श्वासकासैषु सर्वेषु विभीतं वाऽपि केवलम् ॥ ३८ ॥

इति गुडादिगुटिका ।

अथ कूष्माण्डमूलचूर्णम्—

कूष्माण्डकशिफाचूर्णं पीतं कोष्णेन वारिणा ।

शीघ्रं शमयति श्वासं कासं चैव सुदारुणम् ॥ ३९ ॥

इति कूष्माण्डमूलचूर्णम् ।

अथ शृङ्ग्यादिचूर्णम्—

शृङ्गीकटुत्रयफलत्रयकण्टकारी-

भार्गीसपुष्करजटालवणानि पञ्च ।

चूर्णं पिबेदशिशिरेण जलेन हिक्काश्वासो-

ध्वंवातकंसनारुचिपीनसेषु ॥ ४० ॥

इति शृङ्ग्यादिचूर्णम् ।

अथ गुडावलेहः—

गुडं कटुकतैलेन मिश्रयित्वा समं लिहेत् ।

त्रिसप्ताहप्रयोगेण श्वासं निःशेषतो जयेत् ॥ ४१ ॥

इति गुडावलेहः ।

अथ हरिद्रादिलेहः—

हरिद्रां मरिचं द्राक्षां कणां रास्नां सटीं गुडम् ।

कटुतैलं लिहन्हन्याच्छ्वासान्प्राणहरानपि ॥ ४२ ॥

इति हरिद्रादिलेहः ।

अथ शठ्याद्यं चूर्णम्—

शटी पुष्करजीवन्तीत्वङ्मुस्तं पुष्कराह्वयम् ।

सुरसा तामलक्योऽपि पिप्पल्यगुरुवालकम् ॥ ४३ ॥

नागरं च समं चूर्णं कृत्वा द्विगुणशर्करम् ।

सर्वथा तमकश्वासे हिक्कायां च प्रयोजयेत् ॥ ४४ ॥

अत्रैकस्माद्द्रव्यादष्टगुणा शर्करेति संप्रदायः ।

इति शठ्याद्यं चूर्णम् ।

अथ भार्ग्यादिलेहः—

भार्गीनागरयोश्चूर्णं लीढमार्द्रकवारिणा ।

श्वासं निहन्ति दुर्धर्षं पञ्चानन इव द्विपम् ॥ ४५ ॥

इति भार्ग्यादिलेहः ।

अथ चित्रकहरीतक्यवलेहः—

पक्त्वा पञ्चतुलां गुडामलशिखिच्छिन्नादशाङ्गुल्यम्भसा
पथ्यां पात्रवतां कृतां शिखिशिवां व्योषं चतुर्जातकान् ।
क्षौद्राच्च त्रिपलाञ्जलिद्विकुडवैः क्षाराच्च शुक्त्या युता
शोफार्शःक्षयकुष्ठपीनसकृमिश्वासान्त्रगुल्मान्तकृत् ॥ ४६ ॥
इति चित्रकहरीतक्यवलेहः ।

अथ भार्गीहरीतक्यवलेहः—

द्विद्रोणेऽपां दशजटतुलां तुल्यभार्गीं पचेत्त-
त्पादं भूयोऽभयगुडशतं न्यस्य भार्गीं शिवा सा ।
अयेकाष्टां त्रिकटुकचतुर्जातमध्वन्विताऽलं
हिक्काशोफश्वसनकसनैकाहिकापीनसघ्नी ॥ ४७ ॥
इति भार्गीहरीतक्यवलेहः ।

अथ क्षुद्रावलेहः—

व्याघ्रीशतं स्यादभयाशतं च द्रोणे जलस्य प्रपचेत्कषायम् ।
तुलाप्रमाणेन गुडेन युक्तं पक्त्वाऽभयाभिः सह ताभिरत्र ॥ ४८ ॥
शीते क्षिपेत्षण्मधुनः पलानि पलानि च त्रीणि कटुत्रयस्य ।
त्वक्पत्रकैलाकरिकेसराणां चूर्णात्पलं चेति विदेहदक्षः ॥ ४९ ॥
क्षुद्रावलेहः कफजान्विकारान्सश्वासशोषानपि पञ्च कासान् ।
हिक्कामुरोरोगमपस्मृतिं च हत्वा विवृद्धिं कुरुतेऽनलस्य ॥ ५० ॥
इति क्षुद्रावलेहः ।

अथ गुटी—

सितमल्लवली कटुकीखदिरौ हिमराश्मिदृशौ नयनाक्षिमितौ ।
पुटितं च खले त्रिदिनं सकलं स्वरसैः किल चाऽऽर्द्रकसंजनितैः ॥ ५१ ॥
श्वसने कसने शूले ज्वरेऽजीर्णे तथोदरे ।
सर्पिषां रक्तिकामात्रं चोत्तारो नागवल्लिका ॥ ५२ ॥

अथ श्वासकुठारः—

रसं गन्धं विषं चैव टङ्कणं च मनःशिलाम् ।
एतानि टङ्कमात्राणि मरिचं चाष्टदङ्ककम् ॥ ५३ ॥
एकैकं मरिचं दत्त्वा खल्वे सूक्ष्मं विमर्दयेत् ।
त्रिकटुं टङ्कषट्कं च दत्त्वा पश्चाद्विचूर्णयेत् ॥ ५४ ॥

सर्वमेकत्र संयोज्य काचकूप्यां विनिक्षिपेत् ।
 कासे श्वासे च मन्दाग्नौ वातश्लेष्मामयेषु च ॥ ५५ ॥
 गुञ्जामात्रं प्रदातव्यं पर्णखण्डेन धीमता ।
 संनिपाते च मूर्छायामपस्मारे तथा पुनः ॥ ५६ ॥
 अतिमोहत्वमापन्ने नस्यं दत्त्वा विचक्षणः ।
 रसः श्वासकुठारोऽयं सर्वश्वासविकारजित् ॥ ५७ ॥

इति श्वासकुठारः ।

इति योगतरङ्गिण्यां श्वासनिदानचिकित्साकथनं नामाशीति-
 तमस्तरङ्गः ॥ ८० ॥

अथैकाशीतितमस्तरङ्गः ।

अथ स्वरभेदनिदानम्—

अत्युच्चभाषणविषाध्ययनाभिघात-
 संदूषणैः प्रकुपिताः पवनादयश्च ।
 स्रोतःसु ते स्वरवहेषु गताः प्रतिष्ठां
 हन्युः स्वरं भवति चापि हि षड्विधः सः ॥ १ ॥

वातजमाह—

वातेन कृष्णनयनाननमूत्रवर्चा
 भिन्नं शनैर्वदति गर्दभवत्स्वरं च ।

पित्तजमाह—

पित्तेन पीतनयनाननमूत्रवर्चा
 ब्रूयाद्वलेन च स दाहसमन्वितेन ॥ २ ॥

अथ कफजमाह—

ब्रूयात्कफेन सततं कफरुद्धकण्ठं
 स्वरूपं शनैर्वदति चापि दिवा विशेषात् ।

सर्वलिङ्गत्वमाह—

सर्वात्मके भवति सर्वविकारलिङ्गं
 तं चाप्यसाध्यमुषयः स्वरभेदमाहुः ॥ ३ ॥

वर्जनीयमाह—

धूम्येन वाक्क्षयकृते क्षयमाप्नुयाच्च*
 सर्वेषु चापि हतवाक्परिवर्जनीयः ।
 अन्तर्गतं स्वरमलक्ष्यपदं चिरेण भेदो-
 न्वयाद्ब्रूदति दिग्धगलस्तृषार्तः ॥ ४ ॥

क्षीणस्य वृद्धस्य कृशस्य चापि चिरोत्थितो यः सहजोपजातः ।
 भेदस्विनः सर्वसमुद्भवश्च स्वरामयो यो न स सिद्धिमेति ॥ ५ ॥
 इति स्वरभेदनिदानम् ।

अथैतच्चिकित्सा—

वातादिजनितश्वासकासघ्ना ये प्रकीर्तिताः ।
 योगास्तांस्तत्र युञ्जीत यथादोषं चिकित्सकः ॥ ६ ॥
 वाते सलवणं तैलं पित्ते सार्पिः समाक्षिकम् ।
 कफे सक्षारकटुकं क्षौद्रं केवलमिष्यते ॥ ७ ॥
 गले तालुनि जिह्वायां दन्तमूलेषु चाऽऽश्रितः ।
 तेन निष्कृष्यते श्लेष्मा स्वरश्चाऽऽशु प्रसीदति ॥ ८ ॥
 आद्ये कोष्णं जलं पेयं भुक्त्वा घृतगुडौदनम् ।
 क्षीरानुपानं पित्तोत्थे पिबेत्सर्पिरतन्द्रितः ॥ ९ ॥
 स्वरोपघातेऽनिलजे भुक्तोपरि घृतं पिबेत् ।
 मरीचचूर्णसहितं मरुत्स्वरहतिप्रणुत् ॥ १० ॥
 कासमर्दरसं दत्त्वा भार्गीकल्कं शनैः शनैः ।
 सिद्धं सर्पिर्हन्ति पीतं स्वरभेदं मरुद्भवम् ॥ ११ ॥

इति कासमर्दघृतम् ।

पेयं कोष्णं जलं भूयो जग्ध्वा घृतगुडौदनम् ।
 तेन शाम्यति वातोत्थः स्वरभेदो न संशयः ॥ १२ ॥

इति वातस्वरभेदचिकित्सा ।

अथ पित्तस्वरभेदे शुण्ठ्यादिघृतम्—

पैत्तिके तु विरेकः स्यात्पयश्च मधुरैः शृतम् ।
 लिहेन्मधुरवस्तूनां चूर्णं मधुसमन्वितम् ॥ १३ ॥

अश्रीयाच्च ससर्पिष्कं यष्टीमधुकपायसम् ।

शुण्ठीत्वचो दुग्धवतां द्रुमाणां संपिष्टदुग्धं विपचेत्तु तेन ।

कल्केन यष्टीमधुकस्य सर्पिः सशर्करं पित्तरुजामयघ्नम् ॥ १४ ॥

इतिपित्तस्वरभेदे शुण्ठ्यादिघृतम् ।

अथ कफस्वरभेदे पिप्पल्यादिघृतम्—

पिप्पली पिप्पलीमूलं मरिचं विश्वभेषजम् ।

पचेन्मूत्रेण मतिमान्कफजे स्वरसंक्षये ॥ १५ ॥

इति कफस्वरभेदे पिप्पल्यादिचूर्णम् ।

अथ संनिपातस्वरभेदचिकित्सा—

अजमोदां निशां धात्रीं क्षारं वह्निं विचूर्णयेत् ।

मधुसर्पिर्युतं लीढ्वा त्रिदोषस्वरभङ्गनुत् ॥ १६ ॥

फलत्रिकट्यूषणयावशूकचूर्णं निहन्यात्स्वरभङ्गमाशु ।

किं वा कुलत्थो वदनान्तरस्थः स्वरामयं हन्त्यथ पौष्करं वा ॥ १७ ॥

इति संनिपातस्वरभेद चिकित्सा ।

अथ क्षयभेदस्वरभङ्गचिकित्सा—

क्षयजे स्वरभेदे तु तत्रोक्तं विधिमाचरेत् ।

कटुतिक्तकषायाद्यैर्मेदःस्वरहतिं जयेत् ॥ १८ ॥

इति क्षयभेदःस्वरभङ्गचिकित्सा ।

अथ सामान्यविधिः—

चव्यादिचूर्णम्—

चव्याम्लवेतसकटुत्रयतित्तिडीक-

तालीसजीरकतुगादहनैः समांशैः ।

चूर्णं गुडप्रमुदितं त्रिसुगन्धियुक्तं

वैस्वर्यपीनसकफारुचिषु प्रशस्तम् ॥ १९ ॥

इति चव्यादिचूर्णम् ।

अथ व्याघ्रीघृतम्—

व्याघ्रीस्वरसविपक्रं रास्नावाट्यालगोक्षुरव्योषैः ।

सर्पिः स्वरोपघातं हन्यात्कासं च पञ्चविधम् ॥ २० ॥

इति व्याघ्रीघृतम् ।

अथ बदरीपत्रावलेहः—

बदरीपत्रकल्कं वा घृतभृष्टं ससैन्धवम् ।

स्वरोपघाते कासे च लेहमेनं प्रयोजयेत् ॥ २१ ॥

इति बदरीपत्रावलेहः ।

अथ निदिग्धिकावलेहः—

निदिग्धिका तुला ग्राह्या तदर्धं ग्रन्थिकस्य तु ।

तदर्धं चित्रकस्याथ दशमूलं च तत्समम् ॥ २२ ॥

जलद्रोणद्वयं काथ्यं गृह्णीयादाढकं ततः ।

पूते क्षिपेत्तदर्धं तु पुराणस्य गुडस्य च ॥ २३ ॥

सर्वमेकत्र कृत्वा तु लेहवत्साधु साधयेत् ।

अष्टौ पलानि पिप्पल्यांस्त्रिजातकपलं तथा ॥ २४ ॥

मरिचस्य पलं चैकं सर्वमेकत्र चूर्णितम् ।

मधुनः कुडवं दत्त्वा तदश्नीयाद्यथानलम् ॥ २५ ॥

निदिग्धिकावलेहोऽयं मिषग्भिः परिकीर्तितः ।

स्वरभेदहरो मुख्यः प्रतिश्यायहरस्तथा ॥ २६ ॥

कासश्वासाग्निमान्द्यादीन्गुल्मभेहगलामयान् ।

आनाहं मूत्रकृच्छ्राणि हन्याद्ब्रन्थ्यर्बुदानि च ॥ २७ ॥

इति निदिग्धिकावलेहः ।

अथ गोरक्षवटी—

ब्राह्मी वचाऽभया वासा पिप्पली मधुसंयुता ।

अस्य प्रयोगात्सप्ताहात्किंनरैः सह गीयते ॥ २८ ॥

रसमस्मार्कलोहस्य भावितस्य त्रिसप्तधा ।

क्षुद्राफलरसैर्मुद्गतुल्या कार्या वटी शुभा ॥ २९ ॥

मुखस्था हरते सर्वस्वरभङ्गमसंशयम् ।

गोरक्षनाथैर्गदिता स्वरभेदे कृपालुभिः ॥ ३० ॥

इति गोरक्षवटी ।

इति श्रीयोगतरङ्गिण्यां स्वरभेदनिदानचिकित्साकथनं नामै-

काशीतितमस्तरङ्गः ॥ ८१ ॥

अथ अशीतितमस्तरङ्गः ।

अथारोचकनिदानम्—

अरोचको भवेद्दोषैर्जिह्वाहृदयसंश्रयैः ।

संनिपातेन मनसः संतापेन च पञ्चमः ॥ १ ॥

वातादिभिः शोकभयातिलोभक्रोधैर्मनोघ्नाशनरूपगन्धैः ।

अरोचकाः स्त्रुः परिहृष्टदन्तकषायवक्त्रत्वमतोऽनिलेन ॥ २ ॥

कटुम्लमुष्णं विरसं च पूति पित्तेन विद्याल्लवणं च वक्त्रम् ।

माधुर्यपैच्छिल्यगुरुत्वशैत्यविरुद्धसंबन्धयुतं कफेन ॥ ३ ॥

अरोचके शोकभयातिलोभक्रोधाद्यहृद्याशुचिगन्धजे स्यात् ।

स्वामाविकं चाऽऽस्यमथारुचिश्च त्रिदोषजे नैकरसं भवेच्च ॥ ४ ॥

हृच्छूलपीडनयुतं पवनेन पित्ता-

त्तृद्दाहचोषबहुलं सकफप्रसेकम् ।

श्लेष्मात्मकं बहुरुजं बहुभिश्च दौषै-

र्वैगुण्यमोहजडताभिरथापरं च ॥ ५ ॥

अरोचकोऽयमाख्यातो भक्तद्वेषमतः शृणु ।

चिन्तयित्वा तु मनसा दृष्ट्वा श्रुत्वा तु भोजनम् ॥ ६ ॥

द्वेषमायाति यो जन्तुर्भक्तद्वेषः स उच्यते ।

कुपितस्य भयार्तस्य वस्य भक्तनिरोधजः ।

यस्य नान्ने भवेच्छ्रद्धा सोऽभक्तच्छन्द उच्यते ॥ ७ ॥

इत्यरोचकनिदानम् ।

अथ चिकित्सा—

बस्तिः समीरणे पित्ते विरेको वमनं कफे ।

सर्वजे सर्वकर्माहं हर्षणं स्यादरोचके ॥ ८ ॥

वान्तो वचाद्भिरनिले विधिवत्पिबेत्तु

स्नेहाम्लतोयमदिरान्वतमेन चूर्णम् ।

कृष्णाविडङ्गयवभस्महरेणुभार्गी-

रास्रैलहिङ्गुलवणोत्तमनागराणाम् ॥ ९ ॥

पैत्ते गुडाम्बुमधुकैर्वमनं प्रशस्तं

लेहः ससैन्धवसितामधुसर्पिरिष्टः ।

निम्बाम्बुना कृतवमेः कफजेऽनुपानं
 राजद्रुमाम्बु मधुना सह दीप्यकाढ्यम् ॥ १० ॥
 चूर्णं यदुक्तमथ वाऽनिलजे तदेव
 सर्वैस्तु सर्वकृतमेनमुपक्रमेत ।
 इच्छाविनाशभयजेषु च बाधकेषु
 भावान्विभावय तथा खलु साध्यरूपान् ॥ ११ ॥
 [*अर्थेषु चातिपतितेषु पुनर्भवाय
 पौराणिकैः श्रुतिपथैरनुमानयेत्तम् (तान्)] ।
 सात्म्यान्स्वदेशरचितान्विविधांश्च भक्ष्यान्
 पानानि मूलफलखाडवरागलेहान् ॥ १२ ॥
 सेवेद्रसांश्च विविधान्विविधैः प्रयोगै-
 र्भुञ्जीत चापि लघुरूक्षमनःसुखानि ॥ १३ ॥
 अम्लिकां मुद्गतोयं च त्वगेलामरिचान्वितम् ।
 अभक्तच्छन्दरोगेषु शस्तं कवलधारणम् ॥ १४ ॥

अथाम्लिकापानकम्—

भोजनाग्रे सदा पथ्यं लवणार्द्रकमक्षणम् ।
 रोचनं दीपनं बह्वेर्जिह्वाकण्ठविशोधनम् ॥ १५ ॥
 शृङ्गवेररसं वाऽपि मधुना सह योजयेत् ।
 अरुचिश्वासकासघ्नं प्रतिश्यायकफापहम् ॥ १६ ॥
 पक्काम्लिका सिता शीतवारिणा वस्त्रगालिता ।
 एलालवङ्गकर्पूरमरिचैरवधूलिता ॥ १७ ॥
 पानकस्यास्य गण्डूषं धारयित्वा मुखे मुहुः ।
 अरुचिं नाशयत्येव पित्तं प्रशमयेत्तथा ॥ १८ ॥

इत्याम्लिकापानकम् ।

अथ मठः—

राजिका जीरको मृष्टो मृष्टं हिङ्गु च नागरम् ।
 सैन्धवं दधि गोः सर्वं वस्त्रपूतं प्रकल्पयेत् ॥ १९ ॥

* धनुश्चिह्नान्तर्गतमिदमर्थं ग. पुस्तकस्थम् ।

तावन्मात्रं क्षिपेत्तत्र यथा स्याद्गुरुचिरुत्तमा ।
तक्रमेतद्भवेत्सद्यो रोचनं वह्निदीपनम् ॥ २० ॥

इति मठः ।

अथ चत्वारः कवलग्रहाः—

धान्यैलापद्मकोशीरपिप्पलीचन्दनोत्पलम् ।
कुष्ठसौवर्चलाजाजीशर्करामरिचं विडम् ॥ २१ ॥
लोध्रं तेजोवती पक्ष्या ऽयूषणं सयवाग्रजम् ।
आर्द्रदाडिमनिर्यासश्चाजाजीशर्करायुतः ॥ २२ ॥
सतैलमाक्षिकाश्चैते चत्वारः कवलग्रहाः ।
चतुरोऽरोचकान्हन्युर्वाताद्येकजसर्वजान् ॥ २३ ॥

इति चत्वारः कवलग्रहाः ।

अथ कारव्यादिगुटिका—

कारव्यजाजिमरिचं द्राक्षावृक्षाम्लदाडिमम् ।
सौवर्चलं गुडक्षौद्रमेषां कार्या गुटी शुभा ॥ २४ ॥
बदरास्थिमिता साऽऽस्ये धृताऽरोचकनाशिनी ।

इति कारव्यादिगुटिका ।

अथ यवानीखाडवं चूर्णम्—

यवानीं तित्तिडीकं च नागरं चाम्लवेतसम् ॥ २५ ॥
दाडिमं बदरं चाम्लं कार्षिकाण्युपकल्पयेत् ।
धान्यसौवर्चलाजाजी वराङ्गं चार्धकार्षिकम् ॥ २६ ॥
पिप्पलीनां शतं चैकं द्वे शते मरिचस्य च ।
शर्करायास्तु चत्वारि पलान्येकत्र चूर्णयेत् ॥ २७ ॥
यवानीखाडवाख्यं तु चूर्णमेतदरोचकम् ।
हन्त्येव प्रातरेतत्तस्स्थापितं च मुखे मुहुः ॥ २८ ॥
जिह्वाविशोधनं हृद्यं दीपनं भक्तरोचनम् ।
हृत्पीडापार्श्वशूलघ्नं विबन्धानाहनाशनम् ।
कासश्वासहरं ग्राहि ग्रहण्यर्शोविकारनुत् ॥ २९ ॥

इति यवानीखाडवं चूर्णम् ।

अथ लवङ्गादिचूर्णम्—

लवङ्गकङ्कोलमुशीरचन्दनं नतं सनीलोत्पलकृष्णजीरकम् ।
जलं सकृष्णागरुभृङ्गकेसरं कणा च विश्वा नलदं सहैलया ॥

तुषारजातीफलवंशरोचनाः सितार्धभागाः सकला विचूर्णितम् ।
 सुरोचनं तर्पणमग्निदीपनं बलप्रदं वृष्यतमं त्रिदोषजित् ॥ ३१ ॥
 उरोविबन्धं तमकं गलग्रहं सकासहिक्कारुचियक्ष्मपीनसम् ।
 ग्रहण्यतीसारमुरःक्षतं तूषां तथा प्रमेहान्निखिलान्निहन्ति ॥ ३२ ॥
 इति लवङ्गादिचूर्णम् ।

अथ खाडवं चूर्णम्—

तुल्यं तालीसचव्योषणलवणगजद्विःकणाग्रन्थ्यजाजी-
 वृक्षाम्लाम्बित्वचं त्रिर्धनबदरधनैलाजमोदाम्लविश्वम् ।
 सार्धं श्वेताग्निसारोऽतिसृतिकृमिवमौ खाडवोऽरुच्यजीर्णं
 गुल्माध्माल्पानलाख्योदरगलगदहृद्गदहृद्ब्रह्मश्वासकासे ॥ ३३ ॥
 इति खाडवं चूर्णम् ।

अथ सूतादिगुटी—

सूतगन्धाभ्रमगधाम्लिकामरिचसैन्धवैः ।
 गुटिकाऽरोचकहरी जिह्वावदनशुद्धिकृत् ॥ ३४ ॥
 इति सूतादिगुटी ।

इति श्रीयोगतरङ्गिण्यामरोचकनिदानचिकित्साकथनं नाम अथशीति-
 तमस्तरङ्गः ॥ ८२ ॥

अथ अथशीतितमस्तरङ्गः ।

अथ छर्दिनिदानम्—

दुष्टैर्दोषैः पृथक्सर्वैर्बीभत्सालोकनादिभिः ।
 छर्दयः पञ्च विज्ञेयास्तासां लक्षणमुच्यते ॥ १ ॥
 अतिद्रवैरतिस्निग्धैरहृद्यैर्लवणैरपि ।
 अकाले चातिमात्रैश्च तथाऽसात्म्यैश्च भोजनैः ॥ २ ॥
 श्रमान्द्रयात्तथोद्वेगादजीर्णात्कृमिदोषतः ।
 नार्यास्त्वापन्नसत्त्वायास्तथाऽतिद्रुतमश्रतः ॥ ३ ॥
 बीभत्सैर्हेतुभिश्चान्यैर्द्रुतमुत्क्लेशितो बलात् ।
 छादयन्नाननं वेगैरर्दयन्नङ्गमञ्जनैः ॥ ४ ॥

* क. कर्पूर । + क. न्यैर्दन्तमु° इति पाठान्तरम् ।

१ क. °रति । अ° ।

निरुच्यते छर्दिरिति दोषो वक्रं प्रधावितः ।

पूर्वरूपमाह—

हृत्पासोद्गाररोधौ च प्रसेको लवणस्तनुः ।

द्वेषोऽन्नपाने च भृशं वमीनां पूर्वलक्षणम् ॥ ५ ॥

वातजामाह—

हृत्पार्श्वपीडामुखशोषशीर्षनाभ्यर्तिकासस्वरभेदतोदैः ।

उद्गारशब्दं प्रबलं सफेनं विच्छिन्नकृष्णं तनुकं कषायम् ॥ ६ ॥

कृच्छ्रेण चाल्पं महता च वेगेनाऽऽर्तोऽनिलाच्छर्दयतीह दुःखम् ।

पित्तजामाह—

मूर्च्छापिपासामुखशोषमूर्धताल्वक्षिसंतापतमोभ्रमार्तः ॥ ७ ॥

पीतं भृशोष्णं हरितं सतिक्तं धूम्रं च पित्तेन धमेत्सदाहम् ।

कफजामाह—

तन्द्रास्यमाधुर्यकफप्रसेकसंतोषनिद्रारतिमौरवार्तः ॥ ८ ॥

स्निग्धं घनं स्वादु कफाद्विशुद्धं सलोमहर्षोऽल्परुजं धमेत्तु ।

त्रिदोषजामाह—

शूलाविपाकारुचिदाहतृष्णाश्वासप्रमोहप्रबलं प्रसक्तम् ॥ ९ ॥

छर्दिस्त्रिदोषाल्लवणाम्लनीलं सान्द्रोष्णरक्तं वमतां नृणां स्यात् ।

विदस्वेदमूत्राम्बुवहानि वायुः स्रोतांसि संरुध्य यदोर्ध्वमेति ॥ १० ॥

उत्सन्नदोषस्य समाचितं तं दोषं समुद्धूय नरस्य कोष्ठात् ।

विण्मूत्रयोस्तत्समगन्धवर्णं तृद्रश्वासकासार्तियुतं प्रसक्तम् ॥ ११ ॥

प्रच्छर्दयेद्दुष्टमिहातिवेगात्तयाऽर्दितश्चाऽऽशु विनाशमेति ।

बीभत्सजामाह—

बीभत्सजा, वैहृदजाऽऽमजा स्यादसात्म्यतो वा कृमिजा च या हि ।

सा पञ्चमी तां च विभावयेद्वा दोषोच्छ्रयेणैव यथोक्तमादौ ॥ १२ ॥

शूलहृत्पासबहुला कृमिजा तु विशेषतः ।

कृमिहृद्रोगतुल्येन लक्षणेन च लक्षिता ॥ १३ ॥

साध्यासाध्यत्वमाह—

क्षीणस्य वा छर्दिरतिप्रसक्ता सोपद्रवा शोणितपूययुक्ता ।

सचन्द्रिकां तां प्रवदेद्साध्यां साध्यां चिकित्सेन्निरुपद्रवां च ॥ १४ ॥

तदुपद्रवानाह—

कासः श्वासो ज्वरो हिक्का तृष्णा वैचित्यमेव च ।

हृद्रोगस्तमकश्चैव ज्ञेयाश्छर्दिरुपद्रवाः ॥ १५ ॥

इति च्छर्दिनिदानम् ।

अथैतच्चिकित्सा—

वातच्छर्दिः । धान्यकादिः—

आमाशयोत्क्लेशभवा हि सर्वाश्छर्द्यो मता लङ्घनमेव तस्मात् ।

प्राकारयेन्मारुतजां विना तु संशोधनं वा कफपित्तहारि ॥ १६ ॥

ससैन्धवं पिबेत्सर्पिर्वातच्छर्दिनिवारणम् ।

लवणत्रयसंयुक्तं संयुक्तं लवणेन वा ।

हन्यात्क्षीरोदकं पीतं छर्दिं पवनसंभवाम् ॥ १७ ॥

धान्याकविश्वदशमूलकषायसिद्धान्

यूषान् रसान् पवनवम्यरुचिप्रशान्त्यै ।

पीत्वा सुखानि लभते मधुमिश्रितं वा

शङ्खाह्वयाः स्वरसमूषणचूर्णयुक्तम् ॥ १८ ॥

इति धान्याकादिः । इति वातच्छर्दिः ।

अथ लाजादियूषाः—

लाजामसूरयवमुद्रकृता यवागू-

श्छर्द्यां हिता मधुयुता बहुपित्तजायाम् ।

यूषः सुगन्धिमधुतिक्तरसप्रगाढो

मृन्दृष्टलोष्टमवमम्बु हितं तृषायाम् ॥ १९ ॥

इति लाजादियूषाः ।

अथ चन्दनपानकम्—

चन्दनस्याक्षमात्रेण संयोज्याऽऽमलकीरसम् ।

पिबेन्माक्षिकसंयुक्तं पित्तच्छर्दिनिवृत्तये ॥ २० ॥

इति चन्दनपानकम् ।

अथ चन्दनाद्यवलेहः—

चन्दनं च मृणालं च बालकं तगरं वृषः ।

सतण्डुलोदकक्षौद्रकल्क एनां वर्मिं जयेत् ॥ २१ ॥

इति चन्दनाद्यवलेहः ।

अथ मुद्गकषायः—

कषायो मृष्टमुद्गस्य सलाजमधुशर्करः ।
छर्द्यतीसारतृद्ददाहज्वरेषु स उदाहृतः ॥ २२ ॥

इति मुद्गकषायः ।

अथ पर्पटक्वाथः—

क्वाथः पर्पटजः पीतः सक्षौद्रः शिशिरीकृतः ।
पित्तच्छर्दिशिरस्तापचक्षुर्दाहानपोहति ॥ २३ ॥

इति पर्पटक्वाथः ।

अथ हरीतक्यवलेहः—

हरीतकीनां चूर्णं तु लिह्यान्माक्षिकसंयुतम् ।
अधोभागीकृते दोषे पित्तच्छर्दिर्निवर्तते ॥ २४ ॥

इति हरीतक्यवलेहः ।

अथ मक्षिकाविडवलेहः—

सिताचन्दनमध्वाढ्यं विलिहेन्मक्षिकाशकृतम् ।
सोपद्रवा पित्तभवा छर्दिरेतेन शाम्यति ॥ २५ ॥

इति मक्षिकाविडवलेहः ।

अथ लाजसक्त्ववलेहिका—

सर्पिःक्षौद्रसितोपेताल्लजसक्त्वाल्लिहेत्तथा ।
पित्तच्छर्दिरेतेनाऽऽशु प्रशाम्यति सुदुस्तरा ॥ २६ ॥

इति लाजसक्त्ववलेहिका । इति पित्तच्छर्दिः ।

अथ कफच्छर्दिः—

छर्द्यां कफोद्भवायां तु वमनं कारयेद्भिषक् ।
तोयैः सर्षपसिन्धूत्थराठनिम्बकणायुतैः ॥ २७ ॥
शस्यन्ते शालिगोधूमयवमुद्गमकुष्ठकाः ।
षष्टिकास्तक्रयूषश्च पटोलाद्याश्च भोजने ॥ २८ ॥
विडङ्गात्रिफलाविश्वचूर्णं मधुयुतं लिहेत् ।
शाम्यत्यनेन कफजा छर्दिः सोपद्रवा नृणाम् ॥ २९ ॥

इति कफच्छर्दिः ।

अथ धात्रीफलादिपानकम्—

पिष्ट्वा धात्रीफलं द्राक्षां शर्करां च पलोन्मिताम् ।

दत्त्वा मधुपलं चैव कुडवं सलिलस्य च ॥ ३० ॥

वाससा गालितं पीतं हन्ति च्छर्दिं त्रिदोषजाम् ।

इति धात्रीफलादिपानकम् ।

अथ मसूरसक्तुः—

मसूरसक्तवः क्षौद्रं मर्दितं दाडिमाम्मसा ॥ ३१ ॥

पीता निवारयन्त्याशु च्छर्दिं दोषत्रयोद्भवाम् ॥ ३२ ॥

इति मसूरसक्तुः ।

अथैलाद्यं चूर्णम्—

एलालवङ्गजकेसरकोलमज्जा-

लाजाप्रियङ्गुघनचन्दनपिप्पलीनाम् ।

चूर्णं सितामधुयुतं मनुजो बिलिह्य

छर्दिं निहन्ति कफमारुतपित्तजाताम् ॥ ३३ ॥

इत्यैलाद्यं चूर्णम् ।

अथ त्रिदोषच्छर्दिः—

यथा त्रिकटुधान्याकजीरकाणां रजो लिहन् ।

मधुना नाशयेच्छर्दिमरुचिं च त्रिदोषजाम् ॥ ३४ ॥

इति त्रिदोषच्छर्दिः ।

अथ सामान्यच्छर्दिः । कोलायवलेहः—

कोलामलकमज्जानो मक्षिकाविद्सिता मधु ।

सकृष्णतण्डुलो लेहश्छर्दिमाशु व्यपोहति ॥ ३५ ॥

इति कोलायवलेहः ।

अथ लाजादियोगत्रयम्—

मनःशिलामागधिकोषणानां चूर्णं कपित्थाम्लरसेन युक्तम् ।

लाजैः समांशैर्मधुनाऽवलीढं छर्दिं प्रसक्तामसकृन्निहन्ति ॥ ३६ ॥

अश्वत्थवल्कलं शुष्कं दग्ध्वा निर्वापितं जले ।

तद्वारि पानतो नूनं छर्दिं जयति दुस्तराम् ॥ ३७ ॥

लाजाकपित्थमधुमागधिकोषणानां

क्षौद्रामयान्निकटुधान्यकजीरकाणाम् ।

पथ्यामृतामरिचमाक्षिकपिप्पलीनां

लेहास्त्रयः सकलवम्यरुचिप्रशान्त्यै ॥ ३८ ॥

इति लाजादियोगत्रयम् ।

अथाऽऽम्रास्थ्यादिकाथः—

आम्रास्थिबिल्वनिर्यूहः पीतः समधुशर्करः ।

निहन्ति च्छर्द्यतीसारं वैश्वानर इवाऽऽहुतिम् ॥ ३९ ॥

इत्याम्रास्थ्यादिकाथः ।

अथ बिल्वादिः—

बिल्वत्वचो गुडूच्या वा काथः क्षौद्रेण संयुतः ।

छर्दिं त्रिदोषजां हन्ति पर्पटः पित्तजां तथा ॥ ४० ॥

इति बिल्वादिः ।

अथ जम्बूपल्लावादि—

जम्ब्वाम्रपल्लवशृतं क्षौद्रं दत्त्वा सुशीतलं तोयम् ।

लाजैरवचूर्ण्य पिबेच्छर्द्यतिसारे परं सिद्धम् ॥ ४१ ॥

इति जम्बूपल्लावादि ।

अथ पद्मकायं घृतम्—

पद्मकामृतनिम्बानां धान्यचन्दनयोः पचेत् ।

कल्के काथे च हविषः प्रस्थं छर्दिनिवारणम् ॥ ४२ ॥

इति पद्मकायं घृतम् ।

अथ मयूरपक्षभस्मावलेहः—

मयूरपक्षतिं दग्ध्वा तद्भस्म मधुमिश्रितम् ।

लीढ्वा निवारयत्याशु च्छर्दिं सोपद्रवामपि ॥ ४३ ॥

इति मयूरपक्षभस्मावलेहः ।

अथ सामान्यविधिः—

पुराणगौणीभस्माम्मो मधुयुक्तं निपीय तु ।

छर्दिं छिनत्ति मनुजस्तृण्यामिव हुताशनः ॥ ४४ ॥

इति सामान्यविधिः ।

बीमत्संजामबीमत्सैर्हेतुभिः संहरेद्वमिम् ।

दौहदोत्थां वमिं हृद्यैः काङ्क्षितैर्वस्तुभिर्जयेत् ॥ ४५ ॥

* क ' तृणानीव ' इतिषाठः ।

१ ग. 'त्सजा तु बी' ।

लङ्घनैर्वमनैर्वाऽपि सात्म्यैर्वाऽसात्म्यसंभवाम् ।

कृमिहृद्रोगवच्चापि साधयेत्कृमिजां वमिम् ॥ ४६ ॥

यथादोषं च वितरेच्छस्तं विधिमनन्तरम् ।

पवनघ्नी चिरोत्थासु प्रयोज्या छर्दिषु क्रिया ॥ ४७ ॥

रसबलिघनसारकोलमज्जामरकुसुमाम्बुधरप्रियङ्गुलाजाः ।

मलयजमगधात्वगेलपत्रं दलितमिदं परिमाव्य चन्दनादिः ॥ ४८ ॥

मधुमरिचयुतं रजोऽस्य माषं जयति वमिं प्रबलां विलिह्य मर्त्यः ॥ ४९ ॥

इति पारदादिचूर्णम् ।

इति श्रीयोगतरङ्गिण्यां वमिनिदानचिकित्साकथनं नाम व्यशी-

तितमस्तरङ्गः ॥ ८३ ॥

अथ चतुरशीतितमस्तरङ्गः ।

अथ तृष्णानिदानम्—

मयश्रमाभ्यां बलसंक्षयाद्वा ऊर्ध्वं श्रितं पित्तविवर्धनैश्च ।

पित्तं सवातं कुपितं नराणां तालुप्रपन्नं जनयेत्पिपासाम् ॥ १ ॥

संततं यः पिबेत्तोयं न तृप्तिमधिगच्छति ।

पुनः काङ्क्षति तोयं यस्तं तृष्णार्दितमादिशेत् ॥ २ ॥

स्रोतःस्वपांवाहिषु दूषितेषु दोषैश्च तृट् संभवतीह जन्तोः ।

तिस्रः स्मृतास्ताः क्षतजा चतुर्थी क्षयात्तथाऽन्याऽऽसमुद्भवा च ॥ ३ ॥

भक्तोद्भवा सप्तमिकेति तासां निबोध लिङ्गान्यनुपूर्वशस्तु ।

ताल्वोष्ठकण्ठस्य च तोददाहौ संतापमोहभ्रमविप्रलापाः ॥ ४ ॥

पूर्वाणि रूपाणि भवन्ति तासामुत्पत्तिकाले तु विशेषतो हि ।

वातजामाह—

क्षामास्यता मारुतसंभवायास्तोदस्तथा शङ्खशिरःसु चापि ॥ ५ ॥

स्रोतोनिरोधो विरसं च वक्त्रं सीताभिरान्निश्च विवृद्धिमेति ।

पित्तजामाह—

मूर्छान्नविद्वेषविलापदाहा रक्तेक्षणत्वं प्रततश्च शोषः ॥ ६ ॥

शीताभिनन्दो मुखतिक्तता च पित्तात्मिकायां परिदूयनं च ।

कफजामाह—

बाष्पावरोधात्कफसंवृतेऽग्नौ तृष्णा बलासेन भवेन्नरस्य ॥ ७ ॥
निद्रा गुरुत्वं मधुरास्यता च तृष्णार्दितः शुष्यति चातिमात्रम् ।

क्षतजामाह—

क्षतस्य रुक्कशोणितनिर्गमाभ्यां तृष्णा चतुर्थक्षतजा मता सा ॥ ८ ॥

क्षयजामाह—

रसक्षयाद्या क्षयसंभवा च तयाऽभिभूतश्च निशादिनेषु ।
पेपीयतेऽम्मः स सुखं न याति सा संनिपातादिति केचिदाहुः ॥ ९ ॥

रसक्षयजामाह—

रसक्षयोक्तानि च लक्षणानि तस्यामशेषेण भिषग्व्यवस्येत् ।

त्रिदोषजामाह—

त्रिदोषलिङ्गामसमुद्भवा च हृच्छूलनिष्ठीवनसादकर्त्री ।
स्निग्धं तथाऽऽम्लं लवणं च भुङ्क्ते गुर्वन्नमेवाऽऽशु तृषां करोति ॥
दीनः स्वरः प्रताम्यं दीनाननशुष्कहृदयगलतालुः ।
भवाति खलु सोपसर्गात्तृष्णा सा शोषिणी कष्टा ॥ ११ ॥

असाध्यत्वमाह—

ज्वरमोहक्षयकासश्वासाद्युपसृष्टदेहानाम् ।
सर्वास्त्वतिप्रसक्ता रोगकृशानां वमिप्रसक्तानाम् ॥
घोरोपद्रवयुक्ता तृष्णा मरणाय विज्ञेया ॥ १२ ॥
इति तृष्णानिदानम् ।

अथ तृष्णाचिकित्सा—

तृष्णाविवृद्धाद्युदरे च पूर्णे तं वामयेन्मागधिकोदकेन ।
विलेहनं चात्र हितं वदन्ति स्याद्वाडिमाभ्रातकमातुलुङ्गैः ॥ १३ ॥
सुवर्णरूप्यादिभिरग्नितामैर्लोष्टैः कृतं वा सिकतापलैर्वा ।
जलं सुखोष्णं शमयेच्च तृष्णां सशर्करं क्षौद्रयुतं जैलं वा ॥ १४ ॥
वातघ्नमन्नपानं सुदु लघु शीतं च वाततृष्णायाम् ।
देयं सुगन्धितैलं शिरसि च गात्रेषु सर्वेषु ॥ १५ ॥
तृष्णायां पवनोत्थायां सगुडं दधि शस्यते ।

अथ पित्तजा—

स्वादु तिक्तं द्रवं शीतं पित्ततृष्णाहरं परम् ॥ १६ ॥
 काश्मर्यशर्करायुक्तं चन्दनोशीरधान्यकम् ।
 द्राक्षामधुकसंसिद्धं पित्ततर्षे जलं पिबेत् ॥ १७ ॥
 जीर्णभक्तः पिबेद्वाऽपि सक्षौद्रं तण्डुलोदकम् ।

अथ कफजा—

तिक्तद्रवं कटूष्णं च कफतृष्णानिवारणम् ।
 अन्नपानौषधं सर्वं प्रदद्यात्कफतृड्युते ॥ १८ ॥
 विद्धाढकीधातकिपञ्चकोलदर्भेषु सिद्धं कफजां निहन्ति ।
 हितं भवेच्छर्दिनमेव चात्र तप्तेन निम्बप्रसवोदकेन ॥ १९ ॥
 मुस्तपर्पटकोदीच्यच्छत्राख्योशीरचन्दनैः ।
 शृतं शीतं जलं दद्यात्तृड्दाहज्वरशान्तये ॥ २० ॥

छत्रा धान्याकम् ।

अथ षडङ्गपानम् ।

अथ सामान्यविधिः—

सजीरकान्यार्द्रकशृङ्गबेर-
 सौवर्चलान्यर्धजलप्लुतानि ।
 मद्यानि हृद्यानि च गन्धवन्ति
 पीतानि सद्यः शमयन्ति तृष्णाम् ॥ २१ ॥
 लाजोदकं मधुयुतं पीतं श्वेताविमिश्रितम् ।
 द्राक्षाखर्जूरसंयुक्तं पिबेत्तृष्णार्दितो नरः ॥ २२ ॥
 शर्कराकेशरक्षौद्रकणाजीरकदाडिमैः ।
 स्नेहो वा तृड्जयी कृष्णामधुक्षीरदुमाङ्कुरैः ॥ २३ ॥
 अम्लदाडिमबीजं धात्रीफलं च धान्याम्लैः ।
 आर्द्रपटास्तरणगतः प्रावृतगात्रस्तृषं हन्ति ॥ २४ ॥
 गोस्तनीक्षुरसक्षीरयष्टीमधुमधुत्पलैः ।
 नियतं नस्यतः पीतैस्तृष्णा शाम्यति दारुणा ॥ २५ ॥
 क्षीरेक्षुरसमृद्धीकाक्षौद्रसिन्धुगुडोदकैः ।
 सहवृक्षाम्लगण्डूषस्तालुशोषतृडन्तकृत् ॥ २६ ॥
 वैशद्यं जनयत्यास्ये संदधाति मुखे जलम् ।
 तृष्णादाहप्रशमनं मधुगण्डूषधारणम् ॥ २७ ॥

दाडिमं बदरं लोघ्रं कपित्थं बीजपूरकम् ।

पिष्ट्वा लेपः शिरस्येषां पिपासादाहनाशनः ॥ २८ ॥

मधुयुक्तं जलं शीतं पिबेदाकण्ठमातुरः ।

पश्चाद्भेदशेषं तु तृष्णा तेन प्रशाम्यति ॥ २९ ॥

वटप्ररोहं मधुं कुष्ठमुत्पलं सलाजचूर्णं गुटिकां प्रकुर्यात् ।

सुसंहिता सा वदने विधारिता तृष्णां प्रवृद्धामपि हन्त्यशेषतः ॥ ३० ॥

इति सामान्यविधिः ।

अथ रसादिगुटी-

क्षतोद्भवां रुग्निनिवारणेन जयेद्द्रसानामसृजश्च पानैः ।

क्षयोत्थितां क्षीरजलं निहन्यान्मांसोदकं वा मधुकोदकं वा ॥ ३१ ॥

आमोद्भवां बिल्ववचादिकानां जयेत्कषायैरपि दीपनानाम् ।

गुर्वन्नजामुल्लिखनैर्जयेच्च क्षयं विना सर्वकृतां च तृष्णाम् ॥ ३२ ॥

स्निग्धे भक्ष्ये भुक्ते या तृष्णा तां गुडाम्बुना शमयेत् ।

अतिरूक्षदुर्बलानां तृष्णां शमयेन्नृणामिहाऽऽशु पयः ॥ ३३ ॥

छागमांसरसं साज्यं शीतं समधुशर्करम् ।

पीत्वा जयति तृड्दाहमूर्च्छाछर्दिमदात्ययान् ॥ ३४ ॥

तृष्यन्पूर्वामयक्षीणो न लभेत जलं यदि ।

मरणं दीर्घरोगं वा प्राप्नुयात्स्वरितं नरः ॥ ३५ ॥

सात्म्यान्नपानभैषज्यैस्तृष्णार्तस्य जयेत्तृषम् ।

तस्यां जितायामन्योऽपि व्याधिः शक्यश्चिकित्सितुम् ॥ ३६ ॥

तृषितो मोहमायाति मोहात्प्राणान्विमुञ्चति ।

तस्मात्सर्वास्ववस्थासु न कचिद्वारि वार्यते ॥ ३७ ॥

अन्नेनापि विना जन्तुः प्राणान्संधारयेच्चिरम् ।

तोयामावे पिपासार्तः क्षणात्प्राणैर्विमुच्यते ॥ ३८ ॥

रसरजतगुटीं पटीयसीं यो वदनसरोरुहमध्यगां दधाति ।

स जयति तृषितस्तृषं मनुष्यो भृशमघमिव त्रिमार्गगाम्भः ॥ ३९ ॥

इति रसादिगुटी ।

रसगन्धककर्पूरैः सैलोशीरमरीचकैः ।

ससितैः क्रमवृद्धैश्च सूक्ष्मं चूर्णमहर्मुखे ॥ ४० ॥

त्रिगुञ्जाप्रमितं खादेत्पिबेत्पर्युषिताम्बु च ।

भृशं तृषं निहन्त्येवंमाश्विनेयप्रकाशितम् ॥ ४१ ॥

इति श्रीयोगतरङ्गिण्यां तृष्णानिदानचिकित्साकथनं नम्र चतुस्शीति-
तमस्तरङ्गः ॥ ८४ ॥

अथ पञ्चाशीतितमस्तरङ्गः ।

अथ मूर्छानिदानम्—

क्षीणस्य बहुदोषस्य विरुद्धाहारसेविनः ।

वेगाघातादभीघातान्द्वीनसत्त्वस्य वा पुनः ॥ १ ॥

करणायतनेषूग्रा बाह्येष्वाम्भ्यन्तरेषु च ।

निवसन्ति यदा दोषास्तदा मूर्च्छन्ति मानवाः ॥ २ ॥

संज्ञावहासु नाडीषु पिहितास्वनिलादिभिः ।

तमोऽभ्युपैति सहसा सुखदुःखव्यपोहकृत् ॥ ३ ॥

सुखदुःखव्यपोहाच्च नरः पतति काष्ठवत् ।

मोहो मूर्च्छेति तामाहुः षड्विधा सा प्रकीर्तिता ॥ ४ ॥

वातादिभिः शोणितेन मद्येन च विषेण च ।

षट्स्वप्नेतासु पित्तं तु प्रभुत्वेनावतिष्ठते ॥ ५ ॥

पूर्वरूपमाह—

हृत्पीडा जृम्भणं ग्लानिः संज्ञादौर्बल्यमेव च ।

सर्वासां पूर्वरूपाणि यथास्वं च विभावयेत् ॥ ६ ॥

वातजामाह—

नीलं वा यदि वा कृष्णमाकाशमथ वाऽरुणम् ।

पश्यंस्तमः प्रविशतिचिराच्च प्रतिबुध्यते ॥ ७ ॥

वेपथुश्चाङ्गमर्दश्च प्रपीडा हृदयस्य च ।

कार्श्यं यावारुणच्छाया मूर्छायै वातसंभवे ॥ ८ ॥

पित्तजामाह—

रक्तं हरितवर्णं वा वियत्पीतमथापि वा ।

पश्यंस्तमः प्रविशति सस्वेदश्च प्रबुध्यते ॥ ९ ॥

सपिपासः ससंतापो रक्तपीताकुलेक्षणः ।
जातमात्रे च पतति शीघ्रं च प्रतिबुध्यते ॥ १० ॥
संभिन्नवर्चाः पीताभो मूर्छाये पित्तसंभवे ।

कफजामाह—

मेघसंकाशमाकाशमावृतं वा तमोधनैः ॥ ११ ॥
पश्यंस्तमः प्राविशति चिराच्च प्रतिबुध्यते ।
गुरुभिः प्रावृतैरङ्गैर्यथैवाऽऽर्द्धेण चर्मणा ॥ १२ ॥
सप्रसेकः सहल्लासो मूर्छाये कफसंभवे ।

संनिपातजामाह—

सर्वाकृतिः संनिपातादपस्मार इवाऽऽगतः ॥ १३ ॥
सा जन्तुं पातयत्याशु विना बीभत्सचेष्टितैः ।

पृथिव्यादिकमूर्छा—

पृथिव्यापस्तमो रूपं रक्तगन्धंश्च तन्मयम् ॥ १४ ॥
तस्माद्रक्तस्य गन्धेन मूर्छन्ति भुवि मानवाः ।
द्रव्यस्वभाव इत्येके दृष्ट्वा यदभिमुह्यति ॥ १५ ॥

विषमयजे मूर्छे—

गुणास्तीव्रतरत्वेन स्थितास्तु विषमद्ययोः ।
त एव तस्मात्ताभ्यां तु मोहौ स्यातां यथेरितौ ॥ १६ ॥
स्तब्धाङ्गुष्ठिस्त्वसृजो गूढोच्छ्वासश्च मूर्छितः ।
मध्येन विलपञ्शेते नष्टविभ्रान्तमानसः ॥ १७ ॥
गात्राणि विक्षिपन्भूमौ जरां यावन्न याति तत् ।
वेपथुस्वप्रतृष्णाः स्युस्तमश्च विषमूर्छिते ॥ १८ ॥
वेदितव्यं तीव्रतरं यथास्वं विषलक्षणैः ।

तन्द्रामाह—

मूर्छा पित्ततमः प्राया रजःपित्तानिलाद्भ्रमः ॥ १९ ॥
तमो वातकफात्तन्द्रा निद्रा श्लेष्मतमोभवा ।
इन्द्रियार्थेष्वसंवित्तिर्गौरवं जृम्भणं क्लमः ॥ २० ॥
निद्रार्तस्यैव यस्यैते तस्य तन्द्रां विनिर्दिशेत् ।

कुमलक्षणमाह—

योऽनायासः श्रमो देहे प्रवृद्धः श्वासवर्जितः ॥ २१ ॥

कलमः स इति विज्ञेय इन्द्रियार्थप्रबाधकः ॥

तत्र संन्यासः—

दोषेषु मदमूर्च्छायां कृतवेगेषु देहिनाम् ॥ २२ ॥

स्वयमेवोपशाम्यन्ति संन्यासो नौषधैर्विना ।

वाग्देहमनसां चेष्टामाक्षिप्यातिबला भेलाः ॥ २३ ॥

संन्यस्यन्त्यबलं जन्तुं प्राणायतनमाश्रिताः ।

स ना संन्याससंन्यस्तः काष्ठीभूतो मृतोपमः ॥ २४ ॥

प्राणैर्विमुच्यते शीघ्रं मुक्त्वा सद्यःफलां क्रियाम् ॥ २५ ॥

इति मूर्च्छानिदानम् ।

अथ मूर्च्छाचिकित्सा—

वादित्रगीतानुनयैरपूर्वैर्विस्मापनैर्गुप्तफलप्रघर्षैः ।

आभिः क्रियामिर्यदि न प्रसंज्ञस्तदाऽऽस्यलालापतनाद्विवर्ज्यः ॥ २६ ॥

मूर्च्छा मोहो द्विधा स प्रभवति सहजागन्तुभेदेन भिन्न-

स्तत्राऽऽगन्तुस्त्रिधा स्यादुधिरविषसुराजन्यभेदाद्विभिन्नः ।

प्रत्येकं दोषभेदान्द्भवति च सहजः स त्रिधा षट्सु पित्तं

प्राधान्येनेह तिष्ठेदभिदधति च तं द्वंद्वजं संनिपातम् ॥ २७ ॥

सेकावगाहा मणयः सहाराः शीताः प्रदेहा व्यजनानिलाश्च ।

शीतानि पानानि च गन्धवन्ति सर्वासु मूर्च्छास्वनिवारितानि ॥ २८ ॥

तत्रापि पित्तस्य प्राधान्यात्—

सिद्धानि वर्गे मधुरे पयांसि सदाडिमा जाङ्गलजा रसाश्च ।

तथा यवा लोहितशालयश्च मूर्च्छासु पथ्यास्तु सतीनमुद्राः ॥ २९ ॥

कोलमज्जोषणोशीरकेसरं शीतवारिणा ।

पीतं मूर्च्छां जयेल्लीद्वा कृष्णां वा मधुसंयुताम् ॥ ३० ॥

द्राक्षासितादाडिमलाजवन्ति कल्लारनीलोत्पलपद्मवन्ति ।

पिबेत्कषायाणि च शीतलानि पित्तज्वरे यानि च पाययन्ति ॥ ३१ ॥

महौषधामृताद्राक्षापुष्करं ग्रन्थिकोद्भवम् ।

पिबेत्कषायुतं क्वाथं मूर्च्छायां च मदेषु च ॥ ३२ ॥

स्विन्नमामलकं पिष्ट्वा द्राक्षया सह संसृजेत् ।

विश्वमेषजसंयुक्तं मधुना सह लेहयेत् ॥ ३३ ॥

तेनास्य शाम्यते मूर्च्छा कासः श्वासस्तथैव च ।
 शिरीषबीजगोमूत्रकृष्णामरिचसैन्धवैः ॥ ३४ ॥
 अञ्जनं स्यात्प्रबोधाय सरसोनशिलावचैः ।
 अञ्जनं सम्यगास्वधं मधुसिन्धुशिलोषणैः ॥ ३५ ॥
 प्रमोहद्रोहि भवति भाषितं मिषजां वरैः ।
 मधूकसारं सिन्धूत्थवचोषणकणान्समान् ॥ ३६ ॥
 श्लक्ष्णान्पिष्ट्वाऽम्भसा नस्यं कुर्यात्संज्ञाप्रबोधनम् ।

भ्रमे-

पिबेद्दुरालमाक्राथं सघृतं भ्रमशान्तये ॥ ३७ ॥
 पथ्याक्राथेन संसिद्धं घृतं धात्रीरसेन वा ।
 शुण्ठीकृष्णाशताह्वानां सामयानां पलं पलम् ॥ ३८ ॥
 गुडस्य षट्पलान्येषा गुटिका भ्रमनाशिनी ।
 ताम्रं दुरालमाक्राथैः पीतं तु घृतसंयुतम् ।
 निवारयेद्भ्रमं शीघ्रं तं यथा शम्भुभाषितम् ॥ ३९ ॥

तन्द्रायाम्-

गुरङ्गलालालवणोत्तमेन्दु-
 मनःशिलामागधिकोषणानि ।
 नियोजितान्यक्षिण विनिश्चितं द्रा-
 क्तन्द्रां सनिद्रां विनिवारयन्ति ॥ ४० ॥
 सैन्धवं श्वेतमरिचं सर्षपाः कुष्ठमेव च ।
 वस्तमूत्रेण संपिष्टं नस्यं तन्द्रानिवारणम् ॥ ४१ ॥
 श्वेतमरिचं शिशुबीजम् ।
 शुण्ठीकणागस्तिरसोषणानि
 नस्येन तन्द्राविजयोल्बणानि ।
 क्षुद्रासृतापौष्करनागराणि
 मार्गीशिवाभ्यां कथितानि वानात् ॥ ४२ ॥
 रक्तजायां तु मूर्च्छायां हितश्चायं क्रियाविधिः ।
 मधुजायां पिबेन्मद्यं निद्रां सेवेद्यथासुखम् ॥ ४३ ॥
 विषजायां विषघ्नानि भेषजानि प्रयोजयेत् ।

अथ संन्यस्तचिकित्सा—

प्रभूतदोषस्तमसोऽतिरेका-

त्संमूर्छितो नैव विबुध्यते यः ।

संन्यस्तसंज्ञः स हि दुश्चिकित्स्यो

नरो भिषग्भिः परिकीर्तितोऽसौ ॥ ४४ ॥

अञ्जनान्य*वपीडाश्च धूमाः प्रधमनानि च ।

सूचीभिस्तोदनं शस्तं दाहः पीडा नखान्तरे ॥ ४५ ॥

लुञ्चनं केशलोम्नां च दन्तैर्दशनमेव च ।

आत्मगुप्तावघर्षश्च हितस्तस्य प्रबोधने ॥ ४६ ॥

सर्पिः कल्याणकं वाऽपि मदमूर्च्छापहं पिबेत् ।

कणामधुयुतं सूतं मूर्च्छायामनुशीलयेत् ॥

शीतसेकावगाहादीन्सर्वाङ्गे पीडनं दृढम् ॥ ४७ ॥

अथ मारितताम्रचूर्णम्—

ताम्रचूर्णं समोशीरं केसरं शीतवारिणा ॥ ४८ ॥

पीतं मूर्च्छां दुतं हन्याद्वृक्षमिन्द्राशनिर्यथा ॥ ४९ ॥

इति मारितताम्रचूर्णम् ।

इति श्रीयोगतरङ्गिण्यां मूर्छानिदानचिकित्साकथनं नाम षड्वाशीति-

तमस्तरङ्गः ॥ ८९ ॥

अथ षडशीतितमस्तरङ्गः ।

अथ पानात्ययनिदानम्—

ये विषस्य गुणाः प्रोक्तास्तेऽपि मद्ये प्रतिष्ठिताः ।

तेन मिथ्योपयुक्तेन भवत्सुग्रो मदात्ययः ॥ १ ॥

किं तु मद्यं स्वभावेन यथैवान्नं तथा स्मृतम् ।

अयुक्तियुक्तं रोगाय युक्तियुक्तं यथाऽस्मृतम् ॥ २ ॥

प्राणाः प्राणभृतामन्नं तदयुक्त्या निहन्त्यसून् ।

विषं प्राणहरं तच्च युक्तियुक्तं रसायनम् ॥ ३ ॥

विधिना मात्रया काले हितैरन्नैर्यथाबलम् ।
 प्रहृष्टो यः पिबेन्मद्यं तस्य स्यादमृतोपमम् ॥ ४ ॥
 स्निग्धैस्तदन्नैर्मांसैश्च मक्ष्यैः सह निषेवितम् ।
 भवेदायुष्प्रकर्षाय बलायोपचयाय च ॥ ५ ॥
 काम्यता मनसस्तुष्टिस्तेजो विक्रम एव च ।
 विधिवत्सेव्यमाने तु मध्ये संनिहिता गुणाः ॥ ६ ॥

अथ प्रथममदस्य गुणाः—

बुद्धिस्मृतिप्रीतिकरः सुखश्च पानान्ननिद्रारतिवर्धनश्च ।
 संपाठगीतस्वरवर्धनश्च प्रोक्तोऽतिरम्यः प्रथमो मदो हि ॥ ७ ॥

अथ द्वितीयः—

अव्यक्तबुद्धिस्मृतिवाग्विचेष्टः सोन्मत्तलीलाकृतिरप्रशान्तः ।
 आलस्यनिद्राभिहतो मुहुश्च मध्येन मत्तः पुरुषो मदेन ॥ ८ ॥

अथ तृतीयः—

गच्छेद्गम्यां न गुरुंश्च मन्येत्खादेद्मक्ष्याणि च नष्टसंज्ञः ।
 भ्रूयाच्च गुह्यानि हृदि स्थितानि मदे तृतीये पुरुषोऽस्वतन्त्रः ॥ ९ ॥

अथ चतुर्थः—

चतुर्थेऽतिमदे मूढो भग्नदार्ढ्यं निष्क्रियः ।
 कार्याकार्यविमामाज्ञो मृत्तादृष्यधरो मतः ॥ १० ॥
 को मदं तादृशं गच्छेदुन्मादमिव चापरम् ।
 बहुदोषमिवोऽऽरूढः कान्तारं स्ववशः कृती ॥ ११ ॥
 निर्भक्तमेकान्ततयैव मद्यं निषेव्यमाणं मनुजेन नित्यम् ।
 उत्पादयेत्कष्टतमान्विकारानापादयेच्चापि शरीरभेदम् ॥ १२ ॥
 कुञ्जेन भीतेन पिपासितेन शोकाभितप्तेन बुभुक्षितेन ।
 व्यायाममाराध्वपरिक्षतेन वेगावरोधाभिहतेन वाऽपि ॥ १३ ॥
 अत्यम्लरूक्षावततोदरेण साजीर्णभुक्तेन तथाऽबलेन ।
 उष्णाभितप्तेन च सेव्यमानं करोति मद्यं विविधान्विकारान् ॥ १४ ॥
 पानात्यर्थं परमदं पानाजीर्णमथापि वा ।
 पानविभ्रममुग्रं च तेषां वक्ष्यामि लक्षणम् ॥ १५ ॥

वातजमाह—

हिक्काश्वासशिरःकम्पपार्श्वशूलप्रजागरैः ।
विद्याद्बहुप्रलापस्य वातप्रायं मदात्ययम् ॥ १६ ॥

पित्तजमाह—

तृष्णादाहज्वरस्वेदमोहातीसारविभ्रमैः ।
विद्याद्भ्रुरितवर्णस्य पित्तप्रायं मदात्ययम् ॥ १७ ॥

कफजमाह—

छर्द्यरोचकहृत्लासतन्द्रास्तैमित्यगौरवैः ।
विद्याच्छीतपरीतस्य कफप्रायं मदात्ययम् ॥

त्रिदोषजमाह—

ज्ञेयस्त्रिदोषजश्चापि सर्वैर्लिङ्गैर्मदात्ययः ॥ १८ ॥

अथ परमदमाह—

श्लेष्मोच्छ्रयोऽङ्गगुरुता विरसास्यता च
विण्मूत्रसक्तिरथ तन्द्रिररोचकश्च ।
लिङ्गं परस्य तु मदस्य वदन्ति तज्ज्ञास्तृष्णा-
रुजा शिरसि संधिषु चापि भेदः ॥ १९ ॥

पानार्जीर्णमाह—

आध्मानमुग्रमथ वोद्विरणं विदाहः
पाने त्वर्जीर्णमुपगच्छति लक्षणानि ।
ज्ञेयानि तत्र भिषजा सुविनिश्चितानि
पित्तप्रकोपजनितानि च कारणानि ॥ २० ॥

पानविभ्रममाह—

हृद्वात्रतोदकफसंस्रवकण्ठधूम-
मूर्च्छावमिज्वरशिरोरुजनप्रदेहाः ।
द्वेषः सुरान्नविकृतेषु च तेषु तेषु
तं पानविभ्रममुशन्त्यखिलेन धीराः ॥ २१ ॥

असाध्यानां मदात्ययादीनां लक्षणमाह—

हीनोत्तरोष्ठमतिशीतममन्ददाहं
तैलप्रमास्यमतिपानहतं त्यजेद्वा ।

जिह्वौष्ठदन्तमसितं त्वथ वाऽपि नीलं
पीते च यस्य नयने रुधिरप्रभे वा ॥ २२ ॥
हिक्का ज्वरो वमथुवेपथुपार्श्वशूलाः
कासभ्रमावपि च पानहतं भजन्ते ।

इति पानात्ययपरमदृष्टानाजीर्णपानविभ्रमनिदानम् ।

अथैतच्चिकित्सा—

मद्यं त्वविधिना पीतं रोगान्पानात्ययादिकान् ।
करोति पूर्वं तेनात्र तत्पानविधिरुच्यते ॥ २३ ॥

यथा—

शुद्धकायः पिबेन्मद्यं प्रातःकाले पलद्वयम् ।
मध्याह्ने द्विगुणं तच्च स्निग्धाहारेण पाययेत् ॥ २४ ॥
प्रदोषेऽष्टपलं तद्वन्मात्रा मद्यरसायने ।

इति मद्यपानमात्रा ।

ग्रीष्मे तु शीतमधुरं माध्वीकादि पिबेन्निशि ॥ २५ ॥
शीतकाले तु तीक्ष्णोष्णं गौडिकं पैष्टिकादिकम् ।
वर्षाकाले वसन्ते च यत्किञ्चिन्मद्यमापिबेत् ॥ २६ ॥

पानस्य प्रशस्तिमाह—

वामा रामा रमणकुशला दक्षिणे पानपात्रं
धृत्वा चाग्ने मरिचलुलितं छागलं भृष्टमांसम् ।
वीणानादैः सरसकविभिर्मोदमानोऽतिमात्रं
सोऽयं धन्यः पिबति मदिरां भैरवो यस्य तुष्टः ॥ २७ ॥

अथ गद्यम्—

कुसुमितलतोपगूढप्रगूढनिरन्तरस्नग्धकुरनिकररोमाश्चैर्मधुकरनिकरमधु-
मधुरझङ्कारसीत्कारैरुन्मत्तकण्ठकलकण्ठाकुण्ठकण्ठपूजितैः कूजितैर्दक्षि-
णसमीरणसमुल्लासितपल्लवकरप्रचारैस्तरुणतरुभिरालिङ्गितामिर्लतानता-
ङ्गिमिरमिशोममानेषु भवनोपवनेषु तुषारकरकिरणराजिविराजिते प्रदोषे
शृङ्गाररससंभारसंपूरितानेकभूषणकमनीयकामिनीसेवितं ललितललनो-
पनीयमानं सुरमिकुसुमैः कल्लारादिभिराह्लादकारिमव्यमनसं सोपदंशं

त्रापारिमितं वरतरसरसमानन्दसंदोहसमुदश्चितं पशुजनवश्चितं मधु-
रमुदश्चयतीति विधिः ।

इति गद्यम् ॥२८॥

वातपानात्यय आह—

मद्यं सौवर्चलव्योषयुक्तं किञ्चिज्जलान्वितम् ।
जीर्णमद्याय दातव्यं वातपानात्ययापहम् ॥ २९ ॥
योजयेन्मातुलुङ्गाम्लदाडिमैः पानकान्यपि ।
स्निग्धोष्णलवणाम्लांश्च रसाञ्जाङ्गलजाञ्जुमान् ॥ ३० ॥
सूक्तं सौवर्चलं शृङ्गीञ्ज्यूषणार्द्रकदीपकैः ।
मद्यं पीत्वा जयत्युग्रं पवनोत्थं मदात्ययम् ॥ ३१ ॥

पित्तपानात्यय आह—

पित्तपानात्यये पेयं वटशृङ्गं हिमाम्बुना ।
सशर्करं पुनर्मद्यं पिबेत्किञ्चिज्जलान्वितम् ॥ ३२ ॥
द्राक्षामलकखर्जूरपरूषकहिमं पिबेत् ।
सिताविमिश्रितं पित्तपानात्ययविकारनुत् ॥ ३३ ॥

कफपानात्यय आह—

पानात्यये कफोत्थे तु तत्पीत्वोल्लेखनं चरेत् ।
यथाबलं लङ्घनं च दीपनीयौषधानि च ॥ ३४ ॥

अन्यच्च—

अभ्यङ्गोत्सादनस्नानवासोधूपानुलेपनैः ।
स्निग्धोष्णैस्तादृशैरन्नेर्वातप्रकृतिकः पिबेत् ॥ ३५ ॥
शीतोपचारैर्विविधैर्मधुरस्निग्धशीतलैः ।
फलैरन्नेः सह नरः पित्तप्रकृतिकः पिबेत् ॥ ३६ ॥
श्लैष्मिको जाङ्गलैर्मांसैर्मरिचैर्मदिरां पिबेत् ।
प्राक्पिबेच्छ्लैष्मिको मद्यं भक्तस्योपरि पैत्तिकः ॥ ३७ ॥
वातिकस्तु पिबेन्मध्ये समदोषो यथेच्छति ।
वातिकस्तु पिबेन्मद्यं प्रायो गौडिकपैष्टिकम् ॥ ३८ ॥
कफपित्तात्मको यस्तु मार्द्वीकं माधवं पिबेत् ।
विधिर्वसुमतामेष कथितश्चरकादिभिः ॥ ३९ ॥

सौवर्चलमजार्जीं च वृक्षाम्लं चाम्लवेतसम् ।
त्वगेलामरिचार्धांशं शर्करामागयोजितम् ॥ ४० ॥
एतल्लवणमष्टाङ्गमग्निसंदीपनं परम् ।

मदात्यये कफोत्थे तु दद्यात्स्रोतोविशोधनम् ॥ ४१ ॥
अत्रैकद्रव्यमागा त्वगेला मरिचानि प्रत्येकमर्धभागानि शर्करा तु सौव-
र्चलादिभिस्तुल्या ।

इत्यष्टाङ्गलवणम् ।

सर्वजे सर्वमेवेदं प्रयोक्तव्यं चिकित्सितम् ।
आभिः क्रियाभिः सिद्धाभिः शान्तिं याति मदात्ययः ॥ ४२ ॥
न चेन्मद्यक्रमं हित्वा क्षीरमस्योपकल्पयेत् ।
लङ्घनाद्यैः कफे क्षीणे जाते दौर्बल्यलाघवे ॥ ४३ ॥
ततस्तुल्यगुणं क्षीरं विपरीतं तु मद्यतः ।
क्षीरप्रयोगं मद्यं च क्रमेणाल्पाल्पमाचरेत् ॥ ४४ ॥
मधुना हन्त्युपयुक्ता त्रिफला रात्रौ गुडार्द्रकं प्रातः ।
सप्ताहात्पथ्यमुजो मदमूर्च्छाकामलोन्मादान् ॥ ४५ ॥
अह्नानि सप्त वाऽष्टौ वा नृणां पानात्ययः स्मृतः ।
पानं हि मज्जते जीर्णमत ऊर्ध्वं विमार्गगम् ।
पानाजीर्णविनाशाय कुर्यात्कफहरं विधिम् ॥ ४६ ॥
पीतः सगुडः स्वरसः कुसुमफलस्य प्रकाममुषसि मुहुः ।
शमयति कोद्रवजातं मदमतिवैकल्यकारकं सपदि ॥ ४७ ॥
धत्तूरकबीजभवं मदमपहरति प्रकाममापीतम् ।
छागीक्षीरं ससितं किं वा वृन्ताकवृन्तकस्वरसः ॥ ४८ ॥
समूर्च्छाछर्द्यतीसारं मदं पूगफलोद्भवम् ।
सद्यः प्रशमयेत्पीतमाकण्ठं वारि शीतलम् ॥ ४९ ॥
वन्यकरीषाघ्राणाज्जलपानाल्लवणमक्षणादपि च ।
पूगजमदः प्रशाम्यति चूर्णरुजाशर्कराकवलात् ॥ ५० ॥
तत्क्षणान्मृदितं चूर्णं समाघ्रातं प्रणाशयेत् ।
ताम्बूलोत्थमदं पुंसामेकमेव स्वभावतः ॥ ५१ ॥
मद्यं पीत्वा यदि वा* तत्क्षणमवलेढि शर्करां सघृताम् ।
मदयति न जातु मद्यं मनागपि प्रथितवीर्यमपि ॥ ५२ ॥

* क. ना इति पाठान्तरम् ।

१ य. 'यत्र' । क्षीं । २ ग. द्वि सज्जते

कद्रफलमुस्तगुडूचीमाषैः क्रमवर्धितैश्च तत्सर्वम् ।
 घृतमर्दितमास्यधृतं हन्याद्गन्धं सुसंभवं सपदि ॥ ५३ ॥
 शतावरीरसक्षीरयष्टीकल्कैः शृतं घृतम् ।
 पुनर्नवाक्काथपयः पानात्ययमपोहति ॥ ५४ ॥

अथ कज्जलीरसः—

जलप्लुतश्चन्दनभूषिताङ्गः स्रग्वी समक्तां निशि सोपदंशाम् ।
 पिबेत्सुरां नैव लभेत रोगान्मनोमतिघ्नं च मदं न याति ॥ ५५ ॥
 यं दोषमधिकं पश्येत्तमेवाऽऽदौ विनिर्हरेत् ।
 कफस्थानानुपूर्व्या वा तुल्यदोषे मदात्यये ॥ ५६ ॥
 धात्रीस्वरसनिपीता रसगन्धककज्जली सितासहिता ।
 हरति मदात्ययरोगान्गरुत्मानिवोरगान्सहसा ॥ ५७ ॥

इति कज्जलीरसः ।

इति योगतरङ्गिण्यां पानात्ययादिनिदानचिकित्साकथनं नाम
 षडशीतितमस्तरङ्गः ॥ ८६ ॥

अथ सप्ताशीतितमस्तरङ्गः ।

अथ दाहनिदानम्—

त्वचं प्राप्तः स पानोष्मा पित्तरक्ताभिमूर्छितः ।
 दाहं प्रकुरुते घोरं पित्तवत्तत्र भेषजम् ॥ १ ॥
 कृत्स्नदेहानुगं रक्तमुद्रिक्तं दहति ध्रुवम् ।
 शुष्यते तृष्यते चैव ताम्रामस्ताम्रलोचनः ॥ २ ॥
 लोहगन्धाङ्गवदनो वह्निनेवावकीर्यते ।
 पित्तज्वरसमः पित्तात्स चाप्यस्य विधिः स्मृतः ॥ ३ ॥
 तृष्णानिरोधादब्धातौ क्षीणे तेजः समुद्धतम् ।
 सबाह्याभ्यन्तरं देहं प्रदहेन्मन्दचेतसः ॥ ४ ॥
 स शुष्कगलतालवोष्ठो जिह्वां निष्कृष्य वेपते ।
 असृजः पूर्णकोष्ठस्य दाहो यः स्यात्स दुस्तरः ॥ ५ ॥
 धातुक्षयोत्थो यो दाहस्तेन मूर्छातृडन्वितः ।
 क्षामस्वरः क्रियाहीनः स सीदेद्मृशपीडितः ॥ ६ ॥

मर्माभिघातजोऽप्यास्ति सोऽसाध्यः सप्तमो मतः ।
सर्व एव हि वज्याः स्युः शीतगात्रेषु देहिषु ॥ ७ ॥

इति दाहनिदानम् ।

अथैतच्चिकित्सा—

शतधौतघृताभ्यक्तं लिह्यात्तं यवसक्तुमिः ।
कोलामलकैर्युक्तैर्वा धान्याम्लैरपि बुद्धिमान् ॥ ८ ॥
छादयेत्तस्य सर्वाङ्गं काञ्जिकाद्राम्बरेण च ।
लामज्जकेन युक्तेन चन्दनेनानुलेपयेत् ॥ ९ ॥
चन्दनाम्बुकणस्यन्दितालवृन्तोपवीजितः ।
स्वप्याद्वाहार्दितोऽम्भोजकदलीदलसंस्तरे ॥ १० ॥
परिषेकावगाहेषु व्यजनानां च सेवने ।
शस्यते शिशिरं तोयं दाहतृष्णोपशान्तये ॥ ११ ॥
फलिनीसेव्यलोध्राम्बु हेमपत्रं कुटन्नटम् ।
कालीयकरसोपेतं दाहे शस्तं प्रलेपनम् ॥ १२ ॥

हेमपत्रं नागकेसरपत्रम् ।

अथ चन्दनादिकाथः—

ह्रीवेरपत्रकोशीरचन्दनाम्बुजवारिणा ।
संपूर्णमिषगाहेत द्रोणीं दाहार्दितो नरः ॥ १३ ॥
पित्तज्वरहरः सर्वः पित्तदाहे विधिर्मतः ।
वाप्यः कमलहासिन्यो जलयन्त्रगृहाः शुभाः ॥ १४ ॥
नार्यश्चन्दनदिग्धाङ्गन्यो दाहदैन्यहरा मताः ।
पाययेत्कमलस्याम्भः शर्कराम्भः पयोऽपि च ॥ १५ ॥
क्षीरमिक्षुरसं वाऽपि कारयेत्पित्तजिद्विधिम् ।
पटीरपर्पटोशीरनीरनीरदनीरजैः ॥ १६ ॥
मृणालमिशिधान्याकपञ्चकामलकैः कृतः ।
अर्धशिष्टः सिताशीतः पीतः क्षौद्रसमन्वितः ॥ १७ ॥
काथो विपोथयेद्दाहं क्षणाच्च परमोल्बणम् ।

पटीरं चन्दनम् ।

इति चन्दनादिकाथः ।

अथ कुशादितैलघृते—

कुशाद्रिशालिपर्णीभिर्जीवकर्षमसाधितम् ॥ १८ ॥

तैलं घृतं वा दाहघ्नं वातपित्तविनाशनम् ।

इति कुशादितैलघृते ।

अथ रसादिगुटी—

तिलतैलं भवेत्प्रस्थं तत्षोडशगुणे शनैः ॥ १९ ॥

काञ्जिके विपचेत्तत्स्याद्दाहज्वरहरं परम् ।

शाखाश्रयां यथान्यायं रोहिणीं व्यधयेच्छिराम् ॥ २० ॥

रक्तजातस्ततो दाहः प्रशाम्यति न संशयः ।

सशर्करं सेन्दुशैलं शीतमम्भः पिबेन्नरः ॥ २१ ॥

तृष्णानिरोधजं दाहं हन्ति तोयमिवानलम् ।

पीत्वा वेणुत्वचः क्वाथं सक्षौद्रं शिशिरं नरः ॥ २२ ॥

रक्तसंपूर्णकोष्ठोत्थदाहं जयति दुस्तरम् ।

धातुक्षयोत्थं दाहं तु जयेद्विद्यार्थसाधनैः ।

क्षीरमांसरसाहारैर्विधिनोक्तेन तत्र च ॥ २३ ॥

रसबलिघनसारचन्दनानां सनलदसेव्यपयोदजीवनानाम् ।

अपहरति गुटी मुखस्थितेयं सकलसमुत्थितदाहमास्तु वाति ॥ २४ ॥

इति रसादिगुटी ।

इति योगतरङ्गिण्यां दाहनिदानचिकित्साकथनं नाम सप्तशीति-

तमस्तरङ्गः ॥ ८७ ॥

अथाष्टाशीतितमस्तरङ्गः ।

अथोन्मादनिदानम्—

मदयन्त्युद्धता दोषा यस्मादुन्मार्गमास्थिताः ।

मानसोऽयमतो व्याधिरुन्माद् इति कीर्तितः ॥ १ ॥

एकैकशः सर्वशश्च दोषैरत्यर्थमूर्च्छितैः ।

मानसेन च दुःखेन स पञ्चविध उच्यते ॥ २ ॥

विषान्द्रवति षष्ठश्च यथास्वं तत्र मेषजम् ।

स चाप्रवृद्धस्तरुणो मदसंज्ञां विमर्ति च ॥ ३ ॥

विरुद्धदुष्टाशुचिभोजनानि प्रधर्षणं देवगुरुद्विजानाम् ।

उन्मादहेतुर्भयहर्षपूर्वो मनोभिघातो विषमाश्च चेष्टाः ॥ ४ ॥

तैरल्पसत्त्वस्य मलाः प्रदुष्टा बुद्धेर्निवासं हृदयं प्रदूष्य ।

स्रोतांस्यधिष्ठाय मनोवहानि प्रमोहयन्त्याशु नरस्य चेतः ॥ ५ ॥

उन्मादस्य सामान्यं रूपमाह—

धीविभ्रमः सत्त्वपरिप्लवश्च पर्याकुला दृष्टिरधीरता च ।

अबद्धवाक्यं हृदयं च शून्यं सामान्यमुन्मादगदस्य लिङ्गम् ॥ ६ ॥

वातजमाह—

रूक्षाल्पशीतान्नविरेकधातुक्षयोपवासैरनिलोऽतिवृद्धः ।

चिन्तादिदुष्टं हृदयं प्रविश्य बुद्धिं स्मृतिं चाप्युपहन्ति शीघ्रम् ॥ ७ ॥

अस्थानहासस्मितनृत्यगीतवाङ्मङ्गविक्षेपणरोदनानि ।

पारुष्यकार्यारुणवर्णता च जीर्णं बलं वाऽनिलजस्य रूपम् ॥ ८ ॥

पित्तजमाह—

अजीर्णकट्वम्लविदाह्यशीतैर्मोज्यैश्चितं पित्तमुदीर्णवेगम् ।

उन्मादमत्युग्रमनात्मकस्य हृदि स्थितं पूर्ववदाशु कुर्यात् ॥ ९ ॥

अमर्षसंरम्भविनयमावाः संतर्जनाभिद्रवणौष्ण्यदोषाः ।

प्रच्छाद्यशीतान्नजलाभिलाषी पीतप्रमः पित्तकृतस्य लिङ्गम् ॥ १० ॥

कफजमाह—

संपूरणैर्मन्दविचेष्टितस्य सोष्मा कफो मर्मणि संप्रवृद्धः ।

बुद्धिं स्मृतिं चाप्युपहन्ति चित्तं प्रमोहयन्संजनयेद्विकारम् ॥ ११ ॥

वाक्चेष्टितं मन्दमरोचकं च

नारीविविक्तप्रियता च निद्रा ।

छर्दिश्च लाला च बलं च मुक्ते

नखादिशौक्यं च कफात्मके स्यात् ॥ १२ ॥

संनिपातजमाह—

यः संनिपातप्रभवो हि घोरः

सर्वैः समस्तैः सह हेतुभिः स्यात् ।

सर्वाणि रूपाणि बिभर्ति तावु-
ग्विरुद्धभैषज्यविधिर्विवर्ज्यः ॥ १३ ॥

मनोविकारजमाह—

चोरैर्नरैन्द्रपुरुषै रिपुभिस्तथाऽन्यै-
र्वित्रासितस्य धनबान्धवसंक्षयाद्वा ।
गाढं क्षते मनसिजप्रियया रिरंसो-
र्जायेत चोत्कटतरो मनसो विकारः ॥ १४ ॥

विषजमाह—

चित्रं ब्रवीति च मनोनुगतं विसंज्ञो
गायत्यतो हसति रोदिति चापि मूढः ।
रक्तेक्षणो हतबलेन्द्रियभाः सुदीनः
श्यावाननो विषकृतेन भवेद्विसंज्ञः ॥ १५ ॥

असाध्यत्वमाह—

अवाङ्मुखस्तून्मुखो वा क्षीणमांसबलो नरः ।
जागरूको ह्यसंदेहमुन्मादेन विनश्यति ॥ १६ ॥

भूतजमाह—

अमर्त्यवाग्विक्रमवीर्यचेष्टो ज्ञानादिविज्ञानबलादिभिर्यः ।
उन्मादकालो नियतश्च यस्य भूतोत्थमुन्मादमुदाहरन्ति ॥ १७ ॥

देवजुष्टमाह—

संतुष्टः शुचिरतिदिव्यमाल्यगन्धो
निस्तन्द्रो ह्यवितथसंस्कृतप्रमाधी ।
तेजस्वी स्थिरनयनो वरप्रदाता
ब्रह्मण्यो भवति नरः-स देवजुष्टः ॥ १८ ॥

दैत्यजुष्टमाह—

संस्वेदी द्विजगुरुदेवदोषवक्तो
जिह्वाक्षो विगतमयो विमार्गदृष्टिः ।
संतुष्टो न भवति चान्नपानजातै-
र्दुष्टात्मा भवति स देवशत्रुजुष्टः ॥ १९ ॥

गन्धर्वग्रहपरिपीडितमाह—

हृष्टात्मा पुलिनवनान्तरोपसेवी
स्वाचारः प्रियपरिगीतगन्धमालयः ।
नृत्यन्वै प्रहसति चारु चाल्पशब्दं
गन्धर्वग्रहपरिपीडितो मनुष्यः ॥ २० ॥

यक्षग्रहपरिपीडितमाह—

ताम्राक्षः प्रियतनुरक्तवस्त्रधारी
गम्भीरो द्रुतगतिरल्पवाक्सहिष्णुः ।
तेजस्वी वदति च किं ददामि कस्मै
यो यक्षग्रहपरिपीडितो मनुष्यः ॥ २१ ॥

पितृग्रहाभिजुष्टमाह—

प्रेतानां स दिशति संस्तरेषु पिण्डा-
ञ्जान्तात्मा जलमपि चापसव्यवस्त्रः ।
मांसेक्षुस्तिलगुडपायसाभिकाम-
स्तद्भक्तो भवति पितृग्रहाभिजुष्टः ॥ २२ ॥

भुजङ्गमजुष्टमाह—

यस्तूव्यां प्रसरति सर्पवत्कदाचि-
त्सृक्किण्यौ विलिहति जिह्वया तथैव ।
क्रोधालुर्गुडमधुदुग्धपायसेप्सु-
र्विज्ञेयो भवति भुजङ्गमेन जुष्टः ॥ २३ ॥

राक्षसगृहीतमाह—

मांसासृग्विविधसुराविकारलिप्सु-
र्निर्लज्जो मृशमतिनिष्ठुरोऽतिशूरः ।
क्रोधालुर्विपुलबलो निशाविचारी
शौचद्विड्भवति स राक्षसैर्गृहीतः ॥ २४ ॥

पिशाचजुष्टमाह—

उद्धस्तः कृशपरुषो बिरुद्धभाषी
दुर्गन्धो मृशमशुचिस्तथाऽतिलोकः ।
बद्धाशी विजनवचान्तरोपसेवी
व्याचेष्टन्भ्रमति रुदन्पिशाचजुष्टः ॥ २५ ॥

ब्रह्मराक्षससेवितमाह—

देवविप्रगुरुद्वेषी वेदवेदाङ्गविच्छुचिः ।

आत्मपीडाकरो हासी ब्रह्मराक्षससेवितः ॥ २६ ॥

एतेषामसाध्यमर्यादामाह—

स्थूलाक्षो द्रुतमटनः स्वफेनलेही

निद्रालुः पतति च कम्पते च योऽति ।

यश्चाद्विद्विरदनगादिविच्युतः स्या-

त्सोऽसाध्यो भवति तथा त्रयोदशेऽब्दे ॥ २७ ॥

ग्रहसमयमाह—

देवग्रहाः पौर्णमास्यामसुराः संध्ययोर्द्वयोः ।

गन्धर्वाः प्रायशोऽष्टम्यां यक्षाश्च प्रतिपद्यपि ॥ २८ ॥

पितृग्रहास्तथा दर्शे पञ्चम्यामपि चोरगाः ।

रक्षांसि रात्रौ पेशाचाश्चतुर्दश्यां विशन्ति हि ॥ २९ ॥

तस्य व्याप्तिमाह—

दर्पणादीन्यथा छाया शीतोष्णं प्राणिनो यथा ।

स्वमणिं भास्करार्चिश्च यथा देहं च देहधृत् ॥

विशन्ति न च दृश्यन्ते ग्रहास्तद्वच्छरीरिणाम् ॥ ३० ॥

इत्युन्मादभूतोन्मादनिदानम् ।

अथैतत्प्रतीकारः—

वातिके स्नेहपानं प्राग्विरेकः पित्तसंभवे ।

कफजे वमनं कार्प्यं परो वस्त्यादिकः क्रमः ॥ ३१ ॥

यच्चोपदिश्यते कर्म अपस्मारे चिकित्सितम् ।

उन्मादे तच्च कर्तव्यं सामान्याद्दोषदृष्ययोः ॥ ३२ ॥

जलाग्निद्रुमशैलेभ्यो विषमेभ्यश्च तं सदा ।

रक्षेदुन्मादिनं यत्नात्सद्यः प्राणहरा हि ते ॥ ३३ ॥

ब्राह्मीकूष्माण्डीफलषड्ग्रन्थाशङ्खपुष्पिकास्वरसाः ।

उन्मादहरा दृष्टाः पृथगेते कुष्ठमधुमिश्राः ॥ ३४ ॥

अत्र ब्राह्मीति पदं स्वरसपरं कूष्माण्डीफलं तद्वीजपरम् ।

एते चत्वारो योगाः ।

अथ ब्राह्म्यादिकल्कः—

ब्राह्मीरसः स्यात्सवचः सकुष्ठः सशङ्खपुष्पः ससुवर्णचूर्णः ।
 उन्मादिनामुन्मदमानसानामपस्मृतौ भूतहतात्मनां च ॥ ३५ ॥
 इति ब्राह्म्यादिकल्कः ।

अथ सिद्धार्थकादियोगः—

सितकुसुमबलायाः सार्धकर्षत्रयं यः
 शिखरिचरणकोलं क्षीरपाकेन पक्वम् ।
 पिबति तदनु नित्यं प्रातरुत्थाय शीतं
 जयति झटिति घोरं व्याधिमुन्मादसंज्ञम् ॥ ३६ ॥
 सिद्धार्थत्रिफलाशिरीषकटभीश्वेताकरञ्जामरै-
 र्मञ्जिष्ठारजनीद्वयत्रिकटुकश्यामावचाहिङ्गुभिः ।
 पिष्टैश्छागलमूत्रतोयमगदं सर्वग्रहच्छेदनं कृत्यो-
 न्मादविषज्वरप्रशमनं पानादिसंयोजितम् ॥ ३७ ॥
 इति सिद्धार्थकादियोगः ।

अथ त्र्यूषणवर्तिः—

त्र्यूषणं हिङ्गुलवणं वचाकटुकरोहिणी ।
 शिरीषं नक्तमालस्य बीजं श्वेताश्च सर्षपाः ॥ ३८ ॥
 गोमूत्रपिष्टैरेतैस्तु वर्तिर्नेत्राञ्जने हिता ।
 चातुर्थिकमपस्मारमुन्मादं च विनाशयेत् ॥ ३९ ॥
 इति त्र्यूषणवर्तिः ।

अथाऽऽगन्तून्मादः—

दशमूलाम्बु सघृतं युक्तं मांसरसेन च ।
 ससिद्धार्थकचूर्णं वा केवलं वा नवं घृतम् ॥ ४० ॥
 उन्मादशान्तये पेयो रसो वा तालशाखजः ।
 प्रयोज्यं सार्धपं तैलं नस्याभ्यञ्जनयोः सदा ॥ ४१ ॥
 आश्वासयेत्सुहृद्वाक्यैर्धर्मकामार्थसंहितैः ।
 ब्रूयादिष्टविनाशांश्च दर्शयेदद्भुतानि वा ॥ ४२ ॥
 बद्धं सर्षपतैलाक्तमुत्तानं चाऽऽतपे न्यसेत् ।
 कपिकृष्टाऽथ वा तप्तलोहतैलाम्बुभिः स्पृशेत् ॥ ४३ ॥

कशामिस्ताडयेद्वृद्धं स्थापयेद्विजने गृहे ।
 रुन्ध्याच्चेतोऽतिविभ्रान्तमेवं व्रजति तत्सुखम् ॥ ४४ ॥
 सर्पेणोद्धृतदंष्ट्रेण दान्तैः सिंहैर्गजैश्च तम् ।
 त्रासयेच्छस्त्रहस्तैश्च शत्रुभिस्तस्करैस्तथा ॥ ४५ ॥
 अथ वा राजपुरुषैर्बहिर्नीत्वा सुसंयतम् ।
 त्रासयेत्तु प्रहारेण तर्जयन्तो यथाऽऽज्ञया ॥ ४६ ॥
 देहदुःखामयेभ्यो हि परं प्राणभयं मतम् ।
 तेन याति शमं तस्मात्सर्वतो विष्णुनामतः ॥ ४७ ॥
 सततं धूपयेच्चैनं श्वगोमांसैश्च पूतिभिः ।
 इष्टद्रव्यविनाशात्तु उन्मादो यस्य जायते ॥ ४८ ॥
 तस्य तत्सदृशैः प्रातैः सान्त्वनैश्च शमं नयेत् ।
 बुद्ध्वा दोषं वयःसात्म्यं देशं कालं बलाबलम् ॥ ४९ ॥
 चिकित्सितमिदं कुर्यादुन्मादे दोषभूतजे ।
 देवर्षिपितृगन्धर्वैरुन्मत्तः स्यात्तु बुद्धिमान् ॥ ५० ॥
 वर्जयेदञ्जनादीनि तीक्ष्णानि क्रूरकर्म च ।
 सर्पिष्पानादिगायत्रीहोममन्त्रादिरिष्यते ॥ ५१ ॥
 पूजाबल्युपहारैश्च होममन्त्राञ्जनादिभिः ।
 जयेदागन्तुमुन्मादं यथाविधि शुचिर्भिषक् ॥ ५२ ॥

इत्यागन्तुन्मादः ।

अथ महापैशाचिकं घृतम्—

जटिला पूतना केशी वारटी मर्कटी वृचा ।
 त्रायमाणा जया वीरा चोरकं कटुरोहिणी ॥ ५३ ॥
 कायस्था शूकरी छत्रा सातिच्छत्रा पलंकषा ।
 महापुरुषदन्ता च वयस्था नाकुलीद्वयम् ॥ ५४ ॥
 कटम्भरा वृश्चिकाली स्थिरा चैतैर्घृतं पचेत् ।
 तत्तु चातुर्थिकोन्मादग्रहापस्मारनाशनम् ॥ ५५ ॥
 महापैशाचिकं नाम घृतमेतद्यथाऽस्मृतम् ।
 बुद्धिमेधास्मृतिकरं बालानां चाङ्गवर्धनम् ॥ ५६ ॥

इति महापैशाचिकं घृतम् ।

अथ चैतसं घृतम्—

पञ्चमूली च काश्मर्या रासैरण्डस्त्रिवृद्धला ।
 मूर्वा शतावरी चेति काथैर्द्विपलिकैः शुभैः ॥ ५७ ॥

कल्याणकस्य चाङ्गेन चैतसं नाम तद्घृतम् ।
 सर्वचेतोविकाराणां शमनं परमं मतम् ॥ ५८ ॥
 कार्यः कषायो द्विगुणः क्राथे मस्तुकलागुणम् ।
 कल्याणकोक्तकल्केन पादांशेन घृतं पचेत् ॥ ५९ ॥

इति चैतसं घृतम् ।

अथ पानीयकल्याणकघृतम्—

विशाला त्रिफला कौन्ती देवदार्वेलवालुकम् ।
 स्थिरानेतं हरिद्रे द्वे सारिवे द्वे प्रियङ्गुका ॥ ६० ॥
 नीलोत्पलैलामञ्जिष्ठा दन्ती दाडिमकेसरम् ।
 विडङ्गं पृश्निपर्णी च कुष्ठचन्दनपद्मकैः ॥ ६१ ॥
 तालीसपत्रं बृहती मालतीकुसुमं नवम् ।
 अष्टाविंशतिभिर्द्रव्यैरेतैः कर्षप्रमाणकैः ॥ ६२ ॥
 चतुर्गुणं जलं दत्त्वा घृतं प्रस्थमितं पचेत् ।
 अपस्मारे ज्वरे शोषे कासे मन्दानले क्षये ॥ ६३ ॥
 वातरक्ते प्रतिश्याये तृतीयकचतुर्थके ।
 कटिगूले मूत्रकृच्छ्रे विसर्पोपहतेषु च ॥ ६४ ॥
 उन्मादे पाण्डुकण्ड्वोश्च विषमेहगरेषु च ।
 भूतोपहतचित्तानां मन्दधीनामचेतसाम् ॥ ६५ ॥
 शस्तं स्त्रीणां च बन्ध्यानां धन्यमायुर्बलप्रदम् ।
 अलक्ष्मीपापरोगघ्नं सर्वग्रहनिवारणम् ॥
 कल्याणकमिदं सार्पिः श्रेष्ठं पुंस्त्वप्रदं नृणाम् ॥ ६६ ॥

इति पानीयकल्याणकघृतम् ।

अथ सारस्वतं चूर्णम्—

कुठाश्वगन्धालवणाजमोदं
 द्वे जीरके त्रीणि कटूनि पाठा ।
 मङ्गल्यपुष्पी च समान्यमूनि
 सर्वैः समानां च वचां विचूर्ण्य ॥ ६७ ॥

* अत्रेत्यं ग पुस्तके पाठान्तरम्—

मङ्गल्यपुष्प्या च समानचूर्णं कृत्वाऽथ चूर्णेन वचोऽभवेन ।
 तुल्येन युक्ते बहुशो रसेन तद्धावितं ब्रह्मविनिर्मितायाः ॥ १ ॥

ब्राह्मीरसेनाखिलमेव भाव्यं
 वारत्रयं शुष्कमिदं हि चूर्णम् ।
 अक्षप्रमाणं मधुना घृतेन
 लिह्यान्नरः षष्टिदिनानि यावत् ॥ ६८ ॥
 सारस्वतमिदं चूर्णं ब्रह्मणा निर्मितं पुरा ।
 हिताय सर्वलोकानां दुर्मेधानां विचेतसाम् ॥ ६९ ॥
 एतस्याभ्यासतः पुंसां बुद्धिर्मेधा धृतिः स्मृतिः ।
 संपत्तिः कविताशक्तिः प्रवर्धेतोत्तरोत्तरम् ॥ ७० ॥

इति सारस्वतं चूर्णम् ।

अथ विश्वाद्यं चूर्णम्—

विश्वाजमोदरजनीद्वयसैन्धवोग्रा-
 यष्ट्याह्वकुष्ठमगधोद्भवजीरकाणाम् ।
 चूर्णं प्रमातसमये लिहतः ससर्पि-
 र्वाग्देवता निवसति स्वयमेव वक्त्रे ॥ ७१ ॥

इति विश्वाद्यं चूर्णम् ।

अथ हिङ्गवाद्यं घृतं वृन्दात्—

हिङ्गुसौवर्चलव्योषैर्द्विपलांशैर्घृताढकम् ।
 चतुर्गुणे गवां मूत्रे सिद्धमुन्मादनाशनम् ॥ ७२ ॥

इति हिङ्गवाद्यं घृतं वृन्दात् ।

अथ महाचैतसं घृतम्—

वशमूली तथा रास्ना वातारिस्त्रिवृता बला ।
 मूर्वा शतावरी चेति काथैस्तु कुडवैः पृथक् ॥ ७३ ॥
 कृते काथे घृतप्रस्थद्वयं मृद्वग्निना पचेत् ।
 कल्कीकृतैर्वक्ष्यमाणद्रव्यैः सम्यक्पुनः पचेत् ॥ ७४ ॥

सर्पिर्मधुभ्यां च ततोऽक्षमात्रं लिह्यान्नरः षष्टिदिनं हिताशी ।

ऐश्वर्यान्मनसश्च धैर्यं मेधां च विन्देद्द्विगुणं च कालम् ॥ २ ॥

पठन्नरः श्लोकसहस्रमश्रमात्तद्वत्प्रयोज्यं द्विगुणं क्रमेण ।

सारस्वतं चूर्णमिदं प्रदिष्टं स्वयंभुवा लोकहितार्थमुच्चैः ॥

दुर्मेधसामुन्मदमानसानामपस्मृतिग्रस्तहृदां सुखाय ॥ ३ ॥

विशाला त्रिफला कौन्ती देवदार्वेलवालुकम् ।
 स्थिराऽनन्ता रजन्यौ द्वे प्रियङ्गुः सारिवाद्वयम् ॥ ७५ ॥
 नीलोत्पलैला मञ्जिष्ठा दन्ती दाडिमकेसरम् ।
 विडङ्गं ह्यग्निः*पत्री च कुष्ठं चन्दनपद्मके ॥ ७६ ॥
 तालीसपत्रं बृहती मालतीकुसुमं नवम् ।
 अष्टाविंशतिभिः कल्कैरेतैः कर्षमितैः पृथक् ॥ ७७ ॥
 चतुर्गुणं जलं दत्त्वा पिष्टैस्तद्विपचेद्घृतम् ।
 महाचैतसनामैवं सर्वचेतोविकारहृत् ॥ ७८ ॥
 अपस्मारे ग्रहोन्मादे मन्देऽग्नौ ज्वरकासयोः ।
 वातरक्ते प्रतिश्याये शोषे कार्श्ये तृतीयके ॥ ७९ ॥
 मूत्रकृच्छ्रे कटीशूले विसर्पाभिहतेषु च ।
 पाण्ड्वामये तथा कण्डूवा विषमोहगरेषु च ॥ ८० ॥
 अलक्ष्मीपापरक्षोभं सर्वग्रहनिवारणम् ।
 देवादिहतदेहानां गद्गदानामचेतसाम् ॥ ८१ ॥
 शस्तं स्त्रीणां च बन्ध्यानां धन्यमायुर्बलप्रदम् ।
 हन्ति भ्रमं मदं मूर्छां मेधास्मृतिमतिप्रदम् ॥ ८२ ॥
 इति महाचैतसं घृतम् ।

अथ कृष्णाद्यञ्जनम्—

कृष्णामरिचसिन्धूत्थमधुगोरोचनाकृतम् ।
 अञ्जनं सर्वदेवादिकृत्योन्मादहरं परम् ॥ ८३ ॥
 इति कृष्णाद्यञ्जनम् ।

अथर्क्षलोमादिधूपः—

ऋक्षजम्बूकलोमानि शल्लकी लशुनं तथा ।
 हिङ्गु मूत्रं च वस्तस्य धूपमत्र प्रयोजयेत् ॥ ८४ ॥
 एतेन शाम्यति क्षिप्रं बलवानपि यो ग्रहः ।
 इत्यृक्षलोमादिधूपः ।

अथ विगतोन्मादलक्षणम्—

निवृत्तविषमद्यो यो हिताशी प्रयतः शुचिः ॥ ८५ ॥

निजागन्तुभिरुन्मादैः स सत्त्वान्न वियुज्यते ।
 प्रसादश्चेन्द्रियार्थानां बुद्ध्यात्ममनसामपि ॥ ८६ ॥
 धातूनां प्रकृतिस्थत्वं विगतोन्मादलक्षणम् ।

इति विगतोन्मादलक्षणम् ।

अथ नस्यं रसरत्नप्रदीपात्—

कृष्णधत्तूरजैर्बीजैः पञ्चभिः पर्पटीरसः ।
 साज्यो योज्यः प्रशान्त्यर्थमुन्मादस्याऽऽशु नावनम् ॥ ८७ ॥

इति नस्यं रसरत्नप्रदीपात् ।

अथ रसाः—

रसः सतालः सशिलः सलोहः
 स्रोतोऽन्नं सार्कमिदं समं यत् ।
 पिष्टं नृमूत्रेण च तत्समस्ता-
 द्वेयो द्विभागो बलिरापचेच्च ॥ ८८ ॥

लौह्यां क्षणं हन्ति घृतेन माषोऽपस्मारमप्युन्मदमानसत्वम् ।
 पिबेदनुऽयूषणहिङ्गयुक्तं सर्पिर्नृमूत्रे रुचकेन साकम् ॥ ८९ ॥
 भूतोन्मादेषु सर्वेषु रसोऽयं भूतभैरवः ।
 धत्तूरपञ्चभिर्बीजैर्देयः सर्पिर्विमिश्रितः ॥ ९० ॥

इति भूतभैरवो रसः ।

अथोन्मादगजकेसरी—

सूतगन्धशिलातुल्यं स्वर्णबीजं विचूर्ण्य च ।
 भावयेदुग्रगन्धायाः क्वाथे मुनिदिनैः पृथक् ॥ ९१ ॥
 रास्मारसेन सप्तैव भावयित्वा विचूर्णयेत् ।
 रसः संजायते नूनमुन्मादगजकेसरी ॥ ९२ ॥
 अस्य माषः ससर्पिष्को लीढो हन्ति हठाद्बुद्धम् ।
 उन्मादाख्यमपस्मारं भूतोन्मादमपि ज्वरम् ॥ ९३ ॥

इत्युन्मादगजकेसरी ।

कल्याणकं प्रयुञ्जीत महद्वा चैतसं घृतम् ।
 तैलं नारायणं वाऽथ महानारायणं तथा ॥ ९४ ॥

ऋते पिशाचादन्येषु प्रतिकूलं न चाऽऽचरेत् ।
 रोगिणं भिषजं यत्ते क्रुद्धा हन्युर्महौजसः ॥ ९५ ॥
 अशुचीन्यन्नपानानि नदीरुच्चावचान्यपि ।
 प्रासादाञ्जशाखिनोऽस्त्राणि सेवेतोन्माद्वाह्य ना ॥ ९६

इति श्रीयोगतरङ्गिण्यामुन्मादनिदानचिकित्साकथनं नामाष्टाशीति-
 तमस्तरङ्गः ॥ ८८ ॥

अथ नवाशीतितमस्तरङ्गः ।

अथापस्मारनिदानम्—

स्मृतिर्भूतार्थविज्ञानमपस्तत्परिवर्जनम् ।
 अपस्मार इति प्रोक्तस्ततोऽयं व्याधिरन्तकृत् ॥ १ ॥
 तमःप्रवेशः संरम्भो दोषोद्रेकहतस्मृतिः ।
 अपस्मार इति ज्ञेयो गदो घोरश्चतुर्विधः ॥ २ ॥
 चिन्ताशोकादिभिर्दोषाः क्रुद्धा हृत्स्रोतसि स्थिताः ।
 कृत्वा स्मृतेरपध्वंसमपस्मारं प्रकुर्वते ॥ ३ ॥
 वातात्पित्तात्कफात्सर्वेर्दोषैः स स्याच्चतुर्विधः ।
 हृत्कम्पः शून्यता स्वेदो ध्यानं मूर्छा प्रमूढता ॥ ४ ॥
 निद्रानाशस्तु तस्मिंस्तु भविष्यति भवन्ति च ।

अथ वातजः—

कम्पते खादते दन्तान्फेनोद्गामी श्वसित्यपि ॥ ५ ॥
 परुषारुणकृष्णानि पश्येद्रूपाणि चानिलात् ।

अथ पित्तजः—

पीतफेनाङ्गवक्त्राक्षः पीतासृग्रूपदर्शनः ॥ ६ ॥
 सतृष्णोष्णानलव्याप्तलोकदर्शी च पैत्तिकः ।

अथ कफजः—

शुक्लफेनाङ्गवक्त्राक्षः शीतहृष्टाङ्गजो गुरुः ॥ ७ ॥
 पश्येच्छुक्लानि रूपाणि श्लैष्मिको मुच्यते चिरात् ।

अथ त्रिदोषजः—

सर्वैरेतैः समस्तैश्च लिङ्गैर्ज्ञेयस्त्रिदोषजः ॥ ८ ॥

अपस्मारः स चासाध्यो यः क्षीणस्यानवश्च सः ।
 प्रस्फुरन्तं च बहुशः क्षीणं प्रचलितभ्रुवम् ॥ ९ ॥
 नेत्राभ्यां च विकुर्वाणमपस्मारो विनाशयेत् ।
 पक्षाद्वा द्वादशाहाद्वा मासाद्वा कुपिता मलाः ॥ १० ॥
 अपस्माराय कुर्वन्ति वेगं किञ्चिदथान्तरम् ।
 देवे वर्षत्यपि यथा भूमौ बीजानि कानिचित् ॥
 शरदि प्रतिरोहन्ति तथा व्याधिसमुद्भवः ॥ ११ ॥

इत्यपस्मारनिदानम् ।

अथापस्मारचिकित्सा—

पूर्वं युञ्ज्यादपस्मारे छर्दनादीनि बुद्धिमान् ।
 वातिकं बस्तिभिः प्रायः पैत्तिकं तु विरेचनैः ॥ १२ ॥
 कफजं वमनैर्धीमानपस्मारमुपाचरेत्* ।
 तैलेन लशुनः सेव्यः पयसा च शतावरी ॥ १३ ॥
 ब्राह्मीरसश्च मधुना सर्वापस्मारमेषजम् ।
 चूर्णैः सिद्धार्थकादीनां भक्षितैरथ वापितैः ॥ १४ ॥
 गोमूत्रपिष्टैः सर्वाङ्गलेपैः शाम्यत्यपस्मृतिः ।

सिद्धार्थकादिरुन्माद उक्तेः ।

शिशुकट्वङ्गकिणिहीनिम्बत्वग्रसपाचितम् ॥ १५ ॥
 चतुर्गुणे गवां मूत्रे तैलमभ्यञ्जने हितम् ।
 निर्गुण्डीभववृन्दाकनावनस्य प्रयोगतः ॥ १६ ॥
 उपैति सहसा नाशमपस्मारो महागदः ।
 मनोह्वा ताक्ष्यविष्ठा च शकृत्पारावतस्य च ॥ १७ ॥
 अञ्जनान्धन्त्यपस्मारमुन्मादं च विशेषतः ।
 यः खादेत्क्षीरमक्ताशी माक्षिकेण वचारजः ॥ १८ ॥
 अपस्मारं महाघोरं चिरोत्थं संजयेद्भ्रुवम् ।
 कूष्माण्डकफलोत्थेन रसेन परिपेषितम् ॥ १९ ॥
 अपस्मारविनाशाय षष्ठ्याह्वं च पिबेद्भयहम् ।

* मुपाचरेदित्यस्याग्रेऽयं ग्रन्थो ग. पुस्तके—

ततस्तीक्ष्णं प्रयुञ्जीत भिषक्सम्यग्विशोधनम् ।

सर्वशः शुद्धदेहस्य स्यादुन्मादहरी क्रिया ॥

उपयोगो ग्रहोक्तानां योगानां अप्यशेषतः । इति

अथ नस्यम्—

श्वसृगालविडालानां कपिलानां गवामपि ॥ २० ॥

पित्तानि नस्यतो हन्युरपस्मारं पृथक्पृथक् ।

अथाञ्जनम्—

यष्टीहिङ्गुवचावक्र*शिरीषलशुनामयैः ॥ २१ ॥

साजमूत्रैरपस्मारे सोन्मादे नावनाञ्जनम् ।

अथ धूपः—

पुष्पोद्भूतं शुनः पित्तमपस्मारघ्नमञ्जनात् ।

तदेव सर्पिषा युक्तं धूपनं परमं स्मृतम् ॥ २२ ॥

उत्तरदिगन्तमुस्तकमूलं बुद्ध्वा समुद्भूतं पुष्ये ।

पीतं पयसा हन्यादपस्मृतिं गोः सवर्णवत्सायाः ॥ २३ ॥

दुश्चिकित्स्यो ह्यपस्मारी चिरकारी महागदः ।

तस्माद्रसायनैरेतैः प्रायशः समुपाचरेत् ॥ २४ ॥

हृत्कम्पोऽक्षिरुजा यस्य स्वेदो हस्तादिशीतता ।

दशमूलीजलं तस्य कल्याणाज्यं च योजयेत् ॥ २५ ॥

अथ कल्याणकं चूर्णम्—

पञ्चकोलं समरिचं त्रिफलाविडसैन्धवम् ।

कृष्णाविडङ्गपूतीकयवानीधान्यजीरकम् ॥ २६ ॥

पीतमुष्णाम्बुना चूर्णं वातश्लेष्मामयापहम् ।

अपस्मारे तथोन्मादे दुर्नामिग्रहणीगदे ।

एतत्कल्याणकं चूर्णं नष्टस्याग्रेष्व दीपनम् ॥ २७ ॥

इति कल्याणकं चूर्णम् ।

अथ ब्राह्मीघृतम्—

ब्राह्मीरसे वचाकुष्ठं शङ्खपुष्पीभिरेव च ।

पक्वं पुरातनं सर्पिरपस्मारहरं ध्रुवम् ॥ २८ ॥

इति ब्राह्मीघृतम् ।

अथ स्वल्पपञ्चगव्यघृतम्—

गोशकृद्रसदध्यम्लक्षीरमूत्रैः समैर्घृतम् ।

सिद्धं चातुर्थिकोन्मादग्रहापस्मारनाशनम् ॥ २९ ॥

इति स्वल्पपञ्चगव्यघृतम् ।

अथ वचाद्यं घृतम्—

वचाशम्याककैडर्यवयस्थाहिङ्गुगुरोचकैः ।

सिद्धं पलंङ्कषायुक्तं घृतं हन्यादपस्मृतिम् ॥ ३० ॥

इति वचाद्यं घृतम् ।

अथ कटभ्यादितैलम्—

कटमीनिम्बकट्वङ्गैर्मधुशिगुत्वचारसैः ।

सिद्धं मूत्रयुतं तैलं लेपाद्धन्यादपस्मृतिम् ॥ ३१ ॥

इति कटभ्यादितैलम् ।

अथ कपित्थादिवर्तिः—

कपित्थाञ्जशरदान्मुद्गान्मुस्तोशीरयवांस्तथा ।

सव्योषान्बस्तमूत्रेण पिष्ट्वा वर्तिः प्रकल्पयेत् ॥ ३२ ॥

अपस्मारे तथोन्मादे सर्पदष्टे गरादिते ।

विषपीते जलमृते एताः स्युरमृतोपमाः ॥ ३३ ॥

इति कपित्थादिवर्तिः ।

अथ जलमृतलक्षणम्—

विष्टब्धपायुमूर्धाक्षं शीतपादकरोदरम् ।

विद्याज्जलमृतं जन्तुं शूनपन्नाभिमेहनम् ॥ ३४ ॥

इति जलमृतलक्षणम् ।

अथ स्मृतिसागरः—

रसगन्धकतालानां सशिलाताम्रभस्मनाम् ।

शुद्धानां मूर्छितानां च चूर्णं भाव्यं वचाशृतैः ॥ ३५ ॥

एकविंशतिधा पश्चाद्वाह्नीं वारां तथैव च ।

* कटमीबीजतैलेन भावयेदेकवारकम् ॥ ३६ ॥

स्मृतिसागरनामाऽयं रसोऽपस्मारनाशनः ।

सर्पिषा माषमात्रोऽयं भुक्तो हन्यादपस्मृतिम् ॥ ३७ ॥

इति स्मृतिसागरः ।

* क. ज्योतिष्मती ।

१ क. 'ङ्गुचोरकैः । २ ग. 'धुहिङ्गुव' ।

उन्मादोक्तो विधिः सर्वोऽपस्मारेऽपि प्रयुज्यते ।
इति श्रीयोगतरङ्गिण्यामपस्मारनिदानचिकित्साकथनं नमैकोननव-
तितमस्तरङ्गः ॥ ८९ ॥

अथ नवतितमस्तरङ्गः ।

अथ वातव्याधिनिदानम्—

रूक्षशीताल्पलघ्वन्नेद्यवायातिप्रजागरैः ।
विषमादुपचाराच्च दोषासृक्स्रावणादपि ॥ १ ॥
लघ्वनप्लवनात्यध्वव्यायामातिविचेष्टितैः ।
धातूनां संक्षयाच्चिन्ताशोकरोगातिकर्षणात् ॥ २ ॥
वेगसंधारणायासादमीघातादभोजनात् ।
मर्मबाधादुजाश्वोद्वृशीघ्रयानापतंसनात् ॥ ३ ॥
देहे स्रोतांसि रिक्तानि पूरयित्वाऽनिलो बली ।
करोति विविधान्व्याधीन्सर्वाङ्गैकाङ्गसंश्रयान् ॥ ४ ॥
अशीतिर्वार्तजा रोगा भवन्त्याक्षेपकादयः ।

ते यथा—

आक्षेपको हनुस्तम्भ ऊरुस्तम्भः शिरोग्रहः ॥ ५ ॥
बाह्यायामोऽन्तरायामः पार्श्वशूलं कटिग्रहः ।
दण्डापतानकः खल्ली जिह्वास्तम्भस्तथाऽर्दितः ॥ ६ ॥
पक्षाघातः क्रोदुशीर्षं मन्यास्तम्भश्च पङ्कता ।
कलायखञ्जता तूनी प्रतितूनी च खञ्जता २० ॥ ७ ॥
पादहर्षो गृध्रसी च विश्वाची चावबाहुकः ।
अपतानो व्रणायामो वातकण्डोऽपतन्त्रकः ॥ ८ ॥
अङ्गभेदोऽङ्गशोफश्च मिम्भिणत्वं च कल्लता ।
प्रत्यष्ठीलाऽष्ठीलिका च वामनत्वं च कुब्जता ॥ ९ ॥
अङ्गपीडाऽङ्गशूलश्च संकोचः स्तम्भ ४० रूक्षताः ।
अङ्गमङ्गोऽङ्गविभ्रंशो विड्ग्रहो बद्धविदकता ॥ १० ॥

मूकत्वमतिजृम्भा स्यादश्रूद्वारोऽन्त्रकूजनम् ।
 वाताप्रवृत्तिः स्फुरणं शिरापूरणमेव च ॥ ११ ॥
 कम्पः काश्यं श्यावता च प्रलापः क्षिप्रमूत्रता ।
 निद्रानाशः स्वेदनाशो दुर्बलत्वं ६० बलक्षयः ॥ १२ ॥
 शुक्रकाश्यं शुक्रनाशः शुक्रस्यातिप्रवर्तनम् ।
 अनवस्थितचित्तत्वं काठिन्यं विरसास्यता ॥ १३ ॥
 कषायवक्त्रताऽऽध्मानं प्रत्याध्मानं च शीतता ।
 रोमहर्षश्च भीरुत्वं तोदः कण्डू रसाज्ञता ॥ १४ ॥
 शब्दाज्ञता प्रसुप्तिश्च ८० गन्धाज्ञत्वं च गदूदः ।
 एवंविधानि रूपाणि करोति पवनो बली ॥ १५ ॥

वाग्भट्टात्—

वायुरायुर्बलं वायुर्वायुर्धाता शरीरिणाम् ।
 वायुर्विश्वमिदं सर्वं प्रमुर्वायुः प्रकीर्तितः ॥ १६ ॥
 हेतुस्थानविशेषाच्च भवेद्रोगविशेषकृत् ।
 तत्र कोष्ठाश्रिते दुष्टे निग्रहो मूत्रवर्चसोः ॥ १७ ॥
 बध्नहृद्रोगगुल्मार्शःपार्श्वशूलं च मारुते ।
 सर्वाङ्गकुपिते वाते गात्रस्फुरणैर्मञ्जनम् ॥ १८ ॥
 वेदनाभिः परीताश्च स्फुटन्तीवास्य संधयः ।

गुदस्थितमाह—

ग्रहो विण्मूत्रवातानां शूलाध्मानाश्मशर्कराः ॥ १९ ॥
 जङ्घोरुत्रिकपाँत्युष्ठरोगाः शोथो गुदस्थिते ।

आमाशयस्थितमाह—

रुक्पाश्वोदरहृन्नाभौ तृष्णोद्गारविषूचिकाः ॥ २० ॥
 कासः कण्ठास्यशोषश्च श्वासश्चाऽऽमाशयस्थिते ।

पक्वाशयस्थमाह—

पक्वाशयस्थोऽन्त्रकूजं शूलाटोपौ करोति च ॥ २१ ॥

प्रकोपमाह—

कृच्छ्रमूत्रपुरीषत्वमानाहं त्रिकवेदनाम् ।
 श्रोत्रादिष्विन्द्रियवधं कुर्यात्कुन्द्रः समीरणः ॥ २२ ॥

त्वग्गतमाह—

त्वग्रूक्षा स्फुटिता सुप्ता कृशा कृष्णा च तुद्यते ।
आतन्यते सरागा च सर्वरुक्त्वग्गतेऽनिले ॥ २३ ॥

रुधिरगतमाह—

रुजस्तीव्राः ससंतापा वैवर्ण्यं कृशताऽरुचिः ।
गात्रे चारुंषि भुक्तस्य स्तम्भश्चासृग्गतेऽनिले ॥ २४ ॥

मांसमेदोगतमाह—

गुर्वङ्गं तुद्यते स्तब्धं दण्डमुष्टिहतं यथा ।
सरुक्विस्तमितमत्यर्थं मांसमेदोगतेऽनिले ॥ २५ ॥

मज्जास्थिस्थितमाह—

मेदोस्थिपर्वणां संधिगूलो मांसबलक्षयः ।
अस्वप्नः संतता रुक्च मज्जास्थिकुपितेऽनिले ॥ २६ ॥

शुक्रगतमाह—

क्षिप्रं मुञ्चति बध्नाति शुक्रं गर्भमथापि वा ।
विकृतिं जनयेच्चापि शुक्रस्थः कुपितोऽनिलः ॥ २७ ॥

शिरागतमाह—

कुर्याच्छिरागतः गूलं शिराकुञ्चनपूरणम् ।

स्नायुगतमाह—

बाह्याभ्यन्तरमायामं खलीं कुब्जत्वमेव वा ॥ २८ ॥
सर्वाङ्गैकाङ्गरोगांश्च कुर्यात्स्नायुगतोऽनिलः ।
हन्ति संधिगतः संधीञ्जूलशोथौ करोति च ॥ २९ ॥

कफावृतमाह—

प्राणे पित्तावृते छर्दिर्दाहश्चैवोपजायते ।
दौर्बल्यं सदनं तन्द्रा वैरस्यं च कफावृते ॥ ३० ॥
उदाने पित्तसंयुक्ते दाहो मूर्छा भ्रमः क्लमः ।
अस्वेदहर्षो मन्दग्निः शीतता च कफावृते ॥ ३१ ॥
स्वेददाहौष्ण्यमूर्छाः स्युः समाने पित्तसंयुते ।
कफेन सङ्गो विण्मूत्रे गात्रहर्षश्च जायते ॥ ३२ ॥

अपाने पित्तसंयुक्ते दाहौष्ण्ये रक्तमूत्रता ।
 अधःकाये गुरुत्वं च शीतता च कफावृते ॥ ३३ ॥
 व्याने पित्तावृते दाहो गात्रविक्षेपणं क्लमः ।
 गुरूणि सर्वगात्राणि स्तम्भनं चास्थिपर्वणाम् ॥ ३४ ॥
 लिङ्गं कफावृते व्याने शोषः स्तम्भस्तथैव च ।
 स्तम्भनाक्षेपणस्वापशोफशूलानि सर्वगे ॥ ३५ ॥
 स्तम्भनो दण्डकश्चापि शोफशूलौ कफावृते ।

आक्षेपकमाह—

यदा तु धमनीः सर्वाः कुपितोऽभ्येति मारुतः ॥ ३६ ॥
 तदाऽऽक्षिपत्याशु मुहुर्मुहुर्वेहं बहिर्ध्वरः ।
 मुहुर्मुहुस्तदाक्षेपादाक्षेपक इति स्मृतः ॥ ३७ ॥
 क्रुद्धः स्वैः कोपनैर्वायुः स्थानादूर्ध्वं प्रपद्यते ।
 पीडयन्हृदयं गत्वा शिरःशङ्खौ च पीडयेत् ॥ ३८ ॥

अपतन्त्रकमाह—

धनुर्बलमयेद्वात्राण्याक्षिपेन्मोहयेत्तथा ।
 स कृच्छ्रादुच्छ्वसेद्वाऽपि स्तब्धाक्षोऽथ निमीलकः ॥ ३९ ॥
 कपोत इव कूजे च निःसंज्ञः सोऽपतन्त्रकः ।

अपतानकमाह—

हृष्टिं संस्तभ्य संज्ञां च हत्वा कण्ठेन कूजति ॥ ४० ॥
 हृदि मुक्ते नरः स्वास्थ्यं याति मोहं वृते पुनः ।
 वायुना दारुणं प्रादुरेके तमपतानकम् ॥ ४१ ॥

अथ दण्डापतानकमाह—

कफान्वितो मृशं वायुस्तत्रैव यदि तिष्ठति ।
 स दण्डवत्स्तम्भयति कृच्छ्रो दण्डापतानकः ॥ ४२ ॥

तस्याऽऽयुः—

विवर्णबद्धवदनः सस्ताङ्गो नष्टचेतनः ।
 प्रस्विद्यंश्च धनुस्तम्भी दशरात्रं न जीवति ॥ ४३ ॥

धनुस्तम्भमाह—

धनुस्तुल्यं नमेद्यस्तु स धनुस्तम्भसंज्ञितः ।

व्रणायाममाह—

मर्माश्रितं व्रणं प्राप्य वायुर्यः सर्वदेहगः ॥ ४४ ॥

वेगैरानमयेद्देहं व्रणायामं तु तं त्यजेत् ।

बाह्याभ्यन्तरायामावाह—

अङ्गुलीगुल्फजठरहृद्वक्षोगलसंश्रितः ।

स्नायुप्रतानमनिलो यदाऽऽक्षिपति वेगवान् ॥ ४५ ॥

विष्टब्धाक्षः स्तब्धहनुर्मग्नपार्श्वः कफं वमन् ।

अभ्यन्तरं धनुरिव यदा नमति मानवः ॥ ४६ ॥

तदा सोऽभ्यन्तरायामं कुरुते मारुतो बली ।

बाह्यस्नायुप्रतानस्थो बाह्यायामं करोति च ॥ ४७ ॥

तमसाध्यं बुधाः प्राहुः पार्श्वकटचूरुभञ्जनम् ।

कफपित्तान्वितमाह—

कफपित्तान्वितो वायुर्वायुरेव च केवलः ॥ ४८ ॥

कुर्षादाक्षेपकं त्वन्यं चतुर्थमभिघातजम् ।

असाध्यत्वमाह—

गर्मपातनिमित्तश्च शोणितातिस्रवाच्च यः ॥ ४९ ॥

अभिघातनिमित्तश्च न सिध्यत्यपतानकः ।

पक्षघातमाह—

गृहीत्वाऽर्धं तनोर्वोयुः शिरास्नायुं विशोष्य च ॥ ५० ॥

पक्षमन्यतरं हन्ति संधिवन्धान्विमोक्षयन् ।

कृत्स्नोऽर्धकायस्तस्य स्यादकर्मण्यो विचेतनः ॥ ५१ ॥

एकाङ्गारोगं तं केचिदन्ये पक्षवधं विदुः ।

बाह्यपित्तसमन्वितमाह—

सर्वाङ्गरोगं तद्वच्च सर्वकायाश्रितेऽनिले ॥ ५२ ॥

दाहसंतापमूर्च्छाः स्युर्वायौ पित्तसमन्विते ।

शैत्यशोफगुरुत्वानि तस्मिन्नेव कफावृते ॥ ५३ ॥

शुद्धवातहतं पक्षं कृच्छ्रसाध्यतमं विदुः ।

साध्यमन्येन संयुक्तमसाध्यं क्षयहेतुकम् ॥ ५४ ॥

पक्षाघातासाध्यत्वमाह—

गर्भिणीसूतिकाबालवृद्धक्षीणेष्वसृक्क्षये ।
पक्षाघातं परिहरेद्वेदनारहितो यदि ॥ ५५ ॥

अर्दितमाह—

उच्चैर्व्याहरतोऽत्यर्थं खादतः कठिनानि वा ।
हसतो जृम्भमाणस्य विषमाच्छयनासनात् ॥ ५६ ॥
शिरोनासोष्ठचिबुकललाटेक्षणसंधिषु ।
अर्दयत्यनिलो वक्त्रमर्दितं जनयत्यतः ॥ ५७ ॥
वक्त्री भवति वक्त्रार्धं ग्रीवा चाप्यपवर्तते ।
शिरश्चलति वाक्सङ्गो नेत्रादीनां च वैकृतम् ॥ ५८ ॥
ग्रीवाचिबुकदन्तानां यस्मिन्पार्श्वे च वेदना ।
तमर्दितमिति प्राहुर्व्याधिं व्याधिविशारदाः ॥ ५९ ॥
वातात्पितात्कफाच्चापि स्यान्निधा स समासतः ।
लालातिप्रस्रवः कम्पः प्रस्फुरन्हनुसंग्रहः ॥ ६० ॥
ओष्ठयोः श्वयथुः शूलमर्दिते वातजे भवेत् ।
पीतमङ्गं ज्वरस्तृष्णा पित्तजे मोहधूपने ॥ ६१ ॥
गण्डे शिरसि मन्यायां शोषः स्तम्भः कफात्मके ।
*भावितं लक्षणं तस्य वेपथुर्नेत्रमाविलम् ॥ ६२ ॥

अर्दितस्य वर्षावधिमाह—

क्षीणस्यानिमिषाक्षस्य प्रसक्ताव्यक्तमाषिणः ।
न सिध्यत्यर्दितं गाढं त्रिवर्षं वेपनस्य च ॥ ६३ ॥

हनुग्रहमाह—

गते वेगे भवेत्स्वास्थ्यं सर्वेष्वक्षेपकादिषु ।
जिह्वानिलैरवनाच्छुष्कमक्षणादभिघाततः ॥ ६४ ॥
कुपितो हनुमूलस्थः संश्रयित्वाऽनिलो हनुम् ।
करोति विवृतास्यत्वमथ वा संवृतास्यताम् ॥ ६५ ॥
हनुग्रहः स तेन स्यात्कृच्छ्राच्चर्वणमाषणम् ।

मन्यास्तम्भमाह—

दिवास्वप्नासनस्थानविवृताध्वनिरीक्षणैः ॥ ६६ ॥
मन्यास्तम्भं प्रकुरुते स एव श्लेष्मणाऽन्वितः ।

जिह्वास्तम्भमाह—

वाग्वाहिनीशिरासंस्थो जिह्वां स्तम्भयतेऽनिलः ॥ ६७ ॥
जिह्वास्तम्भः स तेनान्नपानवाक्येष्वनीशता ।

शिरोग्रहमाह—

रक्तमाश्रित्य पवनः कुर्यान्मूर्धधराशिराः ॥ ६८ ॥
रक्षाः सवेदनाः कृष्णाः सोऽसाध्यः स्याच्छिरोग्रहः ।

गृध्रसीमाह—

स्फिक्पूर्वकटिपृष्ठोरुजानुजङ्घापदं क्रमात् ॥ ६९ ॥
गृध्रसी स्तम्भरुक्तोदैर्गृह्णाति स्पन्दते मुहुः ।
वाताद्वातकफात्तन्द्रा गौरवारोचकान्विता ॥ ७० ॥

विश्वाचीमाह—

तैलं प्रत्यङ्गुलीनां याः कण्डरा बाहुपृष्ठतः ।
बाह्वोः कर्मक्षयकरी विश्वाची वेदनोच्यते ॥ ७१ ॥

क्रोष्टुकशीर्षमाह—

वातशोणितजः शोथो जानुमध्ये रुजाकरः ।
ज्ञेयः क्रोष्टुकशीर्षस्तु स्थूलक्रोष्टुकशीर्षवान् ॥ ७२ ॥

खञ्जपङ्गू आह—

बायुः कट्याश्रितः सक्थः कण्डरामाक्षिपेद्यदा ।
खञ्जस्तदा भवेज्जन्तुः पङ्गुः सक्थोर्द्वयोर्वधात् ॥ ७३ ॥

कलायखञ्जमाह—

प्रक्रामन्वेपते यस्तु खञ्जस्त्रिव च गच्छति ।
कलायखञ्जं तं विद्यान्मुक्तसंधिप्रबन्धनम् ॥ ७४ ॥

वातकण्टकमाह—

रुक्षादे विषमे न्यस्ते श्रमाद्वा जायते यदा ।
वातेन गुल्फमाश्रित्य तमाहुर्वातकण्टकम् ॥ ७५ ॥

पाददाहमाह—

पादयोः कुरुते दाहं पित्तासृक्सहितोऽनिलः ।
विशेषतश्चङ्क्रमतः पाददाहं तमादिशेत् ॥ ७६ ॥

पादहर्षमाह—

हृष्येते चरणौ यस्य भवेतां वाऽपि सुप्तकौ ।

पादहर्षः स विज्ञेयः कफवातप्रकोपजः ॥ ७७ ॥

अवबाहुकमाह—

अंसदेशस्थितो वायुः शोषयित्वाऽसबन्धनम् ।

शिराश्चाऽऽकुक्ष्य तत्रस्थो जनयत्यवबाहुकम् ॥ ७८ ॥

मूकमिमिणगद्गदानाह—

आवृत्य वायुः सकफो धमनीं शब्दवाहिनीम् ।

नरान्करोत्यक्रियकान्मूकमिमिणगद्गदान् ॥ ७९ ॥

तूनीमाह—

अधो या वेदना याति वर्चोमूत्राशयोत्थिता ।

मिन्दतीव गुदोपस्थं सा तूनी नामतः स्मृता ॥ ८० ॥

प्रतूनीमाह—

गुदोपस्थे स्थिता चैव प्रतिलोमं प्रधाविता ।

वेगैः पक्काशयं याति प्रतितूनीति सोच्यते ॥ ८१ ॥

आध्मानमाह—

साटोपमत्युग्ररुजमाध्मानमुदरे भृशम् ।

आध्मानमिति जानीयाद्घोरं वातनिरोधजम् ॥ ८२ ॥

प्रत्याध्मानमाह—

विमुक्तपार्श्वहृदयं तदेवाऽऽमाशयोत्थितम् ।

प्रत्याध्मानं विजानीयात्कफव्याकुलितानिलम् ॥ ८३ ॥

वाताष्ठीलामाह—

नामेरधस्तात्संजातः संचारी यदि वाऽचलः ।

अष्ठीलावद्वधनो ग्रन्थिरूर्ध्वमायत उन्नतः ॥ ८४ ॥

वाताष्ठीलां विजानीयाद्बहिर्भागावरोधिनीम् ।

प्रत्यष्ठीलामाह—

एतामेव रुजायुक्तां वातविण्मूत्ररोधिनीम् ॥ ८५ ॥

प्रत्यष्ठीलामिति वदेज्जठरे तिर्षगुत्थिताम् ।

वेपथुमाह—

मारुते विगुणे वस्तौ मूत्रं सम्यक्प्रवर्तते ॥ ८६ ॥
विकारा विविधाश्चापि प्रतिलोभे भवन्ति हि ।
सर्वाङ्गकम्पः शिरसो वायुर्वेपथुसंज्ञकः ॥ ८७ ॥

ऊर्ध्ववातमाह—

सह्यी च पादजङ्घोरुकरभूलावमोटिनी ।
अधः प्रतिहतो वायुः श्लेष्मणा मारुतेन वा ॥ ८८ ॥
करोत्युद्गारबाहुल्यमूर्ध्ववातः स कथ्यते ।
स्थाननामानुरूपैश्च लिङ्गैः शेषान्विनिर्दिशेत् ॥ ८९ ॥
सर्वेष्वेतेषु संसर्गं पित्ताद्यैरुपलक्षयेत् ।
हनुस्तम्भार्दिताक्षेपपक्षाघातापतानकाः ॥ ९० ॥
कालेन महता वाता यत्नात्सिध्यन्ति वा न वा ।
नवान्वलवतस्त्वेतान्साधयेन्निरुपद्रवान् ॥ ९१ ॥

असाध्यत्वमाह—

विसर्पदाहरुक्सङ्गमूर्छारुच्यग्निमार्दवैः ।
क्षीणमांसबलं वाता घ्नन्ति पक्षवधादयः ॥ ९२ ॥
शूनं सुप्तत्वचं मङ्गं कम्पाध्माननिपीडितम् ।
रुजार्तिमन्तं च नरं वातव्याधिर्विनाशयेत् ॥ ९३ ॥
अव्याहतगतिर्यस्य स्थानस्थः प्रकृतौ स्थितः ।
वायुः स्यात्सोऽधिकं जीवेद्वीतरोगः समाः शतम् ॥ ९४ ॥

इति वातव्याधिनिदानम् ।

अथैतच्चिकित्सा—

अभ्यङ्गः स्वेदनं वस्तिर्नस्यं स्नेहो विरेचनम् ।
स्निग्धाम्ललवणं स्वादु वृष्यं वातामयापहम् ॥ ९५ ॥

अथ यूषः—

पटोलकफलैर्यूषो वृष्यो वातहरो लघुः ।
वात्प्यालककृतो यूषः परं वातविनाशनः ॥ ९६ ॥

मधुरलवणसाम्लस्निग्धनस्योष्णनिद्रा

गुरुरविकरवस्तिस्वेदजं तर्पणानि ।

दहनजलदरोषाभ्यङ्गसंमर्दनानि

प्रकुपितपवमानं शान्तमेतानि कुर्युः ॥ ९७ ॥

पञ्चमूलीबलासिद्धं क्षीरं वातामयापहम् ।
 पित्तस्याऽऽवरके वातरोगे शीतोष्णमेषजम् ॥ ९८ ॥
 कफस्याऽऽवरके वायौ रूक्षोष्णं मक्ष्यमेषजम् ।
 केवले पवनव्याधौ स्निग्धोष्णं मक्ष्यमेषजम् ॥ ९९ ॥
 स्निग्धोष्णशीतरूक्षाद्यैर्वातजो यो न शाम्यति ।
 विकारस्तत्र विज्ञेयो दुष्टशोणितसंभवः ॥ १०० ॥
 बाजिगन्धाबलाशिगुदशमूलीमहौषधैः ।
 द्वे गृध्रनख्यौ रास्त्रा च गणो मातृतनाशनः ॥ १०१ ॥

अथ प्रदेहः—

आनूपमत्स्यामिषवेसवारैरुष्णैः प्रदेहः प्रवक्ष्यापहः स्यात् ।
 स्नेहैश्चतुर्भिर्दशमूलसिद्धैः स्यादौषधैश्चानिलद्वा प्रदेहः ॥ १०२ ॥

अथ वेसवारः—

निरस्थि पेषितं मांसं स्विन्नं गुडघृतान्वितम् ।
 कृष्णामरिचसंयुक्तं वेसवार इति स्मृतः ॥ १०३ ॥

अथ स्वेदः—

कार्पासास्थिकुलित्यकातिलयवैरेरण्डमाषातसी-
 वर्षाभूसणबीजकाञ्जिकयुतैरेकीकृतैर्वा पृथक् ।
 स्वेदः स्यादिति कूर्परोदरहनुस्फिक्पाणिपादाङ्गुली-
 गुल्फस्तम्भकटीरुजो विजयते सामाः समीरोद्भवाः ॥ १०४ ॥
 आमाशयस्थे त्वनिले प्रशस्तं प्राग्लङ्घनं दीपनपाचनं च ।
 प्रच्छर्दनं तीक्ष्णविरेचनं च पुराणमुद्गा यवशालयश्च ॥ १०५ ॥
 पूतीकपथ्यासटिपुष्कराणि बिल्वं गुडूची सुरदारु शुण्ठी ।
 विडङ्गपाठातिविषाकणाश्च काथास्त्रयः सामसमीरणघ्नाः ॥ १०६ ॥
 पक्काशयगते वायौ हितं स्नेहैर्विरेचनम् ।
 वस्तयः शोधनीयाश्च प्राश्याश्च लवणोत्तराः ॥ १०७ ॥
 कार्यो वस्तिगते वाते विधिर्वस्तिविशोधनः ।
 श्रोत्रादिषु प्रकुपिते कार्यो वातहरः क्रमः ॥ १०८ ॥
 स्नेहाम्यङ्गोपनाहांश्च मर्दनालेपनादि च ।
 त्वङ्मांसासृक्शिराग्राप्ते कुर्याद्भक्तविमोक्षणम् ॥ १०९ ॥

स्नेहोपनाहाग्निकर्मबन्धनोन्मर्दनानि च ।
 स्नायुसंध्यस्थिसंप्राप्ते कुर्याद्वाते विचक्षणः ॥ ११० ॥
 स्वेदोपनाहसंमर्दस्नेहनादिकमादरात् ।
 निगूढेऽस्थिगते घाते माणिमन्थेन दारिते ॥ १११ ॥
 नाडीं दृष्ट्वाऽस्थानि मिषक्चूषयेत्पवनं बली ।
 विरेको मांसमेदस्थे निरूहः शमनानि च ॥ ११२ ॥
 बाह्याभ्यन्तरगन्धैरस्थिमज्जगतं जयेत् ।
 शुक्रप्राप्तेऽनिले कार्यं शुक्रदोषचिकित्सितम् ॥ ११३ ॥
 वक्षस्त्रिकस्कन्धगतं वातं मन्यागतं तथा ।
 धमनं हन्ति नस्यं च कुशलेन प्रयोजितम् ॥ ११४ ॥
 माषबैलाशुक्रशिम्बीकचृणरास्नाश्वगन्धोरुशुकाणाम् ।
 *क्राथो नश्यति पीतो रामलवणान्वितः कोष्णः ॥ ११५ ॥
 अपनयति पक्षघातं मन्यास्तम्भं सकर्णनादरुजम् ।
 दुर्जयमार्दितवातं सप्ताहाज्जयति चावश्यम् ॥ ११६ ॥
 इति माषाद्रिसप्तकम् ।

अथ माषादिक्राथः—

माक्षिकं हिङ्गु सिन्धुत्थं जरणाद्यास्तु शाणिकाः ।
 क्राथे प्रदेयाः शिशिरे सर्वत्रैष विनिश्चयः ॥ ११७ ॥
 माषात्मगुप्तकैरण्डब्राह्मालकशृतं जलम् ।
 हिङ्गुसैन्धवसंयुक्तं पक्षाघातनिवारणम् ॥ ११८ ॥
 इति माषादिक्राथः ।

अथ रसोनसप्तकम्—

पलमर्धपलं वाऽपि रसोनस्य सुकुट्टितम् ।
 हिङ्गुगुजीरकसिन्धुत्थसौवर्चलकटुत्रिकैः ॥ ११९ ॥
 चूर्णितैर्माषकोम्मानैरवचूष्यं विलोडितम् ।
 यथाग्निं मक्षितं प्राप्ता रुबुक्राथानुपानतः ॥ १२० ॥
 दिने दिने प्रयोक्तव्यं मासमेकं निरन्तरम् ।
 वातामयं निहन्त्येव मर्दितं चापतन्त्रकम् ॥ १२१ ॥

* क. प्रातः पी° इतिपाठान्तरम् ।

एकाङ्गरोगिणां रोगं तथा सर्वाङ्गरोगिणाम् ।
 ऊरुस्तम्भं गृध्रसीं च शूलद्वन्द्वं कृमीनपि ।
 कटिपृष्ठामयं हन्याज्जाठरं च समीरणम् ॥ १२२ ॥

इति रसोनसप्तकम् ।

अथ माषोण्डरी—

नवनीतेन संयुक्तां खादेन्माषोण्डरीं नरः ।
 दुर्वारमर्दितं हन्ति सप्तरात्रान्न संशयः ॥ १२३ ॥

इति माषोण्डरी ।

अथ दशमूल्यादिकाथः—

दशमूलीबलामाषकाथं तैलाज्यमिश्रितम् ।
 सायं भुक्त्वाऽऽचरेन्नस्य विश्वाद्यां चावबाहुके ॥ १२४ ॥

इति दशमूल्यादिकाथः ।

अथ सहचरादिकाथः—

सहचरामरदारु सनागरं कथितमम्भसि तैलविमिश्रितम् ।
 पवनपीडितदेहगतिः पिबन्नुतविलम्बितगो भवतीच्छया ॥ १२५ ॥

इति सहचरादिकाथः ।

अथ दशमूलादिकाथः—

दशमूलस्य निर्यूहो हिङ्गुपुष्करचूर्णितः ।
 शमयेत्परिपीतस्तु वातं मिम्भिणिसंज्ञितम् ॥ १२६ ॥

इति दशमूलादिकाथः ।

अथ दशमूल्यादिः—

हनुग्रहे हनुस्तम्भे मन्यास्तम्भेऽर्दिते पिबेत् ।
 दशमूल्यम्मसा कृष्णां पिप्पल्याः स्वरसेन वा ॥ १२७ ॥

इति दशमूल्यादिः ।

अथ दारुषट्कम्—

बाहुशोषे पिबेज्जुक्त्वा सर्पिः कल्याणकं महत् ।
 हृदयं यदि वा पृष्ठमुन्नतं क्रमशः सरुक् ॥ १२८ ॥
 कुण्डो वायुर्यदा कुर्यात्तिदा तं कुब्जमादिशेत् ।
 वानघैर्नक्षत्रमन्या च नवं कुब्जमुपाचरेत् ॥ १२९ ॥

स्नेहैर्मांसरसैश्चापि प्रवृद्धं तं विवर्जयेत् ।
 पिप्पल्यादिरजस्तूनीप्रतितून्योः सुखाम्बुना ॥ १३० ॥
 रपिवेद्वा स्नेहलवणं सघृतं क्षारहिङ्गु वा ।
 आध्माने लेपनं पाणितापश्च फलवर्तयः ॥ १३१ ॥
 दारुहैमवतीकुष्ठशताह्वाहिङ्गुसैन्धवैः ।
 अम्लपिष्टैः सुखोष्णैश्च प्रदिह्यादुदरं भिषक् ॥ १३२ ॥
 दीपनं पाचनं चैवाऽऽध्मानघ्नं बस्तिशोधनम् ॥ १३३ ॥

इति दारुषट्कम् ।

अथ जिह्वास्तम्भे कल्याणकावलेहः-

प्रत्याध्माने तु वमनं लङ्घनं दीपनौषधम् ।
 बाह्यायामान्तरायामपार्श्वशूलकटिग्रहान् ॥ १३४ ॥
 खलीदण्डापतानौ च स्नेहस्वेदपुरैर्जयेत् ।
 ऊरुस्तम्भं जयेद्भूक्षस्वेदमर्दनकौशिकैः ॥ १३५ ॥
 जयेत्कलायखञ्जं तु हेतुत्यागरसोनतः ।
 माषतैलरसोनाभ्यां बाह्वोश्च परिवर्तनात् ॥ १३६ ॥
 वृशाङ्गघ्निमाषक्राथाञ्च जयेद्वैद्योऽवबाहुकम् ।
 वामनत्वाङ्गसंकोचमङ्गभेदग्रहव्यथाः ॥ १३७ ॥
 मर्दनैर्बस्तिभिः क्वाथैः स्वेदनैश्च भिषग्जयेत् ।
 अपतानव्रणायामौ स्नेहैर्वर्णचिकित्सितैः ॥ १३८ ॥
 अङ्गुरौक्ष्यस्तम्भकम्पकाश्चकापिश्यतोदने ।
 दौर्बल्ये स्फुरणे भ्रंशे स्नेहैर्मर्दनमिष्यते ॥ १४० ॥
 शुक्रकाश्ये शुक्रनाशे शुक्रस्यातिप्रवर्तने ।
 विद्वग्गृहे बद्धविद्वके च स्नेहगानं हितं मतम् ॥ १४१ ॥
 प्रलापे भीरुतायां च प्रसुप्तौ चित्तवैकृते ।
 स्वेदनाशे बलक्षये कौशिकः सघृतो हितः ॥ १४२ ॥
 शब्दाज्ञत्वे हृक्क्षये च गन्धाज्ञत्वे च जृम्भणे ।
 निद्रानाशेऽपि च शिरोबस्तिपानं च सर्पिषः ॥ १४३ ॥
 कषाणवक्त्रतायां च विरसास्यगदे तथा ।
 रसज्ञसामये चापि लेहः कल्याणको हितः ॥ १४४ ॥

शीततां रोमहर्षं च शिरापूरणमेव च ।
 कटुतिक्तैर्जयेद्वैद्यः स्नेहस्वेदनमर्दनैः ॥ १४५ ॥
 बाताप्रवृत्तिमुद्गारमन्त्रकूजनमेव च ।
 निरुहबस्तिनाऽथाङ्गकाठिन्यं स्नेहगाहनात् ॥ १४६ ॥
 प्रत्यष्ठीलाष्ठीलिकयोर्गुल्मेऽभ्यन्तरविद्रधौ ।
 क्रिया हिङ्गवादिचूर्णं च शस्यतेऽत्र विशेषतः ॥ १४७ ॥
 विश्वाच्यां खञ्जपङ्गवोश्च दाहे हर्षे च पाक्वयोः ।
 क्रोष्टुशीर्षविकारे च विकारे वातकण्ठके ॥ १४८ ॥
 शिरां यथोक्तां निर्वेध्य चिकित्साऽत्रानिलापहा ।
 जिह्वास्तम्भे क्रिया श्रेष्ठा सामान्योक्ता तु याऽर्दिते ॥ १४९ ॥
 शिरोग्रहे तु कर्तव्या शिरोगतमरुत्क्रिया ।
 सहरिद्रा वचा कुष्ठं पिप्पली विश्वभेषजम् ॥ १५० ॥
 अजार्जी चाजमोदा च यष्टी मधुकसैन्धवम् ।
 एतानि समभागानि श्लक्ष्णचूर्णानि कारयेत् ॥ १५१ ॥
 तच्चूर्णं सर्पिषाऽऽलोक्य प्रत्यहं भक्षयेन्नरः ।
 एकविंशतिरात्रेण भवेच्छ्रुतिधरो नरः ॥ १५२ ॥
 मेघदुन्दुभिनिर्घोषो मत्तकोकिलनिस्वनः ।
 जडगद्गदमूकत्वं लेहः कल्याणको जयेत् ॥ १५३ ॥

इति जिह्वास्तम्भे कल्याणकावलेहः ।

अथैरण्डबीजपायसः—

गुडूचीत्रिफलाकाथैर्गुग्गुलुः पिण्डितो वरः ।
 क्रोष्टुशीर्षं निहन्त्युच्चैः सेवितो मासमात्रतः ॥ १५४ ॥
 हृते रक्तेऽनिलहरो विधिः कृत्स्नः प्रशस्यते ।
 दशमूलीबलाराम्नागुडूचीविश्वभेषजम् ॥ १५५ ॥
 पिबेदेरण्डतैलेन गृध्रसीखञ्जपङ्गुषु ।
 विशोध्यैरण्डबीजानि पिष्ट्वा क्षीरे विपाचयेत् ।
 पायसः स कटीशूले गृध्रस्यां चौषधं परम् ॥ १५६ ॥

इत्यैरण्डबीजपायसः ।

अथ तैलादियोगः—

तैलं घृतं चाऽऽर्द्रकमातुलुङ्गयो रसं सचुक्रं सगुडं पिबेद्वा ।
 कट्यूरुपृष्ठत्रिकगुल्मशूलगृध्रस्युदावर्तहनुग्रहेषु ॥ १५७ ॥
 इति तैलादियोगः ।

अथ रास्नायो गुग्गुलुः—

रास्नायारस्तु पलं चैकं कर्षान्पञ्च च गुग्गुलोः ।

सर्पिषा वटकान्कृत्वा खादेद्गृध्रसिनाशनान् ॥ १५८ ॥

इति रास्नायो गुग्गुलुः ।

अथ हिङ्गवादिचूर्णम्—

हिङ्ग्वम्लत्रिपटूग्रषट्कटुसटीवृक्षाम्लदीप्याम्लिका

पाठाजाज्यजगन्धमूलहपुषाद्विक्षारसाराभयम् ।

हिध्माध्मानविवन्धवध्मकसनश्वासाग्निसादारुचि-

प्लीहाशोऽखिलशूलगुल्मगलहृद्रोगाश्मपाण्डुप्रणुत् ॥ १५९ ॥

इति हिङ्गवादिचूर्णम् ।

अथ गृध्रस्युत्तारणप्रकारः—

गृध्रस्यार्तस्य जङ्घायाः स्नेहस्वेदे कृते भृशम् ।

पञ्चां विमर्दितायाश्च सूक्ष्ममार्गेण गृध्रसीम् ॥ १६० ॥

अवतार्याङ्गुलौ सम्यक्कनिष्ठायां शनैः शनैः ।

ज्ञात्वा समुन्नतिं ग्रन्थि कण्डरायां व्यवस्थितम् ॥ १६१ ॥

तं शस्त्रेण विदार्याऽऽशु प्रवालाङ्कुरसंनिभम् ।

समुद्धृत्याग्निना दग्ध्वा लिम्पेद्यष्ट्याह्वचन्दनैः ॥ १६२ ॥

इति गृध्रस्युत्तारणप्रकारः ।

अथ शिरावेधविधिः—

विध्योच्छिरामिन्द्रबस्तेरधस्ताच्चतुरङ्गुले ।

यदि नोपशमं गच्छेद्दहेत्पादकनिष्ठिकाम् ॥ १६३ ॥

इति शिरावेधविधिः ।

अथाऽऽदित्यगुग्गुलुः—

तैलमेरण्डजं वाऽपि गोमूत्रेण पिबेन्नरः ।

मासमेकं प्रयोगोऽयं गृध्रस्यूरुग्रहापहः ॥ १६४ ॥

रक्तावसेचनं कुर्यादभीक्ष्णे वातकण्टके ।

पिबेदेरण्डतैलं वा दहेत्सूचीभिरेव वा ॥ १६५ ॥

दशमूलीकषायेण पिबेद्वा नागराम्भसा ।

कटिशूलेषु सर्वेषु तैलमेरण्डसंभवम् ॥ १६६ ॥

पृथक्पलांशा त्रिफला पिप्पली च विचूर्णिता ।
 दशमूलाम्बुना भाव्या त्वगेलार्धपलान्विता ॥ १६७ ॥
 दत्त्वा पञ्च पलान्यत्र गुग्गुलोर्वटकीकृतः ।
 एष मांसरसाभ्यासाद्वातरोगानशेषतः ॥ १६८ ॥
 हान्ति मन्यास्थिमज्जस्थान्वृत्रमिन्द्राशनिर्यथा ।
 लेहवद्विगुणेनायमालोड्याऽऽलोड्य चाऽऽतपे ॥ १६९ ॥
 दशमूलाम्बुना शोष्यः सप्तवारांस्तु गुग्गुलुः ।
 माध्यवस्तुसमं काथ्यं काथोऽष्टांशशृतेन च ।
 आर्द्रं यावद्विनं भाव्यं सप्ताहं भावनाविधिः ॥ १७० ॥

इत्यादित्यगुग्गुलुः ।

अथ त्रयोदशाङ्गो गुग्गुलुः—

आमाऽश्वगन्धा हपुषा गुडूची
 शतावरी गोक्षुरकं सरास्ना ।
 श्यामा सठी घोषवती यवानी
 सनागरा चेति समं विचूर्ण्य ॥ १७१ ॥
 सर्वैः समं गुग्गुलुमत्र दत्त्वा
 कुर्यात्ततोऽर्धं प्रणिधाय सर्पिः ।
 अर्धाक्षमात्रा गुटिकास्ततोऽस्य
 कार्याः पुरस्याथ दिनाननेऽद्यात् ॥ १७२ ॥
 एकां ससर्पिर्मधुना यथा न
 स्पर्शो भवेद्दन्तततेः कथंचित् ।
 ततः कवोष्णं सलिलं सुरां वा
 गव्यं पयो वाऽप्यथ मुद्गयूषम् ॥ १७३ ॥

किंवा रसं मांसभवं निपीय लवङ्गमेकं वदने निदध्यात् ।
 कटिग्रहे गृध्रसिबाहुपृष्ठे हनुग्रहे जानुपदग्रहे च ॥ १७४ ॥
 संधिस्थिते चास्थिगते समीरे मज्जाश्रिते स्नायुगतेऽतिदुष्टे ।
 शूलद्वये पार्श्वशिरोरुजायां मन्याग्रहे कण्ठहृदि ग्रहे च ।
 त्रयोदशाङ्गोऽयमतिप्रशस्तो जयेद्गुदान्वातकरुप्रभूतान् ॥ १७५ ॥

इति त्रयोदशाङ्गो गुग्गुलुः ।

अथ महारास्नादिकाथः—

रास्ना त्रिः पृथगेकभागमपरं सैर्याब्दयासामृता-

श्वोग्रा दार्ढ्यमयार्ग्वधक्षुरसटीशुण्ठीकणा वेलुरी ।

व्याड्यौ धौड्यविषावरीवृषबलैरण्डं विशाखो मिशि-

श्वव्यं चेति शृतं सविश्वमनिले सामे रुबुस्नेहयुक् ॥१७६॥

इति महारास्नादिकाथः ।

अथ योगराजो गुग्गुलुः—

वेष्टालाहिङ्गविमाह्वावृकिजरणविषापञ्चकोलाजमोदा

मूर्वोग्राकौन्तिभार्गीन्द्रजकटुपटुकाभ्यो वरा द्विः पुरन्निः ।

सक्षौद्रो योगराजो ग्रहणिचलजराबीजपाण्डूवर्तिहृदुक-

त्वमुद्धोहवणाशोरुचिखुडकसनापस्मृतिश्वासशोषे ॥ १७७ ॥

इति योगराजो गुग्गुलुः ।

अथ रास्नाद्यो गुग्गुलुः—

रास्नासुतैरण्डसुराह्वविश्वं तुल्येन गाढं पुरुणा विमर्द्य ।

स्वादेत्समीरी स शिरोगदी च नाडीवणी चापि भगंदरी च ॥१७८॥

इति रास्नाद्यो गुग्गुलुः ।

अथ द्वात्रिंशको गुग्गुलुः—

त्रिकटु त्रिफला मुस्तं विडङ्गं चव्यचित्रकौ १

वचैलापिप्पलीमूलं हपुषा सुरदारु च ॥ १७९ ॥

तुम्बरुं पौष्करं कुष्ठं विषा च रजनीद्वयम् ।

बाष्पिका जीरिकं शुण्ठी पत्रं च सदुरालभम् ॥ १८० ॥

सौवर्चलं विडं चैव क्षारौ द्विरदपिप्पली ।

सैन्धवं च समानेतान्कृत्वा तुल्यं च तैः पुरम् ॥ १८१ ॥

साधयित्वा विधानेन कोलमात्रां वटीं चरेत् ।

घृतेन मधुना वाऽपि मक्षयेत्तामहर्मुखे ॥ १८२ ॥

आमं हन्यादुदावर्तमन्त्रवृद्धिं कृमीन्रुजः ।

महाज्वरोपसृष्टानां भूतोपहतचेतसाम् ॥ १८३ ॥

अनाहोन्मादकुष्ठानि पार्श्वशूलहृदामयान् ।

गृध्रसीं च हनुस्तम्भं पक्षाघातापतानकान् ॥ १८४ ॥

शोफं प्लीहानमत्युग्रकामलामपचीमपि ।
नाम्ना द्वात्रिंशको ह्येष गुग्गुलुः कथितो महान् ।
धन्वन्तरिकृतो योगः सर्वरोगनिषूदनः ॥ १८५ ॥

इति द्वात्रिंशको गुग्गुलुः ।

अथ लघुविषगर्भतैलम्—

तैलाढकं समतुषाम्बु हयारिहेमनिर्गुण्डि-
भास्करशिफाशृतया तु सिद्धम् ।
धत्तूरकुष्ठकलिनीविषहेमद्वुग्धा-
रास्नाहयारिकटमीमरिचोपचित्राः ॥ १८६ ॥
मांसीवचादहनसर्षपदेवदारु-
दावीनिशारुबुजतृत्रिफलासमङ्गाः ।
पिष्ट्वा क्षिपेत्पलमिता विषगर्भमेत-
त्तैलं समस्तपवनामयनाशनं स्यात् ॥ १८७ ॥

इति लघुविषगर्भतैलम् ।

अथातिप्रसारिणीतैलम्—

सारिण्यश्वात्शङ्खघ्निकटुवरिबलासैर्यवृश्चीकरास्ना-
छिन्नागुतास्तुलांशा यवबदरकुलत्थाढकान्धनिकुम्भे ।
पक्त्वा वा तैलपात्रे समपयसि घटे चाऽऽढकैर्मूलकाम्भः
शुक्तं मस्त्वारनालं दधिसर इति तैः शौक्तिकै रुद्धनताब्दैः ॥ १८८ ॥
स्पृष्टोऽग्राहवर्गानिलसरलसटीबोलगालत्रिजातै-
र्यष्टीशृङ्गाटसिंहेमकणनखनिशादान्तदारुद्विदीप्यैः ।
मांसीषट्कद्विजाजीबिसनलकृमिजिञ्चोरशृङ्गीकसेरु-
क्षारायोमूलरास्नात्रिपटुमिशिहिमैः सारिणीतैलमेतत् ॥ १८९ ॥
जृम्भोद्धारजराखुडक्षयरुजापस्मारमङ्गक्षता-
ध्मानोन्मादमनोनिलश्रुतिशिरस्त्वग्बीजवाग्भ्याधिषु ॥

इत्यतिप्रसारिणीतैलम् ।

अथ महामाषायं तैलम्—

माषोमासणबीजसैर्यकयवक्षुद्रात्रिकण्टार्धमी-
कार्पासास्थिकुलत्थटुण्डबदराजकाथमस्त्वम्लकैः ॥ १९० ॥

व्योषोग्रामिशिसिन्धुगालसरणीरास्नानताश्वारुणा-
 पाठाकिंजविशाखपुष्करबलाचण्डामुराजक्षुरैः ।
 सच्छिन्नोरुबुमाषतैलमथ वा चार्धाङ्गशोषापता-
 नाक्षेपाद्यमरुच्चिकाधैपचिरुग्दोर्मर्दकम्पार्दितैः ॥ १९१ ॥
 इति महामाषाद्यं तैलम् ।

अथ शतावरीतैलम्—

काणाश्वामिसिमांसिशैलनतरुद्धेदाविशाखारुणा-
 रास्नैलोम्रबलास्थिराहिमसुरैस्तुल्ये वरीवारिणि ।
 क्षीरे च द्विरमीरुतैलमनिलव्याधौ खुडे वर्ध्मनि
 क्षीणे कुष्ठजरास्यशोषबधिरव्यङ्गास्रपित्तज्वरे ॥ १९२ ॥
 इति शतावरीतैलम् ।

अथ महाबलातैलम्—

युक्पञ्चाङ्गघिकुलत्थकोलयवकैस्तैलं बलाम्मः पर्यो-
 शोऽशः षट् षड्विदं पचेत्पटुवरीरक्ताविदारीनतैः ।
 गोपीयुष्मिशिदारुजीवनबलावृद्धत्रिजातागरु-
 श्रेष्ठाबोलविशाखसर्जरसलोम्राश्वजटारुगिभैः ॥
 सूतीबालमरुद्गगार्तिषु बलातैलं ज्वरोन्मादयो-
 मूर्त्राघातहतास्थिमर्मकसने गुल्मान्त्रवृद्धिक्षये ॥ १९३ ॥
 इति महाबलातैलम् ।

अथ नारायणं तैलम्—

व्याध्यौ पञ्चाङ्गघिनिम्बक्षुरसरणिबले कूरवाहौ बहेयं (?)
 पत्कोऽयं ताम्रमध्येऽङ्गघिसमवरिचतुर्गोपयस्तेन पात्रम् (?) ।
 तैलं व्याम्राश्वरास्नामिसिनतजटिलादारुरुक्पर्णिशीतो-
 ग्रावृद्धैलाबलाक्षैः पच पवनगदध्वंसि नारायणाख्यम् ॥ १९४ ॥
 इति नारायणं तैलम् ।

अथ जीवनारायणतैलपाठः—

बलाश्वगन्धाबृहतीश्वदंष्ट्राश्योनाकवाट्यालकषारिमद्राः ।
 क्षुद्रार्कठिल्लातिबलाग्निमन्थरास्नारणीकाः कपिकच्छुरा च ॥ १९५ ॥

१ ग. 'किंजवि' । २ ग. 'चण्डाः सुराजाक्षु' । ३ ग. 'वयवरु' । ४ ग. 'द्वौद्रे च' । ५ ग. 'क्त्वा पक्त्वाऽऽम्रम्' । ६ क. 'कपिल्ला' ।

निर्गुण्डिकैरण्डकुरण्टकानां मूलानि वर्षासरणीयुतानि ।
 मूलं विदध्यादथ पाटलानां संकुट्य पादांशतयोद्धृतानाम् ॥ १९६ ॥
 द्रोणद्वयं क्वाथ्यमिदं विकुट्य ताम्रे कटाहेऽप्यथ वाऽपि लौहे ।
 द्रोणैरपामष्टभिरेव पक्त्वा पादावशेषेण रसेन तेन ॥ १९७ ॥
 तैलाढकद्वन्द्वमथात्र दुग्धं छागं निदध्यादथ चापि गव्यम् ।
 क्रमात्पचेत्तैलमिदं प्रपूतं चतुर्गुणं भीरुरसं च दत्त्वा ॥ १९८ ॥
 पुनश्च पूतं विरचय्य कल्के दद्यादमीषां मृदुपिष्टमत्र ।
 रास्नाश्वगन्धामिसिदारुकुष्ठं पर्णीचतुष्कागरुकेसराणि ॥ १९९ ॥
 सिन्धूत्थमांसीरजनीद्वयं च शैलेयकं पुष्करचन्दनं च ।
 एलां सयष्टीं तगराब्दपत्रं भृङ्गाष्टवर्गं च जयापलाशम् ॥ २०० ॥
 वृश्चीवथौणेयकचोरकाख्यं मूर्वावचाकटफलपद्मकं च ।
 मृणालजातीफलकेतकीश्च सनागपुष्पं सरलं मुरां च ॥ २०१ ॥
 जीवन्तिकां चन्दनकं ह्युशीरं दुरालमां वानरिकां नखं च ।
 कैवर्तिकं तालशिरः सतिक्तं खर्जूरमुस्तं पृथगक्षमात्रम् ॥ २०२ ॥
 पलद्वयं नूतनकालमेण्याः पिष्ट्वा च तोयेन चतुर्गुणेन ।
 एणः कुरङ्गो हरिणो मयूरो गोधा शशः शल्लकचक्रवाकौ ॥ २०३ ॥
 वर्तारिलावौ वरतित्तिरी च ससारसक्रौञ्चककम्बुवर्णाः ।
 अजाः सकूर्माश्च हयः शृगालः सकर्कटाः कुक्कुटहंसकोकाः ॥ २०४ ॥
 धनेश्वरो मासकपेचकाद्या रोहीतपाठीनशिलीन्ध्रशृङ्गयः ।
 येऽन्येऽपि तोये शिशुमारमुख्या गुहाशया ये च मृगाधिपाश्च ॥ २०५ ॥
 भूमीचरा वस्तुमुखाश्च जीवा बिलेशयाद्याश्च बिलेशयेषु ।
 शाखाचराद्याश्च नमश्चराश्च तेषां तु यूषान्क्रमशो नियुञ्ज्यात् ॥ २०७ ॥
 निष्काथ्य तोयेन चतुर्गुणेन क्वाथं क्षिपेत्क्वाथ्यसमं पलानाम् ।
 पृथक्पृथक्तैलसमानमत्र सिद्धे सुगन्धं मिषगर्पयेच्च ॥ २०८ ॥
 कुरङ्गदपं नखमिन्दुसंज्ञं जातीफलं पाण्डुपटीरमेलाम् ।
 कालीयकञ्जोऽङ्गकसारसिह्मकाश्मीरकं कुन्दरु मण्डिकां च ॥ २०९ ॥
 सजातिकोशं नलदं सुपुष्पमुख्यं पुनर्धूपितमार्यधूपैः ।
 हैमेऽथ रौप्येऽप्यथ वाऽपि ताम्रे षात्रे निदध्यादिदमादरेण ॥ २१० ॥
 सिद्धेन मन्त्रेण च मन्त्रयित्वा रहस्यवेश्मन्यथ रक्षणीयम् ।
 संपूज्य धुण्डिं बहुकं कुमारीं वैद्यान्दिजान्गोहयहेमवस्त्रैः ॥ २११ ॥

स्वस्येन्दुताराबलमानुघस्त्रे शुभे मुहूर्तेऽस्य रसायनस्य ।
 आरम्भकार्येऽत्र स्तुयात्सवेदवादित्रयोपैः सह मङ्गलैश्च ॥ २१२ ॥
 संमर्दने नावनपानभोज्यानुवासने चाप्यवगाहने च ।
 शिरोक्षिकर्णस्फुटचस्तिकार्ये योज्यं भिषग्भिर्धरणीपत्नीनाम् ॥ २१३ ॥

अशीतिसंख्याननिलामर्षांश्च

पित्तोत्थितानाशु तदर्धसंख्यान् ।

श्लेष्मामयान्विंशतिसंख्ययाऽऽढ्यान्

दशाऽऽमयांश्च क्षतजङ्घभूतान् ॥ २१४ ॥

अष्टौ ज्वरान्विंशतिमेव मेहान्कुष्ठानि चाष्टादश पञ्च पाण्डून् ।

गूलद्वयं षड्विधयक्ष्मरोगवर्णानशेषानपि पार्श्वपीडाः ॥ २१५ ॥

अजीर्णमुन्मादमपस्मृतिं च भूतामयं छर्दिमुरक्षतं च ।

एकाङ्गशोषं सकलाङ्गशोषं बाधिर्यदृङ्नाशमथोदराणि ॥ २१६ ॥

श्वासान्कृमीन्कासविसर्पहिध्मा-

न्नाडीव्रणं गुल्मभगन्दरेषु ।

किं वा बहूक्तेन स नास्ति रोगो

ह्ययं निहन्यादिह तैलमेतत् ॥ २१७ ॥

षण्ठः पुंस्त्वं पुत्रमाप्नोति वन्ध्या

पङ्क्तुः पादौ कान्तिहीनस्तु कान्तिम् ।

अन्धो दृष्टिं दुर्बलः पुष्टिमुच्चै-

र्मेधाहीनो वाक्पतित्वं मनुष्यः ॥ २१८ ॥

अनेन सिक्ताः सहसा भवन्ति

शुष्काश्चिरेणापि सनीलपत्राः ।

महीरुहाः किं पुनरस्य मर्त्याः

प्रभावतः पल्लवितेन्द्रियाः स्युः ॥ २१९ ॥

इति जीवनारायणं तैलम् ।

अथ शतावरीनारायणं तैलम्—

शतावरी चांशुमती पृश्निपर्णी सर्दी बला ।

एरण्डस्य च मूलानि बृहत्यौ पूतिकस्य च ॥ २२० ॥

गवेधुकस्य मूलानि तथा सहचरस्य च ।

एषां दशपलान्भागाञ्जलद्रोणे पचेद्बुधः ॥ २२१ ॥

पादावशेषे पूते च गर्भे चैनं समावपेत् ।
 पुनर्नवा वचा दारु शताह्वा चन्दनागुरु ॥ २२२ ॥
 शैलेयं तगरं कुष्ठं त्रुटिमांसी स्थिरा बला ।
 अश्वाह्वा सैन्धवं रास्ना मञ्जिष्ठाघनचोरकम् ॥ २२३ ॥
 कौन्ती प्रियङ्गु स्थौणेयं पलाथं कल्कयेत्पृथक् ।
 गव्याजपयसोः प्रस्थौ द्वौ द्वावत्र प्रयोजयेत् ॥ २२४ ॥
 शतावरीरसप्रस्थं तैलप्रस्थं भिषक्पचेत् ।
 लवङ्गनखकङ्कोलमल्लिकाजातिकोशकम् ॥ २२५ ॥
 त्वक्पत्रकं च कर्पूरं तुरुष्कं श्रीनिवासकम् ।
 स्पृक्कां कुङ्कुमकस्तूर्यौ दद्याद्वावतारिते ॥ २२६ ॥
 अस्य तैलस्य सिद्धस्य शृणु वीर्यमतः परम् ।
 अश्वानां वातरुग्णानां कुञ्जराणां तथा नृणाम् ॥ २२७ ॥
 तैलमेतत्प्रयोक्तव्यं सर्ववातविकारनुत् ।
 आयुष्मांश्च नरः पीत्वा निश्चयेन वृद्धो भवेत् ॥ २२८ ॥
 गर्भमश्वतरी विन्देत्किं पुनर्मानुषी तथा ।
 हृच्छूलं पार्श्वशूलं च तथैवाधावभेदकम् ॥ २२९ ॥
 अपर्चीं गण्डमालां च वातरक्तं हनुग्रहम् ।
 कामलामश्मरीं पाण्डुमुन्मादं च नियच्छति ॥ २३० ॥
 नारायणेन गदितं तैलमेतत्कृपालुना ।
 नारायणमिति ख्यातं नाम्ना तस्माद्विदं मुवि ॥ २३१ ॥

इति शतावरीनारायणं तैलम् ।

अथ दशविधशतावरीतैलं बौद्धसर्वस्वात्—

धरीरसे दशगुणे पक्वेऽत्र रससुन्दरम् ।
 प्राणदं विंशतिगुणे सिद्धं त्रिंशद्गुणे तु तत् ॥ २३२ ॥
 चत्वारिंशद्गुणे वीरं पञ्चाशद्गुणतोऽनिलम् ।
 रतिं षष्टिगुणे पूज्यं तस्मात्सप्ततिगुर्भवेत् ॥ २३३ ॥
 विधिं चाशीतिगुणतः सुधानवतिसंमुणान् ।
 पक्वे गुणे शातजीवनारायणगुणं तु तत् ॥
 धन्वन्तरिमते ख्यातं सर्वरोगनिकृन्तनम् ॥ २३४ ॥

इति दशविधशतावरीतैलं बौद्धसर्वस्वात् ।

अथ लघुनारायणं तैलम्—

एलाबलानंतकुचन्दनदारुसौम्या-

शैलेयकुष्ठकुटिलावरुणाभितेन ।

तैलं सदुग्धमिति सिद्धमभीरुकन्द-

तोयेन तेन तुलितेन समीरणघ्नम् ॥ २३५ ॥

इति लघुनारायणं तैलम् ।

अथ शतावरीतैलम्—

रुग्दारुद्रविडीप्रियङ्गुतगरत्वक्पत्रकौन्तीनखै-

मांसीसर्जरसाम्बुचन्दनवचाशैलेयलामज्जकैः ।

मञ्जिष्ठासरलागुरुद्विपबलाराम्नाश्वगन्धावरी-

वर्षाभूमिशिसिन्धुभिश्च सकलैरेभिः पचेत्कल्कितैः ॥ २३६ ॥

तुल्यं गोपयसा वरीरससमं तैलं विपक्वं मृदु

स्याद्वातघ्नमिदं नृणामिति वरीतैलं भिषक्पूजितम् ॥ २३७ ॥

इति शतावरीतैलम् ।

अथ दशमूलादितैलम्—

दशमूलकषायविपक्वमथो पयसा च समेन बलाब्दनखैः ।

शुट्टिचन्दनदारुलतानलदैरुणाजतुकुष्ठवचाकुटिलैः ॥ २३८ ॥

इति पक्वमिदं तिलजं जयति प्रसभं पवनामयमाशु नृणाम् ।

बलशुक्रविमारुचिवह्निकरं नृपवृद्धशिशुप्रमदासु हितम् ॥ २३९ ॥

इति दशमूलादितैलम् ।

अथ सुगन्धितैलम्—

तगरागुरुकुङ्कुमकुन्दुरुभिः सलवङ्गवराङ्गकुरङ्गमदैः ।

सरलामरदारुदलद्रविडीनखकेसररुङ्गनलिनीनलदैः ॥ २४० ॥

सतुरुष्कहरेणुबलाक्रथनैरिति तैलमिदं पयसा विपचेत् ।

नृपतिप्रमदाशिशुभिः स्थविरैरुपयोज्यमिदं पवनामयजित् ॥ २४१ ॥

इति सुगन्धितैलम् ।

अथैलादितैलम्—

एलामुरासरलशैलजदारुकौन्ती-

चण्डासटीनलदचम्पकहेमपुष्पम् ।

स्थौण्यगन्धरसपूतिदलामृणाल-

श्रीवासकुन्दुरुनखाम्बुवराङ्गकुष्ठम् ॥ २४२ ॥

कालीयकं जलदकर्कटचन्दनश्री-

जाल्याः फलं सविकसं सह कुङ्कुमेन ।

स्पृक्कातुरुष्कलघुलामतया विनीय

तैलं बलाकथनदुग्धदधिप्रपक्कम् ॥ २४३ ॥

मन्दानलेन हितमेतदुदाहरन्ति

वातामयेषु बलवर्णहुताशकारि ॥ २४४ ॥

इत्येलादितैलम् ।

अथ विष्णुतैलम्—

शालिपर्णी पृश्निपर्णी बला च बहुपुत्रिका ।

एरण्डस्य च मूलानि बृहत्याः पूतिकस्य च ॥ २४५ ॥

गवेधुकस्य मूलानि तथा सहचरस्य च ।

एतेषां पलिका मात्रा तैलप्रस्थं विवाचयेत् ॥ २४६ ॥

आजं चैवाथ गव्यं च क्षीरं दद्याच्चतुर्गुणम् ।

अस्य पक्कस्य तैलस्य शृणु वीर्यमतः परम् ॥ २४७ ॥

अश्वानां वातमग्नानां कुञ्जराणां तथैव च ।

अपुमांश्च नरः पीत्वा निश्चयेन पुमान्मवेत् ॥ २४८ ॥

हृच्छूले पार्श्वशूले च तथैवाधावमेदकम् ।

कामलापाण्डुरोगघ्नं शर्करामश्मरीं तथा ॥ २४९ ॥

क्षीणेन्द्रिया नरा ये च जरया जर्जरीकृताः ।

एषां वाऽपि क्षयो व्याधी रक्तवृद्धिश्च दारुणा ॥ २५० ॥

अर्दितं गलगण्डं च वातशोणितमेव च ।

स्त्रियो वा न प्रसूयन्ते तासां चैव प्रयोजयेत् ।

विष्णुना कथितं तैलं तस्माद्विष्णवभिधं स्मृतम् ॥ २५१ ॥

इति विष्णुतैलम् ।

अथ वातनाशनं तैलम्—

मेहस्वेदरसोनगुग्गुलुसुरारिष्टाज्यमांसासव-

क्वाथैर्वस्तिभिरुष्णवारिवसनाम्भोवेश्मभिर्मर्दनात् ।

नस्यैरुत्तरवस्तिभिश्च मृदुना रेकेण धीमान्मिषम्

वातव्याधिसुपाचरेदिह रसैरुक्तैश्च नानाविधैः ॥ २५२ ॥

रूक्षान्नशीतजलगाहनमैथुनानि

व्यायामशोकभयजागरसेवनानि ।

उष्ट्रादियानविषमाशनलङ्घनानि

वातामयी परिहरेदपि वातलानि ॥ २५३ ॥

यष्टिकाः खण्डशः कृत्वा खराङ्गारेषु संधमेत् ।

सिन्दूरवर्णास्तास्तैले क्षिप्त्वा तिष्ठेन्मुहूर्तकम् ॥ २५४ ॥

ततो निपीततैलास्तास्तत उद्धृत्य यत्नतः ।

सूक्ष्मखण्डास्ततः कृत्वा बिभीतामलकोपमान् ॥ २५५ ॥

अधश्चतुश्छिद्रयुतं कुम्भं ताभिः प्रपूरयेत् ।

पातालयन्त्रेण धिया तैलमासां समुद्धरेत् ॥ २५६ ॥

कस्तूर्यगरुनिर्यासतुरुष्कशशिकुङ्कुमैः ।

जातीकोशेन्दुमार्जारद्विडीतैलपर्णिकैः ॥ २५७ ॥

नखत्वङ्मुस्तपत्रैश्च भिषजा वासितं धिया ।

राजयोग्यमिदं तैलं सर्ववातामयापहम् ॥ २५८ ॥

बल्यं वृष्यतमं गोप्यं सर्ववातामयापहम् ।

वातादितानां सौख्याय यशसे भिषजामपि ॥ २५९ ॥

सद्यः प्रत्ययहेतोश्च भैरवेण प्रकाशितम् ।

बलवर्णवयस्थैर्यशौर्यकन्दर्पदर्पकृत् ॥ २६० ॥

बन्ध्यानां पुत्रदं पानात्षण्डानां पुंस्त्वदं परम् ।

मन्दाग्नेरग्निजननमपस्मारहरं तथा ॥ २६१ ॥

वातवाताशनं नाम्ना तैलं तैलेषु पूजितम् ॥

इति वातनाशनं तैलम् ।

अथ छागलाद्यं घृतम्—

आजं मांसं परित्यक्तचर्मशृङ्गखुरादिकम् ॥ २६२ ॥

पञ्चमूलीद्वयं चैव जलद्रोणे विपाचयेत् ।

तेन पादावशेषेण घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ २६३ ॥

जीवनीयैः सयष्ट्याह्वैः सक्षीरैः सवरीरसैः ।

छागलाद्यमिदं सर्पिः सर्ववातविकारजित् ॥ २६४ ॥

अर्दिते कर्णनादे च बाधिर्ये मूकमिमिम्भणे ।

जडगद्गदपङ्कगूनां खञ्जे गृध्रसिकुब्जयोः ॥ २६५ ॥

अपतानापतन्त्रे च प्रशस्तं चातिबृंहणम् ।

शकृद्रसं मांसरसं मूर्त्रं सौवीरकादिकम् ॥ २६६ ॥

स्नेहतुल्यं दधिक्षीरजलं चैव चतुर्गुणम् ।
इति छागलाघं घृतम् ।

त्वक्शून्यताया लक्षणमाह—

स्पृश्यमाना त्वचा या तु शीतोष्णं भृशकर्कशम् ॥ २६७ ॥
न जानाति बुधैस्त्वक्सा शून्येति परिकीर्त्यते ।
सुप्तवाते त्वसृङ्गोक्षं कारयेद्बहुशो भिषक् ॥ २६८ ॥
दिह्याच्च लवणागारधूमैस्तैलसमन्वितैः ।
आध्माने लङ्घनं पूर्वं दीपनं पाचनं ततः ॥ २६९ ॥
फलवर्तिक्रियां कुर्याद्वैस्तिकर्म च शोधनम् ।

अथ नारायणं चूर्णम्—

कर्षमात्रा भवेत्कृष्णा त्रिवृता स्यात्पलोन्मिता ॥ २७० ॥
खण्डादपि पलं ग्राह्यं चूर्णमेकत्र कारयेत् ।
मधुनाऽक्षमितं लिह्याच्चूर्णमाध्माननाशनम् ॥ २७१ ॥

इति नारायणं चूर्णम् ।

अथ रसाः—

महानाराचो रसः—

अमयाऽऽरग्वधो धात्री दन्ती तिक्ता स्नुही त्रिवृत् ।
मुस्ता प्रत्येकमेतानि ग्राह्याणि पलमात्रया ॥ २७२ ॥
तानि संक्षुद्य सर्वाणि जलाढकयुगे पचेत् ।
तत्र तोयेऽष्टमं भागं कषायमवशेषयेत् ॥ २७३ ॥
निस्त्वग्जैपालबीजानि नवानि पलमात्रया ।
तनुवस्त्रधृतान्येव तस्मिन्काथे शनैः पचेत् ॥ २७४ ॥
ज्वालेद्वदनलं मन्दं यावत्काथो घनो भवेत् ।
ततः खल्वे क्षिपेद्भागानष्टौ जैपालबीजतः ॥ २७५ ॥
भागांस्त्रीन्नागराद्द्वौ च मरिचाद्द्वौ च पारदात् ।
गन्धकाद्द्वौ च तानीह यावद्यामं विमर्दयेत् ॥ २७६ ॥
रसो नाराचनामाऽयं भक्षितो रक्तिकामितः ।
जलेन शीतलेनैव रोगानेतान्विनाशयेत् ॥ २७७ ॥
आध्मानं शूलमानाहं प्रत्याध्मानं तथैव च ।
उदावर्तं तथा गुल्ममुदराणि हरत्यसौ ॥ २७८ ॥

वेगे शान्ते स भुञ्जीत शर्करासहितं दधि ।

ततस्तत्सैन्धवेनापि ततो दध्योदनं मनाक् ॥ २७९ ॥

इति महानाराचो रसः ।

अथ वातनाशनो रसः—

सूतहाटकवज्राणि ताम्रं लोहं च माक्षिकम् ।

तालं नीलाञ्जनं तुथमहिफेनं समांशकम् ॥ २८० ॥

पञ्चानां लवणानां च भागमेकं विमर्दयेत् ।

वज्रीक्षीरैर्दिनैकं तु रुद्ध्वाऽधो भूधरे पचेत् ॥ २८१ ॥

माषैकमार्द्रकद्रावैर्लेहयेद्वातनाशनम् ।

पिप्पलीमूलजं क्वाथं सकृष्णमनुपाययेत् ॥ २८२ ॥

सर्वान्वातविकारांस्तु निहन्त्याक्षेपकादिकान् ।

इति वातनाशनो रसः ।

अथ स्वच्छन्दभैरवो रसः—

शुद्धसूतं मृतं लोहं ताम्रं गन्धं च तालकम् ॥ २८३ ॥

पथ्याग्निमन्थनिर्गुण्डीत्र्यूषणं टक्कणं विषम् ।

तुल्यांशं मर्दयेत्खल्वे दिनं निर्गुण्डिकाद्रवैः ॥ २८४ ॥

मुण्डीद्रावैर्दिनैकं तु द्विगुञ्जं वटकीकृतम् ।

भक्षयेद्वातरोगार्तो नाम्ना स्वच्छन्दभैरवः ॥ २८५ ॥

राम्नामृतादेवदारुशुण्ठीवातारिजं शृतम् ।

सगुग्गुलं पिबेत्कोष्णमनुपानं सुखावहम् ॥ २८६ ॥

इति स्वच्छन्दभैरवो रसः ।

अथ वातविध्वंसनो रसः—

रसं गन्धकं नागवङ्गौ च लोहं

तथा ताम्रजं व्योम निश्चन्द्रिकं च ।

कणाटक्कणं चोषणं नागरं वै

पृथग्भागमेकं विमर्द्यैकयामम् ॥ २८७ ॥

ततो वत्सनाभं चतुःसार्धभागं

दृढं मर्दयेद्भावना व्योषजा त्रिः ।

वरां चित्रकैर्माकैः कुष्ठतोयै-

स्तथा कारहाटैः सनिर्गुण्डितोयैः ॥ २८८ ॥

मनोधात्रिकैरार्द्रकैर्निम्बुनीरै-

स्त्रिमिर्भावयेद्वातविध्वंसनोऽयम् ।

समीरे च शूले महाश्लेष्मरोगे

ग्रहण्यां तथा संनिपाते च मौढ्ये ॥ २८९ ॥

अपस्मारमान्द्ये सशैत्ये सपित्तो-

दरप्लीहकुष्ठार्शसि स्त्रीगदे च ।

निषेवेत गुञ्जाद्वयं चास्य तत्त-

द्गदघ्नानुपानैरयं रोगजित्स्यात् ॥ २९० ॥

इति वातविध्वंसनो* रसः ।

अथ वातराक्षसपाठः—

सूतेन मारितं कान्तं शातकुम्भं निरुत्थकम् ।

सृतसूतं तथा गन्धं विषं चाभ्रकमेव च ॥ २९१ ॥

ताम्रं सुशोधितं सम्यङ्मारयित्वा समांशकम् ।

पुनर्नवा गुडूच्यग्निः सुरसा चाटरूषकः ॥ २९२ ॥

एतेषां च रसेनैव भावयेन्निदिनं पृथक् ।

दत्त्वा लघुपुटं सम्यक्स्वाङ्गशीतं समुद्धरेत् ॥ २९३ ॥

वातराक्षसनामाऽयं वातरोगे प्रयोजयेत् ।

तत्तद्रोगानुपानेन दीयतां गुञ्जमात्रया ॥ २९४ ॥

ऊरुस्तम्भे वातरक्त आमवाते तथैव च ।

गात्रमङ्गे धनुर्वीते वेदनावात एव च ॥ २९५ ॥

पक्ष्मघातं कम्पवातं सर्वसंधिगतं तथा ।

उन्मादं सुप्तिवातं च वातशूलं नियच्छति ।

तत्तद्रोगानुपानेनाशीतिवातान्नियच्छति ॥ २९६ ॥

इति वातराक्षसः ।

* रस इत्यस्याग्रेऽयं ग्रन्थः क. पुस्तके—

रसं गन्धं विषं चैव ताम्रं लोहं समांशकम् । एतत्सर्वं समं योज्यं विषं च द्विगुणं भवेत् ॥ १ ॥

जैपालं तालकं चैव रसेन समयोजयेत् । त्र्यूषणं च समं योज्यं सर्वमेकत्र चूर्णयेत् ॥ २ ॥

निर्गुण्डीसूरणद्रावैर्भानुपत्रद्रवैस्तथा । तर्कारीमृङ्गराजस्य तयोन्मत्तरसेन च ॥ ३ ॥

भावनाः खलु दातव्याः सप्त सप्त क्रमात्तथा । द्विगुञ्जं भक्षयेत्प्रातर्मरिचाज्येन संयुतम् ॥ ४ ॥

जानुजङ्घाकटीशूलं पाङ्गुल्य कोष्ठुशीर्षकम् । मन्यास्तम्भं त्रिकस्तम्भं हनुस्तम्भं च गृध्रसीम् ॥

अधोभागे च ये वाताः सर्वाङ्गे विचरन्ति ये । सर्वान्वातान्क्षपेदाशु दैत्याचारायणो यथा ॥

इति महाविध्वंसनो रसः ।

अथ द्वितीयो वातराक्षसः—

सूतमस्मकहिङ्गूलं वङ्गं च गगनं विषम् ।
 ताम्रं टङ्कणकं कान्तं मर्दयेन्निकटुद्रवैः ॥ २९७ ॥
 पश्चात्कुमारिकातोयैर्वर्षाभूक्काथमावितः ।
 पक्षाघातं हनुस्तम्भं मन्यास्तम्भं कटिग्रहम् ॥ २९८ ॥
 सर्वानाक्षेपकादींश्च वातव्याधींश्च नाशयेत् ।
 वातराक्षसनामाऽयं सर्ववातनिकृन्तनः ॥ २९९ ॥

इति द्वितीयो वातराक्षसः ।

इति श्रीयोगतरङ्गिण्यां वातनिदानचिकित्साकथनं नाम नवति-
 तमस्तरङ्गः ॥ ९० ॥

अथैकनवतितमस्तरङ्गः ।

अथ वातरक्तनिदानम्—

लघणाम्लकटुक्षारस्निग्धोष्णजीर्णभोजनैः ।
 क्लिन्नशुष्काम्बुजानूपमांसपिण्याकमूलकैः ॥ १ ॥
 कुलत्थमाषनिष्पावशाकादिपललेक्षुभिः ।
 दध्यारनालसौवीरसूक्ततक्रसुरासवैः ॥ २ ॥
 विरुद्धाध्यशनक्रोधदिवास्वप्नप्रजागरैः ।
 प्रायशः सुकुमाराणां मिथ्याहारविहारिणाम् ।
 स्थूलानां सुखिनां वाऽपि कुप्यते वातशोणितम् ॥ ३ ॥
 हस्त्यश्वोष्ट्रैर्गच्छतश्चाश्वतश्च विदाह्यन्नं सविदाहाशनस्य ।
 कृत्स्नं रक्तं विदहत्याशु तच्च दुष्टं स्रस्तं पादयोश्चीयते तु ॥ ४ ॥
 तत्संपृक्तं वायुना दूषितेन तत्प्राबल्यादुच्यते वातरक्तम् ॥ ५ ॥
 वातलैः शीतलैर्वायुर्वृद्धः क्रुद्धो विमार्गगः ।
 आह्वयवातं खुडं वातबलासं वातशोणितम् ॥ ६ ॥
 तादृशो वाऽसृजा रुद्धः प्राक्तदेव प्रदूषयेत् ।
 तमाहुर्नामभिस्तच्च पूर्वं पादौ प्रधावति ॥ ७ ॥
 विशेषाद्यानपानाद्यैः प्रलम्बौ तस्य लक्षणम् ।
 मविष्यतः कुष्ठसमं तथा सादः श्लथाङ्गता ॥ ८ ॥

स्वेदोऽत्यर्थं न वा कार्यं स्पर्शज्ञत्वं क्षतेऽतिरुक् ।
 संधिशैथिल्यमालस्यं सदनं पिङ्कोद्गमः ॥ ९ ॥
 जानुजङ्घोरुकट्यंसहस्तपादाङ्गसंधिषु ।
 निस्तोदः स्फुरणं मेदो गुरुत्वं सुप्तिरेव च ॥ १० ॥
 कण्डूः संधिषु रुग्दाहो भूत्वा नश्यति चासकृत् ।
 वैवर्ण्यं मण्डलोत्पत्तिर्वात सूक्ष्मपूर्वलक्षणम् ॥ ११ ॥

इति पूर्वरूपम् ।

अथ वातजम्—

वातेऽधिकेऽधिकं तत्र शूलस्फुरणतोदनम् ।
 वेदना विपरीताश्च स्फुटन्तश्चास्य संधयः ॥ १२ ॥
 शोफस्य रौक्ष्यं कृष्णत्वं श्यावतावृद्धिहानयः ।
 धमन्यङ्गुलिसंधीनां संकोचोऽङ्गग्रहोऽतिरुक् ॥ १३ ॥
 शीतद्वेषानुपशयौ स्तम्भवेपथुसुप्तयः ।
 रक्ते शोफोऽतिरुक्तोदस्ताम्रश्चिमिचिमायते ॥ १४ ॥
 त्निग्धरूक्षैः शमं नैति कण्डूक्लेदसमन्वितः ।

पित्तजमाह—

पित्तेऽतिदाहः संमोहः स्वेदो मूर्छा मदस्तृषा ॥ १५ ॥
 स्पर्शासहत्वं रुग्नागः शोफः पाको मृशोष्मता ।

कफजमाह—

कफे स्तैमित्यगुरुता सुप्तिस्निग्धत्वशीतता ॥ १६ ॥

द्वन्द्वजमाह—

कङ्कर्मन्दा च रुग्द्वन्द्वसर्वलिङ्गं तु संकरात् ।
 भूत्वा भूत्वा प्रणश्यन्ति पुनराविर्भवन्ति च ॥ १७ ॥
 पादयोर्मूलमास्थाय कदाचिद्धस्तयोरपि ।
 आखोरिव विषं क्रुद्धं कृत्स्नं देहं विसर्पति ॥ १८ ॥

याप्यत्वमाह—

आजानु स्फुटितं यच्च प्रमिश्रं प्रसृतं च यत् ।
 उपद्रवैश्च यज्जुष्टं प्राणमांसक्षयादिभिः ॥ १९ ॥

वातरक्तमसाध्यं स्याद्यश्चातिक्रान्तवत्सरम् ।
 अस्वप्नारोचकश्वासमांसकोथशिरोग्रहाः ॥ २० ॥
 मूर्च्छायां मन्दरुक्तृष्णाज्वरमोहप्रवेपकाः ।
 हिक्कायां गुल्मवीसर्पपाकतोदभ्रमक्कुमाः ॥ २१ ॥
 अङ्गुलीवक्रतास्फोटदाहमर्मग्रहार्बुदाः ।
 एतैरुपद्रवैर्युक्तं मोहेनैकेन वाऽपि यत् ॥ २२ ॥
 वातरक्तमसाध्यं स्याद्याप्यं संवत्सरोत्थितम् ।
 अकृत्स्नोपद्रवं याप्यं साध्यं स्यान्निरुपद्रवम् ॥ २३ ॥
 एकदोषानुगं साध्यं नवं याप्यं द्विदोषजम् ।
 त्रिदोषजमसाध्यं स्याद्यस्यैते स्युरुपद्रवाः ॥ २४ ॥

इति वातरक्तनिदामम् ।

अथ वातरक्तचिकित्सा—

वाताधिकं वातरक्तं स्नेहाद्यैः समुपाचरेत् ।
 रक्ताद्यं रक्तमोक्षाद्यैः पित्ताद्यं रेचनादिभिः ॥ २५ ॥
 कफाद्यं वमनाद्यैस्तु प्रोक्तैरत्रौषधैर्भिषक् ।
 वातशोणितिनो रक्तं स्निग्धस्य बहुशो हरेत् ॥ २७ ॥
 अल्पाल्पं रक्षयेद्वायुं यथादोषं यथाबलम् ।
 रुग्णागदाहतोदेषु जलौकाभिर्हरेदसृक् ॥ २८ ॥
 शृङ्गमुच्चैश्चिमिचिमाकण्डूरुग्वेदनान्वितम् ।
 प्रच्छन्ने तु शिराभिर्वा देशादेशान्तरं व्रजेत् ॥ २९ ॥
 अङ्गे म्लाने तु न स्नाव्यं रुक्षे वातोत्तरे त्वसृक् ।
 गम्भीरं श्वयथुं स्तम्भं कम्पं स्नायुशिरामयान् ॥ ३० ॥
 ग्लानिमन्यांश्च वातोत्थान्कुर्याद्वायुरसृक्क्षयात् ।
 विविधान्वातरोगान्वा मृत्युं वाऽत्यन्तशोषितम् ॥ ३१ ॥
 कुर्यात्तस्मात्प्रयत्नेन स्निग्धाङ्गे रक्तमोक्षणम् ।
 रेचयेत्स्नेहयित्वाऽऽदौ स्नेहयुक्तैर्विरेचनैः ॥ ३२ ॥

द्वैविध्यमाह—

वातरक्तं द्विधा ज्ञेयं गम्भीरोत्तानभेदतः ।
 त्वङ्मांसश्रयमुत्तानं गम्भीरं त्वितराश्रयम् ॥ ३३ ॥

विरेकास्थापनस्नेहैर्गम्भीरं तदुपाचरेत् ।

उत्तानं लेपनाभ्यङ्गपरिषेकावगाहनैः ॥ ३४ ॥

निषेधमाह—

दिवास्वप्नं च संतापं व्यायामं मैथुनं तथा ।

कटूष्णं गुर्वभिष्यन्दि लवणाम्लं च वर्जयेत् ॥ ३५ ॥

तस्यान्नमाह—

पुराणयवगोधूमनीवाराः शालिषट्टिकाः ।

आढक्यश्वणका मुद्गा मसूराः समकुष्ठकाः ॥ ३६ ॥

मांसमाह—

विष्किरप्रतुदानां च मांसं रसकृते हितम् ।

शाकान्नमाह—

सुनिषण्णकवेत्राग्रकाकमाच्यः शतावरी ॥ ३७ ॥

चास्तूकोषोदकाशाकं शाकं सौवर्चलं तथा ।

भक्ष्यार्थमाह—

मारीषमेघनादौ च पटोलद्वयसूरणम् ॥ ३८ ॥

धात्रीफलं शृङ्गवेरं भक्ष्यार्थं वातरक्तिनाम् ।

रूक्षैर्वा मृदुभिः शस्तमसकृद्भुक्तिकर्म च ॥

न हि बस्तिसमं किञ्चिद्वातरक्तचिकित्सितम् ॥ ३९ ॥

उमे शताह्वे मधुकं विशालां बलां प्रियालं च कसेरुयुग्मम् ।

घृतं विदारीं च सितोपलां च कुर्यात्प्रदेहं पवने सरक्ते ॥ ४० ॥

अथ वासादिकाथः—

वासागुडूचीचतुरङ्गुलानामेरण्डतैलेन पिबेत्कषायम् ।

क्रमेण सर्वाङ्गजमप्यशेषं जयेदसृग्वातमत्रं विकारम् ॥ ४१ ॥

इति वासादिकाथः ।

अथ मज्जिष्ठादिनवकार्षिककाथः—

दार्वीगुडूचीकटुकोग्रगन्धामज्जिष्ठनिम्बत्रिफलाकषायः ।

वातास्रमुच्चैर्नवकार्षिकाख्यो जयेच्च कुष्ठान्पखिलानि नृणाम् ॥ ४२ ॥

पञ्चरक्तिकमाषेणं योजयेन्नवकार्षिकम् ।

किं त्वेवं साधिते क्वाथे मात्रा योग्या प्रदीयते ॥ ४३ ॥

इति मञ्जिष्ठादिनवकार्षिकक्वाथः ।

गुडूच्यादिक्वाथः—

गुडूची बाकुची चक्रमर्दश्च पिचुमन्दकः ।

हरीतकी हरिद्रा च धात्री वासा शतावरी ॥ ४४ ॥

बला नागबला यष्टी मधुकं क्षुरकोऽपि च ।

पटोलस्य लतोशीरं मञ्जिष्ठा रक्तचन्दनम् ॥ ४५ ॥

गुडूच्यादिरयं क्वाथो वातरक्तान्तकारकः ।

कुष्ठानां श्रेष्ठसंहर्ता कण्डूमण्डलखण्डनः ॥ ४६ ॥

मुनिभिः करुणाकीर्णैः कषायोऽयं प्रकाशितः ।

इति गुडूच्यादिक्वाथः ।

अथ गुडूचीयोगः—

गुडूच्याः स्वरसः कल्कश्रूर्णं वा क्वाथ एव वा ॥ ४७ ॥

प्रभूतकालमासेव्यं मुच्यते वातशोणितात् ।

इति गुडूचीयोगः ।

अथ गुडूच्यादिक्वाथः—

वत्सादन्युद्भवः क्वाथः पीतो गुग्गुलुमिश्रितः ॥ ४८ ॥

समीरेण समायुक्तं शोणितं संप्रणाशयेत् ॥ ४९ ॥

इति गुडूच्यादिक्वाथः ।

अथ काश्मर्यादिक्वाथः—

तिस्रोऽथ वा पञ्चगुडेन पथ्या जग्ध्वा पिबेच्छिन्नरुहाकषायः ।

तद्वातरक्तं शमयत्युदीर्णं संजानुभिन्नं च्युतमप्यदृश्यम् ॥ ५० ॥

रक्तोत्तरे क्षीरकृतं मधुकोशीरवारिमिः ।

लेपनं शाल्मलीकल्कमविक्षीरेण संयुतम् ॥ ५१ ॥

सेवनं चात्र कर्तव्यमपि क्षीरैः क्षणे क्षणे ।

पित्तोत्तरे तु काश्मर्यद्राक्षारग्वधचन्दैः ॥ ५२ ॥

मधुकक्षीरकाकोलीयुक्तैः काथं सुशीतलम् ।

शर्करामधुसंयुक्तं वातरक्ते पिबेन्नरः ॥ ५३ ॥

इति काश्मर्यादिकाथः ।

अथ लघुमञ्जिष्ठादिकाथः—

मञ्जिष्ठोग्रावरातक्तानिशानिम्बामृतामरैः ।

सकुष्ठखदिरैः काथः सर्वकुष्ठानिलाञ्जयेत् ॥ ५४ ॥

इति लघुमञ्जिष्ठादिकाथः ।

अथ बृहन्मञ्जिष्ठादिः—

मञ्जिष्ठारिष्टवासात्रिफलदहनकं द्वे हरिद्रे गुडूची

भूनिम्बो रक्तसारः सखदिरकटुका बाकुची व्याधिघातः ।

मूर्वादन्तीविशालाकूमिरिपुजटिलावायसीरान्नपाठा-

श्यामानन्तापटोलैः समरिचमगधैः साधितोऽयं कषायः ॥ ५५ ॥

पीतो हन्यात्समस्तान्सकलतनुगतान् रक्तजातान्विकारान्

कण्डूविस्फोटकादीनलसकविषमश्वित्रपामादिदोषान् ॥ ५६ ॥

इति बृहन्मञ्जिष्ठादिः ।

अथामृताद्यवलेहिका—

अमृताकटुकाशुण्ठीयष्टीकल्कः समाक्षिकः ।

गोमूत्रपीतो जयति सकफं वातशोणितम् ॥ ५७ ॥

इत्यमृताद्यवलेहिका ।

अथ कैशोरको गुग्गुलुः—

संसर्गे संनिपाते च क्रियां मिश्रां समाचरेत् ।

वातरक्ते द्वित्रिलिङ्गे द्वित्रिहेतुसमुत्थिते ॥ ५८ ॥

द्रोणे प्रस्थौ गुडूच्या विपच पुरवराभ्यां च वारोऽर्धशेषं

पूतं भूयो धेनेऽस्मिन्क्षिप मरिचकणा वेल्लशुण्ठ्युत्तमाश्च ।

शुक्तयंशाः कुम्भदन्त्योः पिचुयुगममृताम्रं च कैशोरकोऽयं

शोफारुग्गुल्मकुष्ठारुचिखुडकसनाल्पाग्निपाण्डुप्रमेहे ॥ ५९ ॥

इति कैशोरको गुग्गुलुः ।

अथ पुनर्नवाद्यो गुग्गुलुः-

पुनर्नवामूलशतं विशुद्धं रुब्रकमूलं च तथा प्रगृह्य ।
 दत्त्वा पलं षोडशकं च शुण्ठ्याः संक्षुद्य सम्यग्विपचेद्वधटेऽपाम् ॥ ६० ॥
 पलानि चाष्टावथ कौशिकस्य तेनाष्टशेषेण पुनः पचेत्तु ।
 एरण्डतैलं कुडवं च दद्यात्तथा त्रिवृच्चूर्णपलानि पञ्च ॥ ६१ ॥
 निकुम्भचूर्णस्य पलं गुडूच्याः पलद्वयं चार्धपलप्रमाणम् ।
 पलत्रयं त्र्यूषणचित्रकौ च सिन्धूत्थमल्लातविडङ्गकानि ॥ ६२ ॥
 कर्षं तथा माक्षिकधातुचूर्णं पुनर्नवाद्याः पलमेव चूर्णम् ।
 चूर्णानि दत्त्वा ह्यवतार्य शीते खादेन्नरः कर्षमितं प्रभाते ॥ ६३ ॥
 वातास्रमुग्रं सकलं प्रसह्य जयत्यवश्यं त्वथ गृध्रसीं च ।
 जङ्घोरुपृष्ठत्रिकबस्तिवातं तथाऽऽमवातं प्रबलं जयेच्च ॥ ६४ ॥
 इति पुनर्नवाद्यो गुग्गुलुः ।

अथामृताद्यो गुग्गुलुः-

* द्विप्रस्थममृतायाश्च प्रस्थमेकं तु गुग्गुलुः ।
 प्रत्येकं त्रिफलाप्रस्थं वर्षाभूप्रस्थमेव च ॥ ६५ ॥
 सर्वमेकत्र संकुट्य क्वाथयैन्नल्वणेऽम्मसि ।
 पादशेषं परिस्त्राव्य पुनरग्रावधिश्रयेत् ॥ ६६ ॥
 तावत्पचेत्कषायं तु यावत्सान्द्रत्वमाप्नुयात् ।
 दन्तीव्योषविडङ्गानि गुडूचीत्रिफलात्वचम् ॥ ६७ ॥
 प्रत्येकमर्धपलिकं गृहीयाच्च प्रति प्रति (?) ।
 कर्षं तु त्रिवृतायास्तु सर्वमेकत्र चूर्णयेत् ॥ ६८ ॥
 तत्साधुसिद्धं विज्ञाय कटूष्णे निक्षिपेद्बुधः ।
 ततश्चाग्निबलं ज्ञात्वा तस्य मात्रां प्रयोजयेत् ॥ ६९ ॥
 वातरक्तं तथा कुष्ठं गुदजान्यग्निसादनम् ।
 दुष्टव्रणं प्रमेहांश्च आमवातं भगङ्कम् ॥ ७० ॥
 नानाढ्यवातश्वयथून्हन्यात्सर्वामयानयम् ।
 अश्विभ्यां निर्मितो ह्येषोऽमृताख्यो गुग्गुलुः परः ॥ ७१ ॥

* अत्रायं म. पुस्तके पाठः—

प्रस्थमेकं गुडूच्याश्च प्रस्थार्धं चरगुग्गुलुः ।

प्रत्येकं त्रिफलायाश्च तावन्मानं विनिर्दिशेत् ॥ स० ।

इत्यमृताद्यो *गुग्गुलुः ।

अथ लघुमरिचादितैलम्—

मरिचार्कशिलार्कपयःकालिनीविषमुष्टिविषामरनिबन्धनैः ।

कुटजं सचतुर्गुणगोम्बुगृतं किल तैलमसृक्पवनापहरम् ॥ ७२ ॥

इति लघुमरिचाद्यं तैलम् ।

कुष्ठोक्तं बृहन्मरिचाद्यं तैलमप्यत्र योज्यम् ।

अथ रसाः—

अथ सर्वेश्वरो रसः शार्ङ्गधरात्—

शुद्धसूतं चतुर्गन्धं पलं यामं विचूर्णयेत् ।

मृतताम्राभ्रलोहानां द्रव्यं च पलं पलम् ॥ ७३ ॥

सुवर्णं रजतं चैव प्रत्येकं दशनिष्ककम् ।

माषिकं मृतवज्रं च तालसत्त्वं पलद्वयम् ॥ ७४ ॥

जम्बीरोन्मत्तवासाभिः सुहृर्कविषमुष्टिभिः ।

मर्द्यं हयारिजद्रावैः प्रत्येकेन दिनं दिनम् ॥ ७५ ॥

एवं सप्तदिनं मर्द्यं तद्गोलं वस्त्रवेष्टितम् ।

वालुकायन्त्रगं स्वेद्यं त्रिदिनं लघुवह्निना ॥ ७६ ॥

आदाय चूर्णयेच्छूलक्ष्णं पलैकं योजयेद्विषम् ।

द्विपलं पिप्पलीचूर्णं मिश्रं सर्वेश्वरो रसः ॥ ७७ ॥

द्विगुञ्जो लिह्यते क्षौद्रैः सुप्तिमण्डलकुष्ठनुत् ।

आजानु स्फुटितं चापि वातरक्तमपोहति ॥ ७८ ॥

बाकूचीं देवकाष्ठं च कर्षमात्रं सुचूर्णितम् ।

लिहेद्देरण्डतैलाक्तमनुपानं सुखावहम् ॥ ७९ ॥

इति सर्वेश्वरो रसः शार्ङ्गधरात् ।

* “ अथ बृहन्मरिचाद्यं तैलम्—

मरिचरजनीकुष्ठमांसीविशालानिम्बामृतारग्वधाश्वासदन्ती । त्रिवृत्पिप्पली चित्रकोशाशिलाच-
न्दनैः कुटजखादिरनक्तमालार्कवज्रीपयोलाङ्गलीकम् । गणीगव्यदावीविडङ्गामराब्धप्रपुष्पाडभण्डीर-
शब्दच्छदैः । पृथक् पृथक्पलसंमितैर्ब्रामृहाहलेनापि तैलाढकं सार्षपं चतुर्मात्रमग्नौ मृदौ साधयेद्बु-
द्धिमोस्तिदयमपहरति सर्वकुष्ठव्रणस्फोटकण्डूतिद्विचूर्णी विपादी विसर्पाद्यवातामयानां गणं लेपनात् ”
इत्यमृताद्यो गुग्गुलुरित्यस्याग्रे ग. पुस्तकेऽयं ग्रन्थो वर्तते ।

अथ शिलाजतुयोगः—

छिन्नोद्भवाकषायेण सेव्यं शुद्धं शिलाजतु ।

पञ्चकर्मविशुद्धेन वातरक्तप्रशान्तये ॥ ८० ॥

इति शिलाजतुयोगः ।

अथार्केश्वरो रसः—

पलं रसस्य चत्वारि बलेर्द्वादशमुष्टिभिः ।

ताम्रस्य चक्रिका देया रसस्योर्ध्वं शरावकम् ॥ ८१ ॥

दत्त्वा निरुध्य तद्भाण्डं पूरयेद्भस्मना दृढम् ।

अग्निं प्रज्वालयेद्यामद्वयं शीतं विचूर्णयेत् ॥ ८२ ॥

पुटेद्वादशधा सूर्यदुग्धेनाऽऽलोडितं पुनः ।

वरापावकनिर्गुण्डीद्रवैस्त्रिस्त्रिर्विभावयेत् ॥ ८३ ॥

अयमर्केश्वरो वातरक्तमण्डलसुप्तिजित् ।

गुञ्जाद्वयं दृढीतास्य लवणादि विवर्जयेत् ॥ ८४ ॥

इत्यर्केश्वरो रसः ।

कुलत्थमाषनिष्पावमांसमद्यासवाङ्गनाः ।

तिलताम्बूलघर्माध्वक्षारानस्रानिली त्यजेत् ॥ ८५ ॥

अथ चोपचिनीबाष्पः—

द्विपोत्थरास्त्राशकलाम्रयुग्ममम्भस्तुलायां पच पादहीने ।

जलेऽथ संस्वेदय रोगिणं तद्बाष्पैरिदं बिल्वयुगं च पाययेत् ॥ ८६ ॥

कुटीप्रवेशस्य विधिं समाचरेच्छौचान्नपानेषु भजेत्तदम्भः ।

गोधूमभक्ष्याज्यमधूनि शालीनद्याद्यनप्रावृतदेह एव ॥ ८७ ॥

चतुर्दशाहास्त्रिरुजो बलत्वे सप्ताहमेवं च विधिं निषेवेत् ।

जलोद्धृतं तं शकलौघमद्याच्चूर्णीकृतं कर्षमितं घृतेन ॥ ८८ ॥

अल्पान्नमश्रुलवणादियोगमम्लं त्यजेन्मासचतुष्टयं च ।

व्यायामवर्जी बलवान्हि यावता तावद्भवेन्मारुतयोगजुष्टः ॥ ८९ ॥

अशेषवातोद्भवरोगसंघवातास्रलिङ्गव्रणकुष्ठकार्श्यम् ।

जयेच्च धातून्विदधाति वृद्धान्विशेषतः संधिरुर्ज ग्रहं च ॥ ९० ॥

इति चोपचिनीबाष्पः ।

इति श्रीयोगतरङ्गिण्यां वातरक्तनिदानचिकित्साकथनं नामैकमव-

तितमस्तरङ्गः ॥ ९१ ॥

अथ द्विनवतितमस्तरङ्गः ।

अथोरुस्तम्भनिदानम्—

शीतोष्णद्रवसंशुष्कगुरुस्निग्धैर्निषेवितैः ।
 जीर्णाजीर्णे तथाऽऽयाससंक्षोभस्वप्नजागरैः ॥ १ ॥
 सश्लेष्मभेदःपवनः साममत्यर्थसंचितम् ।
 अभिभूयेतरं दोषमूरु चेत्प्रतिपद्यते ॥ २ ॥
 सक्थ्यस्थीनि प्रपूर्यान्तः श्लेष्मणा स्तिमितेन तु ।
 तदा स्तम्भनाति तेनोरु स्तब्धौ शीतावचेतनौ ॥ ३ ॥
 परकीयाविव गुरु स्यातामतिभृशव्यथौ ।
 ध्यानाङ्गमर्दस्तैमित्यतन्द्राछर्द्यरुचिज्वरैः ॥ ४ ॥
 संयुतौ पादसदनकृच्छ्रोद्धरणसुप्तिभिः ।
 तमूरुस्तम्भमित्याहुराढ्यवातं तथाऽपरे ॥ ५ ॥

पूर्वरूपमाह—

प्राग्रूपं तस्य निद्राऽतिध्यानं स्तिमितता ज्वरः ।
 रोमहर्षोऽरुचिश्लेष्मर्दिर्जङ्घोर्वोः सदनं तथा ॥ ६ ॥
 वातशङ्किभिरज्ञानात्तस्य स्यात्स्नेहनात्पुनः ।
 पादयोः सदनं सुप्तिः कृच्छ्रादुद्धरणं तथा ॥ ७ ॥
 जङ्घोरुगलानिरत्यर्थं शश्वदानाहवेदने ।
 पदं च व्यथते न्यस्तं शीतस्पर्शं न वेत्ति च ॥ ८ ॥
 संस्थाने पीडने गत्यां चालने चाप्यनीश्वरः ।
 अन्यनेयौ हि संमग्नावूरु पादौ च मन्यते ॥ ९ ॥
 यदा दाहार्तितोदातो वेपनः पुरुषो भवेत् ।
 ऊरुस्तम्भस्तदा हन्यात्साधयेदन्यथा नवम् ॥ १० ॥

इत्यूरुस्तम्भनिदानम् ।

अथोरुस्तम्भचिकित्सा—

स्नेहास्राववमनबस्तिकर्म च रेचनम् ।
 वर्जयेदाढ्यवातेषु तैश्च तस्य विरोधतः ॥ ११ ॥
 तस्मादत्र सदा कार्यं स्वेदलङ्घनरूक्षणम् ।
 आममेदःकफाधिक्यान्मा*रुतं परिरक्षयेत् ॥ १२ ॥

यत्स्यात्कफप्रशमनं न च मारुतकोपनम् ।
 तत्सर्वं सर्वदा कार्यमूरुस्तम्भस्य भेषजम् ॥ १३ ॥
 सर्वो रूक्षक्रमः कार्यस्तत्राऽऽदौ कफनाशनः ।
 पश्चाद्वातविनाशाय कृत्स्नः कार्यः क्रियापथः ॥ १४ ॥
 भोज्याः पुराणश्यामाककोद्रवा मुद्गशालयः ।
 जाङ्गलैरघृतैर्मांसैः शाकैश्चालवणैर्हितैः ॥ १५ ॥
 वायसीवास्तुकारिष्टसुनिषण्णकमूलकैः ।
 शाकैरलवणैर्युक्तं जीर्णशाल्योदनं भिषक् ॥ १६ ॥
 रूक्षणाद्वातकोपश्चेन्निद्रानाशार्तिसूचकः ।
 स्नेहस्त्रेदक्रमस्तत्र कार्यो वातामयापहः ॥ १७ ॥
 प्रतारयेत्प्रतिस्रोतो नदीं शीतजलां शिवाम् ।
 सरश्च विमलं शीतं स्थिरतोये पुनः पुनः ॥ १८ ॥
 तथा विशुष्केऽस्य कफे शान्तिमूरुग्रहो व्रजेत् ।
 शरीरं बलमग्निं च कार्येषां रक्षता क्रिया ॥ १९ ॥
 सक्षारमूत्रस्वेदांश्च रूक्षान्यस्वेदनानि च ।
 कुर्याद्दिहेच्च मूत्राद्यैः करञ्जफलसार्धपैः ॥ २० ॥
 मूलैर्वाऽप्यश्वगन्धाया मूलैरर्कस्य वा भिषक् ।
 पिचुमन्दस्य वा मूलैरथ वा देवदारुणा ॥ २१ ॥
 क्षौद्रसर्पपवल्मीकमुत्तिकासहितैर्भिषक् ।
 गाढमुत्सादनं कुर्याद्भूरुस्तम्भे सवेदने ॥ २२ ॥
 दन्तीद्रवन्तीसुरसासर्धपैश्चापि बुद्धिमान् ।
 तर्कारीसुरसाशिशुबिल्ववत्सकनिम्बकैः ॥ २३ ॥
 पत्रमूलफलैस्तोयैः शृतमुष्णाम्बुसेचनम् ।
 मल्लातकामृताशुण्ठीदारुपथ्यापुनर्नवाः ॥ २४ ॥
 पञ्चमूलीद्वयोन्मिश्रा ऊरुस्तम्भनिबर्हणाः ।
 पिप्पली पिप्पलीमूलं मल्लातकफलानि च ॥ २५ ॥
 कल्कं मधुयुतं पीत्वा ऊरुस्तम्भाद्विमुच्यते ।
 ग्रन्थिकारुष्ककृष्णानां क्वाथं क्षौद्रान्वितं पिबेत् ॥ २६ ॥
 चव्याग्निवारुणीशुण्ठीकल्कं वा मधुसंयुतम् ।
 त्रिफलाचव्यकटुकाग्रन्थिकं मधुना लिहेत् ॥ २७ ॥
 ऊरुस्तम्भविनाशाय पुरं मूत्रेण वा पिबेत् ।
 लिह्याद्वा त्रिफलाचूर्णं क्षौद्रेण कटुकायुतम् ॥ २८ ॥

सुखाम्बुना पिबेद्वाऽपि चूर्णं षट्चरणं नरः ।
 पिप्पलीवर्धमानं वा माक्षिकेण गुडेन वा ॥ २९ ॥
 ऊरुस्तम्भे प्रशंसन्ति गण्डीरारिष्टमेव वा ।
 शिलाजं गुग्गुलुं वाऽपि पिप्पलीमथ नागरम् ॥ ३० ॥
 ऊरुस्तम्भे पिबेन्मूत्रैर्दशमूलैरसेन वा ।
 त्रिफलापिप्पलीमुस्तं चव्यं कटुकरोहिणीम् ॥ ३१ ॥
 लिह्याद्वा मधुना चूर्णमूरुस्तम्भार्दितो नरः ।
 घृतं सौरेश्वरं दद्याद्दूरुस्तम्भे कफोत्तरे ॥ ३२ ॥
 दद्याच्छुण्ठीघृतं वाऽपि वैश्वानरमथापि वा ।
 सैन्धवाद्यं हितं तैलममृताख्योऽपि गुग्गुलुः ॥ ३३ ॥
 कुष्ठं श्रीवेष्टकोदीच्यं सरलं दारुकेसरम् ।
 अश्वगन्धाजगन्धे च तैलं तैः सार्षपं पचेत् ॥ ३४ ॥
 सक्षौद्रं मात्रया तस्माद्दूरुस्तम्भार्दितः पिबेत् ।

इति कुष्ठादितैलम् ।

अथ कट्वरं तैलम्—

पलाभ्यां पिप्पलीमूलं नागरादष्टकट्वरः ॥ ३५ ॥
 तैलप्रस्थः समो दध्ना गृध्रस्यूगृहापहः ।
 अष्टकट्वरतैलेऽत्र तैलं सार्षपमिष्यते ।
 पिप्पलीनागरयोश्चैव प्रत्येकं द्विपलं स्मृतम् ॥ ३६ ॥

इति कट्वरं तैलम् ।

इति श्रीयोगतरङ्गिण्यामूरुस्तम्भनिदानचिकित्साकथनं नाम
 द्विनवतितमस्तरङ्गः ॥ ९२ ॥

अथ त्रिनवतितमस्तरङ्गः ।

अथाऽऽमवातनिदानम्—

विरुद्धाहारचेष्टस्य मन्दाग्नेर्निश्चलस्य च ।
 स्निग्धं भुक्तवतो ह्यन्नं व्यायामं वा प्रकुर्वतः ॥ १ ॥
 वायुना प्रेरितो ह्यामः श्लेष्मस्थानं प्रधावति ।
 तेनात्पथं विदग्धोऽसौ धमनीभिः प्रपद्यते ॥ २ ॥

वातापित्तकफैर्भूयो दूषितः सोऽन्नजो रसः ।
 स्रोतांस्यभिष्यन्दयति नानावर्णोऽतिपिच्छिलः ॥ ३ ॥
 जनयत्यग्निदौर्बल्यं हृदयस्य च गौरवम् ।
 व्याधीनामाश्रयो ह्येष आमसंज्ञोऽतिदारुणः ॥ ४ ॥

आमस्य लक्षणमाह—

अजीर्णाद्यो रसो जातः संचितो हि क्रमेण वै ।
 आमसंज्ञां स लभते शिरोगात्ररुजाकरः ॥ ५ ॥

आमवातस्य सामान्यलक्षणमाह—

युगपत्कुपितावेतौ त्रिकसंधिप्रवेशकौ ।
 स्तब्धं च कुरुतो गात्रमामवातः स उच्यते ॥ ६ ॥
 मन्यापृष्ठकटीजानुत्रिकसंधीन्प्रकुञ्चयन् ।
 सशब्दः स्तब्धगात्रश्च आमवातः स उच्यते ॥ ७ ॥
 अङ्गमदोऽरुचिस्तृष्णा त्वालस्यं गौरवं ज्वरः ।
 अपाकः शूलताऽङ्गनामामवातस्य लक्षणम् ॥ ८ ॥
 स कष्टः सर्वरोगाणां यदा प्रकुपितो भवेत् ।
 हस्तपादशिरोगुल्फत्रिकजानूरुसंधिषु ॥ ९ ॥
 करोति सरुजं शोथं यत्र दोषः प्रपद्यते ।
 स देशो रुज्यतेऽत्यर्थं व्याविद्ध इव वृश्चिकैः ॥ १० ॥
 जनयेत्सोऽग्निदौर्बल्यं प्रसेकारुचिगौरवम् ।
 उत्साहहानिं वैरस्यं दाहं च बहुमूत्रताम् ॥ ११ ॥
 कुक्षौ कठिनतां शूलं तथा निद्राविपर्ययम् ।
 तृद्ध्यर्दिविभ्रमं मूर्छां हृदग्रहं विड्विबन्धनम् ॥ १२ ॥
 जाड्यान्त्रकूजमानाहं कष्टांश्चान्यानुपद्रवान् ।
 पिच्छात्सदाहरागं च सशूलं पवनानुगम् ॥ १३ ॥
 स्तिमितं गुरु कण्डूकं कफदुष्टं तमादिशेत् ।
 एकदोषानुगः साध्यो द्विदोषो याप्य उच्यते ।
 सर्वदेहचरः शोफः स कृच्छ्रः सान्निपातिकः ॥ १४ ॥

इत्यामवातनिदानम् ।

अथैतच्चिकित्सा—

लङ्घनं स्वेदनं तिक्तं दीपनानि कटूनि च ।
 विरेचनं स्नेहनं च बस्तयश्चाऽऽममारुते ॥ १५ ॥

रुक्षस्वेदो विधातव्यो वालुकापुटकैस्तथा ।
 उपनाहाश्च कर्तव्यास्तेऽपि स्नेहविवर्जिताः ॥ १६ ॥
 आमवाताभिभूताय पीडिताय पिपासया ।
 पञ्चकोलेन संसिद्धं पानीयं हितमुच्यते ॥ १७ ॥
 शुष्कमूलकयूषस्तु यूषो वा पाञ्चमूलिकः ।
 रसो वा काञ्जिकं वाऽपि शुण्ठीचूर्णावचूर्णितम् ॥ १८ ॥
 सौवीरं स्विन्नवार्ताकं तथा तिक्तफलानि च ।
 वास्तूकशाकं सारिष्टं शाकं पौनर्नवं हितम् ॥ १९ ॥
 पटोलं गोक्षुरं चैव वरुणं कारवेल्लकम् ।
 यवान्नं कोरदूषाश्च पुराणाः शालिषष्टिकाः ॥ २० ॥
 लावकानां तथा मांसं हितं तन्नेन संस्कृतम् ।
 हितस्तु यूषः कौलथः कालायश्चाणकोऽथ वा ॥ २१ ॥
 रुच्यं दद्याद्यदस्य स्यादामवातहितं च तत् ।

अथ शतपुष्पादिलेपः—

शतपुष्पावचाविश्वाश्वदंष्ट्रावरुणत्वचः ॥ २२ ॥
 पुनर्नवासदेवाह्वासठीमुण्डितिकाः समाः ।
 प्रसारणी च तर्कारी फलं च मदनस्य च ।
 शुक्तकाञ्जिकपिष्टास्तु सुखोष्णा लेपने हिताः ॥ २३ ॥

इति शतपुष्पादिलेपः ।

अथाहिंसादिलेपः—

अहिंसाकेम्बुकामूलशिशुवल्मीकमृच्चयैः ।
 मूत्रपिष्टैश्च कर्तव्य उपनाहोऽनिलामजित् ॥ २४ ॥

इत्यहिंसादिलेपः ।

अथ रास्नादिपञ्चकम्—

आरम्बधस्य पत्राणि मृष्टानि कटुतैलतः ।
 आमवातप्रशान्त्यर्थं खादेद्भक्तावृतानि च ॥ २५ ॥
 शुण्ठीगोक्षुरकक्वाथः प्रातः प्रातर्निषेवितः ।
 आमवाते कटीशूले पाचनं रुक्प्रणाशनम् ॥ २६ ॥
 कटीशूले विबेत्तैलमेरण्डफलसंभवम् ।
 महौषधगुडूच्योश्च क्वाथं मागधिकायुतम् ॥ २७ ॥
 विशोध्यैरण्डबीजानि पिष्ट्वा क्षीरे विपाचयेत् ।

तत्पायसं कटीशूले गृध्रस्यां परमौषधम् ।

रास्नागुडूचीभेरण्डदेवदारुमहौषधम् ।

पिबेत्सर्वाङ्गगे वाते सामे संध्यस्थिमज्जगे ॥ २८ ॥

इति रास्नादिपञ्चकम् ।

अथ रास्नादिसप्तकम्—

रास्नामृतारग्वधदेवदारुत्रिकण्डकैरण्डपुनर्नवानाम् ।

क्वाथं पिबेन्नागरचूर्णमिश्रं जङ्घोरुपार्श्वत्रिकपृष्ठशूले ॥ २९ ॥

इति रास्नादिसप्तकम् ।

अथ महारास्नादिकाथः—

रास्ना वातारिमूलं च वासकः सदुरालभः ।

शठीदारुबलामुस्तनागरातिविषामयाः ॥ ३० ॥

श्वदंष्ट्रा व्याधिघातश्च मिशिर्धान्यं पुनर्नवा ।

अश्वगन्धाऽमृता कृष्णावृन्ददारुः शतावरी ॥ ३१ ॥

वचा सहचरश्चैव चविका बृहतीद्वयम् ।

समभागानि सर्वाणि रास्ना तन्निगुणा मता ॥ ३२ ॥

पिबेत्कषायमेतेषामष्टभागावशेषितम् ।

क्षिप्त्वा नागरचूर्णं च प्रक्षेपोऽत्र यथामलम् ॥ ३३ ॥

सर्वेषु वातरोगेषु सामेषु च विशेषतः ।

पक्षाघातेऽर्दिते कम्पे कुब्जे संधिगतेऽनिले ॥ ३४ ॥

जानुजङ्घास्थिपीडासु गृध्रस्यां च हनुग्रहे ।

ऊरुस्तम्भे वातरक्ते विश्वाच्यां क्रोष्टुशीर्षके ॥ ३५ ॥

हृदामये च दुर्नाम्नि योनिशुक्रामघेषु च ।

पुंसां मेढ्रगते वाते स्त्रीणां वन्ध्यामये तथा ॥ ३६ ॥

योषितां गर्भदं मुख्यं नास्त्यस्मात्परमौषधम् ।

महारास्नादिकाथो वेधसाऽयं विनिर्मितः ॥ ३७ ॥

इति महारास्नादिकाथः ।

अथ चित्रकादिचूर्णम्—

चित्रकं कटुका पाठा कलिङ्गाऽतिविषाऽमृता ।

देवदारुवचामुस्ता नागराऽतिविषाऽभया ॥ ३८ ॥

पिबेदुष्णाम्बुना नित्यं चूर्णमाममरुत्प्रणुत् ।

इति चित्रकादिचूर्णम् ।

अथ पुनर्नवाद्यं चूर्णम्—

पुनर्नवामृताशुण्ठीशताह्वावृद्धदारकम् ॥ ३९ ॥

शठीमुण्डितिका वृन्तमारनालेन पाचयेत् ।

आमवातं निहन्त्याशु गृध्रसीमुद्धतामपि ॥ ४० ॥

इति पुनर्नवाद्यं चूर्णम् ।

अथ गुडूच्यादिचूर्णम्—

अमृतानागरगोक्षुरमुण्डितिकावरुणकैः कृतं चूर्णम् ।

मस्त्वारनालचूर्णं पीतं सामानिलनाशनं ख्यातम् ॥ ४१ ॥

इति गुडूच्यादिचूर्णम् ।

अथ वैश्वानरं चूर्णम्—

मणिमन्थस्य भागौ द्वौ यवान्यास्तद्वेदेव तु ।

भागास्त्रयोऽजमोदाया नागरान्द्वागपञ्चकम् ॥ ४२ ॥

दश द्वौ च हरीतक्याः सूक्ष्मं चूर्णं कृतं शुभम् ।

मस्त्वारनालतक्रेण सर्पिषोष्णोदकेन वा ॥ ४३ ॥

पीतं जयत्यामवातं गुल्मं हृद्द्विजं रुजः ।

प्लीहानं ग्रन्थिशूलं च गुदजानि मरुद्ब्रह्मम् ॥

वातानुलोमनमिदं चूर्णं वैश्वानराभिधम् ॥ ४४ ॥

इति वैश्वानरं चूर्णम् ।

अथ सिंहनादो गुग्गुलुः—

प्रत्येकं प्रस्थमेकं पुरत्रिफलमपां पाचयेत्सार्धराशौ

तुर्यांशे तत्र पूते पुनरमरवराव्योषमुस्ताग्निवेलैः ।

छिन्नोग्रामानकाशोरिपुशबडिन्निवृत्सूतगन्धैः पलार्धैः

साहस्रैर्दन्तिबीजैः कटुजवसुपलैः सिंहनादोऽनिलामे ॥ ४५ ॥

इति सिंहनादो गुग्गुलुः ।

अथ बृहद्रसोनपिण्डः—

दद्याद्भोतक्रपात्रे वरलशुनतुलां लुञ्चितानां तिलानां

तस्या अर्धं पलांशैस्त्रिकटुगजकणाधान्यचव्याजमोदैः ।

बाह्लीकाग्नित्वगेलानिखिलपटुकणामूलयुक्तैश्च सार्धं

कालीराज्यार्धसिद्धाजलधिककुडवैर्जोरपञ्चप्रकुञ्चैः(?) ॥ ४६ ॥

श्वेतातैलाज्यमध्वष्टपलमथ पृथग्विंशतिं शुक्लबिल्वा—

न्येकीकृत्याऽऽज्यमाण्डे रविदिवसममुं स्थापयेद्द्वान्यराशौ ॥४७॥

प्रातः खादेदथैनं तदनु लघु पिबेद्वारि जायेत मुक्तो

वातामश्लेष्मपित्तामयखुडभगरुग्गुल्मदुर्नाममेहान् ॥ ४८ ॥

इति बृहद्रसोनपिण्डः ।

अथैरण्डगुटी—

एरण्डबीजमज्जा समविश्वशर्करासहिता ।

गुटकीकृता प्रभाते भुक्ता सामानिलं जयति ॥ ४९ ॥

इत्यैरण्डगुटी ।

अथैरण्डतैलम्—

आमवातगजेन्द्राणां शरीरवनचारिणाम् ।

एक एव निहन्ताऽस्ति रुबूकस्नेहकेसरी ॥ ५० ॥

इत्यैरण्डतैलम् ।

अथ काञ्जिकषट्पलकं घृतम्—

हिङ्गु त्रिकटुकं चट्यं माणिमन्थं तथैव च ।

कल्कं कृत्वा तु मतिमान्घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ ५१ ॥

आरनालाढकं दृत्वा तत्सर्पिर्जठरापहम् ।

शूलं विबन्धमानाहमामवातं कटिग्रहम् ॥ ५२ ॥

नाशयेद्ब्रह्णीदोषं मन्दाग्नेर्दीपनं परम् ।

इति काञ्जिकषट्पलकं घृतम् ।

अथ सैन्धवाद्यं तैलम्—

सैन्धवं श्रेयसी रास्ना शतपुष्पा यवानिका ॥ ५३ ॥

स्वर्जिकामरिचं कुष्ठं शुण्ठी सौवर्चलं विडम् ।

वचाऽजमोदा जरणं पौष्करं मरिचं कणा ॥ ५४ ॥

पलमर्धपलं वाऽपि प्रत्येकं सूक्ष्मचूर्णितम् ।

प्रस्थमेरण्डतैलस्य प्रस्थं च शतपुष्पजम् ॥ ५५ ॥

काञ्जिकं द्विगुणं दृत्वा मस्तु च द्विगुणं तथा ।

एतत्संभृत्य संभारं शनैर्मृद्वग्निना पचेत् ॥ ५६ ॥

सिद्धमेतत्प्रयोक्तव्यमामवातहरं परम् ।

पानाभ्यञ्जनयोर्बस्तौ कुरुतेऽग्निबलं तथा ॥ ५७ ॥

इति सैन्धवाद्यं तैलम् ।

अथ शुण्ठीखण्डपाकः—

नागरस्य पलान्यष्टौ घृतस्य पलविंशतिम् ।
 क्षीरद्विप्रस्थसंयुक्तां खण्डस्यार्धतुलां न्यसेत् ॥ ५८ ॥
 द्योषत्रिजातकद्रव्यात्प्रत्येकं च पलं पलम् ।
 निदध्याच्चूर्णितं तत्र खादेदग्निबलं प्रति ॥ ५९ ॥
 आमवातप्रशमनं बलपुष्टिविवर्धनम् ।
 वर्ण्यमायुष्यमौजस्यं बलीपलितनाशनम् ॥ ६० ॥

इति शुण्ठीखण्डपाकः ।

अथ पञ्चाननवटी—

महारास्नादिना योगराजगुग्गुलुरप्यलम् ।
 आमवातकटीपृष्ठसंधिशोथरुजां जयेत् ॥ ६१ ॥
 प्रत्येकं पिचुरंशजं च तपनीयष्टङ्कणं सैन्धवं
 तुत्थं तीक्ष्णहलाहलावथ पले वैश्वानरश्रेष्ठयोः ।
 शुद्धो गुग्गुलुरञ्जलिं घृतयुतामेषा द्विमाषा वटी
 सश्रेष्ठाकथनामवातपवनातङ्केमपञ्चानना ॥ ६२ ॥

इति पञ्चाननवटी ।

अथाजमोदावटी—

दीप्यग्रन्थिकणोषणामरमिश्रीसिन्ध्वग्निवेल्लं समं
 वेल्लुर्या दश नागराच्च विजयां* शापं च तुल्यो गुडः ।
 विश्वाचीगरगृध्रसीगुदकटीपृष्ठास्थिजङ्घामिदा-
 शोफामानिलपाण्डुतूणियुगुले श्लेष्मानिले सोष्णकः ॥ ६३ ॥

इत्यजमोदावटी ।

दधिमत्स्यगुडक्षीरपोतकीमाषापिष्टकम् ।
 वर्जयेदामवातार्तो मांसमानूपजं च यत् ॥ ६४ ॥
 अभिष्यन्दिकरा ये च ये चान्ये गुरुपिच्छिल्लाः ।
 वर्जनीयाः प्रयत्नेन सामवातार्दितैर्नरैः ॥ ६५ ॥
 हितं यूषं च कौलत्थं कलायचणकस्य च ।
 यवान्नं कोरदूषान्नं पुराणं शालिषष्टिकम् ॥ ६६ ॥

लावकानां तथा मांसं हितं तक्रेण संस्कृतम् ।
 पटोलं गोक्षुरं चैव त्र्यूषणं कारवेल्लकम् ।
 वास्तूकं शाकमारीषं शाकं पौनर्नवं हितम् ॥ ६७ ॥
 इति श्रीयोगतरङ्गिण्यामामवातनिदानचिकित्साकथनं नाम
 त्रिनवतितमस्तरङ्गः ॥ ९३ ॥

अथ चतुर्नवतितमस्तरङ्गः ।

अथ शूलनिदानम्-

दोषैः पृथक्समस्तामद्वन्द्वैः शूलोऽष्टधा भवेत् ।
 सर्वेष्वेतेषु शूलेषु प्रायेण पवनः प्रभुः ॥ १ ॥

हेतुमाह-

व्याधामयानादतिमैथुनाच्च प्रजागराच्छीतजलातिपानात् ।
 कलायमुद्गाढकिकोरदूषादत्यर्थरूक्षादशनाभिघातात् ॥ २ ॥
 कषायतिक्तातिविरूढकान्नविरुद्धवल्लूरकशुष्कशाकात् ।
 विण्मूत्रशुकानिलवेगरोधाच्छोकोपवासादतिहास्यमाष्यात् ॥ ३ ॥
 वायुः प्रवृद्धो जनयेद्धि शूलं हृत्पार्श्वपृष्ठत्रिकबस्तिदेशे ।
 जीर्णं प्रदोषे च घनागमे च शीते च कोषं समुपैति गाढम् ॥ ४ ॥
 मुहुर्मुहुश्चोपशमप्रकोपौ विद्धातसंस्तम्भनतोद्भेदैः ।
 संस्वेदनाभ्यञ्जनमर्दनाद्यैः स्निग्धोष्णभोज्यैश्च शमं प्रयाति ॥ ५ ॥
 क्षारातितीक्ष्णोष्णविदाहितैलनिष्पावपिण्याककुलत्थयूषैः ।
 कद्मलसौवीरसुराविकारैः क्रोधानलायासरविप्रतापैः ॥ ६ ॥
 ग्राम्यातियोगादशनैर्विदग्धैः पित्तं प्रकुप्याऽऽशु करोति शूलम् ।
 तृणमोहदाहार्तिकरं हि नाभ्यां संस्वेदमूर्च्छाभ्रमशोषयुक्तम् ॥ ७ ॥
 मध्यंदिने कुप्यति चार्धरात्रे निदाघकाले जलदात्यये च ।
 शीते च शीतैः समुपैति शान्तिं सुस्वादुशीतैरपि मौजनैश्च ॥ ८ ॥

अनूपवारिजकिलाटपयोविकारै-

र्माषेक्षुपिष्टकृशरातिलशङ्कुलीभिः ।

अन्यैर्बलासजनकैरपि हेतुभिश्च

श्लैष्मा प्रकोपमुपगम्य करोति शूलम् ॥ ९ ॥

हृल्लासकाससदनारुचिसंग्रसेकै-

रामाशये स्तिमितकोष्ठशिरोगुरुत्वैः ।

भुक्ते सदैव हि रुजं कुरुतेऽतिमात्रं

सूर्योदये च शिशिरे कुसुमागमे च ॥ १० ॥

द्विदोषलक्षणैरेतैर्विद्याच्छूलं द्विदोषजम् ॥ ११ ॥

सर्वेषु दोषेषु च सर्वलिङ्गं विद्याद्धिषक्सर्वभवं हि शूलम् ।

सुकष्टमेनं विषवज्जकल्पं विवर्जनीयं प्रवदन्ति तज्ज्ञाः ॥ १२ ॥

तत्रान्तरोक्तान्नदोषशूलमाह—

अतिमात्रं यदा भुक्तं पावके मूढतां गते ।

स्थिरीकृतं भवेत्कोष्ठे वायुरावृत्य तिष्ठति ॥ १३ ॥

अविपाकगतं ह्यन्नं शूलं तर्हि करोति च ।

मूर्छाध्मानं विदाहं च हृदि क्लेदविलम्बिकाः ॥ १४ ॥

विषूच्यते छर्दयति कम्पते च प्रमुह्यति ।

अविपाकाद्भवेच्छूलमन्नदोषसमुद्भवम् ॥ १५ ॥

आटोपहृल्लासवमीगुरुत्वस्तैमित्यमानाहकफप्रसेकैः ।

कफस्य लिङ्गेन समानलिङ्गमामोद्भवं शूलमुदाहरन्ति ॥ १६ ॥

बस्तौ मारुतजं शूलं नाभ्यां पित्तभवं वदेत् ।

कफाद्धृत्पार्श्वकुक्षिस्थं सर्वजः सर्वदेहगम् ॥ १७ ॥

निगूह्यमाणस्तं श्लेष्मा कुक्षिपार्श्वव्यवस्थितः ।

आध्मानाटोपसंरुद्धः सूचीभिरिव निस्तुदन् ॥ १८ ॥

उच्छ्वसत्यथ वक्त्रेण न चान्नमभिनन्दति ।

न च निद्रामुपैत्येव पार्श्वशूलमिहोच्यते ॥ १९ ॥

प्रकुप्यति यदा कुक्षौ वह्निमाक्रम्य मारुतः ।

तदाऽस्य भोजनं भुक्तं दोषस्तब्धं प्रपच्यते ॥ २० ॥

मुहुः श्वसिति चात्यर्थं मुहुः शूलेन पीड्यते ।

नैवाऽऽसनेन शयने तिष्ठन्वा लभते सुखम् ॥ २१ ॥

बस्तौ हृत्कण्ठपार्श्वेषु स शूलः कफवातजः ।

कुक्षौ हृन्नाभिमध्ये तु स शूलः कफपित्तजः ॥ २२ ॥

दाहज्वरकरो घोरो विज्ञेयो वातपित्तजः ।

एकदोषानुगः साध्यः कृच्छ्रसाध्यो द्विदोषजः ॥ २३ ॥

सर्वदोषान्वितो घोरस्त्वसाध्यश्चात्युपद्रवः ।
 हृत्कुक्षिबस्तिशूलाश्च आमवातसमुद्भवाः ॥ २४ ॥
 वेदनातितृषामूर्च्छा आनाहो गौरवारुची ।
 कासः श्वासश्च हिक्का च शूलस्योपद्रवा दश ॥ २५ ॥
 आनाहो गौरवं छर्दिर्ज्वरस्तृष्णा भ्रमोऽरुचिः ।
 कृशत्वं बलहानिश्च वेदनातिप्रवर्तनम् ॥ २६ ॥
 उपद्रवा दशैवैते यस्य शूलेन नास्ति सः ।
 एकदोषोत्थितः साध्यः कृच्छ्रसाध्यो द्विदोषजः ॥
 सर्वदोषोत्थितो घोरस्त्वसाध्यो भूर्युपद्रवः ॥ २७ ॥

इति शूलनिदानम् ।

अथैतच्चिकित्सा—

अथ तिलकल्कस्वेदः—

बमनं लङ्घनं स्वेदः पाचनं फलवर्तयः ।
 क्षारचूर्णानि गुटिकाः शस्यन्ते शूलशान्तये ॥ २८ ॥
 ज्ञात्वा तु वातजं शूलं स्नेहस्वेदैरुपाचरेत् ।
 पायसैः कृशरापिण्डैः स्निग्धैर्वाऽपि सितोत्कटैः ॥ २९ ॥
 आशुकारी हि पवनस्तस्मात्तं त्वरया जयेत् ।
 तस्य शूलाभिपन्नस्य स्वेद एव सुखावहः ॥ ३० ॥
 तुषवारिविनिष्पिष्टतिलकल्कोष्णपोटली ।
 भ्रामिता जठरस्योर्ध्वं मुहुः शूलं विनाशयेत् ॥ ३१ ॥

इति तिलककल्कस्वेदः ।

अथ कार्पासादिस्वेदः—

कार्पासास्थिकुलत्थकातिलयवैरेरण्डमूलातसी-
 वर्षामूशणबीजकाञ्जिकयुतैरेकीकृतैर्वा पृथक् ।
 स्वेदः स्यादथ कूर्परोदरशिरःस्फिग्जानुपादाङ्गुली-
 गुल्फस्कन्धकटीरुजो विजयते निःशेषवातार्तिहा ॥ ३२ ॥

इति कार्पासादिस्वेदः ।

अथ कुलत्थयूषः—

तिलैश्च गुटिकां कृत्वा भ्रामयेज्जठरोपरि ।
 शूलं सुदुस्तरं तेन शान्तिं गच्छति सत्वरम् ॥ ३३ ॥

नाभिलेपाज्जयेच्छूलं मदनः काश्त्रिकान्वितः ।

बिल्वैरण्डतिलैर्वाऽथ बिष्टैर्मलेन पोटली ॥ ३४ ॥

वातात्मकं हन्त्यचिरेण शूलं स्नेहेन युक्तस्तु कुलत्थयूषः ।

ससैन्धवो व्योषयुतः सलावः सहिङ्गुसौवर्चलदाडिमाढ्यः ॥ ३५ ॥

इति कुलत्थादियूषः ।

अथ बलादिक्राथः—

बलापुनर्नैरैरण्डबृहतीद्वयगोक्षुरैः ।

क्राथः सहिङ्गुलवणः पीतो वातरुजं जयेत् ॥ ३६ ॥

इति बलादिक्राथः ।

अथ करञ्जाद्यं चूर्णम्—

करञ्जसौवर्चलनागराणां सरामठानां समभागिकानाम् ।

चूर्णं कटूष्णेन जलेन पीतं समीरशूलं विनिहन्ति सद्यः ॥ ३७ ॥

इति करञ्जाद्यं चूर्णम् ।

अथैरण्डादिक्राथः—

गिलितं हिङ्गु सघृतं सद्यः शूलं विनाशयेत् ।

करञ्जबीजमज्जा वा भृशं शूलं निकृन्तति ॥ ३८ ॥

विश्वमेरण्डजं मूलं क्राथयित्वा शृतं पिबेत् ।

हिङ्गु सौवर्चलोपेतं सद्यः शूलनिवारणम् ॥ ३९ ॥

इत्यैरण्डादिक्राथः ।

अथ हिङ्गवाद्यं चूर्णम्—

शूले निरन्नकोष्ठेऽद्भिरुष्णाभिश्चूर्णिताः पिबेत् ।

हिङ्गुप्रतिविषाव्योषवचासौवर्चलाभयाः ॥ ४० ॥

इति हिङ्गवाद्यं चूर्णम् ।

इति वातशूलः ।

अथ पित्तशूलः—

गुडशालियवाः क्षीरं सर्पिर्दुग्धं विरेचनम् ।

जाङ्गलानि च मांसानि भेषजं पित्तशूलिनाम् ॥ ४१ ॥

धाड्या रसं विदार्या वा त्रायन्तीगोस्तनाम्बुना ।

पिबेत्सशर्करं सद्यः पित्तशूलनिवारणम् ॥ ४२ ॥

वामयेत्पित्तशूलार्तं पटोलेश्वरसादिभिः ।

पश्चाद्विरेचयेत्सम्यक्पित्तगुल्मविरेचनैः ॥ ४३ ॥

शीतावगाहाः पुलिनाः सवाता

माण्डानि कांस्यानि जलप्लुतानि ।

अन्यानि शस्तानि च शीतलानि

सचन्दनाद्राश्च कराः सुशीताः ॥ ४४ ॥

मणिराजतताम्राणां भाजनानि गुरूणि च ।

तोयेन परिपूर्णानि शूलस्योपरि धारयेत् ॥ ४५ ॥

शतावरीसयष्ट्याह्वाद्यालकुशगोक्षुरैः ।

शृतं शीतं पिबेत्तोयं सगुडक्षौद्रशर्करम् ॥ ४६ ॥

पित्तशूलार्शदाहघ्नं हिक्कावरवमिच्छिदम् ।

इति शतावर्यादिकाथः ।

बृहतीगोक्षुरैरण्डकासेक्षु × × वालिकाः ॥ ४७ ॥

पीताः पित्तमवं शूलं सद्यो हन्युः सुदारुणम् ।

अथ श्लेष्मचूर्णम्—

प्रालिह्यात्पित्तशूलघ्नं धात्रीचूर्णं समाक्षिकम् ।

सगुडां घृतसंमिश्रां भक्षयेद्वा हरीतकीम् ॥ ४८ ॥

इति पित्तशूलः ।

अथ श्लेष्मशूलम्—

त्रिलवणादिचूर्णम्—

संस्वेद्य कोष्णसक्षारसक्तुतक्रैस्तथाऽपरैः ।

प्रवाम्य कफशूलार्तमथैनमुपवासयेत् ॥ ४९ ॥

शाल्यन्नं जाङ्गलं मांसमरिष्टं कटुकं रसम् ।

मद्यानि जीर्णगोधूमं कफशूले प्रयोजयेत् ॥ ५० ॥

लवणत्रयसंयुक्तं पञ्चकोलं सरामठम् ।

सुखोष्णेनाम्मसा पीतं कफशूलहरं परम् ॥ ५१ ॥

इति त्रिलवणादिचूर्णम् ।

अथ त्रिदोषशूलम्—

शम्बूकचूर्णयोगः—

शङ्खचूर्णं सलवणं सहिङ्गु व्योषसंयुतम् ।

उष्णोदकेन तस्पीतं हन्ति शूलं त्रिदोषजम् ॥ ५२ ॥

इति शम्बूकचूर्णयोगः ।

अथ मण्डूरावलेहः—

गोमूत्रसिद्धं मण्डूरं त्रिफलाचूर्णसंयुतम् ।

विलिहन्मधुसर्पिभ्यां शूलं हन्ति त्रिदोषजम् ॥ ५३ ॥

इति मण्डूरावलेहः ।

अथैरण्डद्वादशकम्—

एरण्डफलमूलानि बृहतीद्वयगोक्षुरम् ।

पर्णिन्यः सहदेवा च सिंहपुच्छीक्षुवालिकाः ॥ ५४ ॥

अल्पैरेतैः शृतं तोयं यवक्षारयुतं पिबेत् ।

पृथग्दोषमवं शूलं हन्ति चातित्रिदोषजम् ॥ ५५ ॥

इत्येरण्डद्वादशकम् ।

अथाऽऽमशूलम्—

अथ चित्रकादिकाथः—

आमशूले क्रिया कार्या कफशूलविनाशिनी ।

सेव्यमामहरं सर्वं यद्यदग्निविवर्धनम् ॥ ५६ ॥

चित्रकग्रन्थिकैरण्डशुठीधान्यजलैः शृतम् ।

सहिष्णु सैन्धवविडमामशूलहरं परम् ॥ ५७ ॥

इति चित्रकादिकाथः ।

अथैरण्डसप्तकम्—

एरण्डबिल्वबृहतीद्वयमातुलुङ्ग-

पाषाणभिञ्जिकटुमूलकृतः कषायः ।

सक्षारहिङ्गुलवणो रुबुतैलमिश्रः

श्रोण्यूरुमेढ्रहृदयस्तनुरुक्षुपेयः ॥ ५८ ॥

इत्येरण्डसप्तकम् ।

अथ द्वन्द्वजशूलम्—

अथ कण्टकार्यादि—

निदिग्धिकाबृहत्यौ च कुशकाशेक्षुवालिकाः ।

श्वदंष्ट्रैरण्डमूलं च वारिणा सह पाचयेत् ।

पिबेत्सशर्करक्षौद्रं शूले पित्तानिलात्मके ॥ ५९ ॥

इति कण्टकार्यादि ।

अथ क्षाराम्बुयोगः—

क्षारोदकं पिबेदुष्णं पिप्पलीलवणान्वितम् ।

वातश्लेष्मोद्भवं शूलं कुक्षिशूलं च नाशयेत् ॥ ६० ॥

इति क्षाराम्बुयोगः ।

अथ द्राक्षादिः—

पित्तश्लेष्मोद्भवं शूलं विरेकघमनैर्जयेत् ।

द्राक्षाटरूषयोः काथः पित्तश्लेष्मरुजं जयेत् ॥ ६१ ॥

इति द्राक्षादिः ।

अथ शूले साधारणो विधिः—

अथ तुम्बुर्वाद्यं चूर्णम्—

चूर्णं तुम्बुरुमठत्रिलवणक्षाराजमोदामया-

वेलुड्यूषणपुष्कराह्वयकृतं कुम्भत्रिभागान्वितम् ।

मन्दोष्णेन जलेन पीतमखिलं शूलं सगुल्मोदरा-

ध्मानाजीर्णविवन्धमामपवनानाहौ च शीघ्रं जयेत् ॥ ६२ ॥

इति तुम्बुर्वाद्यं चूर्णम् ।

अथ द्विक्षाराद्यं चूर्णम्—

विश्वोरुबूकदशमूलयवाम्मसा तु

द्विक्षारहिङ्गुलवणत्रयपौष्कराणाम् ।

चूर्णं पिबेद्धृदयपृष्ठकटिग्रहाम-

पक्काशयार्तिमृशरुग्ज्वरगुल्मशूली ॥ ६३ ॥

इति द्विक्षाराद्यं चूर्णम् ।

अथ रुचकादिचूर्णम्—

चूर्णं समं रुचकहिङ्गुमहौषधानां

शुण्ठ्यम्बुना कफसमीरणसंभवासु ।

हृत्पाश्वर्षपृष्ठजठस्तिविषूचिकासु

पेयं तथा यवरसेन च विद्भिविवन्धे ॥ ६४ ॥

इति रुचकादिचूर्णम् ।

अथ तैलधारावस्तिः—

अहिमतिलजधारा निष्पतन्ती विदूरा-

दपनयति हि शूलं शूलिनः शूलवेशे ।

अपि च धरुब्रूकस्नेहवस्तिस्त्वपाने

झटिति जयति शूलानीति दसप्रतिज्ञा ॥ ६५ ॥

इति तैलधारावस्तिः ।

अथ पथ्यादिचूर्णम्—

पथ्यांशशक्रयवपुष्करमूलयुक्तां

संचूर्ण्य हिङ्गुजटिलातिविषासमेताम् ।

चूर्णं कवोष्णसलिलेन निपीय सद्यः

शूलानि हन्ति पवनामकफोज्झवानि ॥ ६६ ॥

इति पथ्यादिचूर्णम् ।

अथ हिङ्गवाद्या वटी—

हिङ्गु सौवर्चलं पाठां द्वौ क्षारौ लवणत्रयम् ।

चूर्णकृत्य विधातव्यं भिषजा लशुने रसे ॥ ६७ ॥

कर्षमात्रा वटीः कृत्वा तासामेकां नियोजयेत् ।

हृच्छूले पार्श्वशूले च मन्यास्तम्भे च दारुणे ।

प्रयोज्या कुक्षिशूले वा भिषजा सिद्धिमिच्छता ॥ ६८ ॥

इति हिङ्गवाद्या वटी ।

अथ शूलिघृतम्—

घृताच्चतुर्गुणो देयो मातुलुङ्गरसो दधि ।

शूष्कमूलककोलाम्लकषायो दाडिमाद्रसः ॥ ६९ ॥

विडङ्गं लवणक्षारं पञ्चकोलयवानिभिः ।

पाठामूलककल्केन सिद्धं शूलिघृतं मतम् ॥ ७० ॥

हृत्पार्श्वशूलं वै श्वासकासहिकास्तथैव च ।

बध्नगुल्मप्रमेहाशौवातव्याधींश्च नाशयेत् ॥ ७१ ॥

इति शूलिघृतम् ।

अथ सूर्यप्रभा वटी—

व्योषग्रन्थिवचाग्निहिङ्गुजरणद्वन्द्वं विषं निम्बुक-

द्रावैरार्द्रकजै रसैर्विमृदितं तुल्यं मरीचोपमा ।

कर्तव्या वटिकाऽथ सा दिनमुखे भुक्ता कवोष्णाम्बुना

शूलं त्वष्टविधं निहन्ति सहसा सूर्यप्रभा नामतः ॥ ७२ ॥

इति सूर्यप्रभा वटी ।

अथ हिङ्गवादिचूर्णम्-

हिङ्गुग्वम्लत्रिपटूग्रषट्कटुसटीवृक्षाम्लदीप्यालुका-

पादाजाजयजगन्धमूलहपुषाद्विक्षारसारामया ।

द्विधमाधमानविवन्धवधर्मकसनश्वासाग्निसादारुचि-

प्लीहाशोखिलशूलगुल्मगलहृद्दोगाश्रमपाण्डुप्रणुत् ॥ ७३ ॥

इति हिङ्गवादिचूर्णम् ।

अथ शूलगजकेसरी रसः-

पलमितमृदुशुल्बं मस्मितं गन्धचूर्णं

वसुमितपलमानं चिञ्चिणीक्षारचूर्णम् ।

त्रितयमिदमभीष्टं क्षारताम्राख्यमेत-

च्छरति सकलशूलं पीतमुष्णोदकेन ॥ ७४ ॥

हिङ्गुव्योषौ मधुकर्चकौ चिञ्चिणीक्षारताम्रं

सर्वं चैतन्मसृणमृदितं पीतमुष्णोदकेन ।

पित्तं शूलं शमयति नृणां तीव्रपीडासमेतं

ध्वान्तं मानोरिव समुदयः साधुनामाष्टकं हि ॥ ७५ ॥

रसविषमन्धकपर्दक्षारेण सिन्धुपिप्पलीविश्वैः ।

अहिबल्यम्बुनि घृष्टः शूलेमहरिर्द्विगुञ्जोऽयम् ॥ ७६ ॥

इति शूलगजकेसरी रसः ।

अथाग्निमुखो रसो रसरत्नप्रदीपात्-

रसबलिगगत्तार्कं वेतसाम्लं विषं स्या-

त्सममिति पृथगेतद्भावेद्वयसमेतैः ।

कनकमुजगवल्लीकण्टकारीजयाद्भिः

कमलसलिलवासासुष्टिरास्राम्बुनीरैः ॥ ७७ ॥

अरुणसदृशशकैर्मातुलुङ्गोऽथ योजयः

पटुगणरसतुल्यो मावयेदार्द्रकान्भिः ।

दहनवदनसंस्थो बलमात्रो निहन्ति

प्रबलपवनशूलं तद्विकारांश्च सर्वान् ॥ ७८ ॥

इत्यग्निमुखो रसो रसरत्नप्रदीपात् ।

अथ शूलगजकेसरी-

शुद्धसूतं द्विधा गन्धं यामैकं मर्दयेद्वृद्धम् ।

तयोस्तुल्येषु ताम्रेषु संपुटे तं तिरोधयेत् ॥ ७९ ॥

ऊर्ध्वाधो लवणं दत्त्वा मृज्झाण्डे धारयेद्भिषक् ।
 ततो गजपुटे पक्त्वा स्वाङ्गशीतं समुद्धरेत् ॥ ८० ॥
 संपुटं चूर्णयेत्सूक्ष्मं पर्णखण्डे द्विगुञ्जकम् ।
 मक्षयेच्छूलपीडार्तो हिङ्गुशुण्ठीमरीचकम् ॥ ८१ ॥
 जीरं वचा च तच्चूर्णं कर्षमुष्णजलैः पिबेत् ।
 असाध्यं नाशयेच्छूलं रसः शूलेभकेसरी ॥ ८२ ॥

इति शूलगजकेसरी ।

वेदनातितृषामूर्छा आनाहो गौरवारुची ।
 कासश्वासौ च हिक्का च शूलस्योपद्रवा नव ॥ ८३ ॥
 व्यायामं मैथुनं मद्यं लवणं कटुकानि च ।
 वेगरोधं शुचं क्रोधं वर्जयेच्छूलवान्नरः ॥ ८४ ॥
 इति योगतरङ्गिण्यां शूलनिदानविकित्साकथनं नाम चतुर्न-
 वतितमस्तरङ्गः ॥ ९४ ॥

अथ पञ्चनवतितमस्तरङ्गः ।

अथ परिणामशूलनिदानम्—

स्वैर्निदानैः प्रकुपितो वायुः संनिहितस्तदा ।
 कफपित्ते समावृत्य शूलकारी भवेद्दली ॥ १ ॥
 मुक्ते जीर्यति यच्छूलं तदेव परिणामजम् ।
 तस्य लक्षणमप्येतत्समासेनाभिधीयते ॥ २ ॥
 मुक्ते जीर्यति जीर्णेऽन्ने जीर्णे मुक्ते च जीर्यति ।
 जीर्णे जीर्यति मुक्ते च दोषैर्नाल्पातिरुक्क्रमात् ॥ ३ ॥

वातजमाह—

साध्मानाटोपविण्मूत्रविबन्धरतिवेपनैः ।
 स्निग्धोष्णोपशमप्रायं वातिकं तद्वदेद्भिषक् ॥ ४ ॥

पित्तजमाह—

तृष्णादाहारुचिस्वेदकट्वम्ललवणोत्तरम् ।
 शूलं शीतशमप्रायं पैत्तिकं लक्षयेद्भिषक् ॥ ५ ॥

कफजमाह—

छर्दिहृल्लाससंमोहस्वल्परुग्दीर्घसंततिः ।
कटुतिक्तोपशान्तौ च शूलं श्लेष्मात्मकं वदेत् ॥ ६ ॥

अथ त्रिदोषजम्—

संसृष्टलक्षणं बुद्ध्वा द्विदोषं परिकल्पयेत् ।
त्रिदोषजमसाध्यं तु क्षीणमांसबलानलम् ॥ ७ ॥
जीर्णं जीर्यत्यजीर्णं वा यच्छूलमुपजायते ।
पथ्यापथ्यप्रयोगेण भोजनाभोजनेन च ॥
न शमं याति नियमात्सोऽन्नद्रव उदाहृतः ॥ ८ ॥

इति परिणामशूलनिदानम् ।

अथैतच्चिकित्सा—

लङ्घनं प्रथमं कुर्याद्वमनं च विरेचनम् ।
बस्तिकर्म परं चात्र पक्तिशूलोपशान्तये ॥ ९ ॥
वातजं स्नेहयोगेन पित्तजं रेचनादिना ।
कफजं वमनाद्यैश्च पक्तिशूलमुपाचरेत् ॥ १० ॥
द्वन्द्वजं तद्वियोगेन तद्वियोगेण सर्वजम् ।
पक्तिशूलोपशान्त्यर्थं तत्र वान्ते विधिर्यथा ॥ ११ ॥
पीत्वा तु क्षीरमाकण्ठं मदनकाथसंयुतम् ।
कान्तारकस्य पौण्ड्रस्य कोशकारस्य वा रसम् ॥ १२ ॥
कषायं वाऽथ निम्बस्य कटुतुम्बीरसं वचाम् ।
यथाविधि वमेन्द्भीमान्पक्तिशूलार्दितो नरः ॥ १३ ॥
विडङ्गं तण्डुलं व्योषं त्रिवृहन्ती सचित्रकम् ।
सर्वाण्येतानि संमृत्य श्लक्ष्णचूर्णानि कारयेत् ॥ १४ ॥
गुडेन मोदकान्कृत्वा भक्षयेत्प्रातरुत्थितः ।
उष्णोदकानुपानं तु दद्यादग्निविवर्धनम् ॥ १५ ॥
जयेन्निदोषजं शूलं परिणामसमुद्भवम् ।

इति विडङ्गाद्यो मोदकः ।

अथ नागरादिकल्कः—

नागरतिलगुडकल्कं पयसा संसाध्य यः पुमानद्यात् ।
उग्रं परिणतिशूलं सप्ताहाज्जयति चावश्यम् ॥ १६ ॥
इति नागरादिकल्कः ।

अथैरण्डादिभस्मयोगः—

एरण्डवह्निशम्बूकवर्षाभूगोक्षुरं समम् ।

अन्तर्दग्ध्वा पिबेदद्भिरुष्णाभिः पक्तिगूलजित् ॥ १७ ॥

इत्यैरण्डादियोगः ।

अथ शम्बूकभस्मयोगः—

शम्बूकजं भस्मपीतं जलेनोष्णेन तत्क्षणात् ।

पक्तिजं विनिहन्त्येतच्छूलं विष्णुरिवासुरान् ॥ १८ ॥

इति शम्बूकभस्मयोगः ।

अथ शम्बूकादिगुटिका—

शम्बूकं ङ्गूषणं चैव पञ्चैव लवणानि च ।

समांशां गुटिकां कृत्वा कलम्बुकरसेन वै ॥ १९ ॥

प्रातर्भोजनकाले च भक्षयेच्च यथाबलम् ।

शूलाद्विमुच्यते जन्तुः सहसा परिणामजात् ॥ २० ॥

इति शम्बूकादिगुटिका ।

अथ शम्बूकाद्यो मोदकः—

पलानि त्रीणि शम्बूकालोहचूर्णात्पलद्वयम् ।

रसाञ्जनात्पलं चैकं लोहसिंहाणकात्पलम् ॥ २१ ॥

सर्वैः समा शर्करा च मधुना च परिप्लुतम् ।

सर्वमेतत्समाहृत्य मोदकान्कारयेद्भिषक् ॥ २२ ॥

तान्भक्षयेत्प्रयत्नेन शूले गुल्मे गुदामये ।

विशेषतः पक्तिगूले शोथे पाण्डूदरे भ्रमे ॥ २३ ॥

दुर्नामकासे कृच्छ्रे च प्रमेहाश्मरिवृद्धिषु ।

अग्निमान्द्ये गुदभ्रंशे पीनसेऽर्धावभेदके ॥ २४ ॥

इति शम्बूकाद्यो मोदकः ।

अथ कृष्णाद्यं लोहम्—

कृष्णामयालोहचूर्णं विलिहन्मधुसर्पिषा ।

परिणाममयं शूलं सद्यो हन्ति सुदारुणम् ॥ २५ ॥

इति कृष्णाद्यं लोहम् ।

अथ पथ्याद्यं लोहम्—

पथ्या लोहरजः शुण्ठी तच्चूर्णं मधुसर्पिषा ।

परिणामरुजं हन्ति वातपित्तकफात्मिकाम् ॥ २६ ॥

इति पथ्याद्यं लोहम् ।

अथ त्रिफलाद्यं लोहम्—

त्रिफलालोहचूर्णं च यष्टीमधुकर्मैव च ।

मधुसर्पिर्युतं लीढ्वा शूलं हन्ति त्रिदोषजम् ॥ २७ ॥

इति त्रिफलाद्यं लोहम् ।

अथ चतुःसमो लोहः—

अञ्जे ताम्रं रसो लोहं प्रत्येकं मारितं पलम् ।

सर्वमेतत्समाहृत्य विपचेत्कुशलो भिषक् ॥ २८ ॥

आङ्ग्ये पलद्वादशके दुग्धे शतपले वरे ।

पक्त्वा तत्र क्षिपेच्चूर्णं सुपूतं घनतां नयेत् ॥ २९ ॥

विडङ्गं त्रिफलावह्नित्रिकटूनां तथैव च ।

क्षिप्त्वा पलोन्मितानेतान्यथा संमिश्रतां नयेत् ॥ ३० ॥

ततः पिष्ट्वा शुभे माण्डे स्थापयेच्च विचक्षणः ।

आत्मनः शोमने घस्त्रे पूजयित्वा रविं गुरुम् ॥ ३१ ॥

घृतेन मधुनाऽऽमर्द्य भक्षयेन्माषकादिकम् ।

अष्टौ माषाः क्रमाद्यावन्मात्रां संस्तम्भयेत्ततः ॥ ३२ ॥

अन्नपानं च दुग्धेन नारीकेलोदकेन वा ।

जीर्णशर्करशाल्यन्नमुद्गमांसरसादयः ॥ ३३ ॥

रसानामविरुद्धानि चान्यन्यान्यपि भक्षयेत् ।

हृच्छूलं पार्श्वशूलं च सामवातं कटिग्रहम् ॥ ३४ ॥

गुल्मशूलं च सर्वत्र यकृत्प्लीहोर्विशेषतः ।

अग्निमान्द्यं क्षयः कुष्ठं श्वासः कासो विचर्चिका ॥ ३५ ॥

अश्मरी मूत्रकृच्छ्रं च योगेनानेन शाम्यति ।

इति चतुःसमो लोहः ।

अथ सामुद्राद्यं चूर्णम्—

सामुद्रं सैन्धवं क्षारौ रुचकं रोमकं विडम् ॥ ३६ ॥

दन्ती लोहरजः किट्टं त्रिवृत्सूरणकं समम् ।

दधिगोमूत्रपयसा मन्दपावकपाचितम् ॥ ३७ ॥

तद्यथाग्निबलं चूर्णं पिबेदुष्णेन धारिणा ।
 जीर्णाजीर्णे च भुञ्जीत मांसादिघृतसाधितम् ॥ ३८ ॥
 नाभिशूलं च हृच्छूलं गुल्मप्लीहकृतं च यत् ।
 विद्रध्यष्टालिकातङ्कं श्लेष्मजं वातजं तथा ॥ ३९ ॥
 अन्नद्रवं जरत्पित्तमजीर्णं ग्रहणीमपि ।
 अन्यान्यपि च शूलानि हन्त्येतन्नात्र संशयः ॥ ४० ॥
 परिणामजशूलस्य विशेषेणेदमौषधम् ।

अत्र दन्त्यादीनां प्रत्येकं तच्चूर्णं चतुर्गुणम् ।

इति सामुद्रायं चूर्णम् ।

अथ भीममण्डूरवटकः—

यवक्षारकणाशुण्ठीकोलगन्धिकचित्रकात् ॥ ४१ ॥
 प्रत्येकं पलमादाय प्रस्थं लोहस्य किट्टितः ।
 शनैः पचेदयःपात्रे यावद्दूर्वाप्रलेपनम् ॥ ४२ ॥
 दत्त्वाऽष्टगुणगोमूत्रं किट्टाच्छुद्धाद्विचक्षणैः ।
 ततोऽक्षमात्रान्वटकान्योजयेत्सप्तरात्रतः ॥ ४३ ॥
 आदिमध्यावसानेषु भोजनस्योचितस्य वै ।
 स भीमवटको ह्येष परिणामरुगन्तकः ॥ ४४ ॥

इति भीममण्डूरवटकः ।

अथ शतावरीमण्डूरः—

संशौध्य चूर्णितं कृत्वा मण्डूरस्य पलाटकम् ।
 शतावरीरसस्याष्टौ दध्नाश्च पयसस्तथा ॥ ४५ ॥
 पलान्यादाय चत्वारि तथा गव्वस्य सर्पिषः ।
 विपचेत्सर्वमेकस्थं यावत्पिण्डत्वमाप्नुयात् ॥ ४६ ॥
 सिद्धं तु मक्षयेन्मध्ये प्रान्ते मुक्तस्य चाग्रतः ।
 वातात्मकं पित्तमवं शूलं च परिणामजम् ॥ ४७ ॥
 निहन्त्येव हि योगोऽयं मण्डूरस्य न संशयः ।
 दुग्धे निर्वापणं कार्यं यद्वा बहुसुतारसे ॥ ४८ ॥
 अथ वा चोमयोरेव लोहकिट्टस्य सप्तधा ।
 रसो गन्धः शुभः पाके वर्तिः स्याद्यदि मर्दनात् ॥ ४९ ॥

तदा पाकं विजानीयान्मण्डूरस्य न संशयः ।

इति शतावरीमण्डूरः ।

अथ तारामण्डूरवटको वृन्दात्—

विडङ्गं चित्रकं चव्यं त्रिफलाञ्ज्यूषणानि च ॥ ५० ॥

नवभागानि चैतानि लोहकिट्टसमानि च ।

गोमूत्रं द्विगुणं दत्त्वा मूत्राद्विगुणको गुडः ॥ ५१ ॥

शनेर्मुद्गग्निना पक्त्वा सुसिद्धं पिण्डतां गतम् ।

सिद्धं तु भोजनस्याऽऽदौ मध्ये प्रान्तेऽपि भक्षयेत् ॥ ५२ ॥

योगोऽयं शमयत्याशु शूलं तु परिणामजम् ।

कामलां पाण्डुरोगं च शोथं मेदोनिलार्शसाम् ॥ ५३ ॥

शूलार्तानां कृपाहेतोस्तारया प्रकटीकृतः ।

इति तारामण्डूरवटको वृन्दात् ।

अथ लोहगुग्गुलुः—

त्रिफला मुस्तकं ध्वोषं विडङ्गं पौष्करं वचा ॥ ५४ ॥

चित्रकं मधुकं चैव पलांशं श्लक्ष्णचूर्णितम् ।

अयोमस्म पलान्यष्टौ गुग्गुलोस्तावदेव तु ॥ ५५ ॥

सर्पिषा मेलयित्वाऽथ कर्षमात्रं बटीकृतम् ।

अद्यादमुं पिबेत्कोष्णं वारिशूलाद्विमुच्यते ॥ ५६ ॥

जीर्णान्नसंभवात्पाण्डोः कामलाया हलीमकात् ।

इति लोहगुग्गुलुः ।

अन्नद्रवाख्ये शूले तु न तावत्स्वास्थ्यमुच्यते ॥ ५७ ॥

यावत्कटुकपीताम्लमघ्नं न च्छर्दयेद्द्रवम् ।

वान्त्रमात्रे जरत्पित्ते शूलमाशु विनाशयेत् ॥ ५८ ॥

पित्तान्तं वमनं कृत्वा कफान्तं च विरेचनम् ।

अन्नद्रवे च तत्कार्यं जरत्पित्ते यदीरितम् ॥ ५९ ॥

जरत्पित्तेऽपि तत्पथ्यं प्रोक्तमन्नद्रवे तु यत् ।

आमपक्वाशये शुद्धे गच्छेदन्नद्रवः शमम् ६० ॥

माषोण्डरीं सलवणां सुस्विन्नां तैलपाचिताम् ।

तादृशीं सर्पिषा खादेदन्नद्रवनिपीडितः ॥ ६१ ॥

धात्रीफलभवं चूर्णमयश्चूर्णसमन्वितम् ।
 यष्टीचूर्णेन वा युक्तं लिह्यात्क्षौद्रेण तद्भवे ॥ ६२ ॥
 श्यामाकतण्डुलैः सिद्धं सिद्धं कोद्रवतण्डुलैः ।
 प्रियङ्गुतण्डुलैः सिद्धं पायसं ससितं हितम् ॥ ६३ ॥
 गौडिकं सूरणं कन्दं कूष्माण्डमपि भक्षयेत् ।
 कलाययवसक्तून्वा सक्तून्वा लाजसंभवान् ॥ ६४ ॥

गौडिकं गुडेन संस्कृतम् ।

अथ गुडाद्यं लोहम्—

गोधूममण्डकं तत्र सर्पिषा गुडसंयुतम् ।
 ससितं शीतदुग्धेन परं यत्नं समाचरेत् ॥ ६५ ॥
 अन्नद्रवे जरत्पित्ते वह्निर्मन्दो भवेद्यतः ।
 तस्मादत्रान्नपानानि मात्राहीनेन कारयेत् ॥ ६६ ॥
 कलाययवगोधूमाः श्यामाकाः कोरदूषकाः ।
 राजमाषाश्च माषाश्च कुलत्थाः कङ्कुशालयः ॥ ६७ ॥
 *दधिलुत्तरसं क्षीरं सर्पिर्गव्यं समाहिषम् ।
 वास्तूकं कारवलं च कर्कोटकफलानि च ॥ ६८ ॥
 बर्हिणो हरिणा मत्स्या रोहिताद्याः कपिञ्जलाः ।
 एतस्मिन्नामये शस्ता मता मुनिचिकित्सकैः ॥ ६९ ॥
 गुडामलकपथ्यानां चूर्णं प्रत्येकशः पलम् ।
 त्रिपलं लोहकिट्टस्य तत्सर्वं सधुसर्पिषा ॥ ७० ॥
 समालोड्य समश्नीयादक्षमात्रप्रमाणतः ।
 आदिमध्यावसानेषु भोजनस्य निहन्ति तत् ॥ ७१ ॥
 अन्नद्रवं जरत्पित्तं परिणामरुजं तथा ।

इति गुडाद्यं लोहम् ।

अथ त्रिनेत्राख्यो रसः—

टङ्कणं शृङ्गवेरं च स्वर्णशुक्लं मृतं रसम् ॥ ७२ ॥
 आर्द्रकस्य रसैश्चाऽऽर्द्रं मर्दितं स्रावसंपुटे ।
 रुद्ध्वा पुटे पचेन्मन्दं त्रिनेत्राख्यो रसो भवेत् ॥ ७३ ॥

माषैकं मधुसर्पिभ्यां लीढ्वा चूर्णमिदं लिहेत् ।
हिङ्गुसैन्धवजीराणां पक्तिशूलाद्विमुच्यते ॥ ७४ ॥

इति त्रिनेत्राख्यो रसः ।

आनाहो गौरवं छर्दिज्वरस्तुष्णा भ्रमोऽरुचिः ।
कृशत्वं बलहानिश्च वेदनातिप्रवर्तनम् ॥ ७५ ॥
उपद्रवा दशैवेते पक्तिशूलस्य दारुणाः ।
माषादि शिम्बिधान्यानि मद्यानि वनिक्ता हिमम् ॥ ७६ ॥
आतपं सरणिं क्रोधं शुचं संधानमम्लकम् ।
वर्जयेत्पक्तिशूलार्तस्तथाऽजीर्णं तिलानपि ॥ ७७ ॥

इति श्रीयोगतरङ्गिण्यां परिणामशूलनिदानचिकित्साकथनं नाम
पञ्चनवतितमस्तरङ्गः ॥ ९६ ॥

अथ षण्णवतितमस्तरङ्गः ।

अथ वेगग्रहनिदानम्—

वातविण्मूत्रजृम्भाश्रुक्षवोद्गारबमीन्वियैः ।
क्षुत्तृष्णोच्छ्वासनिद्राणां धृत्योदावर्तसंभवः ॥ १ ॥
वातमूत्रपुरीषाणां सङ्गो ध्मानं क्लमो रुजः ।
जठरे वातजाश्चान्ये रोगाः स्युर्वातनिग्रहात् ॥ २ ॥
आटोपशूलौ परिकर्तिका च सङ्गः पुरीषस्य तथोर्ध्ववातः ।
पुरीषमास्यादथ वा निरेति पुरीषवेगेऽभिहते नरस्य ॥ ३ ॥
बस्तिमेहनयोः शूलं मूत्रकृच्छ्रं शिरोरुजा ।
विनामो वङ्क्षणानाहः स्याल्लिङ्गं मूत्रनिग्रहे ॥ ४ ॥
मन्यागलस्तम्भशिरोविकारा जृम्भोपघातात्पवनात्मकाः स्युः ।
तथाऽक्षिनासावदनामयाश्च भवन्ति तीव्राः सह कर्णरोगैः ॥ ५ ॥
आतन्दर्जं वाऽप्यथ शोकजं वा नेत्रोदकं प्राप्तममुश्चतो हि ।
शिरोगुरुत्वं तयनामयाश्च भवन्ति तीव्राः सह पीनसेन ॥ ६ ॥
मन्यास्तम्भः शिरःशूलमर्दिताधाविभेदकौ ।
इन्द्रियाणां च दौर्बल्यं क्षवथोः स्याद्विधारणात् ॥ ७ ॥
कण्ठास्यपूर्णत्वमतीव तोदः कूजश्च वायोरथ वाऽप्रवृत्तिः ।
उद्गारवेगेऽभिहते भवन्ति जन्तोर्विकाराः पवनप्रसूताः ॥ ८ ॥

कण्डूकोठारुचिद्व्यङ्गशोफपाण्ड्वामयज्वराः ।

कुष्ठहृत्लासवीसर्पाश्छर्दिनिग्रहजा गदाः ॥ ९ ॥

मूत्राशये वै गुदमुष्कयोश्च शोफो रुजा मूत्रविनिग्रहश्च ।

शुक्राश्मरी तत्स्रवणं भवेच्च ते ते विकारा विहते तु शुके ॥ १० ॥

तन्द्राङ्गमर्दावरुचिः श्रमश्च क्षुधोऽभिधातात्कृशता च दृष्टेः ।

कण्ठास्यशोषः श्रवणावरोधस्तुष्णानिरोधान्छुदये व्यथा च ॥ ११ ॥

श्रान्तस्य निःश्वासविनिग्रहेण

हृद्रोगमोहावथ वाऽपि गुल्मः ।

जृम्भाऽङ्गमर्दोऽक्षिशिरोभिजाड्यं

निद्राभिघातावथ वाऽपि तन्द्रा ॥ १२ ॥

इति वेगग्रहनिदानम् ।

अथोदावर्तनिदानम्—

वायुः कोष्ठानुगो रुक्षैः कषायकटुतिक्तकैः ।

भोजनैः कुपितः सद्य उदावर्तान्करोति हि ॥ १३ ॥

वातमूत्रपुरीषाणां कफमेदोवहानि वै ।

स्रोतांस्युदावर्तयति पुरीषं चातिवर्तयेत् ॥ १४ ॥

ततो हृद्दस्तिगूलातो हृत्लासारतिपीडितः ।

वातमूत्रपुरीषाणि कृच्छ्रेण लभते नरः ॥ १५ ॥

कासश्वासप्रतिश्यायदाहमोहतृषाज्वरान् ।

वमिहिक्काशिरोरोगमनःश्रवणविभ्रमान् ।

बहूनन्यांश्च लभते विकारान्वातकोपजान् ॥ १६ ॥

आमं शकृद्वा निचितं क्रमेण भूयो विवृद्धं विगुणानिलेन ।

प्रवर्तमानं न यथास्वमेनं विकारमानाहमुदाहरन्ति ॥ १७ ॥

तस्मिन्भवन्त्यामसमुद्भवे तु तृष्णाप्रतिश्यायशिरोविदाहाः ।

आमाशये गूलमथो गुरुत्वं हृत्स्तम्भ उद्गारविघातनं च ॥ १८ ॥

स्तम्भः कटीपृष्ठपुरीषमूत्रशूलोऽथ मूर्च्छा शकृतश्च छर्दिः ।

श्वासश्च पक्काशयजे भवन्ति तथाऽलसोक्तानि च लक्षणानि ॥ १९ ॥

तृष्णाछर्द्यर्दितं क्लिष्टं क्षीणं शूलैरुपद्रुतम् ।

शकृद्भ्रमन्तं मतिमानुदावर्तिनमुत्सृजेत् ॥ २० ॥

इत्युदावर्तनिदानम् ।

अथैतच्चिकित्सा-

सर्वेष्वेतेषु च भिषगुदावर्तेषु कृत्स्नशः ।
 वायोः क्रिया विधातव्या स्वमार्गप्रतिपत्तये ॥ २१ ॥
 आस्थापनं मारुतजे स्निग्धस्विन्नं विशेषतः ।
 पुरीषजे तु कर्तव्यो विधिरानाहिकोदितः ॥ २२ ॥
 सौवर्चलाढ्यां मदिरां मूत्रे त्वमिहते पिबेत् ।
 एलां वाऽप्यथ मेस्त्वन्नं क्षीरं वाऽथ वचाम्बु वा ॥ २३ ॥
 एर्वारुबीजं तोयेन पिबेद्वा लवणान्वितम् ।
 पञ्चमूलीशृतं क्षीरं द्वाक्षारसमथापि वा ॥ २४ ॥
 यवक्षारं सितायुक्तं पिबेद्वा मृदुचूर्णितम् ।
 बरीकूष्माण्डयोस्तोयं सितायुक्तं पिबेदथ ॥ २५ ॥
 मूषकस्य विशा लेपो बस्तेरुपरि वा चरेत् ।
 किंशुकानां प्रलेपो वा कवोष्णो मूत्ररोधहा ॥ २६ ॥
 अत्र सर्वं प्रयुञ्जीत मूत्रकृच्छ्राश्रमरीविधिम् ।
 स्नेहस्वेदैरुदावर्तं जृम्माजं समुपाचरेत् ॥ २७ ॥
 अश्रुमोक्षोऽश्रुजे कार्यः स्विन्नस्निग्धस्य देहिनः ।
 मरिचाद्यञ्जनैर्धूमैर्निमेषाद्यवलोकनैः ॥ २८ ॥
 क्षवजे क्षवयन्त्रेण घ्राणस्थेनाऽऽनयेत्क्षवम् ।
 उद्गारजे क्रमोपेतं सैहिकं धूममाचरेत् ॥ २९ ॥
 मक्षयेदुचकं सार्द्धं खण्डं वा मथितान्वितम् ।
 वम्याघातं यथादोषं नस्यस्नेहादिभिर्जयेत् ॥ ३० ॥
 बस्तिशुद्धिकरश्चायं चतुर्गुञ्जाजलं पयः ।
 आवारिनाशात्कथितं पीतवन्तं प्रकामतः ॥ ३१ ॥
 रमयेयुः प्रिया नार्यः शुक्रोदावर्तिनं नरम् ।
 अन्नाभ्यङ्गावगाहाश्च मदिराश्चरणायुधाः ॥ ३२ ॥
 शालिः पयोनिरूहाश्च हितं मैथुनमेव च ।
 क्षुद्धिघाते हितं स्निग्धं वृष्यमल्पं च भोजनम् ॥ ३३ ॥
 तृष्णाघाते पिबेन्मन्थं यवागूं स्वादुशीतलाम् ।
 रसेनाद्यात्तु विश्रान्तः श्रमश्वासाद्वितो नरः ॥ ३४ ॥
 निद्राघाते पिबेद्दुग्धं माहिषं रजनीमुखे ।
 तिलतैलेन संमुज्य भूतले शयनं चरेत् ॥ ३५ ॥

उदावर्तिनमभ्यक्तं स्निग्धगात्रमुषाचरेत् ।
 वर्तिकास्थापनस्वेदवस्तिरेचनकर्मणा ॥ ३६ ॥
 हरीतकीयवक्षारपीलूनि तृ (त्रि) वृता तथा ।
 घृतैश्चूर्णं त्विदं पेयं ह्युदावर्तप्रशान्तये ॥ ३७ ॥

इति हरीतक्यादिचूर्णम् ।

अथ द्विरुत्तरं चूर्णम्—

हिङ्गुकुष्ठवचास्वर्जिविडं चेति द्विरुत्तरम् ।
 पीतं मद्येन तच्चूर्णमुदावर्तहरं परम् ॥ ३८ ॥

इति द्विरुत्तरं चूर्णम् ।

अथ प्रलेपः—

बल्मीकमृत्करञ्जस्य त्वङ्मूलफलपल्लवम् ।
 सिद्धार्थं चेति पिष्टानां मूत्रेणाऽऽलेपनं हितम् ॥
 उदावर्तेषु सर्वेषु सम्यग्वातानुलोमनम् ॥ ३९ ॥

इति प्रलेपः ।

अथ मदनादिफलवर्तिः—

मदनं पिप्पली कुष्ठं वचा गौराश्च सर्षपाः ।
 गुडक्षीरसमायुक्ता फलवर्तिः प्रशस्यते ॥ ४० ॥

इति मदनादिफलवर्तिः ।

अथ नाराचचूर्णम्—

खण्डपलं त्रिवृता सममुपकुल्या कर्षसंमितं श्लक्ष्णम् ।
 प्राग्भोजनस्य समधु विडालपदकं लिहेत्प्राज्ञः ॥ ४१ ॥
 एतद्गाढपुरीषे पित्ते कफे च विनियोज्यम् ।
 स्वादुर्नृपयोग्योऽयं चूर्णं नाराचको नाम्ना ॥ ४२ ॥

इति नाराचचूर्णम् ।

अथ नाराचरसः—

जैपालेन समैः सूतव्योषट्कृणगन्धकैः ।
 नाराचः स्याद्रसो ह्यस्य माषः सर्पिःसितायुतः ।
 हन्त्युदावर्तमानाहमुदराहगुल्मकम् ॥ ४३ ॥

इति नाराचरसः ।

इति श्रीयोगतरङ्गिण्यां वेगग्रहोदावर्तनिदानचिकित्साकथनं नाम षण्णवतितमस्तरङ्गः ॥९६॥

अथ सप्तनवतितमस्तरङ्गः ।

अथाऽऽनाहोपक्रमः—

‘ आटोप ’ इत्यादि निदानमुदावर्ताधिकारोक्तम् ।

अथ चिकित्सोच्यते—

अथ वचाद्यं चूर्णम्—

वचामयाचित्रकयावशूकान्सपिप्पलीकातिविषान्सकुष्ठान् ।

उष्णाम्बुनाऽऽनाहविमूढवातान्पीत्वा जयेदाशु रसौदनाशी ॥ १ ॥

इति वचाद्यं चूर्णम् ।

रामठधूमविडव्योषगुडमूत्रैर्विपाचिता ।

गुदेऽङ्गुष्ठसमावर्तिर्विधेयाऽऽनाहगूलनुत् ॥ २ ॥

इति फलवर्तिः ।

इति श्रीयोगतरङ्गिण्यामानाहचिकित्साकथनं नाम सप्तनवति-

तमस्तरङ्गः ॥ ९७ ॥

अथाष्टनवतितमस्तरङ्गः ।

अथ गुल्मनिदानम्—

दुष्टा वातादयोऽत्यर्थं मिथ्याहारविहारतः ।

कुर्वन्ति पञ्चधा गुल्मं कोष्ठान्ते ग्रन्थिरूपिणम् ॥ १ ॥

तस्य पञ्चविधं स्थानं पार्श्वे हृन्नाभिषस्तयः ।

हृन्नाभ्योरन्तरे ग्रन्थिः संचारी यदि वाऽचलः ॥ २ ॥

वृत्तश्चयोऽपचयवान्स गुल्म इति कीर्त्यते ।

स व्यस्तैर्जायते दोषैः समस्तैरपि चोच्छ्रितैः ।

पुरुषाणां तथा स्त्रीणां ज्ञेयो रक्तेन चापरः ॥ ३ ॥

उद्गारबाहुल्यपुरीषबन्धं तुप्त्यक्षमत्वान्त्रविकूजनानि ।

आटोपमाध्मानमपक्तिशक्तिरासन्नगुल्मस्य वदन्ति चिह्नम् ॥ ४ ॥

अरुचिः कृष्णविण्मूत्रं वाततान्त्रविकूजनम् ।

आनाहश्चोर्ध्ववातत्वं सर्वगुल्मेषु लक्षयेत् ॥ ५ ॥

रुक्षान्नपानं विषमातिमात्रं विचेष्टनं वेगविनिग्रहश्च ।

शोकोऽमिघातोऽतिमलक्षयश्च निरन्नता चानिलगुल्महेतुः ॥ ६ ॥

यः स्थानसंस्थानरुजाविकल्पं विद्ध्वातसङ्गं गलवक्त्रशोषम् ।
 श्यावारुणत्वं शिशिरज्वरं च हृत्कुक्षिपाश्वसिशिरोरुजं च ॥ ७ ॥
 करोति जीर्णेऽभ्यधिकं प्रकोपं भुक्ते मृदुत्वं समुपैति यश्च ।
 वातात्स गुल्मो न च तत्र रुक्षं कषायतित्तं कटु चोपशेते ॥ ८ ॥
 कट्वम्लतीक्ष्णोष्णविदाहिरुक्षक्रोधातिमद्यार्कहुताशसेवा ।
 आमाभिघातो रुधिरं च दुष्टं पैत्तस्य गुल्मस्य निमित्तमुक्तम् ॥ ९ ॥
 ज्वरः पिपासा वदनाङ्गरागः शूलं महज्जीर्यति भोजने च ।
 स्वेदो विदाहो व्रणवच्च गुल्मः स्पर्शासहः पैत्तिकगुल्मरूपम् ॥ १० ॥
 शीतं गुरुस्निग्धमचेष्टनं च संपूरणं प्रस्वपनं दिवा च ।
 गुल्मस्य हेतुः कफसंभवस्य सर्वस्तु दृष्टो निचयात्मकस्य ॥ ११ ॥
 स्तैमित्यशीतज्वरगात्रसादहृत्लासकासारुचिगौरवाणि ।
 शैत्यं रुगल्पा कठिनोन्नतत्वं गुल्मस्य रूपाणि कफात्मकस्य ॥ १२ ॥
 निमित्तलिङ्गान्युपलभ्य गुल्मे द्विदोषजे दोषबलाबलं च ।
 व्यामिश्रलिङ्गानपरांस्तु गुल्मस्त्रीनादिशेदौषधकल्पनार्थम् ॥ १३ ॥
 महारुजं दाहपरीतमश्मवद्धनोन्नतं शीघ्रविदाहि दारुणम् ।
 मनःशरीराग्निबलापहारिणं त्रिदोषजं गुल्ममसाध्यमादिशेत् ॥ १४ ॥
 नवप्रसूताऽहितभोजना या या चाऽऽमगर्भं विसृजेद्वृतौ वा ।
 वायुर्हि तस्याः परिगृह्य रक्तं करोति गुल्मं सरुजं सदाहम् ॥ १५ ॥
 पैत्तस्य लिङ्गेन समानलिङ्गं विशेषणं चाप्यपरं निबोध ।
 यः स्पन्दते पिण्डित एव नाङ्गैश्चिरात्सशूलः समगर्भलिङ्गः ॥ १६ ॥
 सरौधिरः स्त्रीभव एव गुल्मो मासे व्यतीते दशमे चिकित्स्यः ॥ १७ ॥

श्वासशूलपिपासान्नविद्वेषो ग्रन्थिमूढता ।

जायते दुर्बलत्वं च गुल्मिनो मरणाय वै ॥ १८ ॥

संचितः क्रमशो गुल्मो महावस्तुपरिग्रहः ।

कृतशूलः शिरानद्धो यदा कूर्म इवोन्नतः ॥ १९ ॥

दौर्बल्यारुचिहृत्लासकासच्छर्दयरुचिज्वरैः ।

तृष्णातन्द्राप्रतिश्यायैर्युज्यते न स सिध्यति ॥ २० ॥

गृहीत्वा सज्वरश्वासं छर्द्यतीसारपीडितम् ।

हृन्नामिहस्तपादेषु शोथः कर्षति गुल्मिनम् ॥ २१ ॥

इति गुल्मनिदानम् ।

अथ चिकित्सा—

मातुलुङ्गाद्यवलेहः—

प्रागेव वातजे गुल्मे सुस्निग्धं स्वेदितं नरम् ।
रोचितं स्नेहरेकैश्च निरुहैः सानुवासनैः ॥ २२ ॥
उपाचरेद्भिषक्प्राज्ञो मात्राकालविशेषतः ।
मातुलुङ्गरसो हिङ्गु दाडिमं विडसैन्धवम् ।
सुरामण्डेन पात्रव्यं वातगुल्मप्रशान्तये ॥ २३ ॥

इति मातुलुङ्गाद्यवलेहः ।

अथ नागराद्यवलेहः—

नागरार्धपलं हिङ्गु द्वे पले लुञ्जितस्य च ।
तिलस्यैकं गुडपलं क्षीरेणोष्णेन पाययेत् ॥ २४ ॥
वातगुल्ममुदावर्तं योनिशूलं च नाशयेत् ।

इति नागराद्यवलेहः ।

अथ हिङ्गुपञ्चकचूर्णम्—

हिङ्गुसैन्धववृक्षाम्लराजिकानागरैः समैः ॥ २५ ॥
चूर्णं गुल्मप्रशमनं स्यादेतद्विङ्गुपञ्चकम् ।

इति हिङ्गुपञ्चकचूर्णम् ।

अथ केतकीक्षारयोगः—

स्वर्जिकाकुष्ठसहितः क्षारः केतकिसंभवः ॥ २६ ॥
पीतस्तैलेन शमयेद्वातगुल्मं सुदारुणम् ।

इति केतकीक्षारयोगः ।

अथ चित्रकायं घृतम्—

वातगुल्मप्रतीकारे प्रकुप्यति यदा कफः ॥ २७ ॥
शस्तमुल्लेखनं तत्र चूर्णाद्याश्च कफापहाः ।
यदि कुप्यति वा पित्तं विरेकस्तत्र भेषजम् ॥ २८ ॥
दोषघ्नैरप्यशान्ते च गुल्मे शोणितमोक्षणम् ।
चित्रकव्योषसिन्धूत्थवृथ्वीकाचव्यदाडिमैः ॥ २९ ॥

दीप्यकग्रन्थिकाजाजीहपुषाधान्यकैः समैः ।
 दृध्यारनालबदरमूलकस्वरसैर्घृतम् ॥ ३० ॥
 पक्त्वा पिबेद्वातगुल्मदौर्बल्यादोपशूलनुत् ।
 इति चित्रकाद्यं घृतम् । इति वातगुल्मः ।

अथ पित्तगुल्मः—

पित्तगुल्मे त्रिवृच्चूर्णं पातव्यं त्रिफलाम्बुना ॥ ३१ ॥
 विरेचिताय ससितं कम्पिहं च समाक्षिकम् ।
 द्राक्षाभयारसं गुल्मे पैत्तिके सगुडं पिबेत् ॥ ३२ ॥
 सशर्करं वा विलिहेन्निफलाचूर्णमुत्तमम् ।
 गुरुः कठिनसंस्थानो गुरुर्मांसोत्तराश्रयः ॥ ३३ ॥
 अग्निवर्णस्थिरश्चैव स्नुह्यर्को गुल्महृन्मतः ।
 दाहशूलादिसंक्षोभस्वप्ननाशारुचिज्वरैः ॥ ३४ ॥
 विदह्यमानं जानीयाद्गुल्मं तमुपनाहयेत् ।
 क्षिप्तः स्वपाणिना नाभिर्बहिश्चाङ्गेऽल्पवेदनः ॥ ३५ ॥
 श्यावो बस्तिनिभस्तत्र वेधः शोधनरोपणम् ।
 अध ऊर्ध्वं द्विधा वाऽपि स चेद्दोषः प्रपद्यते ॥ ३६ ॥
 द्वादशाहमुपेक्षेत रक्षितव्यो ह्युपद्रवात् ।
 शालिं गोछागदुग्धं च सितया मधुरं हिमम् ॥ ३७ ॥
 द्राक्षां परूषकं धात्रीं खर्जूरं दाडिमं सिताम् ।
 पथ्यार्थं पैत्तिके गुल्मे बलातोयं च पाययेत् ॥ ३८ ॥
 इति पित्तगुल्मः ।

अथ कफगुल्मः—

अथ क्षीरषट्पलकं घृतम्—

स्रोहोपनाहनस्वेदतीक्ष्णसंसनबस्तिभिः ।
 योगैश्च वातगुल्मोक्तैः श्लेष्मगुल्ममुपाचरेत् ॥ ३९ ॥
 तिलैरण्डातसीबीजसर्षपैः परिलिप्य च ।
 श्लेष्मगुल्ममयःपात्रे सुखोष्णैः स्वेदयेद्भिषक् ॥ ४० ॥
 एरण्डार्कदलैर्वाऽथ स्वोष्णं स्वेद्यं मुहुर्मुहुः ।
 पञ्चमूलीगृतं तोयमथ वा जीर्णवारुणीम् ॥ ४१ ॥
 कफगुल्मी विबेत्काले जीर्णे माध्वीकमेव वा ।
 यवानीचूर्णितं तक्रं विडेन् लवणीकृतम् ॥ ४२ ॥

श्लेष्मगुल्मे पिवेद्वातमूत्रवर्चोनुलोमनम् ।
 पिप्पलीपिप्पलीमूलचव्यचित्रकनागरैः ॥ ४३ ॥
 पालिकैः सयवक्षारैर्घृतप्रस्थं विपाचयेत् ।
 क्षीरप्रस्थेन तत्सर्पिर्हन्ति गुल्मं कफात्मकम् ॥ ४४ ॥
 ग्रहणीपाण्डुरोगघ्नं प्लीहकासज्वरापहम् ।

इति क्षीरषट्पलकं घृतम् ।

अथ मिश्रकस्नेहः—

त्रिवृतात्रिफलादन्तीदशमूलं पलोन्मितम् ॥ ४५ ॥
 जले चतुर्गुणे पक्त्वा चतुर्भागावशेषिते ।
 सर्पिरेरण्डतैलं च क्षीरं चैकत्र साधयेत् ।
 संसिद्धो मिश्रकः स्नेहः सक्षौद्रः कफगुल्मनुत् ॥ ४६ ॥

इति मिश्रकस्नेहः ।

कुलत्थास्त्रीर्णशालींश्च षष्टिकान्यवजाङ्गलम् ।
 मद्यं तैलं घृतं तक्रं कफगुल्मे प्रयोजयेत् ॥ ४७ ॥
 कटुत्रयं वह्निफलत्रयं च जम्बीरनीरे लवणानि पञ्च ।
 पचेति पिण्डत्वमुपैति यावद्दद्याणमात्रं परिषेवयेत् ॥ ४८ ॥
 कठोरगुल्मस्य विनाशनाय गुर्वन्नपाकाय च दीपनाय ॥ ४९ ॥
 श्लेष्मको बद्धमूलत्वाद्यदि गुल्मो न शाम्यति ।
 तस्य दाहं हृते रक्ते कुर्यादन्ते शरादिभिः ॥ ५० ॥

इति कफगुल्मः ।

अथ संसृष्टगुल्मः—

अथ हिङ्गवादिचूर्णगुटिका—

हिङ्गुत्रिकटुकं पाठां हपुषाममयां सटीम् ।
 अजमोदाजगन्धे च तित्तिडीकाम्लवेतसौ ॥ ५१ ॥
 दाडिमं पौष्करं धान्यमजाजीचित्रकं वचाम् ।
 द्वौ क्षारौ द्वे च लवणे चव्यं चैकत्र चूर्णयेत् ॥ ५२ ॥
 चूर्णमेतत्प्रयोक्तव्यमन्ने पानेऽप्यनत्ययम् ।
 प्राग्भुक्तस्याथ वा पेयं मद्येनोष्णोदकेन वा ॥ ५३ ॥
 पार्श्वहृद्दस्तिशुलेषु गुल्मे वातकफात्मके ।
 आनाहे मूत्रकृच्छ्रे च शूले च गुदयोनिजे ॥ ५४ ॥

ग्रहण्यर्शोविकारेषु प्लीहपाण्ड्वामयेषु च ।

उरोविबन्धे हिक्कायां कासे श्वासे गलग्रहे ॥ ५५ ॥

भावितं मातुलुङ्गस्य चूर्णमेतद्रसेन वा ।

बहुशो गुटिकाः कार्या गुल्मध्न्यः स्युस्ततोऽधिकाः ॥ ५६ ॥

इति हिङ्गवादिचूर्णगुटिका ।

गुल्मवान्मदिरां मण्डैस्तैलमेरण्डजं पिबेत् ।

ससमीरे कफे तत्र सपित्ते तु पयोन्वितम् ॥ ५७ ॥

इति संसृष्टगुल्मः ।

अथ त्रिदोषगुल्मः—

वरणादिकषायस्तु गुल्मं दोषत्रयोत्थितम् ।

हन्ति हृत्पार्श्वशूलाढ्यं सोपद्रवमसंशयम् ॥ ५८ ॥

इति त्रिदोषगुल्मः ।

अथ सामान्यविधिः—

लङ्घनं दीपनं स्निग्धमुष्णं वातानुलोमनम् ।

बृंहणं च भवेदन्नं तद्धितं सर्वगुल्मिनाम् ॥ ५९ ॥

गुल्मिनामनिलशान्तिरुपायैः सर्वशो विधिवदाचरितव्या ।

मारुते तु विजितेऽन्यमुदीर्णं दोषमल्पमपि कर्म निहन्यात् ॥ ६० ॥

सुखोष्णा जाङ्गलरसाः सुस्निग्धा व्यक्तसैन्धवाः ।

कटुत्रिक्कसमायुक्ता हिताः पानेषु गुल्मिनाम् ॥ ६१ ॥

कुम्भीपिण्डेष्टिकास्वेदान्कारयेत्कुशलो भिषक् ।

उपनाहाश्च कर्तव्याः सुखोष्णाः शाल्वणादयः ॥ ६२ ॥

गुल्मस्थाने रक्तमोक्षो बाहुमध्ये शिराव्यधः ।

स्वेदोऽनुलोमनं चैव प्रशस्तं सर्वगुल्मिनाम् ॥ ६३ ॥

बल्लूरं मूलकं मत्स्याञ्जुष्कशाकानि वैदलम् ।

न खादेद्बालुकं गुल्मी मधुराणि फलानि च ॥ ६४ ॥

वचामयाविडं शुण्ठीहिङ्गुकृष्णाग्निदीप्यकान् ।

द्वित्रिषट्चतुरेकाष्टपञ्चसप्तपलङ्किकान् ॥ ६५ ॥

चूर्णवेद्वन्नगलितं चूर्णं चैतद्यथाबलम् ।

मैधुनोष्णाम्बुना वाऽपि पीतं गुल्मानपोहति ॥ ६६ ॥

गूलार्शःश्वासकासघ्नं ग्रहणीदीपनं परम् ।
इति वचाद्यं चूर्णम् ।

अथ हिङ्गवाद्यं धृतम्-

हिङ्गुपुष्करमूलानि तुम्बुलानि हरीतकीम् ॥ ६७ ॥
श्यामाविडं सैधवं च यवक्षारं महौषधम् ।
यवक्राथोदकेनैतद्घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥
तेनास्य विद्यते गुल्मः सगूलः सषरिग्रहः ॥ ६८ ॥

इति हिङ्गवाद्यं चूर्णम् ।

अथ सामुद्रादिवर्तिः-

वातवर्चोनिरोधेषु सामुद्रार्द्रकसर्वपैः ।
कृत्वा पायौ विधातव्या वर्तयो मरिचान्वितैः ॥ ६९ ॥

इति सामुद्रादिवर्तिः ।

अथ नादेयीक्षारः-

नादेयीकुटजार्कशिगुबृहतीसुग्विल्वभल्लातक-
व्याघ्रीकिंशुकपारिभद्रकजटापामार्गनीपाग्निकान् ।
वासामुष्ककपाटलासलवणान्दग्ध्वा जले पाचितान्
हिङ्गवादिप्रतिवापमेतदुचितं गुल्मोदराष्टील्लिषु ॥ ७० ॥

इति नादेयीक्षारः ।

अथ वज्रक्षारः-

क्षीरं वज्रतरुज्झवं दशपलं तावत्पयोऽप्यर्कजं
प्रत्येकं पलपञ्चकं च लवणं क्षारं च पञ्चात्मकम् ।
विंशत्यर्कदलैर्युतं पवितरोः क्षीरैश्चतुर्भिः पलै-
र्मृज्जाण्डे गुरुमार्गतो गजपुटे वह्नौ विपक्रीकृतम् ॥ ७१ ॥
संचूर्ण्यार्थं कटुत्रयं त्रिपलमप्येकं पलं रामटं
सर्वं वस्त्रपुनीतमेतदमले पात्रे सुखं स्थापयेत् ।
वज्रक्षारं इति प्रणाशयति वै गुल्मानुदग्रान्नृणां
पीतस्तक्रयुतः प्रभातसमये कर्षप्रमाणं क्रमात् ॥ ७२ ॥
मन्दाग्निं सविषूचिकामरुचितामापाण्डुतां क्षीणतां
श्वासं कासमजीर्णशैत्यपवनव्याधीन्बलासोद्भवान् ।

वज्रक्षार इमान्निवार्य भिषजां कीर्तिं विधत्ते परां
मांसं द्रावयति स्फुटं घटिकयोर्द्वन्द्वे किमन्नं पुनः ॥ ७३ ॥
इति वज्रक्षारः ।

अथापरो वज्रक्षारः—

सामुद्रं सैन्धवं काचं यवक्षारं सुवर्चलम् ।
टङ्कणं स्वर्जिकाक्षारं चूर्णमेषां विभावयेत् ॥ ७४ ॥
अर्कक्षीरैः स्रुहिक्षीरैरातपे शोषयेद्भयहम् ।
अर्कपत्राणि लिप्त्वा तैरर्कमूलाम्बुपेषितैः ॥ ७५ ॥
नियोज्य हण्डिकामध्ये रुद्ध्वा गजपुटे पचेत् ।
तत्क्षारे चूर्णमानं च द्यूषणं त्रैफलं रजः ॥ ७६ ॥
जीरकं रजनीवह्निनवभागं समं समम् ।
क्षारार्धमेतद्धं च मेलयित्वा प्रयोजयेत् ॥ ७७ ॥
वज्रक्षारोऽयमुदितः स्वयं देवेन शंभुना ।
सर्वोदरेषु गुल्मेषु शूले शोथे च योजयेत् ॥ ७८ ॥
वाताधिके जलैः कोष्णैर्घृतैः पित्ताधिके हितम् ।
कफे गोमूत्रसंयुक्तं काञ्जिकाढ्यं त्रिदोषजे ।
वज्रक्षारममुं वैद्यो मन्दाग्नेर्दीपनं परम् ॥ ७९ ॥

इत्यपरो वज्रक्षारः ।

अथ दाधिकं घृतम्—

कटुत्रयं वह्निफलत्रयं च जम्बीरनीरे लवणानि पञ्च ।
पचेत् पिण्डत्वमुपैति यावद्द्रव्याणमानं परिषेवयेत् ॥ ८० ॥
कठोरगुल्मस्य विनाशनाय हितं सदा प्रोक्तमिदं महौषधम् ॥ ८१ ॥
विडदाडिमसिन्धूत्थहुतभुग्वयोषजीरकैः ।
हिङ्गसौवर्चलक्षारचुक्रवृक्षाम्लवेतसैः ॥ ८२ ॥
बीजपूररसोपेतैः सर्पिर्दधिचतुर्गुणम् ।
साधितं दाधिकं नाम्ना गुल्महृत्प्लीहनुत्परम् ॥ ८३ ॥

इति दाधिकं घृतम् ।

अथ रक्तगुल्मचिकित्सा—

शताह्वादिकल्कः—

प्रसिग्धस्विन्नकोष्ठाया योज्यं स्नेहविरेचनम् ।
शताह्वाचिरबिल्वत्वग्दारुमार्गीकणोज्झवः ॥ ८४ ॥

कल्कः पीतो जयेदुल्मं तिलकाथेन रक्तजम् ॥ ८५ ॥
इति शताह्वादिकल्कः ।

अथ तिलकाथः—

तिलकाथो गुडव्योषहिङ्गुमार्गीयुतो हितः ।
पीतो रक्तमवे गुल्मे नष्टपुष्पेऽपि योषिताम् ॥ ८६ ॥
इति तिलकाथः ।

अथ पलाशक्षारघृतम्—

पलाशक्षारतोयेन सर्पिः सिद्धं पिबेद्वधूः ।
यस्मिन्नवसरे क्षीरतोयसाध्यघृतादिषु ॥ ८७ ॥
फेनोद्गमस्य निर्व्यक्तिर्नष्टदुग्धसमाकृतिः ।
स एव तस्य पाकस्य कालो नेतरलक्षणः ॥ ८८ ॥
अकल्कमेव घृतमेतद्विपक्तव्यम् ।
इति पलाशक्षारघृतम् ।

अथ कल्लाराद्यं घृतम्—

कल्लारमुत्पलं पद्मं कुमुदं मधुयष्टिकाम् ।
पक्त्वाऽम्बुनैत्काथेन जीवनीयोपकलितम् ॥ ८९ ॥
घृतं पक्वं नवं पीतं रक्तपित्तास्रगुल्मनुत् ।
दाहतृष्णाज्वरच्छर्दियोनिद्रोषहरं परम् ॥ ९० ॥
इति कल्लाराद्यं घृतम् ।

उष्णैश्च भेदयेद्भिन्ने चिरमसृग्दरे हितः ।
अतिप्रवृत्तमस्रं तु भिन्ने गुल्मे निवारयेत् ॥ ९१ ॥
रक्तपित्तहरैर्योगैर्वातघ्नैश्च मरुद्बुदान् ।

अथ रसाः—

विद्याधररसः—

गन्धकं तालकं ताप्यं सूतताम्रं मनःशिलाम् ॥ ९२ ॥
शुद्धसूतं च तुल्यांशं मर्दयेद्भावेदपि ।
पिप्पल्यास्तु कप्राग्नेया वज्रीक्षीरेण च त्रिशः ॥ ९३ ॥
निष्कार्धं मक्षयेत्क्षौद्रे गुल्मप्लीहोदरं जयेत् ।
रसो विद्याधरो नाम्ना गोमूत्रं च पिबेदनु ॥ ९४ ॥
इति विद्याधररसः ।

अथ वङ्गेश्वरः—

मस्मसूतं वङ्गमस्म प्रत्येकं कल्पयेत्पलम् ।
 गन्धकं मृतताम्रं च प्रत्येकं तु चतुष्पलम् ॥ ९५ ॥
 अर्कक्षीरैर्दिनं मर्द्य तत्सर्वं गोलकीकृतम् ।
 संरुध्य भूधरे पच्यात्स्वाङ्गशीतं समुद्धरेत् ॥ ९६ ॥
 एष वङ्गेश्वरो नाम्ना प्लीहगुल्मोदरं जयेत् ।
 द्विगुञ्जं हविषा लीङ्वा निष्कां श्वेतपुनर्नवाम् ॥ ९७ ॥
 गोमूत्रपिष्टां प्रपिबेद्रजनीवातगोजलैः ।

इति वङ्गेश्वरः ।

अथ गुल्मारिः—

सूतं गन्धं कणापथ्यास्तुल्या आरग्वधाम्बुमिः ॥ ९८ ॥
 मर्दयेद्द्वज्जिदुग्धैश्च तन्माषं मधुना लिहेत् ।
 क्लीणां जलोदरं हन्ति पथ्यं शाल्योदनं वधि ।
 चिञ्चाफलरसं चानु पिबेत्संशीलिते रसे ॥ ९९ ॥

इति गुल्मारिः ।

शङ्खद्रावो जयत्याशु पथ्यासैन्धवसंयुतः ।
 दुःसाध्यानपि गुल्मांश्च पृथुलोपद्रवोत्कटान् ॥ १०० ॥
 इति श्रीयोगतरङ्गिण्यां गुल्मनिदानचिकित्साकथनं नामा-
 ष्टनवतितमस्तरङ्गः ॥ ९८ ॥

अथ नवनवतितमस्तरङ्गः ।

अथ हृद्रोगनिदानम्—

अत्युष्णगुर्वम्लकषायतिक्तश्रमामिषाताप्यजनप्रसङ्गैः ।
 संचिन्तनैर्वेगविधारणैश्च हृदामयः पञ्चविधः प्रदिष्टः ॥ १ ॥
 दूषयित्वा रसं दोषा विगुणा हृदयं गताः ।
 हृदि बाधां प्रकुर्वन्ति हृद्रोगं तं प्रचक्षते ॥ २ ॥
 आयम्यते मारुतजे हृदयं तुद्यते यथा ।
 निर्मथ्यते क्षीर्यते च स्फोट्यते पाट्यतेऽपि च ॥ ३ ॥

तृष्णोष्मदाहचोषाः स्युः पैत्तिके हृदयक्लमः ।
 धूमावनं च मूर्छां च क्लेदः शोषो मुखस्य च ॥ ४ ॥
 गौरवं कफसंस्त्रावोऽरुचिः स्तम्भोऽग्निमार्दवम् ।
 माधुर्यमपि चाऽऽस्यस्य बलासावतते हृदि ॥ ५ ॥
 विद्यान्निदोषजं वाऽपि सर्वलिङ्गं हृदामयम् ।
 त्रिदोषजे तु हृद्रोगे यो दुरात्मा निषेवते ॥ ६ ॥
 तिलक्षीरगुडादीनि ग्रन्थिस्तस्यैव जायते ।
 भर्मेकदेशे संक्लेदं रसश्चाप्युपगच्छति ॥ ७ ॥
 संक्लेदात्कृमयश्चास्य भवन्त्युपहतात्मजः ।
 तीव्रार्तितोदं कृमिजं तद्दोषचयसंकटम् ॥ ८ ॥
 उत्क्लेदः षीवनं तोदः शूलं हृत्लासकस्तमः ।
 अरुचिः श्यावनेत्रत्वं शोषश्च कृमिहृद्गुर्जिं ॥ ९ ॥
 क्लमः सादो भ्रमः शोषो ज्ञेयास्तेषामुपद्रवाः ।
 कृमिजे कृमिजातीनां श्लैष्मिकाणां च ये मताः ॥ १० ॥

इति हृद्रोगनिदानम् ।

अथ वातहृद्रोगः—

पिप्पल्यादिचूर्णम्—

वातोपसृष्टै हृदये वामयेत्स्निग्धमातुरम् ।
 द्विपञ्चमूलीकाथेन सस्नेहलवणेन वा ॥ ११ ॥
 पिप्पल्येला वचा हिङ्गु यवक्षारोऽथ सैन्धवम् ।
 सौवर्चलमथो शुण्ठी दीप्यश्चेति विचूर्णितम् ॥ १२ ॥
 फलधान्याम्लकौलत्थद्विधिमद्यासवादिभिः ।
 पाययेच्छुद्धदेहं च वातहृद्रोगशान्तये ॥ १३ ॥

इति पिप्पल्यादिचूर्णम् ।

अथ पुष्करमूलाद्यं चूर्णम्—

सपुष्कराख्यं फलेपूरमूलं महौषधं सट्यमया च कल्काः ।
 क्षीराम्लसर्पिलवणैर्विमिश्राः स्युर्वातहृद्रोगहरा नराणाम् ॥ १४ ॥
 इति पुष्कराद्यं चूर्णम् ।
 इति वातहृद्रोगः ।

अथ पित्तहृद्रोगः—

द्राक्षाद्यं चूर्णम्—

श्रीपर्णी मधुकं क्षौद्रं सितागुडजलैर्वमेत् ।

पित्तोपसृष्टे हृदये सिञ्चेत मधुरैः शृतैः ॥

घृतं कषायांश्चारिष्टान्पित्तज्वरविनाशनान् ॥ १५ ॥

शीताः प्रदेहाः परिषेचनं च तथा विरेको हृदि पित्तदुष्टे ।

द्राक्षासिताक्षौद्रपरुषकैः स्याच्छुद्धे च पित्तापहमन्नपानम् ॥ १६ ॥

*हारहुराहरीतक्योस्तुल्यशर्करयो रजः ।

पीतं हिमाम्बुना हन्ति पित्तहृद्रोगमञ्जसा ॥ १७ ॥

इति द्राक्षाद्यं चूर्णम् ।

अर्जुनस्य त्वचा सिद्धं क्षीरं पित्तहृदतिजित् ।

सितया पञ्चमूल्या वा बलया मधुकेन वा ॥ १८ ॥

इति पित्तहृद्रोगः ।

अथ कफहृद्रोगः—

त्रिवृताद्यौ चूर्णकाथौ—

हृद्रोगे कफजे स्विन्नं सुवान्तं लङ्घितं नरम् ।

कफघ्नैर्मेषजैर्युञ्ज्याज्ज्ञात्वा दोषबलाबलम् ॥ १९ ॥

त्रिवृत्सठीबलाराम्नाशुण्ठीपथ्याः सपौष्कराः ।

चूर्णिता वा शृता मूत्रे पातव्याः कफहृद्भेदे ॥ २० ॥

इति त्रिवृताद्यौ चूर्णकाथौ ।

सूक्ष्मैलामागधीमूलं प्रलीढं सर्पिषा सह ।

नाशयत्याशु हृद्रोगं कफजं सपरिग्रहम् ॥ २१ ॥

इति कफहृद्रोगः ।

अथ त्रिदोषहृद्रोगः—

त्रिदोषजे लङ्घनमादितः स्यादन्नं तु सर्वेषु हितं विधेयम् ।

चूर्णानि सर्पिषि च वक्ष्यमाणान्यत्र प्रयोज्यानि भिषग्निराशु ॥ २२ ॥

अथ कृमिजहद्रोगः—

हृद्रोगे कृमिजे कार्यं लङ्घनं चाथ तर्पणम् ।
पश्चात्कृमिहरं कर्म कृमिरोगोक्तमाचरेत् ॥ २३ ॥

इति कृमिजहद्रोगः ।

अथ सामान्यहृदामयप्रतीकारः—

हिङ्गवाद्यं चूर्णम्—

हिङ्गुग्नगन्धाविडविश्वकृष्णाकुष्ठामयाचित्रकयावशूकम् ।
पिबेत्ससौवर्चलपुष्कराढ्यं यवाम्मसा शूलहृदामयघ्नम् ॥ २४ ॥

इति हिङ्गवाद्यं चूर्णम् ।

अथ पुष्कराद्यं चूर्णम्—

चूर्णं पुष्करमूलस्य मधुना सह लेहयेत् ।
हृत्तासश्वासकासघ्नं हृदामयहरं परम् ॥ २५ ॥

इति पुष्कराद्यं चूर्णम् ।

अथ ककुभाद्यं चूर्णम्—

घृतेन दुग्धेन गुडाम्मसा वा पिबन्ति चूर्णं ककुमत्वचो ये ।
हृद्रोगजीर्णज्वररक्तपित्तं जित्वा भवेयुश्चिरजीविनस्ते ॥ २६ ॥
इति ककुमाद्यं चूर्णम् ।

अथ दशमूलीकाथः—

दशमूलीकषायस्तु लवणक्षारसंयुतः ।
पीतो निहन्ति सहसा हृदामयमसंशयम् ॥ २७ ॥
इति दशमूलीकाथः ।

अथ वल्लभघृतम्—

शतार्धममयानां तु सौवर्चलपलद्वयम् ।
पचेत्कल्कैर्घृतं प्रस्थं दत्त्वा क्षीरं चतुर्गुणम् ॥
घृतं वल्लभकं नाम्ना श्रेष्ठं हृद्रोगनाशनम् ॥ २८ ॥
इति वल्लभघृतम् ।
पार्थस्य कल्कस्वरसेन सिद्धं शस्तं घृतं सर्वहृदामयेषु ॥ २९ ॥

अथ त्रिनेत्रो रसः—

रसगन्धाभ्रमस्मानि पार्थवृक्षत्वगम्बुना ।
 एकविंशतिधा घर्मे मावितानि विधानतः ॥ ३० ॥
 माषमात्रमिदं चूर्णं मधुना सह लेहयेत् ।
 वातजं पित्तजं श्लेष्मसंभूतं वा त्रिदोषजम् ॥ ३१ ॥
 कृमिजं चापि हृद्रोगं निहन्त्येव न संशयः ।

इति त्रिनेत्रो रसः ।

तैलाम्लतक्रगुर्वन्नकषायश्रममातपम् ॥ ३२ ॥
 रोषस्त्रीमर्मचिन्ताश्च भाषां हृद्रोगवास्त्यजेत् ।
 शालिर्मुद्गा यवा मांसं जाङ्गलं मरिचान्वितम् ।
 पटोलं कारवेल्लं च पथ्यं प्रोक्तं हृदामये ॥ ३३ ॥
 इति योगतरङ्गिण्यां हृद्रोगनिदानचिकित्साकथनं नामैकोन-
 शततमस्तरङ्गः ॥ ९९ ॥

अथ शततमस्तरङ्गः ।

अथ मूत्रकृच्छ्रनिदानम्—

व्यायामतीक्ष्णौषधिरूक्षमद्यप्रसङ्गनृत्यद्रुतपृष्ठयानात् ।
 आनूपमत्स्याध्यशनादजीर्णात्स्युर्मूत्रकृच्छ्राणि नृणामिहाद्यौ ॥ १ ॥
 दोषैः पृथक्त्रीण्यथ संनिपातात्तुर्यं तथा पञ्चममश्मरीतः ।
 षष्ठं विशा सप्तमकं तु शुक्रात्तदष्टमं शल्यजमाहुरार्याः ॥ २ ॥
 पृथग्मलाः स्वैः कुपिता निदानैः सर्वेऽथ वा कोपमुपेत्य बस्तौ ।
 मूत्रस्य मार्गं परिपीडयन्ति यदा तदा मूत्रयतीह कृच्छ्रात् ॥ ३ ॥
 तीव्रा रुजो वङ्क्षणवस्तिमेद्रे स्वल्पं मुहुर्मूत्रयतीह वातात् ।
 पीतं सरक्तं सरुजं सदाहं पित्तान्मुहुर्मूत्रयतीह कृच्छ्रात् ॥ ४ ॥
 बस्तेः सलिङ्गस्य गुरुत्वशोफौ मूत्रं सपिच्छं कफमूत्रकृच्छ्रे ।
 सर्वाणि रूपाणि तु संनिपातान्द्रवन्ति तत्कृच्छ्रतमं च कृच्छ्रम् ॥ ५ ॥
 वातालिङ्गगुरुत्वं च मूत्रे पिच्छिलता तथा ।
 श्वयथुश्च भवेत्कृच्छ्रे स्वल्परुक्कफसंभवे ॥ ६ ॥
 मूत्रबाहिषु शल्येन क्षतेष्वभिहतेषु च ।
 मूत्रकृच्छ्रं तदाघाताज्जायते मृशदारुणम् ॥ ७ ॥

वातकृच्छ्रेण तुल्यानि तस्य रूपाणि निर्विशेत् ।
 शकृतस्तु प्रतीघाताद्वायुर्विगुणतां गतः ॥ ८ ॥
 आध्मानं वातशूलं च मूत्रकृच्छ्रं करोति च ।
 अश्मरीहेतु तत्पूर्वं मूत्रकृच्छ्रमुदाहरेत् ॥ ९ ॥
 शुक्रदोषैरुपहते मूत्रमार्गे विदारिते ।
 सशुक्रं मूत्रयेत्कृच्छ्राद्बस्तिमेहनशूलवान् ॥ १० ॥
 अश्मरी शर्करा चैव तुल्यसंभवलक्षणे ।
 शर्कराया विशेषं तु शृणु कीर्तयतो मम ॥ ११ ॥
 पच्यमानाऽश्मरी पित्ताच्छोष्यमाणा च वायुना ।
 विमुक्तकफसंधाना क्षरन्ती शर्करा मता ॥ १२ ॥
 हृत्पीडा वेपथुः शूलं कुक्षावग्निश्च दुर्बलः ।
 तथा भवति मूर्छा च मूत्रकृच्छ्रं च दारुणम् ॥ १३ ॥

इति मूत्रकृच्छ्रनिदानम् ।

अथ वातमूत्रकृच्छ्रम्—

अभ्यञ्जनमेहनिरुहवस्तिस्वेदोपनाहोत्तरवस्तिसेकान् ।
 स्थिरादिभिर्वातहरैश्च सिद्धान्दद्याद्रसांश्चानिलमूत्रकृच्छ्रे ॥ १४ ॥
 अमृतां नागरं धात्रीं वाजिगन्धां त्रिकण्टकम् ।
 निक्वाथ्य प्रपिबेत्काथं मूत्रकृच्छ्री समीरतः ॥ १५ ॥

इत्यमृतादिकाथः । इति वातमूत्रकृच्छ्रम् ।

अथ पित्तजमूत्रकृच्छ्रम्—

अथ तृणपञ्चमूलकाथपयसी—

सेकावगाहाः शिशिराः प्रदेहा ग्रीष्मो विधिर्बस्तिपयोविरेकाः ।
 द्राक्षाविदारीक्षुरसैर्घृतैश्च कृच्छ्रेषु पित्तप्रभवे च कार्याः ॥ १६ ॥
 कुशः काशः शरो दर्भ इक्षुश्चेति तृणोद्भवम् ।
 पित्तकृच्छ्रहरं पञ्चमूलं बस्तिविशोधनम् ॥
 एतत्सिद्धं पयः पीतं मेद्वगं हन्ति शोणितम् ॥ १७ ॥

इति तृणपञ्चमूलकाथपयसी ।

अथ शतावर्यादिकाथः—

शतावरीकाशकुशश्वदंष्ट्राविदारिशालीक्षुरुसेरुकाणाम् ।

क्राथं सुशीतं मधुशर्कराभ्यां युक्तं पिबेत्पैत्तिकमूत्रकृच्छ्रे ॥ १८ ॥

इति शतावर्यादिकाथः ।

अथ हरीतक्यादिकाथः—

हरीतकीगोक्षुरराजवृक्षपाषाणभिद्धन्वयवासकानाम् ।

क्राथं पिबेन्माक्षिकसंप्रयुक्तं कृच्छ्रे सदाहे सरुजे विबन्धे ॥ १९ ॥

इति हरीतक्यादिकाथः ।

अथ शतावरीसर्पिःपयसी च—

शतावरीकाशकुशश्वदंष्ट्राविदारिकेक्ष्वामलकलकसिद्धम् ।

सर्पिः पयो वा सितया विमिश्रं कृच्छ्रेषु पित्तप्रमवेषु योज्यम् ॥ २० ॥

इति शतावरीसर्पिःपयसी च । इति पित्तजमूत्रकृच्छ्रम् ।

अथ श्लेष्मकृच्छ्रम्—

क्षारोष्णतीक्ष्णौषधमन्नपानं स्वेदो यवाह्नं वमनं निरूहः ।

तक्रं च तिक्तोषणसिद्धतैलं बस्तिश्च शस्तः कफमूत्रकृच्छ्रे ॥ २१ ॥

मूत्रेण सुरया वाऽपि कदलीस्वरसेन वा ।

कफकृच्छ्रविनाशाय सूक्ष्मां पिष्टां त्रुटिं पिबेत् ॥ २२ ॥

इति श्लेष्मकृच्छ्रम् ।

अथ त्रिदोषकृच्छ्रम्—

बृहत्यादिकाथः—

सर्वं त्रिदोषप्रमवे तु कृच्छ्रे यथामलं कर्म समीक्ष्य कार्यम् ।

तत्राधिके प्राग्बमनं कफे स्यात्पित्ते विरेकः पवने तु बस्तिः ॥ २३ ॥

बृहतीधावनीपाठायष्टीमधुकलिङ्गकाम् ।

पक्त्वा क्राथं पिबेन्मर्त्यो कृच्छ्रे दोषत्रयोद्भवे ॥ २४ ॥

इति बृहत्यादिकाथः ।

गुढेन मिश्रितं दुग्धं कदुष्णं कामतः पिबेत् ।

मूत्रकृच्छ्रेषु सर्वेषु शर्करावातरोगनुत् ॥ २५ ॥

अथाभिघातमूत्रकृच्छ्रम्-

मूत्रकृच्छ्रेऽभिघातोत्थे वातकृच्छ्रक्रिया हिता ।
 तथाऽभिघातजे कुर्यात्सद्यो व्रणचिकित्सितम् ।
 पञ्चवल्कलसुलेपः कवोष्णोऽत्र प्रशस्यते ॥ २६ ॥
 मन्थं पिबेद्वा ससितं च सर्पिः शृतं पयो वाऽर्धसिताज्ययुक्तम् ।
 धात्रीरसं चेश्वरसं पिबेद्वाऽभिघातकृच्छ्रे मञ्जना विमिश्रम् ॥ २७ ॥

अथ शुक्रविविबन्धजं कृच्छ्रम्-

कृच्छ्रे शुक्रविविबन्धोत्थे शिलाजतु समाक्षिकम् ।
 रालाहिङ्गयुतं क्षीरं सर्पिर्मिश्रं पिबेन्नरः ॥ २८ ॥
 शुक्रदोषविशुद्धयर्थं समदाः प्रमदाः भवेत् ।
 तुणपञ्चकमूलेन सिद्धं सर्पिः पिबेदपि ॥ २९ ॥

अथ शकृद्विघातजं कृच्छ्रम्-

गोक्षुरादिकाथः-

स्वेदचूर्णक्रियाभ्यङ्गवस्तपः स्युः पुरीषजे ।
 कृच्छ्रे तत्र विधिः कार्यः सर्वशुक्रविविबन्धजित् ॥ ३० ॥
 काथो गोक्षुरबीजानां यवक्षारयुतः सदा ।
 मूत्रकृच्छ्रं शकृज्जातं पीतः शीघ्रं निवारयेत् ॥ ३१ ॥
 इति गोक्षुरादिकाथः ।

अथाश्मरीजं कृच्छ्रम्-

एलादिकाथः-

अश्मरीजे मूत्रकृच्छ्रे स्वेदाद्या वातजिक्रियाः ।
 पाषाणमेदकाथस्तु कृच्छ्रमश्मरीजं जयेत् ॥ ३२ ॥
 एलोपकुल्यामधुकाश्ममेदकौन्तीश्वदंष्ट्रावृषकोरुषूकैः ।
 शृतं पिबेदश्मजतु प्रगाढं सशर्करे साश्मरिमूत्रकृच्छ्रे ॥ ३३ ॥
 इत्येलादिकाथः । इत्यश्मरीजं कृच्छ्रम् ।

अथ सामान्यमूत्रकृच्छ्रविधिः—

अथैलाद्यवलेहः—

कोष्णाखुविट्कल्कलेपो वस्तेरुपरि कृच्छ्रिणः ।
 त्रपुसीबीजलेपो वा धारा वा किंशुकाम्मसः ॥ ३४ ॥
 ध्वजच्छिद्रे चेन्दुदानं दानं वा चटकाविशः ।
 मेघनादशिफालेपः स्वेदो वा कर्कटामिषैः ॥ ३५ ॥
 पातो वा कोष्णतैलस्य धारा वा कोष्णवारिणा ।
 नवैते पादिका योगा मूत्रकृच्छ्रहरा मताः ॥ ३६ ॥
 एलाश्ममेदकशिलाजतुपिप्पलीनां
 चूर्णानि तण्डुलजलैर्लिङ्गितानि पीत्वा ।
 यद्वा गुडेन सहितान्यवलिह्य मात्रा-
 मासन्नमृत्युरपि जीवति मूत्रकृच्छ्री ॥ ३७ ॥

इत्येलाद्यवलेहः ।

अथ गोक्षुराद्यो गुग्गुलुः—

गोकण्टात्प्रसृतीश्चतुर्विंश पचेत्स्वच्छे जले षड्गुणे
 पूतेऽर्धेऽत्र पलानि सप्त तु पुटादृत्वा पचाथ क्षिपेत् ।
 चूर्णं सप्तपलं वरात्रिकटुकाब्दाद्गोक्षुराद्यः पुरः
 स्यादेषोऽश्मरिमेहकृच्छ्रपवनासृङ्मूत्रशुक्रार्तिजित् ॥ ३८ ॥

इति गोक्षुराद्यो गुग्गुलुः ।

अथ त्रिकण्टकादिकाथः—

त्रिकण्टकारग्वधदर्मकाशदुरालमापर्वतमेदपथ्याः ।
 निघ्नन्ति पीता मधुनाऽश्मरीकां संप्राप्तमृत्योरपि मूत्रकृच्छ्रम् ॥ ३९ ॥
 इति त्रिकण्टकादिकाथः ।

अथ लोहभस्मयोगः—

अयोमस्म श्लक्ष्णपिष्टं मधुना सह योजितम् ।
 मूत्रकृच्छ्रं निहन्त्याशु त्रिमिर्लैर्हर्न संशयः ॥ ४० ॥
 इति लोहभस्मयोगः ।
 सितातुल्यो यवक्षारो मक्षितः सर्वकृच्छ्रनुत् ।
 निदिग्धिकारसो वाऽपि सक्षौद्रः कृच्छ्रनाशनः ॥ ४१ ॥

अथ त्रिकण्टकाद्यं घृतम्—

त्रिकण्टकैरण्डकुशाद्यमीरुकर्कारुकेक्षुस्वरसेन सिद्धम् ।
 सर्पिर्गुडाधांशयुतं प्रपेयं कृच्छ्राश्मरीमूत्रविघातहारि ॥ ४२ ॥
 इति त्रिकण्टकाद्यं घृतम् ।

अथ रसः—

प्रत्येकं कर्षमात्रं स्यात्सूतं ताम्रं तथाऽभ्रकम् ।
 द्विगुणं गन्धकं चैव कृत्वा कज्जलिकां शुभाम् ॥ ४३ ॥
 मुस्तादाडिमतोयेन केतकीस्तनवारिणा ।
 सहदेव्याः कुमार्याश्च पर्पटोशीरयोरपि ॥ ४४ ॥
 तालमूल्याः शतावर्या भावयित्वा दिनं दिनम् ।
 तिक्ता गुडूचीसत्त्वं च *पर्पटोशीरमागधि ॥ ४५ ॥
 श्रीखण्डं सारिवा चैषां समानं चूर्णकं क्षिपेत् ।
 द्राक्षाफलकषायेण सप्तधा परिभावयेत् ॥ ४६ ॥
 छायाशुष्कं विधायाथ वटी कार्या चणोपमा ।
 महाचन्द्रकलानाम्ना रसेन्द्रोऽयं निरूपितः ॥ ४७ ॥
 मूत्रकृच्छ्राणि सर्वाणि प्रमेहानपि दुस्तरान् ।
 प्रवरं चाम्लपित्तं च दाहं दुःसहमश्मरीम् ॥ ४८ ॥
 हन्ति श्रीशंभुना प्रोक्तो रसश्चन्द्रकलाभिधः ।

इति महाचन्द्रकलानामरसः ।

व्यायामं मैथुनं तीक्ष्णं मद्यमातपमामिषम् ॥ ४९ ॥
 अध्वानं च विदाह्यन्नं मूत्रकृच्छ्री विवर्जयेत् ।
 मुद्गशालियवाजीर्णा गोधूमा अपि शर्करा ॥ ५० ॥
 पयश्चाऽऽमलकं सर्पिस्तण्डुलीयं कठिल्लकम् ।
 पटोलं चेति पथ्यं स्यान्मूत्रकृच्छ्रजुषां नृणाम् ॥ ५१ ॥

इति श्रीयोगतरङ्गिण्यां मूत्रकृच्छ्रनिदानचिकित्साकथनं नाम
 शततमस्तरङ्गः ॥ १०० ॥

* क. 'चन्दनो' इति पाठान्तरम् ।

अथैकाधिकशततमस्तरङ्गः ।

अथ मूत्राघातनिदानम्—

जायन्ते कुपितैर्दोषैर्मूत्राघातास्त्रयोदश ।
 प्रायो मूत्रविधाताद्यैर्वातकुण्डलिकादयः ॥ १ ॥
 रौक्ष्याद्वेगविधाताद्वा वायुर्बस्तौ सवेदनः ।
 मूत्रमाविश्य चरति विगुणः कुण्डलीकृतः ॥ २ ॥
 मूत्रमल्पाल्पमथवा सरुजं संप्रवर्तते ।
 वातकुण्डलिकां तां तु व्याधिं विद्यात्सुदारुणाम् ॥ ३ ॥
 आध्मापयन्बस्तिगुदं रुद्ध्वा वायुश्चलोल्लताम् ।
 कुर्यात्तीव्रार्तिमष्ठीलां मूत्रविण्मार्गरोधिनीम् ॥ ४ ॥
 वेगं विधारयेद्यस्तु मूत्रस्याकुशलो नरः ।
 निरुणद्धि मुखं तस्य बस्तेर्बस्तिगतोऽनिलः ॥ ५ ॥
 मूत्रसङ्गो भवेत्तेन बस्तिकुक्षौ रुजाकरः ।
 वातबस्तिः स विज्ञेयो व्याधिः कृच्छ्रप्रसादनः ॥ ६ ॥
 चिरं धारयतो मूत्रं त्वरया न प्रवर्तते ।
 मेहमानस्य मन्दं वा मूत्रातीतः स उच्यते ॥ ७ ॥
 मूत्रवेगे त्वमिहते तदुदावर्तहेतुतः ।

इत्युदावर्तजः ।

अथ वातजः—

अपानः कुपितो वायुरुदरं पूरयेद्मृशम् ॥ ८ ॥
 नाभेरधस्तादाध्मानं जनयेत्तीव्रवेदनम् ।
 तन्मूत्रजठरं विद्यादधोबस्तिनिरोधनम् ॥ ९ ॥
 बस्तौ वाऽप्यथ वा नाले मणौ वा यस्य देहिनः ।
 मूत्रं प्रवृत्तं सज्येत सरक्तं वा प्रवाहतः ॥ १० ॥
 स्रवेच्छनैरल्पमल्पं सरुजं वाऽथ नीरुजम् ।
 विगुणानिलजो व्याधिः स मूत्रोत्सङ्गसंज्ञितः ॥ ११ ॥

अथ पित्तमारुतजः—

रूक्षस्य कलान्तदेहस्य बस्तिस्थौ पित्तमारुतौ ।
 मज्जक्षयं सरुगढाहं जनयेतां तदाह्वयम् ॥ १२ ॥

अन्तर्बस्तिमुखे वृत्तः स्थिरोऽल्पः सहसा भवेत् ।
 अश्मरीतुल्यरुग्ग्रन्थिर्मूत्रग्रन्थिः स उच्यते ॥ १३ ॥
 मूत्रितश्च स्त्रियं यातो वायुना शुक्रमुद्धतम् ।
 स्थानाच्च्युतं मूत्रयतः प्राक्पश्चाद्वा प्रवर्तते ॥ १४ ॥
 भस्मोदकप्रतीकाशं मूत्रशुक्रं तदुच्यते ।
 व्यायामाध्वातपैः पित्तं बस्तिं प्राप्यानिलान्वितम् ॥ १५ ॥
 बस्तिमेदं गुदं चैव प्रदहेत्स्रावयेद्धः ।
 मूत्रं हारिद्रमथ वा सरक्तं रक्तमेव च ॥ १६ ॥
 कृच्छ्रात्पुनः पुनर्जन्तोरुष्णवातं वदन्ति तम् ।

अथ पित्तकफज्वः—

पित्तं कफो द्वावपि वा संहन्येतेऽनिलेन चेत् ॥ १७ ॥
 कृच्छ्रान्मूत्रं तदा पीतं रक्तं श्वेतं घनं सृजेत् ।
 सदाहं रोचनाशङ्खचूर्णवर्णं भवेच्च तत् ॥ १८ ॥
 शुष्कं समस्तवर्णं वा मूत्रसादं वदन्ति तम् ।
 रूक्षदुर्बलयोर्वातेनोदावर्तं शकृद्यदा ॥ १९ ॥
 मूत्रस्रोतोऽनुपद्येत विट्संसृष्टं तदा नरः ।
 विड्गन्धि मूत्रयेत्कृच्छ्राद्विड्बिघातं विनिर्दिशेत् ॥ २० ॥
 द्रुताध्वलङ्घनायासैरभिघातात्प्रपीडनात् ।
 स्वस्थानाद्बस्तिरुद्वृत्तः स्थूलस्तिष्ठति गर्भवत् ॥ २१ ॥

अथोदरान्तर्गतपार्श्वगमनं दर्शयति—

शूलस्पन्दनदाहार्तो बिन्दुं बिन्दुं स्रवत्यपि ।
 पीडितस्तूत्सृजेद्धारां संस्तम्भोद्वेष्टनार्तिमान् ॥ २२ ॥
 बस्तिकुण्डलमाहुस्तं घोरं शस्त्रविप्रोपमम् ।
 पवनः प्रबलं प्रायो दुर्निवारोऽह्यबुद्धिभिः ॥ २३ ॥
 तस्मिन्पित्तावृते दाहः शूलं मूत्रविवर्णता ।
 श्लेष्मणा गौरवं शोफः स्निग्धं मूत्रं घनं सितम् ॥ २४ ॥
 श्लेष्मरुद्धबिलो बस्तिः पित्तोदीर्णो न सिध्यति ।

उपचितपित्तः—

अविभ्रान्तबिलः साध्यो न च यः कुण्डलीकृतः ।

कफेन कुण्डलीभूतोऽसाध्यः—

स्याद्वस्तौ कुण्डलीभूते तृणमोहः श्वास एव च ॥ २५ ॥

इति मूत्राघातनिदानम् ।

अथ मूत्राघातचिकित्सा—

नलादिकाथः—

स्नेहस्वेदोपपन्नस्य हितं स्नेहविरेचनम् ।

दद्यादुत्तरबस्तींश्च मूत्राघाते सवेदने ॥ २६ ॥

नलकुशकासेक्षुशिफाकथितं प्रातः सुशीतलं ससितम् ।

पिबतः प्रयाति नियतं मूत्राघातः सवेदनः पुंसः ॥ २७ ॥

इति नलादिकाथः ।

अथ वीरतर्वादिकाथः—

*गोधावन्या मूलकथितं घृततैलगोरसोन्मिश्रम् ।

पीतं विरुद्धमचिरान्दिनति मूत्रस्य संघातम् ॥ २८ ॥

पिबेच्छिलाजतुक्राथं युक्तं वीरतरादिना ।

तेन प्रशाम्यति क्षिप्रं मूत्राघातः सुदारुणः ॥ २९ ॥

इति वीरतर्वादिकाथः ।

अथ वीरतर्वादिः सुश्रुतात्—

गद्यम्—

वीरतरुसहचरद्वयदर्भवृक्षादनीगुन्द्रानलकुशकाशाश्मभेदाग्निमन्थमोर-
टवसुकवाशीरभल्लूककुरण्टकेन्दीवरकपोतचक्राश्वदंष्ट्राः ।

इति वीरतर्वादिः सुश्रुतात् ।

अथ दशमूलीकाथः—

दशमूलीगृतं पीत्वा सशिलाजतुशर्करम् ।

वातकुण्डलिकाठीलावातवस्तेः प्रमुच्यते ॥ ३० ॥

इति दशमूलीकाथः ।

अथ गोक्षुरकाथः—

पीतो गोकण्टककाथः सशिलाजतुकौशिकः ।

मूत्रक्षयान्मूत्रशुक्रान्मूत्रोत्सङ्गादिमुच्यते ॥ ३१ ॥

इति गोक्षुरकाथः ।

अथ शुद्धशिलाजतुयोगः—

सशर्करं च ससितं लीढं शुद्धं शिलाजतु ।

निहन्ति मूत्रजठरं मूत्रातीतं च देहिनः ॥ ३२ ॥

इति शुद्धशिलाजतुयोगः ।

अथ चित्रकायं घृतं चरकात्—

चित्रकं सारिवा चैव बलाकालानुसारिवा ।

द्राक्षाविशालापिप्पल्यस्तथा चित्रफलाः* भवेत् ॥ ३३ ॥

तथैव मधुकं दद्यात्पुष्टान्यामलकानि च ।

घृताढकं पचेदेतैः कल्कैरक्षसमन्वितैः ॥ ३४ ॥

क्षीरद्रोणे जलद्रोणे तत्सिद्धमवतारयेत् ।

शीतं परिशृतं चैव शर्कराप्रस्थसंयुतम् ॥ ३५ ॥

तुगाक्षीर्या च तत्सर्वं मतिमान्परिमिश्रयेत् ।

ततो मितं पिबेत्काले यथादोषं यथाबलम् ॥ ३६ ॥

मूत्रग्रन्थि मूत्रसादमुष्णवातमसृग्दस्मृ ।

विद्धिघातं निहन्त्येतद्वस्ति कुण्डलमध्वलम् ॥ ३७ ॥

सर्पिरतत्प्रयुञ्जाना स्त्री गर्भं लभतेऽचिरात् ।

अस्रदोषे योनिदोषे मूत्रदोषे तथैव च ॥ ३८ ॥

प्रयोक्तव्यमिदं सर्पिश्चित्रकायं सदा बुधैः ।

इति चित्रकायं घृतं चरकात् ।

अथ धान्यगोक्षुराद्यं घृतम्—

धान्यगोक्षुरककाथकल्कसिद्धं घृतं हितम् ॥ ३९ ॥

मूत्राघातेषु कृच्छ्रेषु शुक्रदोषे च दारुणे ।

इति धान्यगोक्षुराद्यं घृतम् ।

अथ स्वगुप्ताद्यं चूर्णम्—

स्त्रीणामतिप्रसङ्गेन शोणितं यस्य सिच्यते ॥ ४० ॥
 मैथुने परमश्वास्य बृंहणीयो विधिर्मतः ।
 ताम्रचूडवसातैलं हितं चोत्तरवस्तिषु ॥ ४१ ॥
 स्वगुप्ताफलमृद्धीकाकृष्णेशुरसितारजः ।
 समानमर्धभागानि क्षीरक्षौद्रघृतानि च ॥ ४२ ॥
 सर्वं सम्यग्विमथ्याक्षमात्रं लीढ्वा पयः पिबेत् ।
 हन्ति शुक्रक्षयोत्थांश्च दोषान्वन्ध्यासुतप्रदम् ॥ ४३ ॥

इति स्वगुप्ताद्यं चूर्णम् ।

अथ क्षौद्रार्धभागं घृतम्—

क्षौद्रार्धभागः कर्तव्यो भागः स्थात्क्षीरसर्पिषोः ।
 शर्करायाश्च चूर्णं च द्राक्षाच्चूर्णं च तत्समम् ॥ ४४ ॥
 स्वयंगुप्ताफलं चैव तथैवेशुरसस्य च ।
 पिप्पलीनां तथा चूर्णं समभागं प्रदापयेत् ॥ ४५ ॥
 तदैकस्थं समानीय खजेनोन्मथ्य च क्षणम् ।
 तस्य पाणितलं चूर्णं लिहेत्क्षीरं ततः पिबेत् ॥ ४६ ॥
 एतत्सर्पिः प्रयुञ्जानः शुद्धदेहो नरः सदा ।
 शुक्रदोषाञ्जयेत्सर्वान्ये वाऽपि मृशदुर्जयाः ॥ ४७ ॥
 जयेच्छोणितदोषांश्च वन्ध्या स्त्री गर्भमाप्नुयात् ।

इति क्षौद्रार्धभागं घृतम् ।

अश्वमरीमूत्रकृच्छ्रेषु भेषजं यत्क्रिया च या ॥ ४८ ॥
 मूत्राघातेषु सर्वेषु कुर्यात्तत्सर्वमादरात् ।
 रसश्चन्द्रकलाख्यस्तु कृच्छ्रघ्नो यः पुरेरितः ।
 मूत्राघातेषु सर्वेषु स प्रयोज्यो विजानता ॥ ४९ ॥

इति श्रीयोगतरङ्गिण्यां मूत्राघातनिदानचिकित्साकथनं नामैकावि-

कशततमस्तरङ्गः ॥ १०१ ॥

अथ अधिकशततमस्तरङ्गः ।

अथाश्मरीनिदानमाह—

निरुध्य मूत्रमार्गं या यातनां जनयेद्मृशम् ।
कटिबस्तिप्रदेशेषु साऽश्मरीति निगद्यते ॥ १ ॥

तद्भेदानाह—

वातपित्तकफैस्तिस्रश्चतुर्थीं शुक्रजा परा ।
प्रायः श्लेष्माश्रयाः सर्वा अश्मर्यः स्युर्यमोपमाः ॥ २ ॥
विशेषयेद्वास्तिगतं सशुक्रं मूत्रं सपित्तं पवनः कफं वा ।
यदा तदाऽश्मर्युपजायते तु क्रमेण पित्तेष्विव रोचना गोः ॥ ३ ॥
नैकदोषाश्रयाः सर्वा अथाऽऽसां पूर्वलक्षणम् ।

पूर्वरूपमाह—

वस्त्याध्मानं तदासन्नदेशेषु परितोऽतिरुक् ॥ ४ ॥
मूत्रे वस्तसगन्धित्वं मूत्रकृच्छ्रं ज्वरोऽरुचिः ।
सामान्यलिङ्गं रुद्धनामिसेवनीवस्तिमूर्धसु ॥ ५ ॥
विशीर्णधारं मूत्रं स्यात्तया मार्गनिरोधतः ।
तद्व्यपायात्सुखं मेहेदृच्छं गोमेदकोपमम् ॥ ६ ॥
तत्संक्षोमात्क्षते सास्रमायासाच्चातिरुग्मवेत् ।
तत्रं वाताद्मृशं चाऽऽर्तो दन्तान्खादति वेपते ॥ ७ ॥
गृह्णाति मेहनं नाभिं पीडयत्यनिशं क्रणन् ।
सानिलं मुञ्चति शकृन्मुहुर्मेहति बिन्दुशः ॥ ८ ॥
श्यावारुणाश्मरी चास्य स्याच्चिन्ता कण्टकैरिव ।
पित्तेन दह्यते वस्तिः पच्यमान इवोष्मवान् ॥ ९ ॥
मल्लातकास्थिसंस्थाना रक्तपीता सिताऽश्मरी ।
वस्तिर्निस्तुद्यत इव श्लेष्मणा शीतलो गुरुः ॥ १० ॥
अश्मरी महती सूक्ष्मा मधुवर्णाऽथ वा सिता ।
एता भवन्ति बालानां तेषामेव च भूयसा ॥ ११ ॥
आश्रयोपचयाल्पत्वाद्ब्रह्मणाहरणे सुखाः ।
शुक्राश्मरी तु महतां जायते शुक्रधारणात् ॥ १२ ॥

स्थानोच्च्युतममुक्तं हि मुष्कयोरन्तरेऽनिलः ।
 शोषयत्युपसंहृत्य शुक्रं तच्छुक्रमश्मरी ॥ १३ ॥
 वस्तिरुक्कृच्छ्रमूत्रत्वं मुष्कश्चयथुंकारिणी ।
 तस्यामुत्पन्नमात्रायां शुक्रमेव विलीयते ॥ १४ ॥
 पीडिते त्वक्काशेऽस्मिन्नश्मर्येव च शर्करा ।
 अणुशो वायुना भिन्ना सा तस्मिन्ननुलोमगे ॥ १५ ॥
 निरेति सह मूत्रेण प्रतिलोमे विवर्धते ।
 मूत्रस्रोतःप्रवृत्ता सा सक्ता कुर्यादुपद्रवान् ॥ १६ ॥
 दीर्बल्यं सदनं काश्यं कुक्षिशूलमरोचकम् ।
 पाण्डुत्वमुष्णवातं च तृष्णां हृत्पीडनं वमिम् ॥ १७ ॥
 प्रशूननाभिवृषणं बद्धमूत्ररुजाऽन्वितम् ।
 अश्मरीक्षपयत्याशु सिकता शर्करान्विता ॥ १८ ॥

इत्यश्मरीनिदानम् ।

अथ चिकित्सा—

शुण्ठ्यादिकाथः—

वाताश्मरीपूर्वरूपे स्नेहपानं प्रशस्यते ।
 शुण्ठ्याग्निमन्थपाषाणभिच्छिद्युवरुणक्षुरैः ॥ १९ ॥
 अमयारग्वधफलैः क्वाथं कृत्वा विचक्षणः ।
 रामठक्षारलवणचूर्णं दत्त्वा पिबेन्नरः ॥ २० ॥
 वाताश्मरीं हन्ति कृच्छ्रमान्द्यमग्नेश्च तद्रजः ।
 कट्यूरुगुदमेदूस्थं वङ्क्षणस्थं च मारुतम् ॥ २१ ॥

इति शुण्ठ्यादिकाथः ।

अथ वरुणकाथः—

वरुणस्य त्वचं श्रेष्ठां शुण्ठीगोक्षुरसंयुताम् ।
 क्वाथयित्वा गृतं तस्या यवक्षारगुडान्वितम् ॥ २२ ॥
 पीत्वा वाताश्मरीं हन्ति चिरकालानुबन्धिनीम् ।

इति वरुणकाथः ।

अथ वीरतर्वादिः—

वीरतर्वादिकक्वाथः पूर्वोक्तो वातजाश्मरीम् ॥ २३ ॥

सद्यो हन्ति यवक्षारगुडयुक्तो न संशयः ।

इति वीरतर्वादिः ।

क्षारान्यवागूः पेयाश्च कषायाणि पर्यासि च ॥ २४ ॥

भोजनार्थे प्रयोज्यानि वाताश्मरिजुषां नृणाम् ।

अथ पित्ताश्मरी-

अथ पाषाणभेदकाथः-

पीत्वा पाषाणमित्काथं सशिलाजलुशर्करम् ॥ २५ ॥

पित्ताश्मरीं निहन्त्याहु वृत्रमिन्द्राशनिर्यथा ।

इति पाषाणभेदकाथः ।

कुशः काशः शरो गुन्द्रा सेत्कटो मोरटोऽश्ममित् ॥ २६ ॥

दर्भो विद्रारी वाराही शालिमूलं त्रिकण्टकः ।

मल्लूकः पाटला पाठा पत्तूरोत्थकुरण्टकः ॥ २७ ॥

पुनर्नवा शिरीषश्च कथितास्तेषु साधितम् ।

घृतं शिलाह्वामधुकबीजैरिन्दीवरस्य च ॥ २८ ॥

अपुसेर्वारुकानां च बीजैश्चाऽऽवापितं शुभम् ।

मिनत्ति पित्तसंभूतामश्मरीं क्षिप्रमेव तु ॥ २९ ॥

अथ श्लेष्माश्मरी-

शिष्वादिः-

काथो निपीतः सक्षारः शिशुत्वग्वरुणत्वचोः ।

कफजामश्मरीं हन्ति शक्राशनिरिव हुमम् ॥ ३० ॥

इति शिष्वादिः ।

गद्यम्-

वरुणार्तगलशिष्टमधुशिष्टतर्कारीमेषशृङ्गीपूतीकनक्तमालमोरटामि-
मन्थसैरेयकद्वयधिम्विबसुकवशीरचित्रकशतावरीबिल्वाजशृङ्गीदर्भवृह-
तीद्वयमिति वरुणादिगणः श्लेष्माश्मरीमपोहति ॥ ३१ ॥

इति गद्यम् ।

काथचूर्णादियोगेन वरुणादिकृतेन च ।

वातश्लेष्माश्मरीशूलगुल्मोदावर्तविद्रधीन् ॥ ३२ ॥

इति श्लेष्माश्मरी ।

अथ शुक्राश्मरी—

कूष्माण्डरसः—

शुक्राश्मयां तु सामान्यो विधिरश्मरिनाशनः ।

यवक्षारगुडोन्मिथं रसं पुष्पफलोद्भवम् ।

पिबेन्मूत्रविबन्धघ्नं शर्कराश्मरिनाशनम् ॥ ३३ ॥

इति कूष्माण्डरसः ।

अथ तिलादिकाथः—

कृष्णानिर्गुण्डिकामूलं नारिकेलजलेन वा ।

पिष्ट्वा सम्यक्पिबेत्सद्यः शर्कराश्मरिनाशनम् ॥ ३४ ॥

तिलापामार्गकदलीपलाशयवबिल्वजः ।

क्षारः पेयोऽविमूत्रेण शर्कराश्मरिनाशनः ॥ ३५ ॥

इति तिलादिकाथः ।

अथ पाषाणभेदादिकाथः—

पाषाणभिद्रुणगोक्षुरकोरुबूक-

क्षुद्राद्वैयक्षुरकमूलकृतः कषायः ।

दध्ना युतो जयति मूत्रविबन्धशुक्र-

मुग्राश्मरीमपि च शर्करया समेताम् ॥ ३६ ॥

इति पाषाणभेदादिकाथः ।

अथ हरिद्रायोगः—

यः पिबेद्रजनीं सम्यक्समुडां तुषवारिणा ।

तस्याऽऽशु चिररूढाऽपि यात्यस्तं मेदूशर्करा ॥ ३७ ॥

इति हरिद्रायोगः ।

अथ कुटजयोगः—

पिबतः कुटजं दध्ना पथ्यमघ्नं च स्वादतः ।

निपतत्यचिरादस्य निश्चितं मेदूशर्करा ॥ ३८ ॥

इति कुटजयोगः ।

अथ त्रापुसबीजनालिकेरकुसुमयोगः—

त्रापुसबीजं पयसा पीत्वा वा नारिकेरजं कुसुमम् ।

दृढमूत्रशर्करावान्भवति सुखी कतिपयैर्दिवसैः ॥ ३९ ॥

इति त्रापुसबीजनालिकेरकुसुमयोगः ।

अथ वरुणक्वाथकुटजकल्कौ—

एलाश्ममेदमधुकोरुबुमूलवासा-

शौण्डी*क्षुरानपि च रेणुकया समेष्टान् ।

निष्काश्य वारिणि पिबेत्संलिलाजमेनं

कृच्छ्राश्मरीति(!)विरितो मनुजः सुखार्थम् ॥ ४० ॥

तरुणवरुणवल्कक्वाथमापीय मर्त्यः

सगुडमत्तुलपीडामश्मरीमाशु हन्ति ।

अपि च कुटजमूलं धेनुदध्यम्बुपिष्टं

पिचुमितमवलीढं पातयत्यश्मरीकाम् ॥ ४१ ॥

इति वरुणक्वाथकुटजकल्कौ ।

अथ वरुणाद्यं घृतम्—

वरुणस्य तुलां क्षुण्णां जलद्रोणे विपाचयेत् ।

पादशेषं परिस्राव्य घृतप्रस्थं त्रिपाचयेत् ॥ ४२ ॥

वरुणं कदलीं चित्त्वं तृणजं पञ्चमूलकम् ।

अमृतामश्ममेदं च बीजं त्रापुसमेव च ॥ ४३ ॥

शतपर्वतिलक्षारौ पलाशक्षारमेव च ।

यूथिकापञ्चमूलानि लघून्यक्षसमं त्विदम् ॥ ४४ ॥

प्रत्येकं पेषयित्वा तु दद्यात्तु विपचेन्मृदु ।

ततोऽस्य मात्रां प्रपिबेद्देशकालाद्यपेक्षया ॥ ४५ ॥

जीर्णेनानु पिबेत्पिष्टं गुडं जीर्णं तु मस्तुना ।

अश्मरीं शर्करां हन्ति मूत्रकृच्छ्राण्यशेषतः ॥ ४६ ॥

इति वरुणाद्यं घृतम् ।

अथाश्मरीकण्डनो रसः—

पलाशरम्भातिलकारवल्लीयवास्तिकाशैखरिकक्षपाणाम् ।

क्षारं समादाय कलांशमस्य रसं च गन्धं वरलोहमस्म ॥ ४७ ॥

द्वयोः समं सर्वमिदं विचूर्ण्य संस्थापयेद्दशमरिकण्डनाख्यम् ।

चूर्णं तदक्षप्रमितं प्रालिह्य दध्नाऽनुपेयं वरुत्वगम्भः ॥

मुच्येत मर्त्योऽश्मरिशर्करातो निःसंशयं मृत्युमुखागतोऽपि ॥ ४८ ॥

इत्यश्मरीकण्डनो रसः ।

अथ त्रिविक्रमो रसः—

ताम्रमस्म त्वजाक्षीरैः पाच्यं तुल्यगतद्रवैः ।

तत्ताम्रं शुद्धसूतं च गन्धकं च समं समम् ॥ ४९ ॥

निर्गुण्डयास्तु द्रवैर्मर्द्यं दिनं तद्गो*लमन्धयेत् ।

यामैकं बालुकायन्त्रे पाच्यं योज्यं द्विगुञ्जकम् ॥ ५० ॥

बीजपूरस्य मूलं तु+ तज्जलं चानुपाययेत् ।

रसत्रिविक्रमो नाम माषैकेणाश्मरिप्रणुत् ॥ ५१ ॥

इति त्रिविक्रमो रसः ।

बन्ध्याकर्कोटिकामूलं मक्ष्यं क्षौद्रसितायुतम् ।

अश्मरीं हन्ति नो चित्रं कर्षमात्रं शिवोदितम् ॥ ५२ ॥

एतैरुपायैर्नाऽऽगच्छेदश्मरी या यमोपमा ।

तां स्थानाद्युक्तितो नीत्वा छेद्यस्थाने विचक्ष्णः ॥ ५३ ॥

शस्त्रवेत्ता समुच्छिद्य शस्त्रेणोक्तेन देहिनः ।

निष्कासयेत्प्रयत्नेन निर्वाते रक्षितस्य च ॥ ५४ ॥

एवं प्रयाति दुःसाध्याऽश्मरी देहक्षयंकरी ।

पथ्यमाह—

मुद्गा यवाश्च गोधूमाः शालयः क्षीरसर्पिषी ।

हिलिशः सैन्धवं चेति पथ्यमश्मरिभेदनम् ॥ ५५ ॥

इति श्रीयोगतरङ्गिण्यामश्मरीनिदानचिकित्साकथनं नाम

अथिकशततमस्तरङ्गः ॥ १०२ ॥

* क. लमाहरेदिति पाठान्तरम् । + क. चेति पाठान्तरम् ।

अथ अधिकशततमस्तम्भः ।

अथ प्रमेहनिदानम्-

प्रमेहा विंशतिस्तत्र श्लेष्मतो दश पित्ततः ।

षट् चत्वारोऽनिलात्तेषां क्रमाद्वक्ष्यामि लक्षणम् ॥ १ ॥

आस्यासुखं स्वप्नसुखं दधीनि ग्राम्योदकानूपरसाः पयांसि ।

नवान्नपानं गुडवैकृतं च प्रमेहहेतुः कफकृच्च सर्वम् ॥ २ ॥

मेदश्च मांसं च शरीरजं च क्लेदं कफो बस्तिगतं प्रदूष्य ।

करोति मेहान्समुदीर्णमुष्णैस्तानेव पित्तं परिदूष्य वाऽपि ॥ ३ ॥

क्षीणेषु दोषेष्ववकृष्य धातून् संदूष्य मेहान्कुरुतेऽनिलश्च ।

साध्याः कफोत्था दश पित्तजाः षड्-

याप्या न साध्याः पवनाच्चतुष्काः ॥ ४ ॥

समक्रियत्वाद्विषमक्रियत्वान्महोत्पद्यत्वाच्च यथाक्रमं ते ।

कफः सपित्तः पवनश्च दोषा मेदोऽसृशुक्राम्बुवसालसीकाः ॥

मज्जारसौजः पिशितं च दूष्याः प्रमेहिणां विंशतिरेव मेहाः ॥ ५ ॥

इन्तादीनां मलाढ्यत्वं प्राग्रूपं पाणिपादयोः ।

दाहश्चिकणता देहे तुदस्वाद्वास्यं च जायते ॥ ६ ॥

सामान्यं लक्षणं तेषां प्रमूताविलमूत्रता ।

दोषदूष्याविशेषेऽपि तत्संयोगविशेषतः ॥ ७ ॥

मूत्रवर्णादिभेदेन भेदो मेहेषु कथ्यते ।

अच्छं बहुसितं शीतं निर्गन्धमुदकोपमम् ॥ ८ ॥

मेहत्युदकमेहेन किञ्चिच्चाऽऽविलपिच्छिलम् ।

इक्षो रसमिवात्यर्थं मधुरं चेक्षुमेहतः ॥ ९ ॥

सान्द्री भवेत्पर्युषितं सान्द्रमेहेन मेहति ।

सुरामेही सुरातुल्यमुपर्यच्छमधो घनम् ॥ १० ॥

संहृष्टरोमा पिष्टेन पिष्टवद्बृहलं सितम् ।

शुक्रामं शुक्रमिश्रं वा शुक्रमेही प्रमेहति ॥ ११ ॥

मूर्ताणून्सिकतामेही सिकतारूपिणो मलाम् ।

शीतमेही सुबहुशो मधुरं भृशशीतलम् ॥ १२ ॥

शनैः शनैः शनैर्मेही मन्दं मन्दं प्रमेहति ।
 लालातन्वुयुतं मूत्रं लालामेहेन पिच्छिलम् ॥ १३ ॥
 गन्धवर्णरसस्पर्शैः क्षारेण क्षारतोयवत् ।
 मीलमेहेन नीलामं कालमेही मषीनिमम् ॥ १४ ॥
 हारिद्रमेही कटुकं हरिद्रासंनिभं दहनम् ।
 विस्रं माञ्जिष्ठमेहेन मञ्जिष्ठासलिलोपमम् ॥ १५ ॥
 विस्रमुष्णं सलवणं रक्ताभं रक्तमेहतः ।
 वसामेही वसामिश्रं वसामं मूत्रयेन्मुहुः ॥ १६ ॥
 मज्जामं मज्जामिश्रं वा मज्जामेही मुहुर्मुहुः ।
 कषायं मधुरं रूक्षं क्षौद्रमेहेन मेहति ॥ १७ ॥
 हस्ती मत्त इवाजस्रं मूत्रं वेगविवर्जितम् ।
 सलसीकं विबद्धं च हस्तिमेही प्रमेहति ॥ १८ ॥

कफजानाह—

अविपाकोऽरुचिश्छर्दिर्निद्रा कासः सपीनसः ।
 उपद्रवाः प्रजायन्ते मेहानां कफजन्मनाम् ॥ १९ ॥

पित्तजानाह—

बस्तिमेहनैयोस्तोषो मुष्कावदरुषं ज्वरः ।
 दाहस्त्वृष्णाऽम्लिका मूर्च्छा विद्धमेदः पित्तजन्मनाम् ॥ २० ॥

असाध्यत्वमाह—

बातजानामुदावर्तः कम्पहृद्बलोलताः ।
 शूलमुन्निद्रता शोषः कासः श्वासश्च जायते ॥ २१ ॥
 यथोक्तोपद्रवारिष्टमतिप्रसृतमेव वा ।
 पिटकापीडितं गाढं प्रमेहो हन्ति मानवम् ॥ २२ ॥
 जातः प्रमेही मधुमेहिना वा
 न साध्यरोगः सहि बीजदोषात् ।
 ये चापि केचित्कुलजः विकारा
 भवन्ति तांश्च प्रवदेदसाध्यान् ॥ २३ ॥
 सर्व एव प्रमेहास्तु कालेनाप्रतिकारिणः ।
 मधुमेहत्वमायान्ति तदाऽसाध्या भवन्ति हि ॥ २४ ॥

कष्टसाध्यत्वमाह-

मधुमेहो मधुसमं जायते स किल द्विधा ।
 केन्द्रे धातुक्षयाद्वायौ दोषावृतपथेऽथ वा ॥ २५ ॥
 आवृतो दोषलिङ्गानि सोऽनिमित्तं प्रदर्शयेत् ।
 क्षीणः क्षीणात्पुनः पूर्णो भजते कृच्छ्रसाध्यताम् ॥ २६ ॥

मधुमेहमाह-

मधुरं वध सर्वेषु प्रायो मध्विध मेहति ।
 सर्वेऽपि मधुमेहारूपा माधुर्याच्च तनोरतः ॥ २७ ॥

मेहशुद्धित्वमाह-

प्रमेहिणो यदा मूत्रमनाविलमपिच्छिलम् ।
 विशदं तिक्तकटुकं तदारोग्यं प्रचक्षते ॥ २८ ॥
 तोयेक्षुसान्द्रपिष्टाह्लसुराशुक्राह्वालुकाः ।
 लालालवणसीताः स्युः साध्याः श्लेष्मोज्झ्वा दश ॥ २९ ॥
 क्षारासृङ्नीलमश्निष्ठाहरिद्राकृष्णसंज्ञकाः ।
 षडेते पित्तजाः कृच्छ्रसाध्यमेहाः प्रकीर्तिताः ॥ ३० ॥
 मधुसर्पिर्वसाहस्तिसंज्ञानां च चतुष्टयम् ।
 हमे त्वसाध्याश्चत्वारो दाहः स्यात्करणादयोः ॥ ३१ ॥
 मूत्रेषु वृद्धिवैवर्ण्यं नामसादृश्यलक्षणम् ।
 प्रायशः सर्वमेहेषु कीर्तितं चरकादिभिः ॥ ३२ ॥

दश पिटकाः प्रमेहजातास्तासां नामान्याह-

शराविका कच्छपिका जालिनी विनताऽलजी ।
 मसूरिका सर्षपिका पुत्रिणी सविदारिका ॥ ३३ ॥
 विद्रधिश्चेति पिटकाः प्रमेहोपेक्षया दश ।

शराविकामाह-

संघिमर्मसु जायन्ते मांसलेषु च धामसु ॥ ३४ ॥
 अन्तोद्भूता मध्यनिष्ठा श्पावा क्लेदरुजान्विता ।
 शरावमानसंस्थाना पिटका स्याच्छराविका ॥ ३५ ॥

कच्छपिकामाह—

अवगाढार्तिनिस्तोददाहा वस्तुपरिग्रहा ।

श्लक्षणा कच्छपपृष्ठामा पिटका कच्छपी मता ॥ ३६ ॥

जालिनीमाह—

स्तब्धा शिराजालिनीति स्निग्धस्रावा महास्रहा ।

रुजानिस्तोदबहुला सूक्ष्मच्छिद्रा च जालिनी ॥ ३७ ॥

विनतामाह—

अवगाढरुजाक्लेदा पृष्ठे वा जठरेऽपि वा ।

महती पिटका नीला सा बुधैर्विनता स्मृता ॥ ३८ ॥

अलजीमाह—

दहन्ती त्वचमुस्थाने भृशं कष्टा विसर्पिणी ।

रक्तासितातितृट्स्फोटदाहमोहज्वराऽलजी ॥ ३९ ॥

मसूरिकामाह—

मसूराकृतिसंस्थाना विज्ञेया तु मसूरिका ।

सर्षपिकामाह—

सर्षपमानसंस्थाना क्षिप्रपाका महारुजा ॥ ४० ॥

सर्षपा सर्षपातुल्यपिटका परिवारिता ।

पुत्रिणीमाह—

पुत्रिणी महती मूरि सा सूक्ष्मपिटकावृता ॥ ४१ ॥

विदारिकामाह—

विदारी कन्दवद्वृत्ता कठिना च विदारिका ।

विद्रधिकामाह—

विद्रधिर्लक्ष्यतेऽन्यत्र तत्राऽऽद्या पिटका च ॥ ४२ ॥

विद्रधेर्लक्षणैर्युक्ता ज्ञेया विद्रधिका तु सा ।

पुत्रिणी च विदारी च दुःसहा बहुमेदसः ॥ ४३ ॥

१ ग. °ह सदाहा कूर्मसंस्थाना ज्ञेया कच्छपिका बुधैः । २ ग. °ह जालिनी तीव्रदाहा तु मांसजालसमावृता । ३ ग. °ह रक्ताऽसिता स्फोटयिता दारुणा त्वलजी भवेत् । ४ ग. °ह गौरस-
र्षपसंस्थाना तत्प्रमाणा च सर्षपा । ५ ग. °ह महत्स्थल्पाचिता ज्ञेया पिटका साऽपि पुत्रिणी ।

अथ जन्मजाः पिटकाः—

ये जन्मजाः स्मृता मेहास्तेषामेतास्तु जन्मजाः ।
 विना प्रमेहमप्येता जायन्ते दुष्टमेदसः ॥ ४४ ॥
 तावच्चैता न लक्ष्यन्ते यावद्वस्तुपरिग्रहः ।

पिटकाया असाध्यत्वमाह—

गुदे हृदि शिरस्यंसे पृष्ठे मर्मसु चोत्थिताः ॥ ४५ ॥
 सोपद्रवा दुर्बलाग्नेः पिटकाः परिवर्जयेत् ।

स्त्रियो न प्रमेहन्तीत्याह—

रजःप्रसेकान्नारीणां मासि मासि विशुध्यति ॥ ४६ ॥
 कृत्स्नं शरीरं दोषाश्च न प्रमेहन्त्यतः स्त्रियः ।

पिटकानामुपद्रवाः—

मूर्छाछर्दिज्वरश्वासकासवीसर्पगौरवैः ॥ ४७ ॥
 उपद्रवैरुपेतो यः प्रमेही चाप्रतिक्रियः ।
 तुट्श्वासमांससंकोचमोहहिक्रामदज्वराः ॥
 विसर्पमर्मसंरोधाः पिटकानामुपद्रवाः ॥ ४८ ॥

हारिद्रवणं रुधिरं च मूत्रं विना प्रमेहस्य तु पर्वरूपैः ।
 यो मेहयेत्तं न वदेत्प्रमेहं स रक्तपित्तस्थ हि विप्रकोपः ॥ ४९ ॥
 स्वेदोऽङ्गगन्धः शिथिलत्वमङ्गे शय्यासनस्वप्नसुखामिषङ्गः ।
 हृत्त्रेज्जिह्वाश्रवणोपदेहे घनाङ्गता केशनखातिघृन्धिः ॥ ५० ॥
 शीतप्रियत्वं गलतालुशोषो माधुर्यमास्ये करपाददाहः ।
 मविष्यतो मेहगणस्थ रूपं मूत्रेऽभिधावन्ति पिपीलिकाश्च ॥ ५१ ॥
 दृष्ट्वा प्रमेहं मधुरं सपिच्छं मधूपमं स्याद्विविधोपचारः ।
 संपूरणाद्वा कफसंभवः स्यात्क्षीणेषु दोषेष्वनिलात्मको वा ॥ ५२ ॥
 सपूर्वरूपाः कफपित्तमेहाः
 क्रमेण ये वातकृताश्च मेहाः ।
 साध्या न ते पित्तकृतास्तु याप्याः
 साध्यास्तु मेदो यदि नातिदुष्टम् ॥ ५३ ॥

इति प्रमेहनिदानम् ।

अथ प्रमेहचिकित्सा—

श्यामाककोद्रवोद्दालगोधूमचणकाढकी ।
शालिमुद्गकुलत्थाश्च मेहिनां देहिनां हिताः ॥ ५४ ॥

यवप्रशस्तिमाह—

मेदोघ्ना बद्धमूत्राश्च समाः सर्वेषु धातुषु ।
यवास्तस्मात्प्रशस्यन्ते प्रमेहेषु विशेषतः ॥ ५५ ॥

मेहेषु हितमाह—

तिक्तशाकं पटोलानि जाङ्गलामिषजा रसाः ।
सैन्धवं मरिचं चैव मेहिनामाहरेद्भिषक् ॥ ५६ ॥

निषेधः—

सौवीरकं सुरां तक्रं तैलं क्षीरं घृतं गुडम् ।
अम्लेश्वरसपिष्टान्नतोयमांसानि वर्जयेत् ॥ ५७ ॥

उपचारमाह—

हरीतकीकदफलमुस्तलोध्र १
पाठाविडङ्गार्जुनधन्वयासाः २ ।
उभे हरिद्रे तगरं विडङ्गं ३
कदम्बशालार्जुनदीप्यकाश्च ॥ ४ ॥ ५८ ॥
दार्वी विडङ्गं खदिरं धवश्च ५
सुराह्वकुष्ठार्जुनचन्दनानि ६ ।
दार्व्यश्मिमन्थौ त्रिफला सपाठा ७
पाठा च मूर्वा च तथाऽश्वदंष्ट्रा ॥ ८ ॥ ५९ ॥
यवान्युशीराण्यमयागुडूर्वा ९
जम्बूशिवाचिन्नकसप्तपर्णाः १० ।

षादैः कषायाः कफमेहिनां शैर्दशोपदिष्टा मधुसंप्रयुक्ताः ॥ ६० ॥
जलप्रमेहेक्षुरसप्रमेहे सान्द्रप्रमेहे च सुराप्रमेहे ।
पिष्टप्रमेहेऽपि च शुक्रमेहे क्रमादमी स्युः सिकताप्रमेहे ॥
शीतिप्रमेहे च शनैः प्रमेहे लालाप्रमेहेऽपि सुखाय तेषाम् ॥ ६१ ॥

इति कफप्रमेहचिकित्सा ।

अथ पित्तप्रमेहे-

उशीरलोधासुरचन्दनानामुशीरमुस्तामलकामयानाम् ।
 पटोलनिम्बामलकामृतानां मुस्ताभयामुष्ककवृक्षकाणाम् ॥ ६२ ॥
 लोध्राम्बुकालीयकधातकीनां विश्वार्जुनानां मिशिसोत्पलानाम् ।
 माञ्जिष्ठहारिद्रकनीलकालक्षारास्रमेहे क्रमशः कषायाः ॥ ६३ ॥

अथ वातप्रमेहेषु-

अग्निमन्थकषायं तु वसामेहे प्रयोजयेत् ।
 पाठाशिरीषदुस्पर्शमूर्वाकिंशुकतिन्दुकैः ॥ ६४ ॥
 कपित्थेन भिषक्कुर्यात्क्राथं हास्तिप्रमेहके ।
 पूगारिमेदयोः क्राथः सक्षौद्रः क्षौद्रमेहहा ॥ ६५ ॥
 छिन्नावाह्निकषायेण पाठाकुटजरामठम् ।
 तिक्तां कुष्ठं च संचूर्ण्य सर्पिर्मेहे पिबेन्नरः ॥ ६६ ॥

अथ द्वन्द्वजप्रमेहेषु-

कम्पिलसप्तच्छदशालजानि बैभीतरोहीतककौटजानि ।
 पुष्पाणि दध्मश्च विचूर्णितानि क्षौद्रेण लिह्यात्कफपित्तमेहैः ॥ ६७ ॥
 हरीतकीकट्फलमुस्तलोधकुचन्दनोशीरकृतः कषायः ।
 क्षौद्रेण युक्तः कफवातमेहं निहन्ति पीतारजसा च पीतः ॥ ६८ ॥
 विडङ्गरजनीद्वन्द्वखदिरोशीरपूगजः ।
 क्राथः पीतः प्रगे हन्ति मेहं पित्तानिलोद्भवम् ॥ ६९ ॥

अथ दुष्टरक्तजप्रमेहे-

क्राथः खर्जूरकाश्मर्यतिन्दुकास्थ्यमृताकृतः ।
 सुहिमः पीतमात्रस्तु सक्षौद्रो रक्तमेहहा ॥ ७० ॥

अथ सामान्यप्रमेहचिकित्सा-

शिवादिकाथः-

शिवापथ्याक्षाम्भोधराकिलिमदावींसुरसुरा-
 कषायं सक्षौद्रं रजनिरजसा चापि मिलितम् ।
 निपीय प्रत्यूषे जयति मनुजो मेहनिवहं
 मृशं मीमं पथ्यप्रभुगिमकदम्बं हरिरिव ॥ ७१ ॥

इति शिवादिकाथः ।

अथ त्रिफलाद्यं चूर्णम्—

त्रिफलारजःसमानं रजो रजन्याः सितासमानेन ।

मधुना च लीढमेतत्प्रमेहनामापि नाशयति ॥ ७२ ॥

इति त्रिफलाद्यं चूर्णम् ।

अथ कतकयोगः—

अक्षप्रमाणं कतकस्य बीजं तक्रेण पीतं मधुना सहैव ।

कट्टप्रमेहान्पिटकाभिधानान्निहन्ति कल्केन युतं च सद्यः ॥ ७३ ॥
इति कतकयोगः ।

अथ त्रिफलादिकाथो योगशतात्—

अश्वत्थबीजं हरिणस्य शृङ्गं तक्रेण पीतं मधुना सहैव ।

प्रमेहजालं सहसैव हन्याद्दशाननं दाशरथी यथैव ॥ ७४ ॥

स्निग्धं वान्तं विरक्तं च निरूढं पाययेद्रसम् ।

धात्र्याः सर्वप्रमेहेषु निशाक्षौद्रसमन्वितम् ॥ ७५ ॥

फलत्रिकं दारुनिशां विशालां

मुस्तां च निष्काश्य निशांशकल्कम् ।

पिबेत्कषायं मधुसंप्रयुक्तं

सर्वप्रमेहेषु चिरोत्थितेषु ॥ ७६ ॥

इति त्रिफलादिकाथो योगशतात् ।

अथ न्यग्रोधाद्यं चूर्णम्—

न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थश्योनाकारग्वधासनम् ।

आम्रं कपित्थं जम्बू च प्रियालं ककुमं धवम् ॥ ७७ ॥

मधूकं मधुकं लोध्रं वरुणं पारिमद्रकम् ।

पटोलं मेषशृङ्गीं च दन्तीं चित्रकमान*कम् ॥ ७८ ॥

करञ्जं त्रिफलां शक्रं मल्लातकफलं तथा ।

एतानि समभागानि श्लक्ष्णचूर्णानि कारयेत् ॥ ७९ ॥

न्यग्रोधाद्यमिदं चूर्णं मधुना सह लेहयेत् ।

फलत्रयरसं चानु पिबेन्मूत्रं विशुध्यति ॥ ८० ॥

* क. 'माहकी इति पाठान्तरम् ।

१ क. 'षु समुत्थि' ।

एतेन विंशतिर्मेहा मूत्रकृच्छ्राणि यानि च ।

प्रशमं यान्ति वेगेन पिठका न च जायते ॥ ८१ ॥

इति न्यग्रोधाद्यं चूर्णम् ।

अथाऽऽमलकाद्यवलेहिका—

शिलाजतु नरः पीत्वा प्रातः क्षीरसितायुतम् ।

मुच्यते सर्वमेहेभ्यस्त्रिसप्तदिवसैर्नरः ॥ ८२ ॥

चूर्णं निशाया मधुना समेतं धात्रीफलानां स्वरसेन मिश्रम् ।

प्रलीढमल्पैर्दिवसैर्निहन्ति प्रमेहसंज्ञानखिलान्विकारान् ॥ ८३ ॥

इत्यामलकाद्यवलेहिका ।

अथ गोक्षुरादिगुटी—

त्रिकण्टत्रिफलातुल्यं गुग्गुलुं कुट्टयेद्भिषक् ।

गोक्षुरक्काथसंयुक्तं गुटिकामस्य कारयेत् ॥ ८४ ॥

दोषकालबलापेक्षी भक्षयेद्वाऽनुलोमिनीम् ।

न चात्र परिहारोऽस्ति कर्म कुर्याद्यथेप्सितम् ॥ ८५ ॥

प्रमेहान्वातरोगांश्च वातशोणितमेव च ।

मूत्राघातं मूत्रदोषं प्रदरं चाऽऽशु नाशयेत् ॥ ८६ ॥

इति गोक्षुरादिगुटी ।

अथ दाडिमाद्यं घृतम्—

दाडिमस्य च बीजानि कृमिघ्नस्य च तण्डुलाः ।

[* रजनी चर्विकाऽजाजी नागरं त्रिफला कणा ॥ ८७ ॥

त्रिकण्टकस्य च फलं यवानी धान्यकं तथा ।

वृक्षाम्लचपलाकोलसिन्धूद्भवसमायुतैः ॥ ८८ ॥

कल्कैरक्षसमैरेभिर्घृतप्रस्थं विपाचयेत् ।]

कृच्छ्रं सुदारुणं चैव हन्यादेतन्न संशयः ॥ ८९ ॥

विवन्धानाहशूलघ्नं कामलाज्वरनाशनम् ।

दाडिमाद्यं घृतं नाम दसाभ्यां परिकीर्तितम् ॥ ९० ॥

इति दाडिमाद्यं घृतम् ।

अथ सिंहामृतं घृतम्—

कण्टकार्या गुडूच्याश्च संहरेच्च शतं शतम् ।
 संक्षुद्योलूखले विद्रांश्चतुर्दोणेऽम्मसः पचेत् ॥ ९१ ॥
 तच्च पादावशेषेण घृतप्रस्थं विपाचयेत् ।
 त्रिकटुत्रिफलाम्ना विडङ्गान्यथ चित्रकम् ॥ ९२ ॥
 काश्मर्याणां च मूलानि पूतिकस्य त्वगेव च ।
 केलिङ्गमिति सर्वाणि श्लक्ष्णपिष्टानि कारयेत् ॥ ९३ ॥
 अस्य मात्रां पिबेत्प्राज्ञः शालिभिः पयसा हितैः ।
 प्रमेहं मधुमेहं च मूत्रकृच्छ्रं भगंदरम् ॥ ९४ ॥
 आलस्यं चान्त्रवृद्धिं च कुष्ठरोगं विशेषतः ।
 क्षयं चापि निहन्त्येतन्नाम्ना सिंहामृतं घृतम् ॥ ९५ ॥

इति सिंहामृतं घृतम् ।

अथ धन्वन्तरिसर्पिः—

दशमूलं करञ्जौ द्वौ देवदारु हरीतकी ।
 वर्षाभूवरुणं दन्ती चित्रकं सपुनर्नवम् ॥ ९६ ॥
 सुधानिम्बकदम्बाश्च बिल्वं मल्लातकानि च ।
 शठी पुष्करमूलं च पिप्पलीमूलमेव च ॥ ९७ ॥
 पृथग्दशपलान्भागानेतांस्तोयार्मणे पचेत् ।
 यवकोलकुलत्थानां प्रस्थं प्रस्थं विपाचयेत् ॥ ९८ ॥
 तेन पादावशेषेण घृतप्रस्थं विपाचयेत् ।
 निचुलं त्रिफला मार्गो रोहिषं गजपिप्पली ॥ ९९ ॥
 शृङ्गवेरं विडङ्गानि वचा कम्पिलुकं तथा ।
 गर्भेणानेन तस्मिन् पाययेच्च यथाबलम् ॥ १०० ॥
 एतद्धान्वन्तरं नाम्ना विख्यातं सर्पिरुत्तमम् ।
 कुष्ठं प्रमेहं गुल्मांश्च श्वयथुं वातशोणितम् ॥ १०१ ॥
 प्लीहोदराणि चाशांसि विद्रधीन्पिटकाश्च याः ।
 अपस्मारं तथोन्मादं सर्पिरेतन्नियच्छति ॥ १०२ ॥
 पृथक्तोयार्मणे क्षुण्णं पैक्तव्यं च शतं शतम् ।
 शतत्रयाधिकं तोयमुत्सर्गक्रमतो भवेत् ॥ १०३ ॥

इति धन्वन्तरिसर्पिः ।

अथ गुडूचीयोगः—

पीत्वा सक्षौद्रममृतारसं जयति मानवः ।

प्रमेहं विंशतिविधं मृगेन्द्र इव दन्तिनम् ॥ १०४ ॥

इति गुडूचीयोगः ।

अथ शाल्मलीयोगः—

शाल्मलित्वग्रसः क्षौद्ररजनीचूर्णसंयुतः ।

पीतो निहन्ति निखिलान्प्रमेहानल्पवासरैः ॥ १०५ ॥

इति शाल्मलीयोगः ।

अथ त्रिफलादियोगः—

मधुना त्रिफलाचूर्णमथ वाऽश्मजतूङ्गवम् ।

लोहजं वाऽभयोत्थं वा लिह्यान्मेहनिवृत्तये ॥ १०६ ॥

इति त्रिफलादियोगः ।

अथ गन्धकयोगः—

गन्धकं गुडसंयुक्तं कर्षं भुक्त्वा पयः पिबेत् ।

विंशतिस्तेन नश्यन्ति प्रमेहपिडका अपि ॥ १०७ ॥

इति गन्धकयोगः ।

अथ गुडूचीयोगः—

सक्षौद्रं रजनीचूर्णममृताया रसं पिबेत् ।

सर्वप्रमेहनाशाय पथ्यमुक्तं च शीलयेत् ॥ १०८ ॥

इति गुडूचीयोगः ।

अथ चन्द्रप्रभा वटी—

अष्टावष्टौ प्रकुञ्चाः पुरगिरिजतुनोद्वौ तु लौहात्सिताया-

श्वत्वारः कुम्भदन्तीत्रिसुरभिकतुगा बिल्व एकोऽथ कर्षम् ।

सद्यब्दोग्राहवेष्टत्रिलवणनिशियुक्क्षारयुक्ताप्यभौर्ग-

भूनिम्बातीविषाषट्कटुककरिकणादारुचन्द्रप्रभातैः ॥ १०९ ॥

भुक्त्वा चन्द्रप्रमाख्यामुषसि किल वटीं क्षौद्रसर्पिःसमेतां

हन्यान्मेहान्गुदार्शःक्षयमपि च रजःशुक्रजान्दन्तरोगान् ।

पाण्डुं कण्डूं च शूलं कटिरुजमुदरानाहकृच्छ्राणि मूत्रा-
घातप्लीहान्त्रवृध्यर्बुदकसनमहन्मेहनग्रन्थिकुष्ठम् ॥ ११० ॥

इति चन्द्रप्रमा वटी ।

अथ पूगपांसुर्योगरत्नावलितः—

हेमाम्मोधरचन्दनं त्रिकटुकं धात्री प्रियाला कुट्ट-
लज्जालुखिसुगन्धि जीरकयुगं शृङ्गाटकं वंशजम् ।
जातीकोशलवङ्गधान्यबहुला प्रत्येकमक्षोन्मिताः
पूगस्याष्टपलं विचूर्ण्य च पयः प्रस्थत्रये संपचेत् ॥ १११ ॥
गोसर्पिः कुडवं सितार्धकतुलां धात्रीवरींश्चञ्जलिं
मन्दाग्नौ विपचेद्भिषक्शुभदिने सुस्निग्धमाण्डे क्षिपेत् ।
तं खादेत्तु यथाग्नि वासरमुखे मेहांश्च जीर्णज्वरं
पित्तं साम्लमसृक्सृतिं च गुदजां वक्त्राक्षिनासासु च ।
मन्दाग्निं च विजित्य पुष्टिमतुलां कुर्याच्च शुक्रप्रदो
योगो गर्भकरः परो गदहरः स्त्रीणामसृग्दोषजित् ॥ ११२ ॥

इति पूगपांसुर्योगरत्नावलितः ।

अथ बृहत्पूगपाकः—

पञ्चात्पूगरजो दशान्नममलं मार्द्वं कटाहेऽग्निना
भेदेनाष्टगुणे पयस्यपि घृतप्रस्थार्धकेऽस्मिन्घने ।
जातीकोशफले च षट्कटुसटीद्राक्षावरावानरी-
चातुर्जातितुगाब्दधान्यमुसलीदीप्याजयष्टीक्षुरम् ॥ ११३ ॥
अश्माशीतबलात्रयं करिकणामांसीवरीमेथिका-
शृङ्गाटकं मिशिजीरवारिविजयागोक्षूरस्त्रजूरकम् ।
धात्रीशाल्मलिकोलचोरकनकं कुम्भत्रिनेत्राभ्रकं
पृथ्वीकामयवङ्गदेवकुसुमं दद्यात्पृथक्कार्षिकम् ॥ ११४ ॥
पञ्चाशत्पलखण्डपाकललितः स्यात्पूगपाकः पृथु-
वृष्यः पाण्ड्यहरः प्रमेहदलनो रेतोविवृद्धिप्रदः ।
पित्ताग्ने प्रदरे क्षये करपदे दाहेऽम्लपित्ते वधु-
दाहे पाण्डुगदे हुताशनहतावेतेषु शस्तो मतः ।

इति बृहत्पूगपाकः ।

अथ नागभस्मयोगः—

शुद्धस्य च मृतस्याहिरजो वल्लमितं लिहेत् ।

सनिशामलकक्षौद्रं सर्वमेहप्रशान्तये ॥ ११५ ॥

इति नागभस्मयोगः ।

अथ वङ्गभस्मयोगः—

शालमलित्वग्रसोपेतं सक्षौद्रं रजनीरजः ।

वङ्गभस्म हरेन्मेहान्पञ्चानन इव द्विपान् ॥ ११६ ॥

इति वङ्गभस्मयोगः ।

अथाभ्रकयोगः—

निश्चन्द्रमभ्रकं भस्म सवरारजनीरजः ।

मधुना लीढमचिरात्प्रमेहविनिवृत्तये ॥ ११७ ॥

इत्यभ्रकयोगः ।

अथ हरिशंकरो रसः—

सूताभ्रमामलजलैः सप्तवारं विमादयेत् ।

हरिशंकरसंज्ञः स्याद्रसः सर्वप्रमेहनुत् ॥ ११८ ॥

इति हरिशंकरो रसः ।

अथ मेघनादो रसः—

सूतं कान्तं गन्धतीक्ष्णं ताप्यं व्योषं फलत्रिकम् ।

शिलाजतु शिलां कोलुबीजं रात्रिकपित्थकम् ॥ ११९ ॥

त्रिःसप्तकृत्वो मृङ्गाद्भिर्मावयेन्निष्कसंज्ञकम् ।

मधुना मेघनादोऽयं सर्वमेहान्विनाशयेत् ॥ १२० ॥

महानिम्बस्य बीजानि पेषयेत्तण्डलाम्बुना ।

सघृतान्यचिरान्द्व*न्युः पानान्मेहांश्चिरोत्थितान् ॥ १२१ ॥

इति मेघनादो रसः ।

अथ बोलवद्धो रसः—

मुद्गाचिकासत्त्वसमो रसेन्द्रो गन्धः समांशो निखिलेन बर्बरः ।

विमर्दयेच्छालमलिकामवैर्द्रवैः स्याद्बोलवद्धो मधुयुक्तिवल्हः ॥ १२२ ॥

पित्ते तु चाम्ले मधुशर्कराम्भ्यां मेहे प्रदेयो मधुपिप्पलीभ्याम् ।
 रक्तार्शसां नाशकृदेष सूतः पित्तार्शसां चैव तु विद्रधेश्च ॥
 रक्तप्रमेहस्य खुडस्य चापि स्त्रीणां गदस्यापि भ्रगंदरस्व ॥ १२३ ॥
 इति बोलवद्धो रसः ।

अथ लघुवङ्गेश्वरः—

रसस्य भस्मना तुल्यं वङ्गभस्म प्रयोजयेत् ।
 अस्य गुञ्जाद्वयं हन्ति मेहान्नात्रिमधुप्लुतम् ॥ १२४ ॥

इति लघुवङ्गेश्वरः ।

अथ प्रमेहकुठारो रसः—

एला सकर्पूरसिता सधात्रीजातीफलं गोक्षुरशाल्मलित्वक् ।
 सूतेन्द्रबङ्गायसभस्म चैतत्संमर्दयेत्तुल्यलवङ्गनीरैः ॥ १२५ ॥
 ततो भवत्येष रसः प्रमेहकुठारनामा विदितप्रभावः ।
 निष्कार्धमात्रो मधुनाऽवलीढो निहन्ति मेहानखिलानुद्ग्रान् ॥ १२६ ॥
 इति प्रमेहकुठारो रसः ।

अथ सर्वेश्वरो रसः—

ताप्यष्टङ्कणहेमताररसकं गन्धं यथामागिकं
 ताम्रं विद्रुमशुक्तिजं शिखरिजं द्विघ्नं तथा मामतः ।
 वङ्गायोहिरसेन्द्रभूतिगगनं वैक्रान्तकान्तं त्रिशत्
 तत्संमर्द्य विभावयेद्विद्विषं यष्टीत्रिजाताम्बुभिः ॥ १२७ ॥
 मुस्तोशीरवरावृषामृतसठीकन्याविदारीवरी-
 नीरैर्गोपयसेक्षुरैश्च मुसलीगोलं पचेद्यामकम् ।
 मन्दाग्रौ च सुङ्गाङ्कवत्पुनरसौ भाव्यस्ततो भावने
 द्वे कस्तूरिमृगाङ्कयोर्मधुकणायुक्तोऽस्य वल्लो जयेत् ॥ १२८ ॥
 मेहार्शोग्रहणीज्वरोदरमरुद्व्याधिं रुजं कामलां
 पाण्डूकुष्ठभ्रगंदरं ज्वरगणं कृच्छ्रं च शुक्रक्षयम् ॥ १२९ ॥

इति सर्वेश्वरो रसः ।

प्रमेहपिटकानां तु प्राकार्यं रक्तमोक्षणम् ।
 पाटनं तु विपकानां तासां पाने प्रशस्यते ॥ १३० ॥

क्वाथो व्रणघ्नोऽत्र बास्तिर्मुत्रैस्तीक्ष्णैस्तु* मोक्षणम् ।
 व्रणप्रतिक्रिया सर्वा कार्याऽत्रापि मिषग्वरैः ॥ १३१ ॥
 प्रमेहिणो यदा मूत्रमनाविलमपिच्छिलम् ।
 विशदं तिक्तकटुकं तदाऽऽरोग्यं प्रचक्षते ॥ १३२ ॥

इति श्रीयोगतरङ्गिण्यां प्रमेहपिटकानिदानचिकित्साकथनं नाम
 त्र्यधिकशततमस्तरङ्गः ॥ १०३ ॥

अथ चतुरधिकशततमस्तरङ्गः ।

अथ मेदोरोगनिदानम्—

अव्यायामादिवास्वप्नश्लेष्मलाहारसेविनः ।
 मधुरान्नरसात्प्रायः स्नेहान्मेदो विवर्धते ॥ १ ॥
 मेदसाऽऽवृतमार्गत्वात्पुष्यन्त्यन्ये न धातवः ।
 मेदस्तु चीयते यस्मादशक्तः सर्वकर्मसु ॥ २ ॥
 क्षुद्रश्वासतृषामोहस्वप्नकुन्थनसादनैः ।
 युक्तः क्षुत्स्वेददौर्गन्धैरल्पप्राणोऽल्पमैथुनः ॥ ३ ॥

अथ मेदोपक्रमः—

मेदस्तु सर्वभूतानामुदरेष्वस्थिषु स्थितम् ।
 अत एवोदरे वृद्धिः प्रायो मेदस्विनो भवेत् ॥ ४ ॥
 मेदसाऽऽवृतमार्गत्वाद्भ्रूयुः कोष्ठे विशेषतः ।
 चरन्संधुक्षयत्यग्निमाहारं शोषयत्यपि ॥ ५ ॥
 तस्मात्स शीघ्रं जरयत्याहारं चापि काङ्क्षति ।
 विकारान्कुरुते घोरान्कांश्चित्कालव्यतिक्रमात् ॥ ६ ॥
 एतावुपद्रवकरौ विशेषादग्निमारुतौ ।
 एतौ हि दहतः स्थूलं वनं दावानलौ यथा ॥ ७ ॥
 मेदस्यतीव्रं संवृद्धे सहसैवानिलादयः ।
 विकारान्दारुणान्कृत्वा नाशयन्त्याशु जीवितम् ॥ ८ ॥
 मेदोमांसातिवृद्धत्वाच्चल+स्फिगुदरस्तनः ।
 अयथोपचयोत्साहो नरोऽतिस्थूल उच्यते ॥ ९ ॥

स्थूलेषु दुस्तरा दुष्टा विसर्पाः समगंदराः ।
ज्वरातीसारमेहार्शःश्लीपदापचिकामलाः ॥ १० ॥

इति मेदोनिदानम् ।

अथ चिकित्सा—

पुराणाः शालयो मुद्गाः कुलत्थोद्वालकोद्ववाः ।
लेखना वस्तयश्चैव सेव्या मेदस्विना सदा ॥ ११ ॥

मेदोवर्धनमाह—

अस्वप्नं च व्यवायं च व्यायामं चिन्तनानि च ।
स्थौल्यमिच्छन्परित्युक्तं कामणानि प्रवर्धयेत् ॥ १२ ॥
श्रमचिन्ताव्यवायाध्वक्षौद्रजागरणप्रियः ।
हन्त्यवश्यमतिस्थौल्यं यवश्यामाकभोजनः ॥ १३ ॥

तस्योपचारः—

प्रातः पिबेत्तुल्यजलं क्षौद्रं स्थौल्यनिवृत्तये ।
उष्णमन्नस्य मण्डं वा पिबेत्कृशतनुर्मवेत् ॥ १४ ॥

इति मधुयोगः ।

अथ व्योषादिसक्तुप्रयोगः—

क्षव्यं च जीरकं व्योषं हिङ्गसोवर्चलानलाः ।
मस्तुना सक्तवः पीता मेदोग्ना वह्निदीपनाः ॥ १५ ॥
व्योषं विडङ्गं शिग्रूणि त्रिफलां कटुरोहिणीम् ।
बृहत्यो द्वे हरिद्रे द्वे पाठामतिविषां स्थिराम् ॥ १६ ॥
हिङ्गुकं मधुमूलानि यवानीधान्यचित्रकम् ।
सौवर्चलमजार्जीं च हपुषां चेति चूर्णयेत् ॥ १७ ॥
चूर्णतैलघृतक्षौद्रभागाः स्युर्मानतः क्रमात् ।
सक्तुना षोडशगुणो भागः संतर्पणं पिबेत् ॥ १८ ॥
प्रयोगसारमाख्यातं रोगाः संतर्पणोत्थिताः ।
प्रमेहमूढवातास्रकुष्ठान्यशांसि कामलाः ॥ १९ ॥
प्लीहा पाण्डूवामयः शोफो मूत्रकृच्छ्रमरोचकः ।
हृद्गो राजयक्ष्मा च कासश्वासगलग्रहाः ॥ २० ॥

कृमयो ग्रहणीदोषाः शैत्यं स्थौल्यमतीव च ।
नराणां दीप्यते बह्विः स्मृतिर्बुद्धिश्च वर्धते ॥ २१ ॥

इति व्योषादिसक्तुप्रयोगः ।

अथ त्रिफलाद्यं तैलम्—

त्रिफलातिविषामूर्वात्रिवृच्चित्रकवासकैः ।
निम्बारग्वधषड्ग्रन्थासप्तपर्णनिशाद्वयैः ॥ २२ ॥
गुडूचीन्द्रासुराकृष्णाकुष्ठसर्षपनागरैः ।
तैलमेभिः समैः पक्वं सुरसादिरसाप्लुतम् ॥ २३ ॥
पानाभ्यञ्जनगण्डूषनस्यवस्तिषु योजितम् ।
स्थूलतालस्यकण्ड्वादीञ्जयेत्कफकृतान्गवान् ॥ २४ ॥

इति त्रिफलाद्यं तैलम् ।

अथ नवकगुग्गुलुः—

व्योषाग्निमुस्तत्रिफलाविडङ्गैर्गुग्गुलुं समम् ।
खादन्सर्वाञ्जयेद्याधीन् मेदःश्लेष्मामवातजान् ॥ २५ ॥

इति नवकगुग्गुलुः ।

अथ हरीतक्यादियोगः—

हरीतकीलोधमरिष्टपत्र-

पूतित्वचो दाडिमवल्कलं च ।
एषोऽङ्गराङ्गः कथितोऽङ्गनानां,
जैङ्ग्याकषायश्च नराधिपानाम् ॥ २६ ॥

इति हरीतक्यादियोगः ।

अथ महासुगन्धतैलम्—

चन्दनं कुङ्कुमोशीरं प्रियङ्गुसटिरोचनम् ।
तुरुष्कागरु कस्तूरी कर्पूरो जातिपत्रिका ॥ २७ ॥
जातीकङ्कोलपूगानां लवङ्गस्य फलानि च ।
नलिका नलैवं कुष्ठं हरेणुतगरप्लवम् ॥ २८ ॥
नखं व्याघ्रनखं स्पृक्का वालो दमनकं तथा ।
प्रपौण्डरीकं कर्चूरं समांशैः शाणमात्रकैः ॥ २९ ॥

महासुगन्धमित्येतत्तैलप्रस्थेन साधयेत् ।
 प्रस्वेदमलदौर्गन्ध्यकण्डूकुष्ठहरं परम् ॥ ३० ॥
 अनेनाभ्यक्तगात्रस्तु वृद्धः सप्ततिकोऽपि वा ।
 युवा भवति शुक्राढ्यः स्त्रीणामत्यन्तवल्लभः ॥ ३१ ॥
 सुमगो दर्शनीयश्च गच्छेद्यः प्रमदाशतम् ।
 बन्ध्याऽपि लभते गर्भं षण्ढोऽपि पुरुषायते ।
 अपुत्रः पुत्रमाप्नोति जीवेच्च शरदां शतम् ॥ ३२ ॥

इति महासुगन्धतैलम् ।

अथ बिल्वाद्यौ योगौ—

बिल्वशिवे समभागे लेपान्द्रुजमूलगन्धमैफहरतः ।
 परिणततित्तिडीकान्वितपूतिशरओस्थबीजं वा ॥ ३३ ॥

इति बिल्वाद्यौ योगौ ।

अथ तिलायुद्धर्तनम्—

तिलसर्षपसष्टिदार्वाकुष्ठसमङ्गामयाब्जलैः ।
 साम्रत्वग्मिल्लेपो मेदोदौर्गन्ध्यनाशनः पुंसाम् ॥ ३४ ॥

इति तिलायुद्धर्तनम् ।

अथ रसभस्मयोगः—

रसमस्य बलमात्रं लीढ्वा मधुना पिबेदनु क्षौद्रम् ।
 कोष्णाम्बुना समेतं स्थौल्यं मेदःकृतं जयति ॥ ३५ ॥

इति रसमस्मयोगः ।

अथ त्र्यूषणाद्यं चूर्णम्—

त्र्यूषणं त्रिफलाचव्यं चित्रकं विडमौद्भिदम् ।
 बार्कूची सैन्धवं चैव सौवर्चलैसमन्वितम् ॥ ३६ ॥
 * माषमात्रमिदं चूर्णं लिहेदाज्यमधुप्लुतम् ।
 अतिस्थौल्यमिदं चूर्णं निहन्त्याग्निविवर्धनम् ॥ ३७ ॥
 मेदोघ्नं मेहकुष्ठघ्नं श्लेष्मव्याधिनिबर्हणम् ।
 नाऽऽहोरे नियमश्चात्र विहारे वा विधीयते ॥ ३८ ॥

* क. 'अयोभस्म समं युक्तं भक्षयेन्मधुसर्पिषा' । इति पाठान्तरम् ।

ऋषूषणाद्यमिदं चूर्णं रसायनमनुत्तमम् ।
इति ऋषूषणाद्यं चूर्णम् ।

अथ मूर्तिः—

सूतं गन्धमयोमस्म समं संमेल्य भावयेत् ॥ ३९ ॥
निर्गुण्डीपत्रतोयेन सुसलीकन्दवारिणा ।
ततः सिद्धममुं माषमात्रं रसमनुत्तमम् ॥ ४० ॥
लीढा क्षौद्रेण चाश्रीयान्चूर्णमेषां पिचून्मितम् ।
षट्कटुत्रिफलापञ्चलवणावल्गुजस्य तत् ।
मेदःशोथाम्निमान्द्यामवातश्लेष्मगदप्रणुत् ॥ ४१ ॥

इति मूर्तिः ।

इति श्रीयोगतरङ्गिण्यां मेदोरोगनिदानविकित्साकथनं नाम चतुर-
धिकशततमस्तरङ्गः ॥ १०४ ॥

अथ पञ्चाधिकशततमस्तरङ्गः ।

अथोदरनिदानम्—

रोगाः सर्वेऽपि मन्दाग्रौ सुतरामुदराणि च ।
अजीर्णान्मलिनैश्चान्नैर्जायन्ते मलसंचयात् ॥ १ ॥
रुद्ध्वा स्वेदाम्बुवाहीनि दोषाः स्रोतांसि संचिताः ।
प्राणाग्न्यपानान्संदृष्य जनयन्त्युदरं नृणाम् ॥ २ ॥
आध्मानं गमनेऽशक्तिर्दौर्बल्यं दुर्बलाग्निता ।
शोफः सदनमङ्गानां सङ्गो वातपुरीषयोः ॥ ३ ॥
दाहस्तन्द्रा च सर्वेषु जठरेषु भवन्ति हि ।

अष्टधोदराणि—

गुर्वसीतं शिराजालैः सदा गुडगुडावते ॥ ४ ॥
पृथक्दोषैः समस्तैश्च प्लीहचन्द्रक्षतोदकैः ।
संभवन्त्युदराण्यष्टौ तेषां लिङ्गं पृथक्गृणु ॥ ५ ॥

वातोदरमाह—

तत्र वातोदरे शोथः पाणिपक्षाभिकुक्षिषु ।
अत्यर्थदोषजनकैर्विरुद्धाध्यशनादिभिः ॥ ६ ॥

कुक्षिपार्श्वोदरकटीपृष्ठरुक्पर्वमेदमम् ।
 शुष्ककासाङ्गमर्दोऽधोगुरुता मलसंग्रहः ॥ ७ ॥
 श्यावारुणत्वगादित्वमकस्माद्वृद्धिह्लासवत् ।
 सतोदमेदमुदरं तनुकृष्णशिराततम् ॥ ८ ॥
 आध्मातृतिवच्छब्दमाहतं प्रकरोति च ।
 वायुश्चात्र सरुक्शब्दो विचरेत्सर्वतोगतिः ॥ ९ ॥

पित्तोदरमाह—

पित्तोदरे ज्वरो मूर्छा दाहस्तृदकटुकास्थता ।
 भ्रमोऽतिसारपीतत्वं त्वगादावुदरं हरित् ॥ १० ॥
 पीतताम्रशिरानज्झं सस्वेदं सोष्म दह्यते ।
 धूमायति मृदुस्पर्शं क्षिप्रपाकं प्रदूयते ॥ ११ ॥

कफोदरमाह—

श्लेष्मोदरेऽङ्गसदनं स्वापश्चयशुगौरवम् ।
 निद्रोत्क्लेशोऽरुचिः श्वासः कासः शुक्लत्वगादिता ॥ १२ ॥
 उदरं स्तिमितं स्निग्धं शुक्लराजीततं महत् ।
 चिराभिवृद्धिकठिनं शीतस्पर्शं गुरु स्थिरम् ॥ १३ ॥

त्रिलिङ्गजठरमाह—

क्षियोऽन्नपानं नखरोममूत्रविडार्तवैर्युक्तमसाधुवृत्ताः ।
 यस्मै प्रयच्छन्त्यरयो गरांश्च दुष्टाम्बुदूषीविषसेवनाद्वा ॥ १४ ॥
 तेनाऽऽशु रक्तं कुपिताश्च दोषाः कुर्युः सुघोरं जठरं त्रिलिङ्गम् ।

दूष्योदरमाह—

तच्छीतवाते मृशदुर्दिने च विशेषतः कुप्यति दह्यते च ॥ १५ ॥
 स चाऽऽतुरो मूर्छति हि प्रसक्तं पाण्डुः कृशः शुष्यति तृणया च ।

प्लीहोदरमाह—

दूष्योदरं कीर्तितमेतदेव प्लीहोदरं कीर्तयतो निबोध ॥ १६ ॥
 विदाह्यभिष्यान्दिरतस्य जन्तोः प्रदुष्टमत्यर्थमसृक्कफश्च ।
 प्लीहाभिवृद्धिं कुरुते प्रवृद्धः प्लीहोत्थमेतज्जठरं प्रवृद्धम् ॥ १७ ॥

तद्वामपार्श्वे परिवृद्धिमेति विशेषतः सीदति चाऽऽतुरोऽत्र ।
मन्दज्वराग्निः कफपित्तलिङ्गैरुपद्रुतः क्षीणबलोऽतिपाण्डुः ॥१८॥

अतिव्यवायकमाध्वमनव्याधिकर्षणैः ।
वामपार्श्वश्रितः प्लीहश्रुतः स्थानात्प्रवर्तते ॥ १९ ॥
सव्यान्यपार्श्वे यकृति प्रदुष्टे ज्ञेयं यकृद्वाल्युदरं तदेव ॥२०॥
श्वासकासपिपासाश्च धैरस्याध्मानरुग्ज्वरैः ।
पाण्डुत्वमूर्च्छाछर्दिर्भिर्दाहमोहैश्च संयुतम् ॥ २१ ॥
अरुणामं विवर्णं च नीलहारिद्रराजिमत् ।
उदावर्तरुजानाहैर्मोहतृड्दाहनज्वरैः ॥
गौरवारुचिकाठिन्यैर्विद्यात्तत्र मलान्क्रमात् ॥ २२ ॥

बद्धोदरमाह—

यस्यान्त्रमग्नैरुपलेपिमिर्वा बालाश्मभिर्वा पिहितं यथावत् ।
संचीयते तस्य मलः सदोषः शनैः शनैः संकरवच्च नाड्याम् ॥२३॥
निरुध्यते तस्य गुदे पुरीषं निरेति कृच्छ्रादपि चाल्पमल्पम् ।
हृन्नामिमध्ये परिवृद्धिमेति तस्योदरं बद्धगुदं वदन्ति ॥ २४ ॥

क्षतोदरमाह—

शल्यं तथाऽग्नोपहितं यदग्नं मुक्तं भिनत्यागतमन्यथा वा ।
तस्मात्क्षुतोऽग्न्यात्सलिलप्रकाशः स्रावः स्रवेद्वै गुदतस्तु भूयः ॥२५॥
नामेरधश्चोदरमेति वृद्धिं निस्तुद्यते दाल्यति चातिमात्रम् ।
एतत्परिस्राव्युदरं प्रदिष्टं दकोदरं कीर्तयतो निबोध ॥ २६ ॥

उदकोदरमाह—

यः स्नेहपीतोऽप्यनुवासितो वा
वान्तो विरिक्तोऽप्यथ वा निरूढः ।
पिबेज्जलं शीतलमाशु तस्य
स्रोतांसि दूष्यन्ति हि तद्वहानि ॥ २७ ॥

स्नेहोपलिप्तेष्वथ वाऽपि तेषूदकोदरं पूर्ववदभ्युपैति ।
स्निग्धं महत्तत्परिवृत्तनाभि समाततं पूर्णमिवाम्बुना च ।
यथा वृत्तिः क्षुभ्यति कम्पते च शब्दायते चाप्युदकोदरं तत् ॥ २८ ॥

यत्नसाध्यमाह—

जन्मनैवोदरं सर्वं प्रायः कृच्छ्रतमं विदुः ।
बलिनस्तदजाताम्बु यत्नसाध्यं नवोत्थितम् ॥ २९ ॥
पक्षाद्बद्धगुदं तूर्ध्वं सर्वं जातोदकं तथा ।
प्रायो भवत्यभावाय छिद्रान्त्रं चोदरं नृणाम् ॥ ३० ॥

असाध्यत्वमाह—

शूनाक्षं कुटिलोपस्थमुपक्लिन्नतनुत्वचम् ।
बलशोणितमांसाग्निपरिक्षीणं च वर्जयेत् ॥ ३१ ॥
पार्श्वमङ्गान्नविद्वेषशोथातीसारपीडितम् ।
विरिक्तमप्युदरिणं पूर्यमाणं विवर्जयेत् ॥ ३२ ॥

इत्युदरनिदानम् ।

अथ चिकित्सा—

अजातशब्दमरुणमुदरं नातिमारकम् ।
सदा गुडगुडायुक्तं शिराजालगवाक्षितम् ॥ ३३ ॥
नाभिं विष्टभ्य पादौ च वेगं कृत्वा प्रशाम्यति ।
हृद्बद्धक्षणाकटीवस्तिगुदे प्रत्येकशूलिनः ॥ ३४ ॥
कर्कशं सृजतो वातं नातिमन्दे च पावके ।
लालया विरसे चाऽऽस्ये मूत्रेऽल्पे संहते बहिः ॥ ३५ ॥
अजातोदकमित्येतैर्युक्तं विज्ञाय लक्षणैः ।
उपक्रमेद्भिषग्दोषबलकालविशेषवित् ॥ ३६ ॥

उपचारमाह—

स्थिरादिसर्पिषः पानं स्नेहस्वेदं विरेचनम् ।
वेष्टनं वाससा ग्लानौ शाल्वणं चोपनाहनम् ॥ ३७ ॥
चित्रं तैलं स्थिराद्यम्बुनिरूहाः सानुवासनाः ।
पयोयूषरसान्नं च योज्यं वातोदरे क्रमात् ॥ ३८ ॥
एरण्डतैलं दशमूलमिश्रं गोमूत्रयुक्तस्त्रिफलारसो वा ।
निहन्ति वातोदरशोथशूलं काथः समूत्रो दशमूलजश्च ॥ ३९ ॥

कुष्ठादिचूर्णम्—

कुष्ठं दन्तीं यवक्षारं व्योषं त्रिलवणं वचाम् ।

अजार्जी दीप्यकं हिङ्गु स्वर्जिकाचव्यचित्रकम् ॥ ४० ॥

शुण्ठी चोष्णाम्मसा पीत्वा वातोदररुजं जयेत् ॥ ४१ ॥

इति कुष्ठादिचूर्णम् ।

अथ सामुद्रायं चूर्णम्—

दशमूलीकषायेण क्षीरवृत्ति शिलाजतु ।

सद्यो वातोदरी क्षीरमौष्ट्रमाजं च केवलम् ॥ ४२ ॥

सामुद्रसौवर्चलसैन्धवानां क्षारो यवानामजमोदमागः ।

सपिप्पलीचित्रकशृङ्गवेरं हिङ्गुं विडङ्गं च समानि कुर्यात् ॥ ४३ ॥

एतानि चूर्णानि घृतप्लुतानि मुञ्जीत पूर्वं कवलात्प्रशस्तम् ।

वातोदरं गुल्ममजीर्णमुक्तं वातप्रकोपं ग्रहणीं च दुष्टाम् ।

अशांसि दुष्टानि च पाण्डुरोगं मगदरं चापि निहन्ति सद्यः ॥ ४४ ॥

इति सामुद्रायं चूर्णम् ।

पिप्पलीपिप्पलीमूलं चव्यचित्रकनागरैः ।

सक्षारैरर्धपलिकैर्द्विप्रस्थं सर्पिषः पिबेत् ॥ ४५ ॥

कल्कैर्द्विपञ्चमूलस्य तुलार्धं स्वरसेन च ।

दधिमण्डाढकं दत्त्वा तत्सर्पिर्जठरापहम् ॥ ४६ ॥

श्वयथुं वातविष्टम्भं गुल्माशांसि विनाशयेत् ।

अनया मात्रया वारद्वयं पाच्यम् ।

अथ दशमूलाद्यं घृतम्—

दशमूलीकषायेण रास्त्रानागरदारुभिः ॥ ४७ ॥

पुनर्नवाभ्यां च घृतं सिद्धं वातोदरापहम् ।

इति दशमूलाद्यं घृतम् ।

इति वातोदरम् ।

अथ पित्तोदरम्—

पित्तोदरे च बालिनं पूर्वमेव विरेचयेत् ॥ ४८ ॥

दुर्बलं त्वनुवास्याऽऽदौ शोधयेत्क्षीरबस्तिना ।

संजातबलकायाग्निं पुनः स्निधं विरेचयेत् ॥ ४९ ॥

पयसा त्रिवृताकल्केनोरुबूकशृतेन वा ।
 सातलात्रायमाणाभ्यां शृतेनाऽऽरग्वधेन च ॥ ५० ॥
 घृतं पित्तोदरे पेयं मधुरौषधिसाधितम् ।
 स्याद्विवृद्धिफलासिद्धं सर्पिष्पानं विशुद्धये ॥ ५१ ॥
 पुश्रिपर्णीबिलाव्याघ्रीलाक्षानागरसाधितम् ।
 क्षीरं पित्तोदरं हन्ति जठरं कतिभिर्दिनैः ॥ ५२ ॥

इति पित्तोदरम् ।

अथ श्लेष्मोदरम्—

गद्यम्—

श्लेष्मोदरिणं तु पिप्पल्यादिसिद्धेन सर्पिषा स्नेहयित्वा स्नुहीक्षीरेणा-
 नुलोम्य त्रिकटुकमूत्रतैलप्रगाढेन मुस्तादिक्राथेनास्थापयेदनुवासयेच्च ।
 किट्टसर्षपामलकबीजैश्चोपनाहयेदुदरम् । भोजयेच्चैनं त्रिकटुकप्रगाढेन
 कुलत्थयूषेण पयसा वा स्वेदयेच्चाभीक्षणम् ।

इतिगद्यम् ।

व्योषयुक्तं कुलत्थाम्बु पयो वा भोजने हितम् ।
 गोमूत्रारिष्टपानैश्च चूर्णायस्कृतिमिस्तथा ॥ ५३ ॥
 सक्षीरतैलपानैश्च शमयेत्तु कफोदरम् ।

अथ त्रिदोषजम्—

नागरायं यमकम्—

संनिपातोदरे कार्य एष एव क्रियाविधिः ॥ ५४ ॥
 *हरीतक्यमयाकल्कमावितं मूत्रमम्बु वा ।
 पीतं सर्वोदरप्लीहिमेहार्शःकृमिगुल्मनुत् ॥ ५५ ॥
 सप्तलाशङ्किनीसिद्धं घृतं चात्र विशोधनम् ।
 दन्तीद्रवन्तीफलजं तैलं दूष्योदरी पिबेत् ॥ ५६ ॥
 नागरं त्रिफलाप्रस्थं घृततैलं तथाऽऽदकम् ।
 मस्तुना साधयित्वा तु पिबेत्सर्वोदरापहम् ॥ ५७ ॥
 कफमारुतसंभूते गुल्मे चैव प्रशस्यते ।

इति नागरायं यमकम् ।

दूष्योदरं त्रिलिङ्गमुदरं च ।

अतः परं निगद्यन्ते सामान्या योगसत्तमाः ॥ ५८ ॥

दौषैः कुक्षौ हि संपूर्णे वह्निर्मन्दत्वमृच्छति ।

तस्मान्द्रोज्यानि योज्यानि दीपनानि लघूनि च ॥ ५९ ॥

पथ्यमाह—

शालिषष्टिकगोधूमयवनीवारभोजनम् ।

विरेकास्थापनं शस्तं सर्वेषु जठरेषु च ॥ ६० ॥

औदकानूपजं मांसं शालिपिष्टकृतं तिलान् ।

निषेधः—

व्यायामाध्वविवास्वप्नं यानं पानं विवर्जयेत् ॥ ६१ ॥

तथाऽम्ललवणोष्णानि विदाहीनि गुरूणि च ।

नाद्यादन्नानि जदरी तोयपानं विवर्जयेत् ॥ ६२ ॥

उदराणां मलाढ्यत्वाद्बहुशः शोधनं मतम् ।

क्षीरेणैरण्डजं तैलं पिबेन्मूत्रेण वाऽसकृत् ॥ ६३ ॥

ज्योतिष्मत्याः पिबेत्तैलं पयसा वा दिने दिने ।

अथ कङ्कुष्ठचूर्णम्—

कङ्कुष्ठचूर्णमुष्णाम्बु पीतं संरेच्य मानवम् ॥ ६४ ॥

अष्टाभ्योऽप्युदरेभ्यश्च द्रुतं कुर्याद्विनिर्गतम् ।

इति कङ्कुष्ठचूर्णम् ।

अथ चव्यादिः—

स्नुहीपयोमावितानां पिप्पलीनां पयोऽश्वतः ॥ ६५ ॥

सहस्रमुपयुञ्जीत शक्तितो जठरामयी ।

वातोदरी पिबेत्तक्रं पिप्पलीलवणान्विमम् ॥ ६६ ॥

शर्करामरिचोपेतं स्वादु पित्तोदरी पिबेत् ।

यवानीहपुषाजाजीव्योषयुक्तं कफोदरी ॥ ६७ ॥

संनिपातोदरी तक्रं त्रिकटुक्षारसैन्धवैः ।

बद्धोदरी तु हपुषादीप्यकाजाजिसैन्धवैः ॥ ६८ ॥

पिबेच्छिद्रोदरी तक्रं पिप्पलीक्षौद्रसंयुतम् ।
 ड्यूषणक्षारलवणैर्युक्तं तु सलिलोदरी ॥ ६९ ॥
 शिलाजतूनां मूत्राणां गुग्गुलोच्चैफलस्य च ।
 सुहीक्षीरप्रयोगश्च शमयत्युदरामयम् ॥ ७० ॥
 पूतीकरञ्जबीजं च गवाक्षीमूलकाञ्जिकम् ।
 पिष्टं सुपीतं शमयेज्जलोदरमसंशयम् ॥ ७१ ॥
 सप्ताहं माहिषं मूत्रं पयसा चाम्बुवर्जितम् ।
 पीतमौष्ट्रं पयो मासं श्वयथूदरनाशनम् ॥ ७२ ॥
 यः पिबेत्प्रातरुत्थाय चव्यं चित्रकमिश्रितम् ।
 क्षिप्रं तस्य व्रजत्याशु असाध्यमपि चोदरम् ॥ ७३ ॥
 विशालाशङ्किनीदन्तीत्रिवृद्धिफलकात्रयम् ।
 निशाविडङ्गकम्पिलं मूत्रेणोदरवान्पिबेत् ॥ ७४ ॥
 पयो वा चव्यदन्त्यग्निविडङ्गं व्योषकलिकतम् ।
 पेयं वा शृङ्गबेराम्बु कषायो दारुवह्निजः ॥ ७५ ॥
 चव्यविश्वसमुत्थो वा पेयो जठरशान्तये ।
 विडङ्गं चित्रको दन्ती चव्यं व्योषं च तैः पयः ॥ ७६ ॥
 शृतं कोलसमैः पीत्वा प्रवृद्धमुदरं जपेत् ।
 गवाक्षीशङ्किनीदन्तीनीलिनीकल्कसंयुतम् ।
 सर्वोदरविनाशाय गोमूत्रेण तु पाचयेत् ॥ ७७ ॥
 देवदुमं शिगु मसूरकं च गोमूत्रपिष्टामथ वाऽश्वगन्धाम् ।
 पीत्वाऽऽशु हन्यादुदरं प्रवृद्धं कृमीन्सशोफानुदरं च कूष्यम् ॥ ७८ ॥
 चव्यचित्रकविश्वानां साधितो देवदारुणा ।
 काथस्त्रिवृच्चूर्णयुतो गोमूत्रेणोदराञ्जयेत् ॥ ७९ ॥

इति चव्यादिः ।

अथ बबूलपाकः—

पिप्पलीवर्धमानं वा कल्कोद्दिष्टं प्रयोजयेत् ।
 जठराणां विनाशाय नास्ति तेन समं मुवि ॥ ८० ॥
 सुक्षयसा परिभाविततण्डुलचूर्णं विमिश्रितं शूषे ।
 उदरमुदरं हन्याद्योगोऽयं सप्तरात्रेण ॥ ८१ ॥
 बबूलस्य त्वचं श्रेष्ठां काथयेत्सलिलेन तु ।
 पुनः पचेत्कषायं तु यावत्सान्द्रत्वमागतम् ॥ ८२ ॥

तत्पिबेत्तक्रसंयुक्तं तक्रमोजी मिताशनः ।

निहम्यादाशु योगोऽयं जलोदरमपि ध्रुवम् ॥ ८३ ॥

इति बम्बूलपाकः ।

अथ पटोलाद्यं चूर्णम्—

मूत्राण्यष्टावुदरिणां सेके पाने च योजयेत् ।

देवदारुपलाशार्कहस्तिपिप्पलिशिगुकैः ॥ ८४ ॥

साश्वगन्धैः सगोमूत्रैः प्रदिह्यादुदरं शनैः ।

पटोलमूलं रजनीं विडङ्गं त्रिफलात्वचः ॥ ८५ ॥

कम्पिल्लकं नीलिनीं च त्रिवृतां चेति चूर्णयेत् ।

षडाद्यान्कार्षिकानन्त्यांश्चौंश्च द्वित्रिचतुर्गुणान् ॥ ८६ ॥

कृत्वा चूर्णं ततो मुष्टिं गवां मूत्रेण वा पिबेत् ।

विरिक्तो जाङ्गलरसै रेचनं मृदु मोजयेत् ॥ ८७ ॥

मण्डं पेयां च पीत्वा वा सव्योषं षडहं पयः ।

शृतं पिबेत्तत्तश्चूर्णं पिबेदेवं ततः पुनः ॥ ८८ ॥

हन्ति सर्वोदराण्येतच्चूर्णं जातोदकान्यपि ।

कामलां पाण्डुरोगं च श्वयथुं चापकर्षति ॥ ८९ ॥

अत्र पटोलादेः षड्मागाः कार्षिका अन्येषां कम्पिल्लादीनां द्वित्रि-
चतुर्गुणा मागा ग्रहणीयाः ।

इति पटोलाद्यं चूर्णम् ।

अथ नारायणं चूर्णम्—

पवानी हपुषा धान्यं त्रिफला सोपकुञ्चिका ।

कारवी पिप्पलीमूलमजगन्धा सठी वचा ॥ ९० ॥

शताह्वा जीरके व्योषं स्वर्णक्षीरी सचित्रकम् ।

द्वौ क्षारौ पौष्करं मूलं कुष्ठं लवणपञ्चकम् ॥ ९१ ॥

विडङ्गं च समांशानि दन्तीभागत्रयं तथा ।

त्रिवृद्विशाले द्विगुणे सातला स्याच्चतुर्गुणा ॥ ९२ ॥

एतन्नारायणं नाम चूर्णं रोगगणापहम् ।

एनत्प्राप्य निवर्तन्ते रोगा बिष्णुमिवासुराः ॥ ९३ ॥

तस्यानुपानमाह—

तक्रेणोदरिभिः पेयो गुल्मिभिर्बदराम्बुना ।

आनद्धवाते सुरया वातरोगे प्रसन्नया ॥ ९४ ॥

दधिमण्डेन विद्सङ्गे दाडिमाम्बुभिरर्शसि ।
 परिकर्तेषु वृक्षाम्लैरुष्णाम्बुभिरजीर्णके ॥ ९५ ॥
 मगंदरे पाण्डुरोगे कासे श्वासे गलग्रहे ।
 हृद्रोगे ग्रहणीरोगे कुष्ठे मन्दानले ज्वरे ॥ ९६ ॥
 दंष्ट्राविषे मूलविषे सगरे कृत्रिमे विषे ।
 यथाहं स्निग्धकोष्ठेन पेयमेतद्विरेचनम् ॥ ९७ ॥

इति नारायणं चूर्णम् ।

अथ महाक्षारः—

तिलसर्षपनालानि यवनालं सुधाऽपि च ।
 दशमूलमपामार्गो दन्तीचित्रकमाढकी ॥ ९८ ॥
 मधुकसुद्वीत्रिफलात्रिवृताकरवीरकम् ।
 पुनर्नवा वृश्चिकाली चाककम्पिल्लनिम्बकम् ॥ ९९ ॥
 एषां दश पलान्मागान्युक्त्या दग्ध्वा समावपेत् ।
 गोमूत्रेण समायुक्तं सप्तकृत्वस्तु पाचयेत् ॥ १०० ॥
 अथाग्नेमानि चूर्णानि समाधाप्य पुनः पचेत् ।
 वचामतिविषां पाठां द्वे हरिद्रे महौषधम् ॥ १०१ ॥
 त्रिवृत्कम्पिल्लकं क्षारं तथैव लवणानि च ।
 महौषधं शिशुफलं कुष्ठं मल्लातकानि च ॥ १०२ ॥
 पिप्पलीश्च विडङ्गानि त्रिफलां देवदारु च ।
 कटुकारोहिणीमुस्तं दन्तीहिङ्गवल्ग्वेतसम् ॥ १०३ ॥
 दधिशूक्तारनालानामाढकाढकमावपेत् ।
 समसंज्ञेन भागेन सर्पिस्तैलं विपाचयेत् ॥ १०४ ॥
 विगतार्चिर्यथा शान्तमथैनमवतारयेत् ।
 ततो विडालपदकं पिबेदुष्णेन वारिणा ॥ १०५ ॥
 मद्यैरम्लैश्च लामेन क्षीरैर्मूत्रेण वा पुनः ।
 महाक्षार इति ख्यातो जठराणां विनाशनः ॥ १०६ ॥
 प्लीहोऽर्शसि च गुल्मानि शूलं च हृदयग्रहम् ।
 यक्ष्माणं च प्रमेहं च पाण्डुरोगं मगंदरम् ॥ १०७ ॥
 सकृमीन्द्रहणीदोषाम्बन्धोदावर्तकुण्डलान् ।
 मूत्रकृच्छ्रमपस्मारं क्षारोऽयं विनिवर्तयेत् ॥ १०८ ॥

त्रि-वृक्षारः ।

अथ नाराचघृतम्—

स्नुक्क्षीरदन्तीत्रिफलाविडङ्गं सिंहीत्रिवृच्चित्रकमूलकल्कैः ।

घृतं विपक्वं कुडवप्रमाणं तोयेन तस्याक्षसमानकल्कम् ॥ १०९ ॥

पीत्वोष्णमम्भोऽनुपिबेद्विरिक्तो पेयां रसं वा विचरेद्विधिज्ञः ।

नाराचमेतज्जठरामयघ्नं युक्त्योपयुज्यात्समनुप्रदिष्टम् ॥ ११० ॥

इति नाराचघृतम् ।

द्वितीयं नाराचघृतम्—

त्रिफलां चित्रकां दन्तीं बृहतीं कण्टकारिकाम् ।

स्नुहीसार्कविडङ्गानि घृतस्य कुडवं पचेत् ॥ १११ ॥

तस्य मृद्वग्निसिद्धस्य कर्षार्धं पययेन्नरम् ।

शोथगुल्मोदरानाहृष्टीहोदरवृकोदरान् ॥ ११२ ॥

नाशयत्युल्बणानेतान्सर्पिर्नाराचसंज्ञितम् ।

इति द्वितीयं नाराचघृतम् ।

अथ त्रिवृतायं घृतम्—

पयस्वष्टगुणे सर्पिः प्रस्थं स्नुक्पयसः षलम् ॥ ११३ ॥

त्रिवृतापलकल्केन सिद्धं जठरगुल्मनुत् ।

इति त्रिवृतायं घृतम् ।

अथ बिन्दुघृतम्—

अर्कक्षीरपले द्वे तु स्नुहीक्षीरपलानि षट् ॥ ११४ ॥

पथ्या कम्पिल्लकं श्यामा शम्याकं गिरिकर्णिका ।

नीलिनी त्रिवृता दन्ती शङ्खिनी चित्रकं तथा ॥ ११५ ॥

एतेषां पलिकैर्भागैर्घृतप्रस्थं विपाचयेत् ।

अथास्य मलिने कोष्ठे बिन्दुमात्रं प्रदापयेत् ॥ ११६ ॥

यावतोऽस्य पिबेद्विन्दूंस्तम्बद्वेगान्विरिच्यते ।

कुष्ठं गुल्ममुदावर्तं श्वयथुं समगंदरम् ॥ ११७ ॥

शमयत्युदराण्यष्टौ वृक्षमिन्द्राशनिर्यथा ।

एतद्विन्दुघृतं नाम येनाभ्यक्तो विरिच्यते ॥ ११८ ॥

स्नुह्यर्कपयसोरत्र पाकस्यानु प्रयत्नतः ।

चतुर्गुणं जलं देयं पाकार्थं बिन्दुसर्पिषि ॥ ११९ ॥

इति बिन्दुघृतम् ।

अथ शालिपर्णीतैलम्—

शालिपर्णी विदारी च सहदेवी सगोक्षुरा ।

उमे स्थिरे सारिवे च जीवकर्षमकावुभौ ॥ १२० ॥

पर्णिन्यौ सविशाले च रुबुको वृद्धिरेव च ।

कण्डूरा वृश्चिकाली च बलात्रयमथापि वा ॥ १२१ ॥

एषां पलत्रिका मात्रा नामतः कर्षसंयुता ।

पुनर्नवैरण्डयोश्च पलान्यत्र पृथक्पृथक् ॥ १२२ ॥

षोडशांशसमाख्यातं दैशाङ्घ्रेर्द्वाविंशं तथा ।

संक्षुद्य कथितं द्रोणे चतुष्पष्टिमथाऽऽहतम् ॥ १२३ ॥

दधिकाञ्जिकमूत्राणां प्रस्थं प्रस्थं चतुश्चतुः ।

तैलमेरण्डजं चैव प्रस्थमेकं समाहरेत् ॥ ॥

सार्धकर्षप्रमाणं च मात्रां वैद्यस्तु दापयेत् ॥ १२४ ॥

पलाशमुस्ताधवचित्रकाणां स्नुहीव्रवन्तीमदनार्ग्वधानाम् ।

फलत्रिकस्यापि तथैव दद्यात्क्षारस्य लोध्रस्य पलं तथैव ।

स्नुह्याः पयश्चैव पलं चतुष्कं सर्वोदरं तैलमिदं निहन्ति ॥ १२५ ॥

इति शालिपर्णीतैलम् । इति सामान्यविधिः ।

अथ प्लीहचिकित्सा—

प्लीहा निर्वेदनः श्वेतः कठिनः स्थूल एव च ।

महापरिग्रहः शीतः श्लेष्मसंभव उच्यते ॥ १२६ ॥

सज्वरः सपिपासश्च स्वेदनस्तीव्रवेदनः ।

पीतगात्रो विशेषेण प्लीहा पौष्टिक उच्यते ॥ १२७ ॥

वातजमाह—

नित्यमाबद्धकोष्ठश्च नित्योदावर्तसंभवः ।

वेदनाभिः परीतश्च प्लीहा वातिक उच्यते ॥ १२८ ॥

रक्तजमाह-

क्लृमैर्विदाहैः संमोहैर्वैवर्ण्यैर्गात्रगौरवैः ।
उत्क्लेदभ्रममूर्च्छाभिर्ज्ञेयं रक्तजलक्षणम् ॥ १२९ ॥

त्रिदोषजमाह-

त्रयाणामपि रूपाणि प्लीहचसाध्ये भवन्ति हि ।

तस्योपचाराः-

स्नेहस्वेदविकारादि विधेयं प्लीहरोगिणे ॥ १३० ॥
दध्ना भुक्तवतो वामबाहुमध्ये* शिरां व्यधेत् ।
भिषक्प्लीहविनाशाय यकृन्नाशाय दक्षिणे ॥ १३१ ॥
प्लीहानं मर्दयेद्द्राढं दुष्टरक्तप्रवृत्तये ।
मणिवन्धे समुत्पन्नं वाममङ्गुष्ठमीरितम् ॥ १३२ ॥
दहेच्छिरां शरेणाऽऽशु वैद्यः प्लीहप्रशान्तये ।
विडङ्गाद्यान्ससिन्धूत्थान्सकून्कृत्वा वचान्वितान् ।
पिबेत्क्षीरेण संचूर्ण्य प्लीहगुल्मोदरापहम् ।

अथ सिन्ध्वादिचूर्णम्-

सिन्धुमगधाग्निचूर्णं शिग्रुशिफाजाजिकारसनिपीतम् ।
प्रबलमपि योगराजः प्लीहानं नाशयत्याशु ॥ १३३ ॥

इति सिन्ध्वादिचूर्णम् ।

अथ द्रवन्तीनागवटी-

तिलैरण्डद्रवन्त्यश्च क्षारो मल्लातकं कणा ।
एषां भागं समं कृत्वा तत्तुल्यं तु गुडं मतम् ॥ १३४ ॥
खादेदग्निबलं मत्वा पावकस्य विवृद्धये ।
जयेत्प्लीहानमत्युग्रं यकृद्गुल्मं तथैव च ॥ १३५ ॥

इति द्रवन्तीनागवटी ।

* क. प्लीहोदरिणः स्निग्धस्विन्नस्य दध्ना भुक्तवतो वामबाहौ कूर्पराम्भ्यन्तरतः कूर्परं मुज
मध्यं-शिरां व्यधेत् । विमर्दयेच्च पाणिना प्लीहानं रुधिरस्पन्दनार्थम् । दधिभोजनं रक्तोत्क्लेशनाय
तदहरेव ।

अथ शिशुक्राथः—

शोथप्लीहोदरं हन्ति पिप्पलीमरिचान्वितः ।

अम्लवेतससंयुक्तः शिशुक्राथः ससैन्धवः ॥ १३६ ॥

इति शिशुक्राथः ।

अथ कुष्ठादिचूर्णम्—

कुष्ठं वचा शृङ्गबेरं चित्रकं कौटजं फलम् ।

पाठा चैवाजमोदा च पिप्पल्यः समचूर्णिताः ॥ १३७ ॥

ततो विडालपदकं पिबेदुष्णेन वारिणा ।

प्लीहोदरमुदावर्तं सर्वमेतेन शाम्यति ॥ १३८ ॥

इति कुष्ठादिचूर्णम् ।

अथार्कपत्रक्षारः—

पातव्यो युक्तितः क्षारः क्षीरेणोदधिशुक्तिजः ।

पयसा वा प्रयोक्तव्याः पिप्पल्यः प्लीहशान्तये ॥ १३९ ॥

अर्कपत्रं सलवणं पुटदग्धं सुचूर्णितम् ।

निहन्ति मस्तुना पीतं प्लीहानमतिदारुणम् ॥ १४० ॥

इत्यर्कपत्रक्षारः ।

अथ लघुहिङ्ग्वादिचूर्णम्—

वायुः प्लीहानमुज्ज्व्य कुपितो यस्य तिष्ठति ।

शूलैः परितुदन्पाश्वं प्लीहा तस्य प्रवर्धते ॥ १४१ ॥

हिङ्गु त्रिकटुकं कुष्ठं यवक्षारोऽथ सैन्धवम् ।

मातुलुङ्गरसोपेतं प्लीहशूलहरं परम् ॥ १४२ ॥

इति लघुहिङ्ग्वादिचूर्णम् ।

अथ शङ्खनाभिचूर्णम्—

पलाशक्षारतोयेन पिप्पली परिमाविता ।

गुल्मप्लीहार्तिशमनी वह्निदीप्तिकरी मता ॥ १४३ ॥

रसेन जम्बीरफलस्य शङ्खनाभीरजः पीतमवश्यमेव ।

कर्षप्रमाणं शमयेद्वशेषं प्लीहामयं कूर्मसमानमाशु ॥ १४४ ॥

इति शङ्खनाभिचूर्णम् ।

अथ शरपुङ्खामूलचूर्णम्—

शरपुङ्खामूलकल्कः पीतस्तक्रेण नाशयत्यचिरात् ।

चिरतरकालसमुत्थं प्लीहानं रुढमवगाढम् ॥ १४५ ॥

इति शरपुङ्खामूलचूर्णम् ।

अथ शाल्मलीपुष्पकाथः—

क्षारं वा विडकृष्णाभ्यां पूतिकस्याम्बु निःशृतम् ।

यकृत्प्लीहप्रशान्त्यर्थं पिबेत्पातर्यथाबलम् ॥ १४६ ॥

सुस्विन्नं शाल्मलीपुष्पं निशापर्युषितं नरः ।

राजिकाचूर्णसंयुक्तमद्यात्प्लीहोपशान्तये ॥ १४७ ॥

इति शाल्मलीपुष्पकाथः ।

अथ यवान्यादिचूर्णम्—

यवानिकाचित्रकयावशूकषड्ग्रन्थदन्तीमगधोद्भवानाम् ।

प्लीहानमेतद्विनिहन्ति चूर्णमुष्णाम्बुना मस्तुसुरासवैर्वा ॥ १४८ ॥

इति यवान्यादिचूर्णम् ।

अथ विडङ्गादिचूर्णम्—

विडङ्गानि यवानीं च चित्रकं चेति तत्समम् ।

द्विगुणं देवदारुं च नागरं सपुनर्नवम् ॥ १४९ ॥

त्रिवृद्धागाश्च चत्वारस्तत्सर्वं कल्कपेषितम् ।

क्षीरेणोष्णेन पातव्यं श्रेष्ठं प्लीहविनाशनम् ॥ १५० ॥

अथ वैतानि चूर्णानि गवां मूत्रेण पाययेत् ।

उदरीमूतमध्येवं प्लीहानं संप्रणाशयेत् ॥ १५० ॥

इति विडङ्गादिचूर्णम् ।

अथ विडङ्गादिक्षारः—

विडङ्गं चित्रकं सक्तून्सघृतं सैन्धवं वचाम् ।

दग्ध्वा कपाले पयसा गुल्मप्लीहापहं पिबेत् ॥ १५१ ॥

इति विडङ्गादिक्षारः ।

अथ भल्लातकमोदकः—

भल्लातकामयाजाजीमोदको गुडसंयुतः ।

सप्तरात्रान्निहन्त्येष प्लीहानमतिदारुणम् ॥ १५२ ॥

इति भल्लातकमोदकः ।

अथाभयामोदकाः—

त्रिपलममयाफलानां पलत्रयं त्रिकटुकात्पलं मूलात् ।
 दीप्यकचविकाचित्रकविडङ्गबृक्षाम्लसैन्धवार्धपलैः ॥ १५३ ॥
 त्वक्पत्रैलाकर्षैश्चिभिर्युतं चूर्णितं सूक्ष्मम् ।
 त्रिंशत्पलशुडसहितास्त्वक्षमितास्तस्य मोदकाः कार्याः ॥ १५४ ॥
 अमयावटका नाम्ना प्लीहाशोऽगुम्लजठरहराः ।
 पाण्डूवामयिकामलिनां मन्दाग्नीनां च सर्वदा शस्ताः ॥ १५५ ॥

इत्यभयामोदकाः ।

अथ वज्रक्षारः—

सौवर्चलं यवक्षारं सामुद्रं काचसैन्धवम् ।
 टक्कणं स्वर्जिकाक्षारं तुल्यमेकत्र चूर्णयेत् ॥ १५६ ॥
 अर्कदुग्धैः स्नुहीदुग्धैर्माषियेदातपे त्र्यहम् ।
 ऊर्ध्वाधःस्थैः क्रमात्तस्य तत्तुल्यैरर्कपल्लवैः ॥ १५७ ॥
 भाण्डे संस्थाप्य मृल्लिते रुद्ध्वा गजपुटे पचेत् ।
 स्वाङ्गशीतं तु संचूर्ण्य चूर्णमेषां तु मेलयेत् ॥ १५८ ॥
 ज्युषणं सविडङ्गं च राजिकां त्रिफलामपि ।
 चव्यं च हिङ्गुसंमृष्टं तक्केणाद्याद्यथाबलम् ॥ १५९ ॥
 वज्रक्षाराभिधं चूर्णमुदराणि विनाशयेत् ।
 शोथं गुल्मं तथाऽष्टीलां मन्दाग्निमरुचिं तथा ॥ १६० ॥
 प्लीहानं यकृद्वाल्याख्यमुदरं च विशेषतः ।

इति वज्रक्षारः ।

अथाग्निमुखं लवणम्—

चित्रकत्रिवृतादन्तीत्रिफलारुचकैः समैः ॥ १६१ ॥
 यावन्त्येतानि चूर्णानि तावन्मात्रं तु सैन्धवम् ।
 माषयित्वा स्नुहीक्षीरैः स्नुक्काण्डे प्रक्षिपेत्ततः ॥ १६२ ॥
 मृत्पक्केनानुलिप्याथ प्रक्षिपेज्जातवेदसि ।
 सुदग्धं च ततो ज्ञात्वा शनैर्वैद्यः समुद्धरेत् ॥ १६३ ॥

तक्रेण पीसे तच्चूर्णं यकृत्प्लीहोदरापहम् ।

एतदग्निमुखं नाम्ना लवणं वह्निवर्धनम् ॥ १६४ ॥

इत्यग्निमुखं लवणम् ।

अथ चित्रकायं घृतम्—

चित्रकस्य तुलाक्वाथे घृतप्रस्थं विपाचयेत् ।

दध्यारनाले द्विगुणे दधिमण्डं चतुर्गुणम् ॥ १६५ ॥

पञ्चकोलकतालीसं क्षारौ च पटुपञ्चकम् ।

यवाम्बु द्वे च जरणे मरिचं चाक्षसंमितम् ॥ १६६ ॥

एतैर्युक्त्या घृतं सिद्धं मात्रया च पिबेत्प्रगे ।

प्लीहशोफोदराशोभं विशेषादग्निदीपनम् ॥ १६७ ॥

इति चित्रकायं घृतम् ।

अथ महारोहीतकं घृतम्—

रोहीतकात्पलशतं संक्षुध्य बदराढकम् ।

साधयित्वा जलद्रोणे चतुर्मागवशेषिते ॥ १६८ ॥

घृतप्रस्थं समावाप्य छागक्षीरं चतुर्गुणम् ।

तस्मिन्द्रव्याणि सर्वाणि प्रदद्यात्कार्षिकाणि च ॥ १६९ ॥

व्योषं फलत्रिकं हिङ्गुं यवानीं तुम्बुरुं विडम् ।

अजार्जीं कृष्णलवणं दाडिमं देवदारु च ॥ १७० ॥

पुनर्नवां विशालां च यवक्षारं सपौष्करम् ।

विडङ्गं चित्रकं चैव हपुषां कारवीं तथा ॥ १७१ ॥

एतैर्घृतं विपक्वं तु विदध्याद्वुढमाजने ।

पाययोऽपिपलां मात्रां रसयूषयोम्बुभिः ॥ १७२ ॥

यकृत्प्लीहोदरं शूलमग्निमान्द्यं च नाशयेत् ।

इति महारोहीतकं घृतम् ।

इति प्लीहोदरम् ।

अथ यकृद्दाल्युदरम्—

पिप्पलीघृतम्—

उदावर्तरुजानाहैर्मोहतृद्दहनज्वरैः ॥ १७३ ॥

गौरवारुचिकाठिन्यैर्विद्यात्तत्र मलान्कमात् ।

प्लीहोद्विष्टाः क्रियाः सर्वा यकृद्दाल्युदरेऽपि च ॥ १७४ ॥

एष वङ्गेश्वरो नाम्ना प्लीहगुल्मोदरं जयेत् ।
साज्यं गुञ्जाद्वयं लीढ्वा निष्कां श्वेतपुनर्नवाम् ॥ १९९ ॥
गोमूत्रेण पिबेच्चानु रजनीं वा गवां जलैः ।

इति वङ्गेश्वरो रसः ।

अथोदरारिः—

पारदं शिखितुत्थं च जैपालं पिप्पलीसमम् ॥ २०० ॥
आरग्वधफलान्मज्जां वज्रीक्षीरेण मर्दयेत् ।
माषमात्रां वटीं खादेत्स्त्रीणां हन्ति जलोदरम् ॥ २०१ ॥
चिञ्चाफलरसं चानुपथ्यं दध्योदनं हितम् ।

इत्युदरारिः ।

अथ जलोदरारिः—

पिप्पलीमरिचं ताम्रं *काञ्चनीचूर्णसंयुतम् ॥ २०२ ॥
स्तुहीक्षीरैर्विनं मर्द्यं तुल्यं जैपालबीजकम् ।
निष्कं भुक्तं विरेकेण सत्यं हन्ति जलोदरम् ॥ २०३ ॥

इति जलोदरारिः ।

अथ चण्डभास्करो रसः—

हरबीजामृतं गन्धं प्रत्येकं निष्कमेव च ।
टङ्कणं दशनिष्कं तु जैपालं विंशतिस्तथा ॥ २०४ ॥
सर्वं खल्वे विनिक्षिप्य निर्गुण्डीरसमर्दितम् ।
मुद्गप्रमाणवटकानुगुडमिश्रं तु मक्षयेत् ॥ २०५ ॥
पाण्डुशोफोदरार्शश्च गुल्मप्लीहयकृत्कृमीन् ।
पुराणज्वरमेहांश्च मूत्रकृच्छ्राश्मरीवणान् ॥ २०६ ॥
सर्वव्याधींश्च हरति रसोऽयं चण्डभास्करः ।

इति चण्डभास्करो रसः ।

अथेच्छाभेदी रसः—

शुण्ठी मरिचसंयुक्ता रसगन्धकटङ्कणाः ॥ २०७ ॥
जैपालत्रिगुणाः प्रोक्ताः सर्वे एकत्र मर्दिताः ।
इच्छाभेदी रसो ह्यस्य द्विगुञ्जां ससितां पिबेत् ॥ २०८ ॥

यावच्च चुलुकाः पीतास्तावद्वेगैर्विरिच्यते ।

तक्रौदनं च दातव्यं पथ्यमत्र विजानता ॥ २०९ ॥

इतीच्छामेदी रसः ।

अथ नाराचो रसः—

मृष्टटङ्कणतुल्यं तु मरिचं च रसं समम् ।

मन्धकं पिप्पली शुण्ठी द्वौ द्वौ भागौ विचूर्णयेत् ॥ २१० ॥

सर्वतुल्यं क्षिपेद्वन्तीबीजं सर्वमकल्मषम् ।

द्विगुञ्जं रेचनं चैतदुदराणि व्यपोहति ॥ २११ ॥

इति नाराचो रसः ।

अथ जलोदरारिरसः—

रसेन गन्धं द्विगुणं शिलां च निशां च बीजं जयपालकानाम् ।

फलत्रयत्र्यूषणाचित्रकं च सर्वं विचूर्णयथ विभावयेच्च ॥ २१२ ॥

दन्तीस्नुहीमृङ्गरसेन सप्तवारान्हि निष्कार्धमिदं ददीत ।

जाते विरके च ददीत चाम्लं सतक्रशीतं शिशिरं त्यजेच्च ॥ २१३ ॥

जाते बले तं च पुनर्ददीत तत्रेण रोगः समुपैति शान्तिम् ॥ २१४ ॥

इति जलोदरारिरसः ।

इति श्रीयोगतरङ्गिण्यामुदररोगनिदानचिकित्साकथनं नाम षष्ठा-

धिकशततमस्तरङ्गः ॥ १०५ ॥

अथ षष्ठाधिकशततमस्तरङ्गः ।

अथ शोथनिदानम्—

पित्तरक्तकफान्वायुदुष्टो दुष्टान् बहिः शिराः ।

नीत्वा रुद्धगतिस्तैर्हि कुर्यात्त्वङ्मांससंश्रयम् ॥ १ ॥

उत्सेधं संहतं शोफं तमाहुर्निचयादतः ।

सर्वं हेतुविशेषैस्तु रूपमेदान्नवात्मकम् ॥ २ ॥

दोषैः पृथग्द्वयैः सर्वैरभिघाताद्विषादपि ।

तत्पूर्वरूपं द्रवथुः शिरायामोऽङ्गगौरवम् ॥ ३ ॥

हेतुमाह—

शुद्धयामयामक्तकृशाबलानां(?) क्षाराम्लतीक्ष्णोष्णगुरूपसेवा ।
 दध्याममृच्छाकविरोधिदुष्टगरोपसृष्टान्ननिषेवणं च ॥ ४ ॥
 अशांस्यचेष्टा न च देहशुद्धिर्मर्मोपघातो विषमा प्रसूतिः ।
 मिथ्योपचारः परिकर्मणां च निजश्च हेतुः श्वयथोः प्रदिष्टः ॥ ५ ॥

सामान्यलिङ्गमाह—

सगौरवं स्यादनवस्थितत्वं सोत्सेधमूष्माऽथ शिरातनुत्वम् ।
 सलोमहर्षश्च विवर्णता च सामान्यलिङ्गं श्वयथोः प्रदिष्टम् ॥ ६ ॥

वातजमाह—

चलस्तनुत्वक्पुरुषोऽरुणोऽसितः सुषुप्तिहर्षार्तियुतो निमित्ततः ।
 प्रशाम्यति प्रोन्नमति प्रपीडितो दिवा बली च श्वयथुः समीरणात् ॥ ७ ॥

पित्तजमाह—

मृदुः सगन्धोऽसितपीतरागवान्भ्रमज्वरस्वेदतृषामदान्वितः ।
 य उष्यते स्पर्शरुगक्षिरागकृत्स पित्तशोथो भृशदाहपाकवान् ॥ ८ ॥

कफजमाह—

गुरुस्थिरः पाण्डुररोचकान्वितः
 प्रसेकनिद्रावमिषहिमान्द्यकृत् ।
 स कृच्छ्रजन्मप्रशमो निपीडितो
 न चोन्नमेद्रात्रिबली कफात्मकः ॥ ९ ॥

द्वन्द्वजमाह—

निदानाकृतिसंसर्गाच्छ्वयथुः स्याद्विदोषजः ।

संनिपातजमाह—

सर्वाकृतिः संनिपाताच्छोथो व्यामिश्रलक्षणः ॥ १० ॥

अभिघातादिना प्रकारमाह—

अभिघातेन शस्त्रादिच्छेदभेदक्षतादिभिः ।
 हिमानिलोदध्यनिलैर्भल्लातकपिकच्छुजैः ॥ ११ ॥
 रसैः शूकैश्च संस्पर्शाच्छ्वयथुः स्याद्विसर्पवत् ।
 भृशोष्मा लोहिताकारः प्रायशः पित्तलक्षणः ॥ १२ ॥

विषजशोथमाह—

विषजः सविषप्राणिपरिसर्पणमूत्रणतः ।
 दंष्ट्रादन्तनखाघातादविषप्राणिनामपि ॥ १३ ॥
 विण्मूत्रशुक्रोपहतमलवद्वस्त्रसंकरात् ।
 विषवृक्षानिलस्पशद्भिरयोगावचूर्णनात् ॥ १४ ॥
 मृदुश्चलोऽवलम्बी च शीघ्रो दाहुरुजाकरः ।

सर्वदेहगशोथमाह—

दोषाः श्वयथुमूर्ध्वं हि कुर्वन्त्यामाशयस्थिताः ॥ १५ ॥
 पक्वाशयस्था मध्ये च वर्चस्थानगतास्त्वधः ।
 कृत्स्नं देहमनुप्राप्ताः कुर्युस्ते सर्वदेहगम् ॥ १६ ॥

कष्टत्वमाह—

यो मध्यदेशे श्वयथुः स कष्टः सर्वगश्च यः ।

अर्धाङ्गशोथमाह—

अर्धाङ्गेऽरिष्टमृतः स्याद्यश्चोर्ध्वं परिसर्पति ॥ १७ ॥

असाध्यत्वमाह—

श्वासः पिपासा छर्दिश्च दौर्बल्यं ज्वर एव च ।
 यस्य चान्ने रुचिर्नास्ति शोथिनं परिवर्जयेत् ॥ १८ ॥
 ऊर्ध्वगामी तरं पञ्चामधोगामी मुखाल्छियम् ।
 उमयोर्बस्तिसंजातः शोथो हस्ति न संशयः ॥ १९ ॥
 अनन्योपद्रवकृतः शोथः पादसमुत्थितः ।
 पुरुषं हन्ति नारीं तु मुखजो गुह्यजो द्वयम् ॥ २० ॥
 नवोऽनुपद्रवः शोथः साध्योऽसाध्यः पुरोदितः ।
 छर्दिश्वासोऽरुचिस्तृष्णा ज्वरोऽतीसार एव च ॥ २१ ॥
 सप्तकोऽयं सदौर्बल्यशोथोपद्रवसंग्रहः ।

आमान्वितशोफमाह—

क्षुब्धाशहृदयाशुद्धितन्द्राजठरगौरवैः ॥ २२ ॥
 दोषाप्रवृत्तिसत्त्वाद्यैर्व्याधिमामान्वितं वदेत् ।

इति शोथनिदानम् ।

अथैतच्चिकित्सा—

निदानदोषार्तिविपर्ययक्रमैरुपाचरेत्तं बलकालदोषवित् ।
 अथाऽऽमजं लब्धनपाचनक्रमैर्विशोधनेरुल्बणदोषमादितः ॥ २३ ॥
 शिरोगतं शीर्षविरेचनैरधोविरेचनैरूर्ध्वमधस्तथोर्ध्वम् ।
 उपाचरेत्स्नेहमवं विरूक्षणेः स्नेहस्तु रूक्षेण विरूक्ष्यतै ध्रुवम् ॥ २४ ॥
 विबद्धवह्वा निलजे विरूहणं घृतं तु पित्तानिलजे सतिक्तकम् ।
 शोथे तु मूर्च्छावति दाहकर्षिते विशोधनीयं तु समूत्रमिष्यते ।
 कफोत्थितं क्षारकटूष्णसंयुतैः समूत्रतक्रैस्तु च युक्तिभिर्हरेत् ॥ २५ ॥
 शोथे वातोत्थिते पूर्वं मासार्धं त्रिवृतं पिबेत् ।
 तैलमेरण्डजं वाऽपि मलबन्धेऽपि तन्मतम् ॥ २६ ॥
 शाल्वन्नं पयसा युक्तं रसैर्वाऽपि प्रयोजयेत् ।
 स्वेदाभ्यङ्गांश्च बातघ्नान्सेकान्लेपांश्च कल्पितान् ॥ २७ ॥

वातजशोथचिकित्सा—

शुण्ठीपुनर्नवैरण्डपञ्चमूलघृतं जलम् ।
 वातिके श्वयथौ पेयं भक्तपाकेऽपि तन्मतम् ॥ २८ ॥

पित्तजशोथचिकित्सा—

क्षीराशनं पित्तकृतेऽतिशोथे त्रिवृद्ब्रूचीत्रिफलाकषायम् ।
 पिबेद्भवां मूत्रविमिश्रितं वा फलत्रिकक्षौद्रमथाक्षमात्रम् ॥ २९ ॥
 पटोलत्रिफलारिष्टदार्वाक्काथः सगुग्गुलुः ।
 हरेत्पित्तकृतं शोथं तृष्णाज्वरसमन्वितम् ॥ ३० ॥

कफजशोथचिकित्सामाह—

कफोत्थे तु पिबेत्तैलं सिद्धमारग्वधादिना ।
 मन्देऽग्नौ स्तिमिते कोष्ठे स्नातोरोधेऽरुचावपि ॥ ३१ ॥
 क्षारमूत्रासवारिष्टचूर्णतक्राणि योजयेत् ।
 कफोत्थे सिकताकृष्णाशिष्ठुत्वगतसीयुतैः ॥ ३२ ॥
 पुराणैरपि पिण्याकैः पिष्टैः सुरभिवारिणा ।
 लेपनाच्छ्लेष्मजठरं हन्यते तु मुहुः क्रमात् ॥ ३३ ॥
 बह्वधेनुरूपः स्वरसः सर्षपतैलेन मिश्रितः पीतः ।
 पक्कजपत्रसमुत्थः शोफानां नाशनः परमः ॥ ३४ ॥

पुनर्नवाविश्वत्रिवृद्धुचीशम्याकपथ्यासुरदारुकल्कः ।
 शोफे कफोत्थेऽक्षसमं समूत्रं क्वाथं पिबेद्वाऽप्यथ चूर्णमेषाम् ॥ ३५ ॥
 पुनर्नवामृतादारुदशमूलरसाढके ।
 आर्द्रकस्य रसप्रस्थे गुडस्य च तुलां पचेत् ॥ ३६ ॥
 तत्सिद्धं व्योषपत्रैलात्वक्पत्रैः कार्षिकैः पृथक् ।
 चूर्णीकृतैर्लिहेच्छीते मधुनः कुडवं क्षिपेत् ॥ ३७ ॥
 लेहः पौनर्नवो नाम श्लेष्मशोफनिषूदनः ।
 श्वासकासारुचिहरो बलपुष्ट्यग्निवर्धनः ॥ ३८ ॥
 इति पुनर्नवावलेहः ।

अथ पथ्यादिक्वाथः—

मिश्रे मिश्रक्रमं कुर्यात्सर्वजे सर्वमेव तु ॥ ३९ ॥
 पिप्पल्यजाजी गजपिप्पली च निदिग्धिका नागरचित्रकौ च ।
 रजन्ययःपिप्पालिमूलपाठामुस्तं च चूर्णं सुखतोयपीतम् ॥ ४० ॥
 हन्यान्निदोषं विषजं सशोफं कल्कश्च भूनिम्बमहौषधाभ्याम् ।
 रसस्तथैवाऽऽर्द्रकनागरस्य पेयोऽथ जीर्णे पयसाऽन्नमद्यात् ॥ ४१ ॥
 शिलाह्वयं वा त्रिफलारसेन हन्यान्निदोषं श्वयथुं प्रसह्य ।
 तक्रं पिबेद्वा गुरुभिन्नवर्चाः सव्योषसौवर्चलमाक्षिकं च ॥
 विद्ध्वातसङ्गे पयसा रसैर्वा प्रागुष्णमद्यादुरुबूकतैलम् ॥ ४२ ॥
 बिल्वपत्ररसः पीतः सोषणः श्वयथौ त्रिजे ।
 विट्सङ्गे चैव दुर्नाम्नि विद्ध्यात्कामलासु च ॥ ४३ ॥
 शोफे चाऽऽगन्तुजे कुर्यात्सेकलेपादि शीतलम् ।
 स्थिरीकृतं चूर्णपयो महिषीनवनीतयुक् ॥ ४४ ॥
 मल्लातककृतं शोथं निहन्त्येव न संशयः ।
 मल्लातजं जयेच्छोफं सतिला कृष्णमृत्तिका ॥ ४५ ॥
 यष्टीदुग्धतिलैर्लेपो नवनीतेन संयुतः ।
 शोफमारुष्करं हन्ति चूर्णं शालदलस्य वा ॥ ४६ ॥
 षथ्यामृतामार्गिपुनर्नवाग्निदावीनिशादारुमहौषधानाम् ।
 क्वाथं निपीयोदरपाणिपादवक्त्राश्रितं हन्त्यचिरेण शोफम् ॥ ४७ ॥
 इति पथ्यादिक्वाथः ।

अथ गुडायं चूर्णम्—

पुनर्नवामूलकविश्वदारुच्छिन्नोद्भवाचित्रकमूलसिद्धाः ।
 रसा यवाग्वश्च पयांसि यूषाः शोफे प्रदेया दशमूलगर्माः ॥ ४८ ॥

कृष्णाग्निविश्वधनजीरककण्टकारी-

पाठानिशाकरिकणामगधाजटानाम् ।

चूर्णं कवोष्णसलिलेन विलोड्य पीतं

नातः परं श्वयथुरोगहरं नराणाम् ॥ ४८ ॥

आर्द्रकं सगुडं खादेऽप्रकुञ्चार्धविवर्धितम् ।

यावत्पञ्चपलं मुद्गक्षीरयूषरसाशनः ॥ ४९ ॥

श्वयथुं गुल्ममुदरं कासं श्वासमरोचकम् ।

पीनसं पाण्डुदुर्नामहृद्गोचं च विनाशयेत् ॥ ५० ॥

गुडार्द्रकं वा गुडनागरं वा गुडामयां वा गुडपिप्पलीं वा ।

कर्षाभिवृद्ध्या त्रिपलप्रमाणं खादेन्नरः पक्षमथापि मासम् ॥ ५१ ॥

शोफप्रतिश्यायगलास्यरोगान्सश्वासकासारुचिपीनसादीन् ।

जीर्णज्वराशोऽग्रहणीविकारान्हन्यात्तथाऽन्यान्करुवातरोगान् ॥ ५२ ॥

आर्द्रकस्वरसः पीतः पुराणगुडमिश्रितः ।

अजाक्षीराशिनां शीघ्रं सर्वशोफहरो भवेत् ॥ ५३ ॥

भूनिम्बविश्वकल्कं जग्ध्वा पीतः पुनर्नवाक्काथः ।

अपहरति नियतमाशु श्वयथुं सर्वाङ्गजं नृणाम् ॥ ५४ ॥

विश्वं गुडेन तुल्यं वृश्चीकरसानुपानमभ्यस्तम् ।

प्राणिहन्ति सर्वशोफं घनवृन्दं चण्डवायुरिव ॥ ५५ ॥

गुडपिप्पलिशुण्ठीनां चूर्णं श्वयथुनाशनम् ।

आमाजीर्णप्रशमनं शूलघ्नं बस्तिशोधनम् ॥ ५६ ॥

गुडात्पलत्रयं ग्राह्यं शृङ्गबेरं पलत्रयम् ।

शृङ्गबेरसमा कृष्णा लो+हविट्किट्टयोः पलम् ॥ ५७ ॥

चूर्णमेतत्समुद्दिष्टं सर्वश्वयथुनाशनम् ।

इति गुडाद्यं चूर्णम् ।

अथ पुनर्नवाद्यं चूर्णम्—

पुनर्नवादाव्यमृतापाठाविश्वं श्वदंष्ट्रिका ॥ ५८ ॥

रजन्यौ द्वे बृहत्यौ द्वे पिप्पल्यश्चित्रकं वृषः ।

समभागानि संचूर्ण्य गवां मूत्रेण वा पिबेत् ॥ ५९ ॥

* क. पलार्धप्रमाणं विवर्धितम् । + क. लोहविट्भस्मनः पलमिति वङ्गसेने ।

बहुप्रकारं श्वयथुं सर्वगात्रावसारिणम् ।

हन्ति चाऽऽशूदराण्यष्टौ व्रणांश्चैवोद्धतानपि ॥ ६० ॥

इति पुनर्नवाद्यं चूर्णम् ।

अथ गोमूत्रमण्डूरः—

गोमूत्रसिद्धं मण्डूरं सुरभीरसमावितम् ।

माणकार्द्रककन्दानां रसैश्चापि विभावयेत् ॥ ६१ ॥

त्रिफलाकटुचव्यानां चूर्णं पाणितलद्वयम् ।

क्षिपेत्सुसिद्धपाके तु मधुनश्च पलद्वयम् ॥

निहन्ति सर्वजं शोथं सर्वाङ्गं च विशेषतः ॥ ६२ ॥

अत्र गोमूत्रसिद्धं लोहमलं संचूर्ण्य माणकार्द्रकरसैराक्षपे परिमाण्य
त्रिफलादिचूर्णं द्विगुणमूत्रेण पक्तव्यम् ।

इति गोमूत्रमण्डूरः ।

अथ पुनर्नवाद्यं घृतम्—

पुनर्नवापत्ररसालमूलं संक्षुद्य तोषार्मणशेषसिद्धम् ।

चतुर्थमागेन घृतेन पक्वं प्रस्थं तु तत्कल्कपलाष्टकेन ॥ ६३ ॥

संसेवितं वातबलासरोगान्सर्वांश्च शोफानतिदुस्तरांश्च ।

गुल्मोदरप्लीहगुदोद्धवांश्च निहन्ति वह्निं कुरुतेऽपि पुंसाम् ॥ ६४ ॥

इति पुनर्नवाद्यं घृतम् ।

अथ शुष्कमूलकाद्यं तैलम्—

शुष्कमूलकवर्षाभूदारुरास्त्रामहौषधैः ।

पक्वमभ्यञ्जने तैलं समूलं शोफनाशनम् ॥ ६५ ॥

इति शुष्कमूलकाद्यं तैलम् ।

अथ पञ्चमूलाद्यं तैलम्—

पञ्चमूलं सलवणं सरलं देवदारु च ।

हस्तिकर्णपलाशस्य फलानि निचुलस्य च ॥ ६६ ॥

पलांशं क्लकनासा च गुडूची देवपुष्पकम् ।

अहिंसा श्रेयसी हिंसा कृष्णगन्धा पुनर्नवा ॥ ६७ ॥

कायस्था च वयस्था च दारुको जटिला जटा ।

अलम्बुषो रुबूकं च प्रपुष्पाटं सनागरम् ॥ ६८ ॥

शिग्रुगोधा वरी मार्गी तर्कारी पौष्करी जटा ।
एतैः सिद्धं यथालाभं तैलमभ्यञ्जनैस्त्रिभिः ॥ ६९ ॥
निहन्त्युदीर्णं श्वयथुं जन्तोर्वातकफात्मकम् ॥ ७० ॥

इति पञ्चमूलार्थं तैलम् ।

अथ कंसहरीतकी ।

द्विपञ्चमूलस्य पचेत्कषाये कंसे मयानां च शतं गुडाच्च ।
लेहे सुसिद्धे च विनीय चूर्णं व्योषं त्रिसौगन्ध्यमुपस्थिते च ॥ ७१ ॥
प्रस्थार्धमात्रं मधुनः सुशतिं किञ्चिच्च चूर्णादपि यावशूकात् ।
एकामयां प्राश्य ततश्च लेहाच्छुक्तिं निहन्ति श्वयथुं प्रवृद्धम् ॥ ७२ ॥
कासज्वशरोचकमेहगुल्मप्लीहात्रिदोषोदरपाण्डुरोगान् ।
काश्यामवातानसृगम्लपित्तं वैषर्ष्यमूत्रानिलशुक्रदोषान् ॥ ७३ ॥

दशमूलकस्यापि कंसम् ।

किञ्चिच्च कर्षपर्यायः शुक्तिरर्धपलं मता ।
सांनिध्यान्मधुनो मानं व्योषादेर्मिलितस्य च ॥ ७४ ॥
दशमूलीहरीतक्या तुल्या कंसहरीतकी ।
मानं तेनात्र तत्रस्थं चरके प्राह जैजटः ॥ ७५ ॥

इति कंसहरीतकी ।

अथ दशमूलहरीतकी—

दशमूलकषायस्य कंसे पथ्याशतं गुडात् ।
तुलां पचेद्घने तत्र व्योषक्षारचतुष्पलम् ॥ ७६ ॥
त्रिजातं तु सुवर्णांशं प्रस्थार्धं मधुनो हिमे ।
दशमूलहरीतक्यः शोफान्घ्नन्ति सुदुस्तरान् ॥ ७७ ॥

दशमूलहरीतकी ।

अथ श्वयथुघाती रसः—

रसगन्धकलोहकणात्रिवृता-
मरिचामरदारुनिशात्रिफलम् ।
इलितं मृदु गोः सलिलेन पिबे-
दनुरूपमर्मुं श्वयथूदरघ्नम् ॥ ७८ ॥

इति श्वयथुघाती रसः ।

निषेधः—

स्त्रीतैलघृतमद्यानि गुर्वम्ललवणानि च ।
 जाङ्गलं च दिवास्वापं शोफवान्वर्जयेज्जनः ॥ ७९ ॥
 इति श्रीयोगतरङ्गिण्या शोफनिदानचिकित्साकथनं नाम
 षडधिकशततमस्तरङ्गः ॥ १०६ ॥

अथ सप्ताधिकशततमस्तरङ्गः ।

अथान्त्रवृद्धिकुरण्डब्रध्नरोगनिदानम्—

*कुद्धस्तूर्ध्वगतिर्वायुः शोफशूलकरश्चरन् ।
 मुष्कौ वद्भक्षणतः प्राप्य फलकोशामिवाहिनीः ॥ १ ॥
 प्रपीड्य धमनीर्वृद्धिं करोति फलकोशयोः ।
 दोषास्रमेदोमूत्रान्त्रैः सवृद्धिः सप्तधा गदः ॥ २ ॥
 मूत्रान्त्रजावप्यनिलाद्धेतुभेदस्तु केवलः ।
 वातपूर्णद्वृतिस्पर्शो रूक्षो वातादहेतुरुक् ॥ ३ ॥
 पक्वोदुम्बरसंकाशः पित्ताद्वाहोष्मपाकवान् ।
 कफाच्छीतो गुरुः स्निग्धः कण्डूमान्कठिनोऽल्परुक् ॥ ४ ॥
 कृष्णस्फोटावृतः पित्तवृद्धिलिङ्गस्तु रक्तजः ।
 कफवन्मेदसा वृद्धिर्मृदुस्तालफलोपमः ॥ ५ ॥
 मूत्रधारणशीलस्य मूत्रजः स तु गच्छतः ।
 अम्भोभिः पूर्णद्वृतिवत्क्षोभं याति सरुद्धमृदुः ॥ ६ ॥
 मूत्रकृच्छ्रमधस्ताच्च बलयन्फलकोशयोः ।
 वातकोपिभिराहारैः शीततोयावगाहनैः ॥ ७ ॥
 धारणैरणभाराध्वविषमाङ्गप्रवर्तनैः ।
 क्षोभणैः क्षोभितोऽन्यैश्च क्षुद्रान्त्रावयवं यदा ॥ ८ ॥
 पवनो विगुणीकृत्य स्वनिवेशादधो नयेत् ।
 कुर्याद्विद्वक्षणसंधिस्थं ग्रन्थ्याभं श्वयथुं तदा ॥ ९ ॥
 उपेक्षमाणस्य च मुष्कवृद्धिमाध्मानरुक्स्तम्भवतीं स वायुः ।
 प्रपीडितोऽन्तःस्वनवान्प्रयाति प्रध्मापयन्नेति पुनः प्रमुक्तः ॥ १० ॥

* क. कुद्धोऽनूर्ध्वे इति पाठान्तरम् ।

१ ग. 'धिस्यो ग्र' ।

यस्यान्त्रावयवैः श्लेष्मा मुष्कयोर्याति संचयात् ।
 अन्त्रवृद्धिरसाध्योऽयं वातवृद्धिसमाकृतिः ॥ ११ ॥
 रूक्षकृष्णारुणः शीतस्तन्तुजालसमावृतः ।
 अत्यभिष्यन्दिगुर्वामसेवनान्निचयं गतः ॥ १२ ॥
 करोति वृद्धिवच्छोथं दोषो वङ्क्षणसंधिषु ।
 ज्वरशूलाङ्गसादाढ्यं तं बध्नमिति निर्दिशेत् ॥ १३ ॥

इत्यन्त्रवृद्धिकुरण्डबध्ननिदानम् ।

अथ चिकित्सा—

वेगाघातं पृष्ठयानं व्यायामं मैथुनं तथा ।
 बहुभोजनमध्वानमुपवासं गुरूणि च ॥ १४ ॥
 वातलानि तथाऽन्नानि वर्जयेदन्त्रवृद्धिमान् ।
 वातान्त्रवृद्धौ त्रिवृतां पीत्वा मूत्रेण गोः सुखी ॥ १५ ॥
 गुग्गुलुं रुबुतैलं वा गोमूत्रेण पिबेन्नरः ।
 वाताण्डवृद्धिं हन्त्याशु चिरकालानुवर्तिनीम् ॥ १६ ॥
 सक्षीरं वा पिबेत्तैलं यासमेरण्डसंभवम् ।
 तेन वाताण्डवृद्धेः स्यादशेषेण विनाशनम् ॥ १७ ॥
 चन्दनं मधुकं पद्ममुशीरं नीलमुत्पलम् ।
 क्षीरपिष्टैः प्रदेहः स्यात्पित्तवृद्धिरुजापहः ॥ १८ ॥

इति चन्दनादिलेपः ।

अथ षडूषणगुग्गुलुः—

पञ्चवल्कलकल्केन सघृतेन प्रलेपनम् ।
 पानं वा तत्कषायस्य पित्तवृद्धौ प्रशस्यते ॥ १९ ॥
 कफवृद्धौ मूत्रपिष्टैरुष्णवीर्यैः प्रलेपनम् ।
 पातव्यो मूत्रसंयुक्तः कषार्यैः पीतदारुणः ॥ २० ॥
 त्रिकटुत्रिफलाक्वाथं सक्षारलवणं पिबेत् ।
 कफवातात्मकोपघ्नं विरेकात्कफवृद्धिजित् ॥ २१ ॥
 गोमुत्रैस्त्रिफलाक्वाथं पिबेत्प्रातरतन्द्रितः ।
 कफवातोद्भवं हन्ति श्वयथुं वृषणोत्थितम् ॥ २२ ॥

१ ग. 'योर्वातस' । २ क. 'लपवाक्षितः' । ३ ग. 'गुर्वम्लशुष्कपुल्याभिशासनात् । क' ।
 ४ ग. 'यः पित्तदा' ।

अविदाहि च भैषज्यं कर्तव्यं रक्तपैत्तिके ।
 सर्वं पित्तहरं कार्यं रक्तजे रक्तमोक्षणम् ॥ २३ ॥
 अण्डवृद्धिगदे शीतं लेपनं सर्वमिष्यते ।
 पाको रक्ष्यः प्रयत्नेन रक्तमोक्षो मुहुर्मुहुः ॥ २४ ॥
 त्रिवृतां प्रपिबेत्क्षौद्रशर्करासहितां मुहुः ।
 पित्तग्रन्थिक्रमं कुर्यादामे पक्वे च रक्तजे ॥ २५ ॥
 स्विन्नां मेदःसमुत्थां तां लेपयेत्सुरसादिना ।
 शिरो विरेचयेद्द्रव्यैः सुखोष्णैर्मूत्रसंयुतैः ॥ २६ ॥
 षड्रूषणं क्षौद्रसमं गुग्गुलु गव्यसर्पिषा ।
 युतं संकुट्य मुञ्जीत यथाग्निं दिवसानने ॥ २७ ॥
 कटुतिक्तकषायाशी मेदोवृद्धिप्रणाशनम् ।

इति षड्रूषणगुग्गुलुः ।

अथ वैद्यविलासात्—

संस्वेद्य मूत्रप्रभवां वस्त्रखण्डेन वेष्टयेत् ॥ २८ ॥
 सीवन्यां पार्श्वतोऽधस्ताद्विध्येद्व्रीहिमुखेण तु ।
 मुष्ककोशमगच्छन्त्यामन्त्रवृद्धौ विचक्षणः ॥ २९ ॥
 वातवृद्धिक्रमं कुर्याद्वाहस्तत्राग्निना हितः ।
 शङ्खस्योपरि कर्णान्ते त्यक्त्वा सीवनिमादरात् ॥
 व्यत्यासाद्वा शिरां विध्येदन्त्रवृद्धिनिवृत्तये ॥ ३० ॥
 प्राज्ञैरूर्ध्वं चाङ्गुलीनां चतुष्कं दाह्यं पादे तत्र नाडीत्रयं च ।
 तद्वृद्धस्ते या प्रसिद्धा कनिष्ठा दाह्यं तस्याः पर्वमध्ये ह चान्ते ॥ ३१ ॥
 वामे वृद्धिर्यदा यत्र तदा दाह्यं च दक्षिणे ।
 दक्षिणे च यदा जाता तदा वामे प्रकीर्तितम् ॥ ३२ ॥
 नाशयेदन्त्रवृद्धिं च चतुर्धा वातसंभवाम् ।
 मासमात्रप्रयोगेण निरतं पथ्यसेवनात् ॥ ३३ ॥

इति वैद्यविलासात् ।

अथ रास्नादिकथः—

तैलमेरण्डजं पीत्वा बलासिद्धं पयोन्वितम् ।
 आध्मानशूलोषचितामन्त्रवृद्धिं जयेन्नरः ॥ ३४ ॥

रास्नायष्ट्यमृतैरण्डबलागोक्षुरसाधितः ।

काथोऽन्त्रवृद्धिं हन्त्याशु रुबुतैलेन मिश्रितः ॥ ३५ ॥

इति रास्नादिकाथः ।

अथ मांस्यादिघृतम्—

शम्बूकोदरनिहितं गव्यं सप्ताहमातपे सर्पिः ।

स्थितमपहरति कुरण्डं सैन्धवचूर्णांश्वितं लेपात् ॥ ३६ ॥

ससैन्धवघृताभ्यक्तं ताम्रभाजनमातपे ।

प्रतप्तमूर्णया घृतं तन्मलं समुपाहरेत् ॥ ३७ ॥

अक्षयेत्तेन कोरण्डमामजं तमहर्निशम् ।

प्रवृद्धस्तेन कोरण्डो नास्तीत्याह पुनर्वसुः ॥ ३८ ॥

मांसीकुष्ठं पत्रकैला रास्ना शृङ्गी च चित्रकम् ।

क्रिमिघ्नमश्वगन्धा च शैलेयं कटुरोहिणी ॥ ३९ ॥

सैन्धवं तगरं चैव कटुजातिविषे समैः ।

एतैश्च कार्ष्णिकैः कल्कैर्घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ ४० ॥

वृषमुण्डितिकैरण्डनिम्बपत्रमवं रसम् ।

कण्टकार्याश्चापि दुग्धं प्रस्थं प्रस्थं विनिक्षिपेत् ॥ ४१ ॥

सिद्धमेतद्घृतं पीतमन्त्रवृद्धिमपोहति ।

वातवृद्धिं पित्तवृद्धिं मेदोवृद्धिमथापि वा ॥ ४२ ॥

मूत्रवृद्धिं च हन्येतत्सर्पिराशु न संशयः ।

इति मांस्यादिघृतम् ।

अथ बिल्वाद्यं चूर्णम्—

तैलं नारायणं योज्यं पानाभ्यञ्जनवस्तिषु ॥ ४३ ॥

गोमूत्रैरण्डतैलाभ्यां रसगन्धककज्जलीम् ।

पीत्वा निहन्ति सहसा वृद्धिं वृषणसंभवाम् ॥ ४४ ॥

भृष्टश्चैरण्डतैलेन कल्कः पथ्यासमुद्भवः ।

कृष्णासैन्धवसंयुक्तो बध्नरोगहरः परः ॥ ४५ ॥

मूलं बिल्वकपित्थयोररलुकस्याग्नेर्बृहत्योर्द्वयोः

श्यामापूतिकरश्चाशिशुकतरोर्विश्वौषधारुष्करम् ।

कृष्णाग्रन्थिकुबेरपञ्चलवणक्षाराजमोदान्वितं
पीतं काश्निककोष्णतोयमथितैश्चूर्णीकृतं वर्ध्मजित् ॥ ४६ ॥
इति बिल्वाद्यं चूर्णम् ।

सद्यो मृतस्य काकस्य मलेन परिलेपनात् ।
वर्ध्मरोगः प्रयात्याशु रविणेव तमश्चयः ॥
पक्वेऽत्र दारणं कृत्वा प्रकर्तव्या व्रणक्रिया ॥ ४७ ॥

इति श्रीयोगतरङ्गिण्यामण्डवृद्धिवर्ध्मनिदानचिकित्साकथनं
नाम सप्ताधिकशततमस्तरङ्गः ॥ १०७ ॥

अथाष्टाधिकशततमस्तरङ्गः ।

अथ गलगण्डनिदानम्—

निबद्धः श्वयथुर्यस्य मुष्कवल्लम्बते गले ।
महान्वा यदि वा ह्रस्वो गलगण्डं तमादिशेत् ॥ १ ॥
वातः कफश्चापि गले प्रवृद्धौ मध्ये तु संसृत्य तथैव मेदः ।
कुर्वन्ति गण्डं क्रमशः स्वलिङ्गैः समन्वितं तं गलगण्डमाहुः ॥ २ ॥
तोषान्वितः कृष्णशिरावनद्धः श्यावारुणो वा पवनात्मकस्तु ।
इति वातजः ।

अथ पित्तजः—

पारुष्ययुक्तश्चिरवृद्धिपाको यदृच्छया पाकमियात्कदाचित् ॥ ३ ॥
वैरस्यमास्यस्य च तस्य जन्तोर्भवेत्तथा तालुगले च शोषः ।

अथ कफजः—

स्थिरः सवर्णो गुरुरुग्रकण्डूः शीतो महांश्चापि कफात्मकस्तु ॥ ४ ॥

अथ क्षयवृद्धियुक्तमाह—

चिरामिवृद्धिं भजते चिराद्वा प्रपच्यते मन्दरुजं कदाचित् ।
माधुर्यमास्यस्य च तस्य जन्तोर्भवेत्तथा तालुगले प्रशोषः ॥ ५ ॥
स्निग्धो गुरुः पाण्डुरनिष्टगन्धो मेदोभवस्त्वल्परुजोऽतिकण्डुः ।
प्रलम्बतेऽलाबुवदल्पमूलो देहानुरूपक्षयवृद्धियुक्तः ॥ ६ ॥
स्निग्धास्यता तस्य भवेच्च जन्तोर्गलेन शब्दं कुरुते च नित्यम् ।
कृच्छ्राच्छ्वसन्तं मृदुसर्वगात्रं संवत्सरातीतमरोचकार्तम् ॥ ७ ॥

क्षीणं च वैद्यो गलगण्डयुक्तं भिन्नस्वरं चापि विवर्जयेत् ॥ ८ ॥
इति गलगण्डनिदानम् ।

अथ गण्डमालापचीनिदानम्—

कर्कन्धुकोलामलकप्रमाणैः कक्षां समन्यागलवङ्क्षणेष्ु ।
मेदःकफाभ्यां चिरमन्दपाकैः स्याद्गण्डमाला बहुमिस्तु गण्डैः ।
ते ग्रन्थयः केचिद्वाप्तपाकाः स्रवन्ति नश्यन्ति भवन्ति चान्ये ॥ ९ ॥
कालानुबन्धं चिरमादधाति सैवापचीति प्रवदन्ति केचित् ।
साध्या स्मृता पीनसकासंशूलैश्वासज्वरच्छर्दियुता त्वसाभ्या ॥ १० ॥

इति गण्डमालापचीनिदानम् ।

अथ ग्रन्थिनिदानम्—

वातादयो मांसमसृक्प्रदुष्टाः संदूष्य मेदश्च तथा शिराश्च ।
वृत्तोन्नतं विग्रथितं तु शोथं कुर्वन्त्यतो ग्रन्थिरिति प्रदिष्टः ॥ ११ ॥
आयम्यते वृश्चति तुद्यते च प्रैत्यस्यते मथ्यति मिद्यते च ।
कृष्णो मृदुर्बस्तिरिवाऽऽततश्च भिन्नः स्रवेच्चानिलतोऽसृगच्छम् ॥ १२ ॥
दंदह्यते धूप्यति चूष्यते च पापच्यते प्रज्वलतीव चापि ।
रक्तः स पीतोऽप्यथ वाऽपि पित्ताद्भिन्नः स्रवेद्दुष्टमतीव चास्रम् ॥ १३ ॥
शीतो विवर्णोऽल्परुजोऽतिकण्डुः पाषाणवत्संहननोपपन्नः ।
चिराभिवृद्धिश्च कफप्रकोपाद्भिन्नः स्रवेच्छुक्लघनं च पूयम् ॥ १४ ॥
शरीरवृद्धिक्षयवृद्धिहानिः स्निग्धो महान्कण्डुयुतोऽरुजश्च ।
मेदःकृतो गच्छति चात्र भिन्ने पिण्याकसर्पिःप्रतिमं च मेदः ॥ १५ ॥
व्यायामजातैरबलस्य तैस्तैराक्षिप्य वायुस्तु शिराप्रतानम् ।
संकुच्य संपीड्य विशुष्य चापि ग्रन्थिं करोत्युन्नतमाशु वृत्तम् ॥ १६ ॥
ग्रन्थिः शिराजः स तु कृच्छ्रसाध्यो भवेद्यदि स्यात्सरुजश्चलश्च ।
अरुक्स एवाप्यचलो महांश्च मर्मोत्थितश्चापि विवर्जनीयः ॥ १७ ॥

इति ग्रन्थिनिदानम् ।

अथार्बुदापचीनिदानम्—

गात्रप्रदेशे कचिदेव दोषाः संमूर्छिता मांसमसृक् प्रदूष्य ।
वृत्तं स्थिरं मन्दरुजं महान्तमनल्पमूर्लं चिरवृद्धिपाकम् ॥ १८ ॥

कुर्वन्ति मांसोच्छ्रयमत्यगाढं तदुर्बुद्धं शास्त्रविदो वदन्ति ।
 वातेन पित्तेन कफेन वाऽपि रक्तेन मांसेन च भेदसा च ॥ १९ ॥
 संजायते तस्य च लक्षणानि ग्रन्थेः समानानि सदा भवन्ति ।
 दोषाः प्रदुष्टा रुधिरं शिरास्तु संकुच्य संपीड्य ततस्त्वपाकम् ॥ २० ॥
 सास्त्रावमुन्नह्यति मांसपिण्डं मांसाङ्कुरैराचितमाशु वृद्धिम् ।
 कुर्वन्त्यजस्रं रुधिरप्रवृद्धिमसाध्यमेतदुधिरात्मकं तत् ॥ २१ ॥
 रक्तक्षयोपव्रवपीडितत्वात्पाण्डुर्मवेदुर्बुद्धपीडितस्तु ।
 मुष्टिप्रहारादिभिरार्दितेऽङ्गे मांसं प्रदुष्टं जनयेत्तु शोथम् ॥ २२ ॥
 अवेदनं स्निग्धमन्यवर्णमपाकमश्मोपममप्रचाल्यम् ।
 प्रदुष्टमांसस्य नरस्य गाढमेतद्भवेन्मांसपरायणस्य ॥ २३ ॥
 मांसांर्बुद्धं त्वेतदसाध्यमुक्तं साध्येष्वपीमानि विवर्जयेत्तु ।
 संप्रसृतं मर्मणि यच्च जातं स्रोतःसु वा यच्च भवेदचाल्यम् ॥ २४ ॥
 यज्जायतेऽन्यत्स्वलु पूर्वजाते ज्ञेयं तदध्यर्बुद्धमर्बुद्धज्ञैः ।
 यद्वद्वजातं युगपत्क्रमाद्वा द्विरर्बुद्धं तच्च भवेदसाध्यम् ॥ २५ ॥
 न पाकमायान्ति कफाधिकत्वान्मेदोबहुत्वाच्च विशेषतस्तु ।
 दोषस्थिरत्वाद्ब्रथनाच्च तेषां सर्वांर्बुद्धान्येव निसर्गतस्तु ॥ २६ ॥
 इति गलगण्डगण्डमालाग्रन्थ्यर्बुदापचीनिदानम् ।

अथ चिकित्सा—

स्वेद्योऽनिलोत्थो गलगण्ड आदौ नाड्यानिलघ्नौषधपत्रपिण्डैः ।
 स्वेदोपहानौ कफसंभवेऽपि कृत्वा क्रमं श्लेष्महरं विदध्यात् ॥ २७ ॥

हितार्थमाह—

अत्रमुद्गपटोलानि कटुरूक्षं च मोजनम् ।
 छार्दि सरक्तमुक्तिं च गलगण्डे प्रयोजयेत् ॥ २८ ॥

तस्योपचारमाह—

निचुलं शिण्णुबीजानि दशमूलमथापि वा ।
 आलेपनं वातगण्डे सुखोष्णं संप्रशस्यते ॥ २९ ॥
 तण्डुलोदकपिष्टेन मूलेन परिलेपितः ।
 हस्ति'कर्णपलाशस्य गलगण्डः प्रशाम्यति ॥ ३० ॥

देवदारुविशाले च कफगण्डे प्रलेपनम् ।

छर्दनं शीर्षरेकश्च सवैरेचनिको हितः ॥ ३१ ॥

मेदःसमुत्थेऽत्र यथोपदिष्टां विध्येच्छिरां स्निग्धतनोर्नरस्य ।

इयामासुधालोहपुरीषदन्तीरसाञ्जनैश्चापि हितः प्रलेपः ॥ ३२ ॥

सर्षपाञ्जशतबीजानि शिगुबीजातसीयवान् ।

मूलकस्य च बीजानि तक्त्रेणाम्लेन पेषयेत् ॥ ३३ ॥

गण्डानि ग्रन्थयश्चैव गण्डमालाः सुदारुणाः ।

आलेपादेव नश्यन्ति विलयं यान्ति वाऽचिरात् ॥ ३४ ॥

जीर्णकर्कारुकरसो विडसैन्धवसंयुतः ।

नस्येन हन्ति नचिराद्गुलगण्डं न संशयः ॥ ३५ ॥

जलकुम्भीजलं मसम पक्वं गोमूत्रगालितम् ।

पिबेत्क्षौद्रेण तक्राशी गुलगण्डोपशान्तये ॥ ३६ ॥

महिषीमूत्रविमिश्रं लोहमलं संस्थितं घटे मासम् ।

अन्तर्धूमविदग्धं मधुना गुलगण्डनाशनं लीढम् ॥ ३७ ॥

सूर्यावर्तरसोनाभ्यां गुलगण्डोपनाशनम् ।

स्फोटास्त्रावैः शमं याति गुलगण्डो न संशयः ॥ ३८ ॥

गण्डगोपालिकां पिष्ट्वा तत्र लेपे प्रकल्पयेत् ।

अवश्यं नश्यति क्षिप्रं गुलगण्डगदोऽमुना ॥ ३९ ॥

प्रलेपस्त्वनुमूतोऽयं बहुधा बहुभिर्जनैः ।

‘ गण्डगु आरि ’ इति प्रसिद्धाऽऽम्रवाटिकायां सुलभा कीटविशेषो भवति ।

जिह्वाधः पार्श्वयोर्मूलाच्छिरा द्वादश कीर्तिताः ॥ ४० ॥

तासां स्थूलतरे कृष्णे छिन्द्यात्ते च शनैः शनैः ।

बडिशेनैव संगृह्य कुशपत्रेण बुद्धिमान् ॥ ४१ ॥

श्रुते रक्ते व्रणे तस्मिन्दद्यात्सगुडमार्द्रकम् ।

भोजनं चानभिष्यन्दि यूषः कौलत्थ इष्यते ॥ ४२ ॥

नस्यं विरेचनं धूमं वमनं च प्रयोजयेत् ।

गण्डमालाप्रशान्त्यर्थं यवमुद्गादिभोजनम् ॥ ४३ ॥

कर्णयुग्मबहिःसंधिमध्याभ्यां स्थितं च यत् ।

उपर्युपरि तच्छिन्द्याद्गुलगण्डे शिरात्रयम् ॥ ४४ ॥

प्रियङ्गुयष्टीमदनं सकुष्ठं सचन्दनं निम्बु समागधीकम् ।
 कल्कं विनिक्षिप्य विपाच्य तैलं चतुर्गुणं नस्याविधिप्रयुक्तम् ।
 साखोटकल्कस्वरसेन सिद्धं हन्यात्प्रवृद्धान्गलगण्डरोगान् ॥४५॥
 इति साखोटकतैलम् ।

अथामृतायं तैलम्—

तैलं पिबेद्वाऽमृतबल्लिनिम्बहिंस्राह्वयावृक्षकपिप्पलीभिः ।
 सिद्धं बलाभ्यां च सदेवदारु हिताय नित्यं गलगण्डरोगे ॥४६॥
 वृक्षकोऽत्र तूणिः । उक्तं च निघण्टे—
 'तूणिस्तूणी कपीतश्च नन्दीवृक्षोऽथ वृक्षकः' इति ।
 इत्यमृतायं तैलम् ।

अथ तुम्बीतैलम्—

विडङ्गक्षारसिन्धुग्रास्राग्निव्योषदारुभिः ।
 कटुतुम्बीफलरसे कटुतैलं विपाचितम् ॥ ४७ ॥
 चिरोत्थमपि नस्येन गलगण्डं विनाशयेत् ।
 इति तुम्बीतैलम् ।

अथ गण्डमालायाम्—

माक्षिकाढ्यः सकृत्पीतः *क्षारो वरुणमूलजः ॥ ४८ ॥
 गण्डमालां निहन्त्याशु चिरकालानुबन्धिनीम् ।
 काञ्चनारत्वचः काथः शुण्ठीचूर्णेन संयुतः ॥ ४९ ॥
 माक्षिकाढ्यः सकृत्पीतः काथो वरुणमूलकः ।
 गण्डमालां हरत्याशु चिरकालानुबन्धिनीम् ॥ ५० ॥
 पलमर्धपलं वाऽपि पिष्ट्वा तण्डुलवारिणा ।
 काञ्चनारत्वचं पीत्वा गण्डमालां व्यपोहति ॥ ५१ ॥
 पिष्ट्वा ज्येष्ठाम्बुना पेयाः काञ्चनारत्वचः शुभाः ।
 विश्वभेषजसंयुक्ता गलगण्डापहाः पराः ॥ ५२ ॥
 अलम्बुषादलोद्भूतास्वरसाद्दे पले पिबेत् ।
 अपच्य गण्डमालायाः कामलायाश्च नाशनः ॥ ५३ ॥
 नवकार्पासिकामूलं तण्डुलैः सह योजितम् ।
 पक्त्वा पूपलिकां खादेदपचीनाशनाय च ॥ ५४ ॥

आरग्वधशिफां क्षिप्रं सम्यक्तण्डुलवारिणा ।
 पिष्ट्वा नस्यप्रलेपाभ्यां गण्डमालां समुद्धरेत् ॥ ५५ ॥
 सौभाञ्जनं देवदारु काञ्जिकेन तु पेषितम् ।
 कोष्णं प्रलेपतो हन्यादपचीमतिदुस्तराम् ॥ ५६ ॥
 गण्डमालामयार्तानां नस्यकर्मणि योजयेत् ।
 निर्गुण्ड्यास्तु शिफां सम्यग्वारिणा परिपेषिताम् ॥
 निष्पीड्य तद्गसान्नस्यं गण्डमालापचीहरम् ॥ ५७ ॥
 कोशातकीनां स्वरसेन नस्यं तुम्ब्यास्तु वा पिप्पालिसंयुतेन ।
 तैलेन वाऽरिष्टमवेन कुर्याद्वचोपकुल्ये सह माक्षिकेण ॥ ५८ ॥

अथ ग्रन्थिचिकित्सा—

शस्त्रकर्म—

ग्रन्थिष्वामेषु कुर्वीत भिषक्शोथप्रतिक्रियाम् ।
 पक्वानापाद्य संशोध्य रोपयेद्ब्रणभेषजैः ॥ ५९ ॥
 ग्रन्थिर्न यो नश्यति भेषजेन निष्काश्य तं शस्त्रचिकित्सितेन ।
 जात्यादिपक्वेन घृतेन वैद्यो ब्रणेन चान्येन च संचिकित्सेत् ॥ ६० ॥
 ग्रन्थीनुद्धृत्य पश्चात्तु ब्रणोक्तं क्रममाचरेत् ।
 शिराग्रन्थिं विहायान्ये शेषे शस्त्रं प्रयुज्यते ॥ ६१ ॥
 इति शस्त्रकर्म ।

हिंसा सरोहिण्यमृताऽथ मार्गी श्योनाकबिल्वागरुकृष्णगन्धाः ।
 गोमूत्रपिष्टाः सह तालपत्र्या ग्रन्थौ विधेयोऽनिलजे प्रलेपः ॥ ६२ ॥
 जलायुकाः पित्तकृते हितास्तु क्षीरोदकाभ्यां परिषेचनं च ।
 काकोलिवर्गस्य तु शीतलानि पिबेत्कषायाणि सशर्कराणि ॥ ६३ ॥
 द्राक्षारसेनेक्षुरसेन चापि चूर्णं पिबेद्वाऽपि हरीतकीनाम् ।
 मधूकजम्ब्वर्जुनवेतसानां त्वग्निमः प्रदेहानवचारयेच्च ॥ ६४ ॥
 हृतेषु दोषेषु यथानुपूर्वं ग्रन्थौ भिषक्श्लेष्मसमुत्थितेषु ।
 स्विन्नस्य विम्लापनमेव कार्यमङ्गुष्ठवेण्या हृषदः सुतैश्च ॥ ६५ ॥
 विकङ्कतारग्वधकाकणन्तीकाकादनीतापसवृक्षमूलैः ।
 आलेपयेद्देणमलाम्बुमार्गीकरञ्जकालामदनैश्च विद्वान् ॥ ६६ ॥

दन्ती चित्रकमूलत्वक्सुधाऽर्कपयसी गुडः ।

मल्लतकास्थि कासीसं लेपो भिन्द्याच्छिलामपि ॥ ६७ ॥

ग्रन्थीनमर्मप्रमवानपक्रानुद्धृत्य चाग्निं विदधीत वैद्यः ।

क्षीरेण चैतान्प्रतिसारयेत्तु संलिख्य शस्त्रेण यथोपदेशम् ॥ ६८ ॥

अथार्बुदचिकित्सा-

ग्रन्थ्यर्बुदानां च यतो विशेषः प्रदेशहेत्वाकृतिदोषदूष्यैः ।

ततश्चिकित्सेन्द्रिषगर्बुदानि विधानविद्वन्थिचिकित्सितेन ॥ ६९ ॥

वातार्बुदे चाप्युपनाहनानि स्निग्धैश्च मांसैरथ वेसवारैः ।

स्वेदं विदध्यात्कुशलस्तु नाड्याः शृङ्गेण रक्तं बहुशो हरेच्च ॥ ७० ॥

स्नेहोपनाहा मृदवस्तु पथ्याः पित्तार्बुदे कायविरेचनं च ।

निर्वृष्य चोदुम्बरशाकगोजीपत्रैर्भृशं क्षौद्रयुतैः प्रलिम्पेत् ॥

श्लक्ष्णीकृतैः सर्जरसप्रियङ्गुपतङ्गलोधार्जुनयष्टिकाह्वैः ॥ ७१ ॥

लेपनं शङ्खचूर्णेन सह मूलकमस्मना ।

कफार्बुदापहं कुर्याद्ग्रन्थ्यादिषु विशेषतः ॥ ७२ ॥

निष्पावपिण्याककुलत्थकल्कैर्मांसप्रगाढैर्दधिमर्दितैश्च ।

लेपं विदध्यात्किमयो यथाऽत्र मुञ्चन्त्यपत्यान्यथ मक्षिका वा ॥ ७३ ॥

अल्पावशिष्टं कृमिभिः प्रजग्धं लिखेत्ततोऽग्निं विदधीत पश्चात् ।

यदल्पमूलं त्रपुताम्रसीसैः संवेष्ट्य पत्रैरथ वाऽऽयसैर्वा ॥ ७४ ॥

क्षाराग्निशस्त्राण्यवचारयेच्च मुहुर्मुहुः प्राणमवेक्ष्यमाणः ।

यदृच्छया चोपगता विपाकं पाकक्रमेणोपचरेद्यथोक्तम् ॥ ७५ ॥

सशेषदोषाणि हि योऽर्बुदानि करोति तस्याऽऽशु पुनर्भवन्ति ।

तस्मादशेषाणि समुद्धरेत्तु हन्युः सशेषाणि यथा विषाणि ॥ ७६ ॥

गन्धशिलाविश्वौषधविडङ्गजमस्मभिः समैश्चूर्णम् ।

कृकलासरक्तयुक्तं लेपात्सद्योऽर्बुदध्वंसि ॥ ७७ ॥

उपोदकारसाभ्यक्तास्तत्पत्रपरिवेष्टिताः ।

प्रणश्यन्त्यचिरान्नृणां पित्तकार्बुदजातयः ॥ ७८ ॥

उपोदका काञ्जिकतक्रपिष्टा तयोपनाहो लवणेन मिश्रः ।

दुष्टार्बुदानां प्रशमाय कश्चिद्दिने दिने रात्रिषु मर्मजानाम् ॥ ७९ ॥

सुहीगण्डीरकास्वेदो नाशयेदर्बुदानि च ।

लवणेनाथ वा स्वेदः सीसकेन तथैव च ॥ ८१ ॥

हरिद्रालोभ्रपत्तङ्गगृहधूममनःशिलाः ।
 मधुप्रगाढो लेपोऽयं मेदोर्बुदहरः परः ॥ ८१ ॥
 मूलकस्य कृतः क्षारो हरिद्रायास्तथैव च ।
 शङ्खचूर्णेन संयुक्तो लेपः सिद्धोऽर्बुदापहः ॥ ८२ ॥
 शिग्रमूलकयोर्बीजं *रक्षोघ्नं +सुरसा ×यवम् ।
 तत्रेणाश्वरिपुं पिष्ट्वा लिम्पेदर्बुदशान्तये ॥ ८३ ॥
 एतामेव क्रियां कुर्यादशेषां शर्करार्बुदे ।
 सर्षपारिष्टपत्राणि दग्ध्वा भल्लातकैः सह ।
 छागमूत्रेण संपिष्टमपचीघ्नं प्रलेपनम् ॥ ८४ ॥
 पार्श्विण प्रति द्वादश चाङ्गुलानि
 भित्त्वेन्द्रवस्तिं परिवर्ज्य सम्यक् ।
 विदार्य मत्स्याण्डनिमानि वैद्यो
 निकृष्य जालान्यनलं विदध्यात् ॥ ८५ ॥
 मणिबन्धोपरिष्ठाद्वा कुर्याद्रेखात्रयं मिषक् ।
 अङ्गुल्यन्तरितं सम्यगपचीनां प्रशान्तये ॥ ८६ ॥

इति शस्त्रदाहकर्म ।

अथ शाखोटकबिल्वतैलम्—

गण्डमालापहं तैलं सिद्धं शाखोटकत्वचा ।
 बिल्वाश्वमारनिर्गुण्डीसाधितं चापि नावनम् ॥ ८७ ॥

इति शाखोटकबिल्वतैलम् ।

अथ काञ्चनारगुग्गुलुः—

पलानां दशकं ग्राह्यं काञ्चनारत्वचो बुधैः ।
 षट्पलत्रिफला ग्राह्या व्योषं ग्राह्यं पलत्रयम् ॥ ८८ ॥
 पलैकं वरुणस्यापि त्वगेलापत्रकं तथा ।
 कर्षकर्षमितं ग्राह्यं सर्वाण्येकत्र चूर्णयेत् ॥ ८९ ॥
 सर्वचूर्णमिदं यावत्तावन्मात्रस्तु गुग्गुलुः ।
 संमर्द्य गुटिकाः कार्याः शाणमात्रास्ततो बुधः ॥ ९० ॥
 एकैकां भक्षयेत्प्रातः प्रातर्धीमान्सदा नरः ।
 गण्डमालां जयेदुग्रामपचीमर्बुदानि च ॥ ९१ ॥

ग्रन्थीन्वणान्सगुल्मांश्च कुष्ठानि च मगंदरम् ।
 अनुपाने प्रयोक्तव्यः क्वाथो मुण्डिनिकाभवः ॥ ९२ ॥
 क्वाथः खदिरसारस्य क्वाथः कोष्णोऽभयामवः ।

इति काश्चनारगुग्गुलुः ।

अथ निर्गुण्डीतैलम्—

निम्बाश्वमारनिर्गुण्डीसाधितं चापि नावनम् ॥ ९३ ॥
 निर्गुण्डीस्वरसेनाथ लाङ्गलीमूलकलिकितम् ।
 तैलं नस्येन हन्त्याशु गण्डमालां सुदुस्तराम् ॥ ९४ ॥

इति निर्गुण्डीतैलम् ।

अथ छुच्छुन्दरीतैलम्—

छुच्छुन्दर्या विपक्वं तु क्षणात्तैलं वरं ध्रुवम् ।
 अभ्यङ्गान्नाशयेन्नृणां गण्डमालां सुदारुणाम् ॥ ९५ ॥

इति छुच्छुन्दरीतैलम् ।

अथ गुञ्जातैलम्—

गुञ्जामूलफलैस्तैलं तोयं द्विगुणितं पचेत् ।
 तस्याभ्यङ्गेन शमयेद्गण्डमालां सुदारुणाम् ॥ ९६ ॥

इति गुञ्जातैलम् ।

अथ चन्दनादितैलम्—

चन्दनं सामया लाक्षा वचा कटुकरोहिणी ।
 एतत्तैलं शृतं पीतं समूलामपचीं जयेत् ॥ ९७ ॥

इति चन्दनादितैलम् ।

अथ व्योषाद्यं तैलम्—

व्योषं विडङ्गं मधुकं सैन्धवं देवदारु च ।
 तैलमोभिः शृतं नस्यात्कृच्छ्रामप्यपचीं हरेत् ॥ ९८ ॥

इति व्योषाद्यं तैलम् ।

अथ चक्रमर्दतैलम्—

चक्रमर्दकमूलस्य कल्कं दत्त्वा विपाचयेत् ।
 केशराजरसे तैलं कटुकं सृदुनाऽग्निना ॥ ९९ ॥

पाकशेषे विनिक्षिप्य सिन्दूरमवतारयेत् ।
एतत्तैलं निहन्त्याशु गण्डमालां सुदारुणाम् ॥ १०० ॥
इति चक्रमर्दतैलम् ।

निषेधः—

गुरुपिष्टान्नमम्लं च श्लेष्मलं च दधीनि च ।
ऐक्षवं वैदलं चैव गण्डमालादितस्त्यजेत् ॥ १०१ ॥

अथ गण्डमालाकण्डनो रसः—

कर्षं सूतं शुद्धमस्य गन्धकं त्वर्धमुत्तमम् ।
सार्धकर्षं ताम्रमस्म मृतं किङ्कं त्रिकर्षकम् ॥ १०२ ॥
व्योषं षट्कर्षतुलितमक्षार्धं सैन्धवं सितम् ।
काञ्चनारत्वचश्चूर्णं पलत्रयमितं क्षिपेत् ॥ १०३ ॥
पलत्रयं गुग्गुलोश्च शुद्धस्य समुपाहरेत् ।
एब्रद्युक्त्या तु संमेल्य सुरभीसर्पिषा दृढम् ॥ १०४ ॥
गण्डमालाकण्डनोऽयं रसो माषत्रयात्मकः ।
मुक्तो निहन्ति गण्डार्तिं गण्डमालां च दारुणाम् ॥ १०५ ॥

इति गण्डमालाकण्डनो रसः ।

इति श्रीयोगतरङ्गिण्यां गलगण्डगण्डमालाबुदापचीरोगनिदानचिकित्साकथनं
नामाष्टाधिकशततमस्तरङ्गः ॥ १०८ ॥

अथ नवाधिकशततमस्तरङ्गः ।

अथ श्लीपदनिदानम्—

यः सज्वरो वङ्क्षणजो मृशार्तिः शोथो नृणां पादगतः क्रमेण ।
तच्छ्लीपदं स्यात्करकर्णनेत्रशिश्नोष्ठनासास्वपि केचिदाहुः ॥ १ ॥

वातजमाह—

वातजं कृष्णरूक्षं तु स्फुटितं तीव्रवेदनम् ।
अनिमित्तरुजं तस्य बहुशो ज्वर इव ॥ २ ॥

पित्तजमाह—

पित्तजं पीतसंकाशं दाहज्वरयुतं मृदु ।

श्लेष्मजमाह—

श्लैष्मिकं स्निग्धवर्णं च श्वेतं पाण्डु गुरु स्थिरम् ॥ ३ ॥

असाध्यत्वमाह—

वल्मीकमिव संजातं कण्टकैरुपचीयते ।

तं त्यजेद्वत्सरातीतं महत्त्वं च विशेषतः ॥ ४ ॥

त्रीण्यप्येतानि जानीयाच्छ्लीपदानि कफोच्छ्रयात् ।

गुरुत्वं च महत्त्वं च यस्मान्नास्ति विना कफात् ॥ ५ ॥

देशदोषजमाह—

पुराणोदकभूयिष्ठाः सर्वर्तुषु च शीतलाः ।

ये देशास्तेषु जायन्ते श्लीपदानि विशेषतः ॥ ६ ॥

निषेधः—

यच्छ्लेष्मलाहारविहारजातं पुंसः प्रकृत्या च कफात्मकस्य ।

साम्रावमत्युन्नतसर्वलिङ्गं सकण्डुरं श्लेष्मयुतं विवर्ज्यम् ॥ ७ ॥

दोषा मांसाश्रयाः पादौ कालेनाऽऽश्रित्य कुर्वते ।

शनैः शनैर्घनं शोथं श्लीपदं तत्प्रचक्षते ॥ ८ ॥

पाणिना सोष्ठकर्णेषु वदन्त्यन्ये तु पादवत् ।

श्लीपदं जायते तच्च देशेऽनूपे भृशं भृशम् ॥ ९ ॥

इति श्लीपदनिदानम् ।

अथ चिकित्सा—

लङ्घनालेपनस्वेदरेचनै रक्तमोक्षणैः ।

प्रायः श्लेष्महरैरुष्णैः श्लीपदं समुपाचरेत् ॥ १० ॥

संपिष्टमारनालेन रूपिकामूलवल्कलैः ।

प्रलेपाच्छ्लीपदं हन्ति बद्धमूलमपि वृत्तम् ॥ ११ ॥

पिण्डारकतरुसंभववन्दशिफा जयति सर्पिषा पीता ।

श्लीपदमुग्रं नियतं बद्ध्वा सूत्रेण जङ्घायाम् ॥ १२ ॥

हितश्च लेपने नित्यं चित्रको देवद्वयश्च ।

सिद्धार्थशिष्टकल्को वा सुखोष्णो मूत्रपेषितः ॥ १३ ॥

स्नेहस्वेदोपनाहाश्च श्लीपदेऽनिलजे मिषकू ।

कृत्वा गुल्फोपरि शिरां विध्वेत्तु चतुरङ्गुलैः ॥ १४ ॥

गुल्फस्याधः शिरां विध्येच्छलीपदे पित्तसंभवे ।
 पित्तघ्नीं च क्रियां कुर्यात्पित्तार्बुदविसर्पवत् ॥ १५ ॥
 मञ्जिष्ठां मधुकं रास्नामहिंसां सपुनर्नवाम् ।
 पिष्ट्वाऽऽरनालैर्लेपोऽयं पित्तश्लीपदशान्तये ॥ १६ ॥
 शिरां सुविदितां विध्येदङ्गुष्ठे श्लेष्मश्लीपदे ।
 मधुयुक्तानि चाभीक्ष्णं कषायाणि पिबेन्नरः ॥ १७ ॥
 पिबेद्वाऽप्यमयाकल्कं मूत्रेणान्यतमेन वा ।
 गुडूचीं वा पिबेदेवं नागरं देवदारु च ॥ १८ ॥
 पिबेत्सर्षपतैलेन श्लीपदानां निवृत्तये ।
 पूतीकरञ्जच्छदजरसं वाऽपि यथाबलम् ॥ १९ ॥
 अनेनैव विधानेन पुत्रजीवकजं रसम् ।
 प्रयुञ्जीत भिषक्प्राज्ञः कालसात्म्यं यथाबलम् ॥ २० ॥

अनेन मूलस्वरसं पिबेद्वा तैलेन तुल्यं सितसर्षपाणाम् ।
 मूत्रेण पथ्यामरदारुविश्वं सगुग्गुलं श्लीपदिभिर्निषेव्यम् ॥ २१ ॥

काञ्जिकेन पिबेच्चूर्णं वृद्धदारुकसंभवम् ।
 रजनीं गुडसंयुक्तां गोमूत्रेण पिबेन्नरः ।
 वर्षात्थं श्लीपदं हन्ति ददुं कुष्ठं विशेषतः ॥ २२ ॥
 गन्धर्धतैलभृष्टां हरीतकीं गोजलेन यः पिबति ।
 श्लीपदबन्धनमुक्तो भवत्यसौ सप्तरात्रेण ॥ २३ ॥

इति गोमूत्रहरीतकी ।

अथ वृद्धदारुकं चूर्णम्—

धान्याम्लं तैलसंयुक्तं कफवातविनाशनम् ।
 दीपनं चाऽऽमक्षोषघ्नमेतच्छ्लीपदनाशनम् ॥ २४ ॥
 त्रिकटुं त्रिफलां चव्यं दार्दीवरुणगोक्षुरम् ।
 अलंबुषां गुडूचीं च समभागानि चूर्णयेत् ॥ २५ ॥
 सर्वेषां चूर्णमाहृत्य वृद्धदारुस्य तत्समम् ।
 काञ्जिकेन तु तत्पेयमक्षमात्रप्रमाणतः ॥ २६ ॥
 जीर्णे चापरिहारं स्वान्द्रोजनं सार्वकामिकम् ।
 नाशयेच्छ्लीपदं स्थौल्यमामवातं च दारुणम् ॥ २७ ॥

कुष्ठगुल्मारुचिहरं वातश्लेष्मरुजापहम् ।

इति वृद्धदारुकं चूर्णम् ।

अथ पिप्पल्याद्यं चूर्णम्—

पिप्पलीत्रिफलादारुनागरं सपुनर्नवम् ॥ २८ ॥

मागैर्द्विपलिकैरेषां तत्समं वृद्धदारुकम् ।

काश्लिकेन पिबेच्चूर्णं कर्षमात्रं प्रमाणतः ॥ २९ ॥

जीर्णं चापरिहारं स्याद्भोजनं सार्वकामिकम् ।

श्लीपदं वातरोगांश्च हन्यात्प्लीहानमेव च ॥ ३० ॥

अग्निं च कुरुते घोरं मस्मकं च नियच्छति ।

इति पिप्पल्याद्यं चूर्णम् ।

अथ कृष्णाद्यो मोदकः—

कृष्णाचित्रकदन्तीनां कर्षमर्धपलं पलम् ॥ ३१ ॥

विंशतिश्च हरीतक्यो गुडस्य तु पलद्वयम् ।

मधुना मोदकं खादेच्छ्लीपदं हन्ति दुस्तरम् ॥ ३२ ॥

इति कृष्णाद्यो मोदकः ।

अथ सौरेश्वरं घृतम्—

सुरसाग्रन्थिकव्योषविडङ्गानि वचां सटीम् ।

पाठैलाहपुषाश्यामादेवदारुवरायुतैः ॥ ३३ ॥

सपञ्चलवणक्षारैः कार्षिकैर्विपचेद्घृतम् ।

प्रस्थं तदंशैर्धान्याम्लदशमूलाम्बुमस्तुभिः ॥ ३४ ॥

अयक्षं पिबेत्ततो मासं श्लीपदं हन्ति दुस्तरम् ।

वृद्ध्यर्शोग्रहणीरोगं गलगण्डार्बुदापचीः ॥ ३५ ॥

घृतं सौरेश्वरं नाम श्लीपदक्रिमिकोष्ठनुत् ।

इति सौरेश्वरं घृतम् ।

अथ विडङ्गाद्यं तैलम्—

विडङ्गमारिचार्केषु नागरं चित्रकं तथा ॥ ३६ ॥

मद्गदार्बुलकाख्ये च सर्वेषु लवणेषु च ।

तैलं पक्वं पिबेद्वाऽपि श्लीपदानां निवृत्तये ॥ ३७ ॥

इति विडङ्गाद्यं तैलम् ।

यवान्नं कटुतैलं तु कूर्ममांसं तु योजयेत् ।
श्लीपदानां प्रशान्त्यर्थं मासान्ते दाहमग्निना ॥ ३८ ॥
इति श्रीयोगितरङ्गिण्यां श्लीपदनिदानचिकित्साकथनं नाम नवा-

धिकशततमस्तरङ्गः ॥ १०९ ॥

अथ दशाधिकशततमस्तरङ्गः ।

अथ विद्रधिनिदानम्—

त्वग्रक्तमांसमेदांसि प्रदूष्यास्थिसमाश्रिताः ।
दोषाः शोथं शनैर्घोरं जनयन्त्युच्छ्रिता मृशम् ॥ १ ॥
महाशूलरुजावन्तं वृत्तं वाऽप्यथ वाऽऽयतम् ।
स विद्रधिरिति ख्यातो विज्ञेयः षड्विधश्च सः ॥ २ ॥
पृथग्दोषैः समस्तैश्च शोणितेन क्षतेन च ।
षण्णामपि हि तेषां तु लक्षणं संप्रचक्षते ॥ ३ ॥

वातजमाह—

कृष्णोऽरुणो वा विषमो मृशमत्यर्थवेदनः ।
चिरोत्थानप्रपाकश्च विद्रधिर्वातसंभवः ॥ ४ ॥

पित्तजमाह—

पक्वोदुम्बरसंकाशः श्यावो वा ज्वरदाहवान् ।
क्षिप्रोत्थानप्रपाकश्च विद्रधिः पित्तसंभवः ॥ ५ ॥

कफजमाह—

शरावसदृशः पाण्डुः शीतः स्निग्धोऽल्पवेदनः ।
चिरोत्थानप्रपाकश्च विद्रधिः कफसंभवः ॥ ६ ॥

संनिपातजमाह—

तनुपीतसिताश्चैषा मात्राश्च क्रमशः स्मृताः ।
नानावर्णरुजास्रावो घाटालो विषमो महान् ॥ ७ ॥
विषमं पच्यते वाऽपि विद्रधिः सांनिपातिकः ।

आगन्तुविद्रधिमाह—

तैस्तैर्भावैरभिहृते क्षते वाऽप्यपकारिणः ॥ ८ ॥

क्षतोष्मा वायुविक्षिप्तः सरक्तं पित्तमीरयन् ।
ज्वरस्तृष्णा च दाहश्च जायते तस्य देहिनः ॥ ९ ॥
आगन्तुविद्रधिर्दोषैः पित्तविद्रधिलक्षणः ।

रक्तजमाह—

कृष्णस्फोटावृतः श्यावस्तीव्रदाहरुजाज्वरः ॥ १० ॥
पित्तविद्रधिलिङ्गस्तु रक्तविद्रधिरुच्यते ।
उक्ता विद्रधयो ह्येते तेष्वसाध्यस्तु सर्वजः ॥ ११ ॥
शस्त्राग्निवच्छीघ्रघाती गम्भीरो गुल्मवद्घनः ।
गुर्वसात्म्यविरुद्धान्नशुष्कसंक्लिन्नभोजनात् ॥ १२ ॥
आभ्यन्तरानतश्चोर्ध्वं विद्रधीन्संप्रचक्षते ।
अतिव्यवायव्यायामवेगाघाताद्विदाहिभिः ॥ १३ ॥
पृथक्संभूय वा दोषाः कुपितां ग्रन्थिरूपिणम् ।
बल्मीकवत्समुन्नद्धमन्तः कुर्वन्ति विद्रधिम् ॥ १४ ॥
गुदे बस्तिमुखे नाभ्यां कुक्षौ वङ्क्ष्यणयोस्तथा ।
वृक्कयोः प्लीहि यकृति हृदि वा क्लोन्नि वाऽप्यथ ॥ १५ ॥
एषामुक्तानि लिङ्गानि बाह्यविद्रधिलक्षणैः ।

तत्राधिष्ठानविशेषेण विद्रधिमाह—

अधिष्ठानविशेषेण लिङ्गं शृणु विशेषतः ॥ १६ ॥
गुदे वातनिरोधस्तु बस्तौ कृच्छ्राल्पमूत्रता ।
नाभ्यां हिक्का तथाऽऽदोषः कुक्षौ मारुतकोपनम् ॥ १७ ॥
कटिपृष्ठग्रहस्तीव्रो वङ्क्ष्यणोत्थे तु विद्रधौ ।
वृक्कयोः पार्श्वसंकोचः प्लीहि श्वासावरोधनम् ॥ १८ ॥
सर्वाङ्गग्रहस्तीव्रो हृदि कासश्च जायते ।
श्वासो यकृति हिक्का च क्लोन्नि पेपीयते पयः ॥ १९ ॥
आमो वा यदि वा पक्वो महत्त्वाद्यदि चेतरे ।
सर्वो मर्मस्थितत्वाच्च विद्रधिः कष्ट उच्यते ॥ २० ॥

साध्यासाध्यत्वमाह—

नामेरुपरिजाः पक्वा यान्त्यूर्ध्वमितरे त्वधः ।
अधः सुतेषु जीवेत्तु सुतेषूर्ध्वं न जीवति ॥ २१ ॥

हृन्नाभिबस्तिवज्या ये तेषु मित्रेषु बाह्यतः ।
 जीवेत्कदाचित्पुरुषो नेतरेषु कदाचन ॥ २२ ॥
 साध्या विद्रधयः पञ्च विवर्ण्यः संनिपातिकः ।
 आमपक्वविद्रग्धत्वं तेषां शोफवदादिशेत् ॥ २३ ॥
 आध्मानं बद्धमिस्पन्दं छर्दिहिकातृषान्वितम् ।
 रुजाश्वाससमायुक्तं विद्रधिर्नाशयेन्नरम् ॥ २४ ॥
 हृन्नाभिबस्तिजः पक्वो वज्र्यो पञ्च त्रिदोषजः ।
 असाध्यो मर्मजो ज्ञेयः पक्वोऽपक्वश्च विद्रधिः ॥ २५ ॥
 संनिपातोत्थितोऽप्येवं पक्व एव तु बस्तिजः ।
 मुष्टिप्रमाणो गुल्मस्तु विद्रधिस्तु ततः परम् ॥ २६ ॥
 गुल्मस्तिष्ठति दोषेषु विद्रधिमसशोणिते ।
 विद्रधिः पच्यते तस्माद्गुल्मश्चापि न पच्यते ॥ २७ ॥

इति विद्रधिनिदानम् ।

अथ स्तनविद्रधिनिदानम्—

एवमेव स्तनशिरा विकृताः प्राप्य योषिताम् ।
 सूतानां गर्भिणीनां च संभवेच्छ्वयथुर्घनः ॥ २८ ॥
 स्तने सदुग्धे वाऽदुग्धे बाह्यविद्रधिलक्षणः ।
 नाडीनां सूक्ष्मवक्त्रत्वात्कन्यानां न स जायते ॥ २९ ॥

इति स्तनविद्रधिनिदानम् ।

अथ विद्रधिचिकित्सितं व्याख्यास्यामः—

रसालफलतुल्यो यः शोफो बाह्योऽथ वाऽऽन्तरः ।
 पृथुदाहो रुजानाहकारको विद्रधिः स्मृतः ॥ ३० ॥

क्रियामाह—

जलौकापातनं शस्तं सर्वस्मिन्नेव विद्रधौ ।
 मृदुर्विरेको लघ्वन्नं स्वेदः पित्तोत्तरं विना ॥ ३१ ॥
 अपक्वे विद्रधौ युञ्ज्याद्व्रणशोथवदौषधम् ।
 वातघ्नमूलकलकैश्च वसातैलघृतप्लुतैः ॥ ३२ ॥
 सुखोष्णो बहलो लेपः प्रयोज्यो वातविद्रधौ ।

अपक्वविद्रधिः—

स्वेदोपनाहाः कर्तव्याः शिशुमूलसमान्विताः ॥ ३३ ॥

यवगोधूममुद्गैश्च स्विन्नपिष्टैः प्रलेपयेत् ।
विलीयते क्षणेनैवमपक्वश्चैव विद्रधिः ॥ ३४ ॥

वातजविद्रधावाह—

पुनर्नवादारुविश्वदशमूलाभयाम्मसा ।
गुग्गुलुं रुबुतैलं वा पिबेन्मारुतविद्रधौ ॥ ३५ ॥

पित्तजविद्रधावाह—

पैत्तिके शर्करालाजमधुकैः सारिषायुतैः ।
प्रदिह्यात्क्षीरपिष्टैर्वा पयसोशीरचन्दनैः ॥ ३६ ॥
पिबेद्वा त्रिफलाक्राथं त्रिवृत्कल्काक्षसंयुतम् ।
पञ्चवल्कलकल्केन घृतमिश्रेण लेपनम् ॥ ३७ ॥
इष्टिकासिकतालोहगोशकृत्तुषपांशुभिः ।
गोमूत्रपिष्टैः सततं स्वेदयेच्छ्लेष्मविद्रधिम् ॥ ३८ ॥

परिषेकमाह—

दशमूलकषायेण सस्नेहलवणेन च ।
शोफं व्रणं वा कोष्णेन समूलं परिषेचयेत् ॥ ३९ ॥
पित्तविद्रधिवत्सर्वा क्रिया निरवशेषतः ।
विद्रध्योः कुशलः कुर्याद्रक्तागन्तुनिमित्तयोः ॥ ४० ॥
रक्तचन्दनमञ्जिष्ठानिशामधुकगैरिकैः ।
क्षीरेण विद्रधौ लेपो रक्तागन्तुनिमित्तके ॥ ४१ ॥
कृष्णाऽजाजी विशाला च धामार्गवफलं तथा ।
पीता ह्येते निहन्त्याशु विद्रधीन्कोष्ठसंभवान् ॥ ४२ ॥

धामार्गवफलं कोशातकीफलम् ।

श्वेतवर्षामुवो मूलं मूलं वरुणकस्य च ।
जलेन कथितं पीतमन्तर्विद्रधिहृत्परम् ॥ ४३ ॥
सौमाञ्जनकनिर्यूहो हिङ्गुसैन्धवसंयुतः ।
अचिराद्विद्रधिं हन्ति प्रातः प्रातर्निषेवितः ॥ ४४ ॥
शिग्रुमूलं जले धौतं हृषत्पिष्टं प्रगालयेत् ।
तद्रसं मधुना पीत्वा हन्त्यन्तर्विद्रधिं नरः ॥ ४५ ॥

वरुणादिगणक्वाथमपक्वेऽभ्यन्तरोत्थिते ।
 ऊषकादिप्रतीवापं पिबेत्संशमनाय वै ॥ ४६ ॥
 शमयति मानकमूलं क्षौद्रयुतं तण्डुलाम्मसा पीतम् ।
 अन्तर्भूतं विद्रधिमुद्धतमाश्वेव मनुजस्य ॥ ४७ ॥
 अपक्वे चैतदुद्दिष्टं पक्वे तु व्रणवत्क्रिया ।
 प्रियङ्गुधातकीलोर्ध्वं कट्फलं तिनिस्त्वचा ॥
 एतैस्तैलं विपक्तव्यं विद्रधौ व्रणरोपणम् ॥ ४८ ॥

इति प्रियङ्गवाद्यं तैलम् ।

अथ वरुणक्वाथः—

कासीससैन्धवशिलाजतुहिङ्गुचूर्ण-
 मिश्रीकृतो वरुणवल्कलजः कषायः ।
 अभ्यन्तरोत्थितमपक्वमतिप्रमाणं
 नृणामयं जयति विद्रधिमुग्रशोफम् ॥ ४९ ॥

इति वरुणक्वाथः ।

अथ हरीतक्यादिचूर्णम्—

हरीतकीसैन्धवधातकीनां रजो घृतक्षौद्रयुतं प्रयुक्तम् ।
 निहन्ति सद्यो ध्रुवमेव पुंसामन्तर्भवं विद्रधिमुग्ररूपम् ॥ ५० ॥
 इति हरीतक्यादिचूर्णम् ।

अथ वरुणादिघृतम्—

सिद्धं वरुणादिगणे विधिना तत्कल्कपाचितं सर्पिः ।
 अन्तर्विद्रधिमुग्रं मस्तकशूलं हुताशमान्द्यं च ॥ ५१ ॥
 गुल्मानपि पञ्चविधान्नाशयतीदं यथाऽम्बु वायुसुखम् ।
 एतत्पातः प्रपिबेद्धोजनसमये निशास्वेऽपि ॥ ५२ ॥
 इति वरुणादिघृतम् ।

अथ कज्जलीयोगः—

वरुणादिकषायेण रसगन्धककज्जली ।
 मुक्ता निहन्ति माषैका बाह्यमन्तश्च विद्रधिम् ॥ ५३ ॥
 इति कज्जलीयोगः ।

इति श्रीयोगतरङ्गिण्यां विद्रधिरोगनिदानचिकित्साकथनं नाम
 दशधिकशततमस्तरङ्गः ॥ ११० ॥

अथैकादशाधिकशततमस्तरङ्गः ।

अथ व्रणशोथनिदानम्—

एकदोषोत्थितः शोथो व्रणानां पूर्वलक्षणम् ।
षड्विधः स्यात्पृथग्दोषै रक्तजागन्तुजौ तथा ॥ १ ॥
शोथाः षड्विधे विज्ञेयाः प्रागुक्तैः शोथलक्षणैः ।
विशेषः कथ्यते चैषां पक्वापक्वादिनिश्चये ।

रक्तागन्तुव्रणमाह—

विषमं पच्यते वातात्पित्तोत्थश्चाचिरंचिरात् ।
कर्कजः पित्तजः शोथौ रक्तागन्तुसमुद्भवौ ॥ ३ ॥

आमव्रणमाह—

मन्दोष्मताऽल्पशोथत्वं काठिन्यं त्वक्संघर्षता ।
मन्दवेदनता चैव शोथानामामलक्षणम् ॥ ४ ॥

पच्यमानस्य व्रणमाह—

दृश्यते दहनेनेव क्षारेणेवावपच्यते ।
पिपीलिकागणेनेव भिद्यते दृश्यतेऽथ वा ॥ ५ ॥
छिद्यते चैव शस्त्रेण दण्डेनेवावताड्यते ।
पीड्यते पाणिना चान्तः सूचीमिरिव तुद्यते ॥ ६ ॥
शोषश्चोषो विवर्णः स्यादङ्गुल्येवावताड्यते ।
आसने शयने स्थाने शान्तिं वृश्चिकविद्धवत् ॥ ७ ॥
न गच्छेदाततः शोथो भवेदाध्मातस्यस्तिवत् ।
ज्वरस्तृष्णाऽरुचिश्चैव पच्यमानस्य लक्षणम् ॥ ८ ॥

शोफानां पक्वलक्षणमाह—

वेदनोपशमः शोथो लोहितोऽल्पो न चोन्नतः ।
प्रादुर्भावो वलीनां च तोदः कण्डूर्मुहुर्मुहुः ॥ ९ ॥
उपद्रवाणां प्रशमो निम्नता स्फुटनं त्वचः ।
वस्ताबिबाम्बुसंचारः स्याच्छोथेऽङ्गुलिपीडिते ॥ १० ॥

पूयश्च पीडयत्येकमन्तमन्ते च पीडिते ।

भक्ताकाङ्क्षा भवेच्चैव शोथानां पक्वलक्षणम् ॥ ११ ॥

रक्तपाकमाह—

कफजेषु च शोफेषु गम्भीरं पाकमेत्यसृक् ।

पक्कलिङ्गं ततः स्पष्टं यतः स्याच्छीतशोफता ॥ १२ ॥

त्वक्स्नावण्यं रुजोऽल्पत्वं घनस्पर्शत्वमश्मवत् ।

रक्तपाकमिति ब्रूयात्तं प्राज्ञो मुक्तसंशयः ॥ १३ ॥

मर्तेऽनिलाद्बुद्ध्वा विना च पित्तं पाकः कफं वाऽपि विना न पूयः ।

तस्मान्नि सर्वे परिपाककाले गच्छन्ति शोथास्त्रिभिरेव दोषैः ॥ १४ ॥

यच्छिन्नस्याममज्ञानाद्यश्च पक्कमुपेक्षते ।

श्वपचाविव मन्तव्यौ तावनिश्चयकारिणौ ॥ १५ ॥

कालान्तरेणाभ्युदितं तु पित्तं कृत्वा वशौ वातकफौ प्रसह्य ।

पचत्यतः शोणितमेष पाको मतोऽपरेषां विदुषां द्वितीयः ॥ १६ ॥

कक्षं समासाद्य यथैव दह्निर्वातेरितः संदहति प्रसह्य ।

तथैव पूयोऽप्यविनिःसृतो हि मांसं शिराः स्रायु च खादतीह ॥ १७ ॥

आमं विदह्यमानं च सम्यक्पक्कस्य लक्षणम् ।

जानीयात्स भवेद्द्वैद्यः शेषास्तस्करवृत्तयः ॥ १८ ॥

इति व्रणशोथनिदानम् ।

वातव्रणमाह—

द्विधा व्रणः परिज्ञेयः शरीरागन्तुभेदतः ।

दोषैराद्यस्तयोरन्यः शस्त्रादिक्षतसंभवः ॥ १९ ॥

स्तब्धः कठिनसंस्पर्शो मन्दस्रावो महारुजः ।

तुद्यते स्फुरति श्यावो व्रणो मारुतसंभवः ॥ २० ॥

पित्तजमाह—

तृष्णामोहज्वरक्लेददाहदुःखावदारणैः ।

व्रणं पित्तकृतं विद्याद्वन्धस्रावैश्च पूतिकैः ॥ २१ ॥

कफजमाह—

बहुपिच्छो गुरुः स्निग्धः स्तिमितो मन्दवेदनः ।

पाण्डुवर्णोऽल्पसंक्लेदश्चिरपाकी कफव्रणः ॥ २२ ॥

रक्तजमाह—

रक्तो रक्तं सवेद्रक्तो द्वित्रिजः स्यात्तदन्वयः ।
 त्वङ्मांसजः सुखे देशे तरुणस्यानुपद्रवः ॥ २३ ॥
 धीमतोऽभिनवः काले सुखे साध्यः सुखव्रणः ।
 गुणैरन्यतमैर्हीनस्ततः कृच्छ्रो व्रणः स्मृतः ॥ २४ ॥
 सर्वैर्विहीनो विज्ञेयस्त्वसाध्यो भूर्युपद्रवः ।

दुष्टव्रणलिङ्गमाह—

पूतिपूयोऽतिदुष्टासृक्स्त्राव्युत्सङ्गी चिरस्थितिः ॥ २५ ॥
 संरम्भदाहश्वयथुकण्डूवादिभिरुपद्रुतः ।
 दुष्टव्रणोऽतिगन्धादिः शुद्धलिङ्गविपर्ययः ॥ २६ ॥

शुद्धव्रणलक्षणमाह—

जिह्वातैलामोऽतिमृदुः सिग्धो विगतवेदनः ।
 किञ्चिदुन्नतमध्यो वा श्यावोष्ठो पिट्टकः स्मृतः ॥ २७ ॥
 सुध्यवस्थो निरास्त्रावी शुद्धो व्रण इति स्मृतः ।

बद्धव्रणप्रशस्तिमाह—

व्रणः क्षुध्यति बन्धेन मृदुत्वं चोपगच्छति ॥ २८ ॥
 रोहत्यपि च निःसङ्गस्तस्माद्बद्धः प्रशस्यते ।

व्रणरोहणमाह—

कपोतवर्णप्रतिमा यस्यान्ताः क्लेदवर्जिताः ॥ २९ ॥
 स्थिराश्च पिट्टकावन्तो रोहतीति तमादिशेत् ।

सम्यग्रूढमाह—

रूढवर्त्मनिमग्रन्थिमशूनमरुजं व्रणम् ॥ ३० ॥
 त्वक्सवर्णं समतलं सम्यग्रूढं विनिर्दिशेत् ।

व्रणाशयमाह—

त्वगामिषशिरास्त्रायुमज्जास्थीनि व्रणाशयः ॥ ३१ ॥
 कोष्ठो मर्म च तान्यष्टौ दुःसाध्यान्पुत्तरोत्तरम् ।

साध्यासाध्यत्वमाह—

सुसाध्यः सत्त्वमांसाग्निवयोबलवति व्रणः ॥ ३२ ॥
 वृत्तो दीर्घस्तु पिटकश्चतुरस्राकृतिश्च यः ।
 तथा स्फिकपायुमेद्वेषु पृष्ठान्तर्वक्त्रगण्डगः ॥ ३३ ॥
 कृच्छ्रसाध्योऽक्षिदशननासिकापाङ्गनाभिषु ।
 सेवनीजठरश्रोत्रपार्श्वकक्षस्तनेषु च ॥ ३४ ॥
 फेनपूयानिलवहः शल्यवात्रक्तनिर्गमः ।
 भगंदरोऽन्तर्वदनस्तथा कट्यस्थिसंश्रितः ॥ ३५ ॥
 दोषप्रकोपाद्यायामादभिघातादजीर्णतः ।
 हर्षात्क्रोधान्द्रयाच्चापि व्रणो रूढोऽपि दीर्यते ॥ ३६ ॥
 कुष्ठिनां विषजुष्टानां शोषिणां मधुमेहिनाम् ।
 व्रणाः कृच्छ्रेण सिध्यन्ति येषां च स्युर्व्रणे व्रणाः ॥ ३७ ॥
 नैव सिध्यन्ति वीसर्पज्वरातीसारकासिनाम् ।
 पिपासूनामनिद्राणां श्वासिनामविपाकिनाम् ॥ ३८ ॥
 मित्रे शिरःकपाले च मस्तुलुङ्गस्य दर्शनम् ।
 स्नायुच्छेदाच्छिराच्छेदाद्गाम्भीर्यात्कृमिमक्षणात् ॥ ३९ ॥
 अस्थिभेदात्सशल्यत्वात्सविषत्वादतर्कितात् ।
 मिथ्याबन्धादतिस्नेहाद्रौक्ष्याद्रोमादिघट्टनात् ॥ ४० ॥
 क्षोमादशुद्धकोष्ठत्वात्सौहित्यादतिकर्षणात् ।
 व्रणो मिथ्योपचाराच्च नैव साध्योऽपि सिध्यति ॥ ४१ ॥
 वसां मेदोऽथ मज्जानं मस्तुलुङ्गं च यः सवेत् ।
 आगन्तुजो व्रणः सिध्येन्न सिध्येद्दोषसंभवः ॥ ४२ ॥
 मद्यागुर्वाज्यसुमनःपद्मचन्दनचम्पकैः ।
 सगन्धा दिव्यगन्धाश्च मुमूर्षूणां व्रणाः स्मृताः ॥ ४३ ॥
 ये च मर्मसु संभूता भवन्त्यत्यर्थवेदनाः ।
 दह्यन्ते चान्तराऽत्यर्थं बहिः शीताश्च ये व्रणाः ॥ ४४ ॥
 दह्यन्ते बहिरत्यर्थं भवन्त्यन्तश्च शीतलाः ।
 प्राणमांसक्षयश्वासकासारोचकपीडिताः ॥ ४५ ॥
 प्रवृद्धपूयरुधिरा व्रणा येषां च मर्मसु ।
 क्रियामिः सम्यगारब्धा न सिध्यन्ति च ये व्रणाः ॥ ४६ ॥

वर्जयेदेक तान्वैद्यः संरक्षन्नात्मनो यशः ।

इति व्रणनिदानम् ।

अथ चिकित्सा—

विम्लापनम्—

आदौ विम्लापनं कुर्याद्वितीयमवसेचनम् ॥ ४७ ॥

तृतीयमुपनाहं च चतुर्थी पाटनक्रिया ।

पञ्चमं शोधनं चैव षष्ठं रोपणमिष्यते ॥ ४८ ॥

एते क्रमा व्रणस्योक्ताः सप्तमं वैकृतापहम् ।

अभ्यज्य स्वेदयित्वा तु वेणुनाड्या शनैः शनैः ॥ ४९ ॥

विम्लापनार्थं गृह्णीयात्तलेनाङ्गुष्ठकेन वा ।

इति विम्लापनम् ।

अथावसेचनम्—

रक्तावसेचनं कुर्यादादावेव विचक्षणः ॥ ५० ॥

शोथे महति संरब्धे वेदनावति वा व्रणे ।

यो न याति शर्म लेपस्वेदसेकापतर्पणैः ॥ ५१ ॥

सोऽपि नाशं व्रजत्याशु शोथः शोणितमोक्षणात् ।

एकत्रश्च क्रियाः सर्वा रक्तमोक्षणमेकतः ॥ ५२ ॥

रक्तं हि विक्रियां याति तन्मोक्षे याति विक्रिया ।

विवर्णे कटिने श्यावे व्रणे चात्यन्तवेदने ॥ ५३ ॥

सविषे च विशेषेण जलौकाभिः पदैरपि ।

इत्यवसेचनम् ।

अथ वातजशोथे लेपमाह—

मातुलुङ्गाग्निमन्थौ च सुरदारुमहौषधम् ॥ ५४ ॥

अहिंसा चैव रास्ना च लेपः स्याद्वातशोथहा ।

कल्कः काञ्जिकसंपिष्टः स्निग्धः शाखोटकत्वचः ॥ ५५ ॥

सुपर्ण इव नागानां वातशोथविनाशनः ।

पित्तजशोथे लेपमाह—

कूर्पा च नलमूलं च मधुकं चन्दनं तथा ॥ ५६ ॥

शीतलश्च गणैः सर्वैः प्रलेपः पित्तशोथजित् ।

शोथनिर्वापणलेपमाह—

न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थपुक्षवेतसवल्कलैः ॥ ५७ ॥

ससर्पिष्कैः प्रलेपः स्याच्छोथनिर्वापणः परः ।

श्लेष्मजशोथे लेपमाह—

अजगन्धाऽश्वगन्धा च मञ्जिष्ठा सरलस्तथा ॥ ५८ ॥

एकैषिकाऽजशृङ्गी च प्रलेपः श्लेष्मशोथहा ।

कफवातकृतशोथे कोष्णलेपमाह—

पुनर्नवादारुशिगुदशमूलमहौषधैः ॥ ५९ ॥

कफवातकृते शोथे लेपः कोष्णो विधीयते ।

कृष्णा पुराणपिण्याकं शिगुत्वक्सकता शिवा ॥ ६० ॥

मूत्रपिष्टः सुखोष्णोऽयं प्रलेपः श्लेष्मशोथहा ।

अथ बृहन्न्यग्रोधादिलेपः—

न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थपुक्षवेतससेलुभिः ॥ ६१ ॥

चन्दनद्वयमञ्जिष्ठा यष्टीसूरणगैरिकैः ।

शतधौतघृतोन्मिश्रैर्लेपो रक्तप्रसादनः ॥ ६२ ॥

दाहपाकरुजास्रावशोफनिर्वापणः परः ।

आगन्तुजे रक्तजे च एष लेपोऽतिपूजितः ॥ ६३ ॥

इति बृहन्न्यग्रोधादिलेपः ।

न रात्रौ लेपनं दद्याद्दत्तं च पतितं तथा ।

न च पर्युषितं शुष्यमाणं तन्नैव धारयेत् ॥ ६४ ॥

शुष्यमाणमुपेक्षेत प्रदेहं पीडनं प्रति ।

न चापि सुखमालिम्पेत्तैम दौषः प्रसिच्यते ॥ ६५ ॥

तमसा पिहितो ह्यूष्मा रोमकूपमुखे स्थितः ।

विना लेपेन निर्याति रात्रौ नाऽऽलेपयेद्दत्तः ॥ ६६ ॥

रात्रावपि प्रलेपस्तु विधातव्यो विचक्षणैः ।

अपाकिशोथे गम्भीरे रक्तपित्तसमुद्भवे ॥ ६७ ॥

अथोपनाहः—

न प्रशाम्यति यः शोकः प्रलेपादिर्विधानतः ।
 द्रव्याणि पाचनीयानि दद्यात्तत्रोपनाहमे ॥ ६८ ॥
 शणमूलकशिग्रूणां फलानि तिलसर्षपाः ।
 अतसी सक्तवः किण्वमुष्णद्रव्यं च पाचनम् ॥ ६९ ॥
 सतिलाः सातसीबीजा दध्यम्लं सक्तुपिण्डिकाः ।
 सकिण्वकुष्ठलवणाः शस्ताः स्यादुपनाहने ॥ ७० ॥
 तैलेन सर्पिषा वाऽथ पित्ताभ्यां सक्तुपिण्डिकाः ।
 सुखोष्णः शोथपाकार्थमुपनाहः प्रशस्यते ॥ ७१ ॥
 कटुतैलान्वितैर्लेपः सर्पनिर्मोकमस्मभिः ।
 चयः शाम्यति गण्डस्य प्रकोपः स्फुटति द्रुतम् ॥ ७२ ॥
 दण्डोत्पलकमूलेन पिण्डिकाः संप्रलेपिताः ।
 तण्डुलोदकपिष्टेन नाशमायान्त्यसंशयम् ॥ ७३ ॥

इत्युपनाहः ।

अन्तः पूयेष्ववक्त्रेषु तथैवोत्सङ्गवत्स्वपि ।
 गति+मत्सु च रोगेषु भेदनं प्राप्तमिष्यते ॥ ७४ ॥
 रोगे व्यधनसाध्ये तु यथादेशप्रमाणतः ।
 शस्त्रं विधाय दोषास्तु स्रावयेत्कथितं यथा ॥ ७५ ॥

कचिच्छस्त्रनिक्षेपापवादमाह—

बालवृद्धासहक्षीणभीरूणां योषितामपि ।
 व्रणेषु मर्मजातेषु पक्वदोषेषु दारणम् ॥ ७६ ॥
 चिरिबिल्वो नली दन्ती चित्रको हयमारकः ।
 कपोतकङ्कगृध्राणां मललेपेन दारणम् ॥ ७७ ॥
 क्षारद्रव्याणि यावन्ति क्षारो वा दारणं परम् ।

पाचनभेदनम्—

हस्तिदन्तो जले घृष्टो बिन्दुमात्रप्रलेपनात् ॥ ७८ ॥
 अत्यर्थकठिने शोथे कथितो भेदनः परः ।
 यवगोधूमचूर्णं च सक्षारं दारणं पृथक् ॥ ७९ ॥

हरिद्रामस्मचूर्णाभ्यां प्रलेपो दारणः परः ।
अजविट्क्षारमुद्भ्यां च प्रलेपो व्रणदारणः ॥ ८० ॥

इति पाटनम् ।

ततः प्रक्षालने काथः पटोलीनिम्बपत्रजैः ।
अविशुद्धे विशुद्धे तु न्यग्रोधादित्वगुद्भवः ॥ ८१ ॥
पञ्चमूलीद्वयं वाते न्यग्रोधादिश्च पैत्तिके ।
आरग्वधादिको योज्यः कफजे सर्वकर्मसु ॥ ८२ ॥
अथ शोधनरोपणविधी मिलितौ लिख्येते—
अपेतपूतिमांसानां मांसस्थानामरौहताम् ।
कल्कः संरोपणः कार्यस्तिलाज्यमधुनाऽन्वितः ॥ ८३ ॥
निम्बपत्रमधुभ्यां तु युक्तः संशोधनः स्मृतः ।
पूर्वाभ्यां सर्पिषा वाऽपि युक्तश्चाप्युपरोपणः ॥ ८४ ॥
निम्बपत्रतिलैः कल्को मधुना व्रणशोधनः ।

रोपणमाह—

रोपणः सर्पिषा युक्तौ यवकल्केऽप्ययं विधिः ॥ ८५ ॥

वर्तिमाह—

निम्बपत्रघृतक्षौद्रिदार्वामधुकसंयुता ।
वर्तिस्तिलानां कल्को वा शोधयेद्बोपयेद्ब्रूणम् ॥ ८६ ॥

दुष्टव्रणस्य लेपमाह—

निम्बपत्रं तिला दन्तीत्रिवृत्सैन्धवमाक्षिकम् ।
दुष्टव्रणप्रशमने लेपः शोधनकेसरी ॥ ८७ ॥
एकं वा सारिवामूलं सर्वव्रणविशोधनम् ।
सप्तदलदुग्धकल्कः शमयति दुष्टव्रणं प्रलेपेन ।
मधुयुक्ता शरपुङ्खा सर्वव्रणरोपणी कथिता ॥ ८८ ॥
व्रणान्विशोधयेद्व्यां सूक्ष्मास्यान्संधिमर्मजान् ।
अमयात्रिवृतादन्तीलाङ्गुलीमधुसैन्धवैः ॥ ८९ ॥

पञ्चवल्कलचूर्णेर्वा शुक्तिचूर्णसमायुतैः ।
 धातकीलोध्रचूर्णेर्वा तथा रोहन्ति ते व्रणाः ॥ ९० ॥
 सुषवीपत्रधत्तूरकर्णमोटकुठेरकाः ।
 पृथगेते प्रलेपेन गम्भीरव्रणरोपणाः ॥ ९१ ॥

अथाग्निदग्धप्रतीकारः—

पित्तविद्रधिवत्सर्वं शमनं लेपनादिकम् ।
 अग्निदग्धे प्रयुञ्जीत व्रणे सम्यग्भिषग्वरः ॥ ९२ ॥

अथ यवादिधूपः—

धाताभिभूतान्सास्रावान्धूपयेदुग्रवेदनान् ।
 यवाज्यभूर्जमदनश्रीवेष्टकसुराह्वयैः ॥ ९३ ॥
 श्रीवासगुग्गुल्वगरुशालनिर्यासधूपिताः ।
 कठिनत्वं व्रणा यान्ति नश्यन्त्यास्राववेदनाः ॥ ९४ ॥

इति यवादिधूपः ।

अथ त्रिफलागुग्गुलुः—

निम्बपत्रवचाहिङ्गुसर्पिलवणसैन्धवैः ।
 धूपनं कृमिरक्षोघ्नं व्रणकण्डूरुजापहम् ॥ ९५ ॥
 निम्बशम्याकजात्यर्कसप्तपर्णाश्वमारकाः ।
 कृमिघ्ना मूत्रसंयुक्ताः सेकालेपनधावनैः ॥ ९६ ॥
 प्रच्छाद्य मांसपेश्या वा कृमीनपहरेद्व्रणशत्रुम् ।
 करञ्जारिष्टनिर्गुण्डीरसो हन्याद्व्रणक्रिमीन् ॥
 लशुनेनाथ वा दद्याल्लेपनं कृमिनाशनम् ॥ ९७ ॥

ये क्लेदपाकस्रुतिगन्धवन्तो व्रणा महान्तः सरुजः सशोथाः ।

प्रयान्ति ते गुग्गुलुमिश्रितेन पीतेन शान्तिं त्रिफलाश्रितेन ॥ ९८ ॥

इति त्रिफलागुग्गुलुः ।

अथ गुग्गुलुवटकः—

त्रिफलाचूर्णसंयुक्तो गुग्गुलुवटकीकृतः ।
 निषेवितो विबन्धघ्नो व्रणशोधनरोपणः ॥ ९९ ॥

इति गुग्गुलुवटकः ।

अथ विडङ्गादिगुग्गुलुः—

विडङ्गत्रिफलाव्योषचूर्णं गुग्गुलुना समम् ।
सर्पिषा वटिकां कृत्वा खादेद्वा हितभोजनः ।
दुष्टव्रणापचीमेहकुष्ठनाडीविशोधनः ॥ १०० ॥

इति विडङ्गादिगुग्गुलुः ।

अथामृताद्यो गुग्गुलुः—

अमृतापटोलमूलं त्रिकटुत्रिफलाक्रिमिघ्नानाम् ।
समभागानां चूर्णं कृत्वा तत्तुल्यगुग्गुलुर्योज्यः ॥ १ ॥
प्रतिवासरमेकैकां गुटिकां खादेदथाक्षपरिमाणम् ।
जेतुं व्रणवातास्रं गुल्मोदरपाण्डुशोथादीन् ॥ २ ॥

इत्यमृताद्यो गुग्गुलुः ।

अथ जात्यादिघृतं तैलं वा—

जातीनिम्बपटोलपत्रकटुकादार्वाणिशासारिवा-
मस्तिष्कामयसिक्थतुत्थमधुकैर्नक्ताह्वबीजैः शृतम् ।
सर्पिः सिद्धमनेन सूक्ष्मवदना मर्माभिताः स्राविणो
गम्भीराः सरुजो व्रणाः सप्ततिकाः शुष्यन्ति रोहन्ति च ॥ ३ ॥

इति जात्यादिघृतं तैलं वा ।

अथ स्वर्जिकाद्यं घृतम्—

स्वर्जिका च यवक्षारकम्पिलं च हरेणुका ।
दङ्कणं श्वेतखदिरं तुत्थचूर्णं च गोघृतैः ॥ ४ ॥
सर्वं समांशं संचूर्ण्य मर्दयेत्प्रहरं दृढम् ।
स्वर्जिकाद्यमिदं सर्पिः सर्वव्रणहरं परम् ॥ ५ ॥
रोपणं कृमिकण्डूघ्नं सवर्णकरणं परम् ।

इति स्वर्जिकाद्यं घृतम् ।

अथ पारदादिमलहरः—

रसगन्धकयोश्चूर्णं तत्समं मूर्द्धशङ्खकम् ॥ ६ ॥
सर्वतुल्यं तु कम्पिलं किञ्चित्तुत्थसमन्वितम् ।
सर्वं संमेलयेद्वत्त्वा घृतं सर्वचतुर्गुणम् ॥ ७ ॥

पिचुप्लुतं प्रदातव्यं दुष्टव्रणविशोधनम् ।
 नाडीव्रणहरं चैव सर्वव्रणनिषूदनम् ॥ ८ ॥
 ये व्रणा न प्रशाम्यन्ति भेषजानां शतेन च ।
 अनेन ते प्रशाम्यन्ति सर्पिषा स्वल्पकालतः ॥ ९ ॥

इति पारदादिमलहरः ।

अथ पारदादिर्मलहरः—

रसगन्धकसिन्दूरराव्दाकम्पिलमूर्डकम् ।
 तुत्थं खदिरकं चूर्णं सर्वं घृतचतुर्गुणम् ॥ १० ॥
 युक्त्या संमेल्य पिचुना व्रणे देयं विजानता ।
 सर्वव्रणप्रशमनं घृतमेतन्न संशयः ॥ ११ ॥

इति पारदादिर्मलहरः ।

अथ मनःशिलादिलेपः—

मनःशिला समञ्जिष्ठा सलाक्षा रजनीद्वयम् ।
 प्रलेपः सघृतक्षौद्रस्त्वग्बिभृशुद्धिकरः परः ॥ १२ ॥

इति मनःशिलादिलेपः ।

अथोरजः सकासीसं त्रिफलाकुसुमानि च ।
 प्रलेपः कुरुते *दिव्यः सद्य एव नवत्वचम् ॥ १३ ॥
 इति श्रीयोगतरङ्गिण्यां व्रणशोथव्रणनिदानचिकित्साकथनं
 नामैकादशाधिकशततमस्तरङ्गः ॥ १११ ॥

अथ द्वादशाधिकशततमस्तरङ्गः ।

अथ सद्योव्रणनिदानम्—

मानाधारामुखैः शस्त्रैर्नानास्थाननिपातितैः ।
 भवन्ति नानाकृतयो व्रणास्तांस्तान्निबोध मे ॥ १ ॥
 छिन्नं भिन्नं तथा विद्धं क्षतं पिञ्चितमेव च ।
 घृष्टमाहुस्तथा षष्ठं तेषां वक्ष्यामि लक्षणम् ॥ २ ॥

छिन्नलक्षणमाह—

तिर्यक्छिन्नो ऋजुर्वाऽपि यो व्रणस्त्वायतो भवेत् ।
मात्रस्य पातनं तद्धि छिन्नमित्यभिधीयते ॥ ३ ॥

भिन्नलक्षणमाह—

शक्तिकुन्तेषु खड्गाग्रविषाणैराशयो हतः ।
यत्किञ्चित्प्रसवेत्तद्धि भिन्नलक्षणमुच्यते ॥ ४ ॥

तस्य कोष्ठमाह—

स्थानान्यामाग्निपक्वानां मूत्रस्य रुधिरस्य च ।
हृदुण्डुकः फुप्फुसश्च कोष्ठ इत्यभिधीयते ॥ ५ ॥
तस्मिन्भिन्ने रक्तपूर्णे ज्वरो दाहश्च जायते ।
मूत्रमार्गगुदास्येभ्यो रक्तं घ्राणाच्च गच्छति ॥ ६ ॥
सूर्क्षाश्वासतृषाध्मानमभक्तच्छन्द एव च ।
विण्मूत्रवातसङ्गश्च स्वेदास्रावोऽक्षिरक्तता ॥ ७ ॥
लोहगन्धित्वमास्यस्य गात्रदौर्गन्ध्यमेव च ।
हृच्छूलं पार्श्वयोश्चापि विशेषं चात्र मे गृणु ॥ ८ ॥
आमाशयस्थे रुधिरे रुधिरं छर्दयत्यपि ।
आध्मानमतिमात्रं च शूलं च भृशदारुणम् ॥ ९ ॥
पक्वाशयगते वाऽपि रुजा गौरवमेव च ।
अधःकाये विशेषेण शीतता च भवेदिह ॥ १० ॥
अभिन्नेऽप्याशयेऽन्त्राणां स्वैः सूक्ष्मैरन्त्रपूरणम् ।
पिहितास्ये घटे यद्वल्लक्ष्यते तत्र गौरवम् ॥ ११ ॥

विद्धलक्षणमाह—

सूक्ष्मास्यशल्याभिहतं यदङ्गं त्वाशयं विना ।
उत्तुण्डितं निर्गतं वा तद्विद्धमिति निर्दिशेत् ॥ १२ ॥

क्षतलक्षणमाह—

नातिच्छिन्नं नातिभिन्नमुमयोर्लक्षणान्वितम् ।
विषमं व्रणमङ्गे यत्तत्क्षतं त्विति निर्दिशेत् ॥ १३ ॥

पिचितमाह—

प्रहारपीडनाभ्यां तु यदङ्गं पृथुतां गतम् ।
सास्थि तत्पिचितं विद्यान्मज्जारक्तपरिप्लुतम् ॥ १४ ॥

घृष्टलक्षणमाह—

घर्षणादभिघाताद्वा यदङ्गं विगतत्वचम् ।

उषास्रावान्वितं यत्तु घृष्टं तदभिधीयते ॥ १५ ॥

सशल्यं सरुजं व्रणमाह—

श्यावं सशोथं पिटकान्वितं च मुहुर्मुहुः शोणितवाहिनं च ।

मृदूद्भूतं बुद्बुदतुल्यमांसं व्रणं सशल्यं सरुजं वदन्ति ॥ १६ ॥

शल्योपद्रवमाह—

त्वचोऽतीत्य शिरादीनि भित्त्वा वा परिहृत्य च ।

कोष्ठे प्रतिष्ठितं शल्यं कुर्यादुक्तानुपद्रवान् ॥ १७ ॥

असाध्यत्वमाह—

नत्रान्तर्लोहितं पाण्डुशीतपादकराननम् ।

शीतोच्छ्वासं रक्तनेत्रमानन्दं च विवर्जयेत् ॥ १८ ॥

वातकृता रुज् आह—

भ्रमः प्रलापः पतनं प्रमोहो विचेष्टनं ग्लानिस्थोष्णता च ।

सस्ताङ्गता मूर्च्छनमूर्ध्ववातस्तीव्रा रुजो वातकृताश्च तास्ताः ॥ १९ ॥

सामान्यमर्मलिङ्गमाह—

मांसोदकामं रुधिरं च गच्छेत्सर्वोन्द्रियार्थोपरमस्तथैव ।

दशार्धसंख्येष्वथ विक्षतेषु सामान्यतो मर्मसु लिङ्गमुक्तम् ॥ २० ॥

सुरेन्द्रगोपप्रतिमं प्रभूक्तं

रक्तं स्रवेत्तत्क्षतजश्च वायुः ।

करोति रोगान्विविधान्यथोक्ता-

जिशरासु छिन्नास्वथ वा क्षतासु ॥ २१ ॥

स्नायुविद्धत्वमाह—

कौब्जं शरीरावयवावसादः क्रियास्वशक्तिस्तुमुला रुजश्च ।

चिराद्व्रणो रोहति यस्य चापि तं स्नायुविद्धं पुरुषं व्यवस्येत् ॥ २२ ॥

शोथातिवृद्धिस्तुमुला रुजश्च बलक्षयः सर्वत एव शोथः ।

क्षतेषु संधिष्वचलाचलेषु स्यात्सर्वकर्मोपरमश्च लिङ्गम् ॥ २३ ॥

अस्थिविद्धत्वमाह—

घोरा रुजो यस्य निशादिनेषु सर्वास्ववस्थासु च नैति शान्तिम् ।

मिषग्विपश्चिद्विदितार्थसूत्रस्तमस्थिविद्धं पुरुषं व्यवस्येत् ॥ २४ ॥

यथास्वमेतानि विभावयेच्च
लिङ्गानि मर्मस्वपि ताडितेषु ।
पाण्डुर्विवर्णं स्पृशितं न वेत्ति
यो मांसमर्मस्वमिताडितः स्यात् ॥ २५ ॥

उपद्रवानाह—

विसर्पः पक्षघातश्च शिरास्तम्भोऽपतानकः ।
मोहोन्मादव्रणरुजो ज्वरस्तृष्णा हनुग्रहः ॥ २६ ॥
कासश्छर्दिरतीसारो हिक्का श्वासः सवेपथुः ।
षोडशोपद्रवा ज्ञेया व्रणानां व्रणवित्तमैः ॥ २७ ॥

इति सद्योव्रणनिदानम् ।

अथ तच्चिकित्सा—

बुद्ध्वाऽऽगन्तुव्रणं वेद्यो घृतक्षौद्रसमन्विताम् ।
शीतां क्रियां चरेदाशु रक्तपित्तोष्मनाशिनीम् ॥ २८ ॥
क्रुद्धे सद्योव्रणे युञ्ज्यादूर्ध्वं चाधश्च शोधनम् ।
लङ्घनं च बलं ज्ञात्वा भोजनं चास्रमोक्षणम् ॥ २९ ॥
घृष्टे विदलिते चैव सुतरामिष्यते विधिः ।
तयोरल्पं स्रवत्यस्मै पाकस्तेनाऽऽशु जायते ॥ ३० ॥
छिन्ने भिन्ने तथा विद्धे क्षते चासृगतिस्रवेत् ।
रक्तक्षयात्तत्र रुजः करोति पवनो भृशम् ॥ ३१ ॥
स्नेहपानपरीषेकलेपस्वेदोपनाहनम् ।
कुर्वीत स्नेहवस्तिं च मारुतघ्नौषधैः शृतैः ॥ ३२ ॥
अतिनिःसृतरक्तस्तु कदुष्णं शोणितं पिबेत् ।

उक्तं च ग्रन्थान्तरे—

छिन्ने भिन्ने तथा विद्धे क्षते सद्यो मिषग्वरः ॥ ३३ ॥
पट्टसूत्रेण संसीव्य निर्धातुमवनस्थितः ।
क्लिन्नाया वाजिमूत्रेण नरमूत्रेण वा शनैः ॥ ३४ ॥
लोम्बिकां रचयित्वाऽऽशु शमितायाः कवोष्णया ।
तथा संस्वेदयेत्सद्योव्रणं व्रणविशारदः ॥ ३५ ॥

मुहुर्मुहुर्यथा दुःखं न प्राप्नोति व्रणी नरः ।
 अथ वा दीप्यलवणपोष्टल्या स्वेदयेन्मुहुः ॥ ३६ ॥
 संतप्य वा तप्तलोहपात्रसंयोगतः क्रमात् ।
 दुष्टरक्ते स्थितं चापि शृङ्गालाब्वादिभिर्हरेत् ॥ ३७ ॥
 सद्यः क्षतव्रणे वैद्यः समूलं परिषेचयेत् ।
 यष्टीमधुकमिश्रेण नातिशीतेन सर्पिषा ॥ ३८ ॥
 कषायमधुराः शीताः क्रियाः सर्वास्तु योजयेत् ।
 सद्योव्रणानां सप्ताहात्पश्चात्पूर्वोक्तमाचरेत् ॥ ३९ ॥
 चिकित्सितं तु तत्सर्वं सामान्यव्रणनाशनम् ।
 आमाशयस्थे रुधिरे वमनं पथ्यमुच्यते ॥ ४० ॥
 पक्वाशयस्थे देयं च विरेचनमसंशयम् ।
 क्वाथो वंशत्वगेरष्ठश्वदंष्ट्राश्मभिदाकृतः ॥ ४१ ॥
 हिङ्गुसैन्धवसंयुक्तः कोष्ठस्थं स्रावयेदसृक् ।

इति वंशत्वगादिक्वाथः ।

अथ गौरादिघृतम्—

यवकोलकुलत्थानां निःस्नेहेन रसेन च ॥ ४२ ॥
 मुञ्जीतान्नं यवागूं वा पिबेत्सैन्धवसंयुताम् ।
 गौरां हरिद्रां मञ्जिष्ठां मांसीं मधुकमेव च ॥ ४३ ॥
 मपौण्डरीकं ह्नीबेरं नतं मुस्तं सचन्दनम् ।
 जातीनिम्बपटोलं च करञ्जं कटुरोहिणीम् ॥ ४४ ॥
 मधूच्छिष्टं मधूकं च महामेदां तथैव च ।
 पञ्चवल्कलतोयेन घृतं प्रस्थं विपाचयेत् ॥ ४५ ॥
 एतद्गौरादिकं सर्पिः सर्वव्रणविशोधनम् ।
 आगन्तुकाश्च सहजाः सुचिरोत्थाश्च ये व्रणाः ॥ ४६ ॥
 नाडीव्रणश्च विषमो नश्यत्येव न संशयः ।

इति गौराद्यं घृतम् ।

अथ तिक्तादिघृतम्—

तिक्तासिकथनिशायष्टीनक्ताह्वफलपल्लवैः ॥ ४७ ॥

पटोलमालतीनिम्बपत्रैर्वर्ण्यं शृतं घृतम् ।
इति तिक्तादिघृतम् ।

अथ जात्यादितैलम्—

जातीनिम्बपटोलानां नक्तमालस्य पल्लवान् ॥ ४८ ॥
सिक्थकं मधुकं कुष्ठं द्वे निशे कटुरोहिणीम् ।
मञ्जिष्ठां पद्मकं लोध्रमभयां नीलमुत्पलम् ॥ ४९ ॥
तुत्थकं सारिषां बीजं नक्तमालस्य च क्षिपेत् ।
एतानि समभागानि पिष्ट्वा तैलं विपाचयेत् ॥ ५० ॥
विषव्रणसमुत्पत्तौ स्फोटेषु च सकच्छुषुं ।
कण्डूवीसर्परोगेषु कीटदष्टेषु सर्वथा ॥ ५१ ॥
सद्यः शस्त्रप्रहारेषु दग्धविद्धक्षतेषु च ।
नखदन्तक्षतैर्देहे दुष्टमांसावघर्षणे ।
अक्षणार्थमिदं तैलं हितं शोधनरोपणम् ॥ ५२ ॥

इति जात्यादितैलम् ।

अथ विपरीतमल्लतैलम्—

सिन्दूरकुष्ठविषहिङ्गुरसोनचित्र-
बाणाङ्घ्रिलाङ्गलिककल्कविपक्वतैलम् ।
प्रासादमन्त्रयुतहुंकृततुत्थफेन-
क्लिन्नव्रणप्रशमनो विपरीतमल्लः ॥ ५३ ॥
खड्गगाभिघातगुरुगण्डमहोपदंश-
नाडीव्रणव्रणविचर्चिककुष्ठपामाः ।
एतन्निहन्ति विपरीतकमल्लनाम
तैलं यथेष्टशयनाशनभोजनस्य ॥ ५४ ॥

इति विपरीतमल्लतैलम् ।

अथ दूर्वादितैलम्—

दूर्वास्वरससंसिद्धं तैलं कम्पिल्लकेन वा ।
दूर्वात्वचश्च कल्केन प्रधानं व्रणरोपणम् ॥ ५५ ॥

इति दूर्वादितैलम् ।

अथ सप्तविंशतिको गुग्गुलुः—

त्रिकटुत्रिफलामुस्तविडङ्गामृतचित्रकम् ।
 पटोलं पिप्पलीमूलं हपुषा सुरदारु च ॥ ५६ ॥
 तुम्बरुः पुष्करं चव्यं विशाला रजनीद्वयम् ।
 विडं सौवर्चलं क्षारः सैन्धवं गजपिप्पली ॥ ५७ ॥
 यावन्त्येतानि सर्वाणि तावद्विगुणगुग्गुलुः ।
 कोलप्रमाणां वटिकां भक्षयेन्मधुना सह ॥ ५८ ॥
 कासं श्वासं तथा शोफमर्शांसि च भगंदरम् ।
 हृच्छूलं पार्श्वशूलं च कुक्षिबस्तिगुदे रुजम् ॥ ५९ ॥
 अश्मरीं मूत्रकृच्छ्रं च अन्त्रवृद्धिं तथा कृमीन् ।
 चिरज्वरोपसृष्टानां क्षतोपहतचेतसाम् ॥ ६० ॥
 आनाहं च तथोन्मादं कुष्ठान्यष्टोदराणि च ।
 नाडीं दुष्टव्रणान्सर्वान्प्रमेहाञ्जलीपदं तथा ॥ ६१ ॥
 सप्तविंशतिको नाम गुग्गुलुः प्रथितो महान् ।
 धन्वन्तरिकृतो ह्येष सर्वरोगनिषूदनः ॥ ६२ ॥

इति सप्तविंशतिको गुग्गुलुः ।

व्रणे श्वयथुरायासात्स च रागश्च जागरात् ।
 तौ च रुक्च दिवास्वापात्ते च मृत्युश्च मैथुनात् ॥ ६३ ॥
 अम्लं दधि च शाकं च मांसमानूपवारिजम् ।
 क्षीरे गुरूणि चान्नानि व्रणिनः परिवर्जयेत् ॥ ६४ ॥

इति श्रीयोगतरङ्गिण्यां सद्योव्रणनिदानचिकित्साकथनं नाम द्वादशाधि-
 कशततमस्तरङ्गः ॥ ११२ ॥

अथ त्रयोदशाधिकशततमस्तरङ्गः ।

अथाग्निदग्धव्रणनिदानम्—

अग्निदग्धो द्विविधः साक्षाद्दग्धः परम्परादग्धश्च स प्रत्येकं चतुर्धा
 प्लुष्टं दुर्दग्धं सम्यग्दग्धमतिदग्धं चेति । तत्र विवर्णमतिमात्रं प्लुष्यते
 तत्प्लुष्टम् । यत्रोत्तिष्ठन्ति स्फोटास्तीव्रदाहवेदनास्तद्दुर्दग्धम् । सम्य-
 ग्दग्धमनवगाढं तालफलवर्णं पूर्वलक्षणयुक्तं च । अतिदग्धं तु दग्धं

च्युतमांसविलम्बि शोषणं शिरास्त्रायुसंध्यास्थिव्यापादनभस्तिवेदनाज्वर-
दाहपिपासामूर्च्छाद्युपद्रवयुक्तं भवति । इति प्लुष्टादिभेदेन वह्निदग्धश्च-
तुर्धा व्रणो भवति । तत्र—

प्लुष्टस्याग्निप्रतपनं कार्यमुष्णं तथौषधम् ।

सम्यक् स्विन्ने शरीरे तु स्विन्नं भवति शोभनम् ॥ १ ॥

प्रकृत्या सलिलं शीतं स्कन्दयत्यतिशोषणम् ।

तस्मात्सुखयति ह्युष्णं न तु शीतं कदाचन ॥ २ ॥

शीतामुष्णां च दुर्दग्धे क्रियां कुर्यात्ततः पुनः ।

घृतालेपनसेकादि शीतमेवास्य कारयेत् ॥ ३ ॥

अतिदग्धे विशीर्णानि मांसान्युद्धृत्य शीतलाम् ।

क्रियां कुर्यात्ततः पश्चाच्छालितण्डुलकण्डनैः ॥ ४ ॥

चूर्णैर्वा चूर्णितैः सम्यगतिदग्धं च चूर्णयेत् ।

तिन्दुक्यास्तु कषायैर्वा घृतमिश्रैः प्रलेपयेत् ॥ ५ ॥

सम्यग्दग्धे तुगाक्षीरीप्लक्षचन्दनगैरिकैः ।

सामृतैः सर्पिषा युक्तैरालेपं कारयेद्भिषक् ॥ ६ ॥

पथ्याकर्दमजीरकमधुसिक्थकसर्जमिश्रितं लेपात् ।

गढ्यं घृतमपहरति च दग्धव्रणपाकमाश्वेव ॥ ७ ॥

अन्तर्धूमकुठारको दहनजं लेपान्निहन्ति व्रणं

बोधिक्षोणिजशुष्कवल्कलमवं चूर्णं तथा गुण्डनात् ।

अभ्यङ्गाद्विनिहन्ति तैलमखिलं गण्डूपदैः साधितं

पिष्ट्वा शाल्मलिमूलकैर्जलगतालेपात्तथा बालुका(?) ॥ ८ ॥

मधूच्छिष्टं समधुकं लोध्रं सर्जरसं तथा ।

माञ्जिष्ठां चन्दनं मूर्वां पिष्ट्वा सर्पिर्विपाचयेत् ॥ ९ ॥

सर्वेषामग्निदग्धानामेतद्रोपणमुत्तमम् ।

अथ सिक्थकादिघृतम्—

सिद्धं कषायकल्काभ्यां पटोल्याः कटुतैलकम् ॥ १० ॥

व्रणदग्धरुजास्त्रावदाहविस्फोटनाशनम् ।

अथ लाङ्गलीकं घृतम्—

उभे हरिद्रे माञ्जिष्ठा मधुकं लोध्रकट्फलम् ॥ ११ ॥

कम्पिलकमुभे मेदे लाङ्गलीमूलमेव च ।

पिप्पली त्रिफला चैव निम्बपत्रं च कार्ष्णिकैः ॥ १२ ॥

पेष्यैरेतैर्घृतं प्रस्थं पाचयेद्विगुणं पयः ।
 दत्त्वा पलद्वयं सिक्थं सिद्धे पूतेऽत्र दापयेत् ॥ १३ ॥
 लाङ्गलीकं घृतं नाम्ना व्रणानां रोपणं परम् ।
 अग्निदग्धे विसर्पे च लूताकीटव्रणेषु च ॥ १४ ॥
 चिरोत्थेष्वप्यहृद्येषु नाडीमर्मव्रणेषु च ।
 हितमेतत्समाख्यातं लाङ्गलीकमिदं घृतम् ॥ १५ ॥

इति लाङ्गलीकं घृतम् ।

अथ चन्दनाद्यं यमकम्—

चन्दनं वटशृङ्गाश्च मञ्जिष्ठा मधुकं तथा ।
 प्रपौण्डरीकं दूर्वा च पतङ्गं धातकी तथा ॥ १६ ॥
 एतैस्तैलं विपक्तव्यं गव्यक्षीरसमायुतम् ।
 अग्निदग्धे व्रणे श्रेष्ठं ब्रक्षणाद्रोपणं परम् ॥ १७ ॥

इति चन्दनाद्यं यमकम् ।

अग्निदग्धे व्रणे देयं धातकीचूर्णमुत्तमम् ।
 अतसीतैलसंमिश्रं वह्निदग्धव्रणापहम् ॥ १८ ॥
 अन्तर्धूमविदग्धं त्रिफलाचूर्णं विमिश्रितं तैलैः ।
 क्षौमैः शीघ्रं शमयत्यग्निव्रणमाशु लेपेन ॥ १९ ॥

इति श्रीयोगतरङ्गिण्यामग्निदग्धव्रणनिदानचिकित्साकथनं नाम त्रयोदशा-
 धिकशततमस्तरङ्गः ॥ ११३ ॥

अथ चतुर्दशाधिकशततमस्तरङ्गः ।

अथ भग्ननिदानम्—

भग्नं समासाद्विविधं हुताशकाण्डे च संधावपि तत्र संधौ ।
 उत्पिष्टविश्लिष्टविवर्तितं च तिर्यक्च विक्षिप्तमधश्च षष्ठम् ॥ १ ॥
 प्रसारणाकुञ्चनवर्तनेषु रुक्स्पर्शविद्वेषणमेतदुक्तम् ।
 सामान्यतः संधिगतस्य लिङ्गमुत्पिष्टसंधेः श्वयथुः समन्तात् ॥ २ ॥
 विशेषतो रात्रिभवा रुजश्च विश्लिष्टजे तौ च रुजा च नित्यम् ।
 विवर्तिते पार्श्वरुजश्च तीव्रास्तिर्यग्गते तीव्ररुजो भवन्ति ॥ ३ ॥

क्षितेऽतिशूलं विषमं च सक्थोः क्षिते त्वधोरुग्विघटश्च संधेः ।
 काण्डे त्वधः कर्कटकाश्वकर्णं विचूर्णितं पिच्छितमस्थिछल्लिः ॥ ४ ॥
 काण्डेषु भग्नं ह्यातिपातितं च मज्जागतं च स्फुटितं च वक्त्रम् ।
 छिन्नं द्विधा द्वादशधाऽपि काण्डे स्रस्ताङ्गता शोथरुजातिवृद्धिः ॥
 संपीड्यमाने भवतीह शब्दः स्पर्शासहः स्यन्दनतोदभेदाः ।
 सर्वास्ववस्थासु न शर्मलाभो भग्नस्य काण्डे खलु चिह्नमेतत् ।
 भग्नं तु काण्डे बहुधा प्रयाति समासतो नाममिरेव तुल्यम् ॥ ६ ॥
 अल्पाशिनोऽनात्मवतो जन्तोर्वातात्मकस्य वा ।

उपद्रवैर्वा जुष्टस्य भग्नं कृच्छ्रेण सिध्यति ।
 भिन्नं कपाले कट्यां च संधिमुक्तं तथा व्युतम् ।
 जघनं प्रतिपिष्टं च वर्जयेत्तु विचक्षणः ॥ ८ ॥
 असंश्लिष्टकपालं च ललाटे चूर्णितं च यत् ।
 भग्नं स्तनान्तरे शङ्के पृष्ठे मूर्धनि वर्जयेत् ॥ ९ ॥
 सम्यक्संधितमप्यस्थिरदुर्निक्षेपनिबन्धनात् ।
 संक्षोभाद्वाऽपि यद्वच्छेद्विक्रियां तच्च वर्जयेत् ॥ १० ॥
 तरुणास्थीनि नम्यन्ते भिद्यन्ते नलकानि तु ।
 कपालाणि विभिद्यन्ते स्फुटन्ति रुचकानि तु ॥ ११ ॥

इति भग्ननिदानम् ।

अथ भग्नचिकित्सा—

भग्नान्युपाचरेद्धीमान्सेकालेपनबन्धनैः ।
 शीतलैरेव विविधैः प्रयोगैश्च समीरितैः ॥ १२ ॥
 तत्रातिशिथिले बन्धे संधिस्थैर्यं न जायते ।
 गाढेनापि त्वगादीनां शोफो रुक्पाक एव च ॥ १३ ॥
 तस्मात्साधारणं बन्धं भग्ने शंसन्ति तद्विदः ।
 आदौ भग्नं विदित्वा तु सेचयेच्छीतलास्त्रुना ॥ १४ ॥
 पङ्केनाऽऽलेपनं कार्यं बन्धनं च कुशान्वितम् ।
 अवनामितमुन्नम्येदुन्नतं न च पीडयेत् ॥ १५ ॥
 क्षितं द्विधाऽपि च स्थाप्ते संस्थाप्य विधिमाचरेत् ।
 आलेपनार्थं मञ्जिष्ठा मधुकं चाऽऽम्लपेपितम् ॥ १६ ॥

शतधौतघृतोन्मिश्रं शालिपिष्टं च लेपनम् ।
 न्यग्रोधादिकषायं तु शीतलं परिषेचने ॥ १६ ॥
 वज्रमूलीविपक्वं तु क्षीरं दद्यात्सवेदने ।
 मूलं शृगालच्छिन्नायाः पीत्वा मांसरसेन तु ॥ १७ ॥
 चूर्णीं कृत्वा तु सप्ताहादस्थिमङ्गमपोहति ।
 आमाचूर्णं मधुयुतमस्थिमङ्गे त्र्यहं पिबेत् ॥ १८ ॥
 पीत्वा चास्थिभवं सम्यग्वज्रसारनिभं दृढम् ।
 अविदाहिभिरन्नेश्च पिष्टकैः समुपाचरेत् ॥ १९ ॥
 मांसं मांसरसं क्षीरं सर्पिर्युषं च मुद्गजम् ।
 बृंहणं चान्नपानं च संधिमश्लाय दापयेत् ॥ २१ ॥
 गृष्टिक्षीरं ससर्पिष्कं मधुरौषधिसाधितम् ।
 शीतलं लाक्षया युक्तं प्रातर्भग्ने पिबेन्नरः ॥ २२ ॥
 सघृतं चास्थिसंधानं लाक्षागोधूमभर्जनम् ।
 संधिमुक्तेऽस्थिमङ्गे च पिबेत्क्षीरेण मानवः ॥ २३ ॥
 रसोनमधुलाक्षाज्यसिताकल्कं समश्नतः ।
 छिन्नभिन्नच्युताश्नां च संधानमचिराद्भवेत् ॥ २४ ॥
 लेपात्पिष्टकलवणैरम्लीकाफूलरसाभ्यां वा ।
 सद्योऽभिघातजनिताङ्गरुजाश्वयथवः प्रशाम्यन्ति ॥ २५ ॥
 धात्रीमेदातिलैर्लेपः पिष्टैरम्बुभिरेव वा ।
 अस्थिमङ्गे संधिमङ्गे घृताक्तैऽतिप्रपूजितः ॥ २६ ॥
 क्षीरं सलाक्षामधुकं ससर्पिः स्याज्जीवनीयं च पिबेत्सुखार्थम् ।
 भग्ने पिबेद्दलकलमर्जुनस्य गोधूममर्जं समधु प्रशस्तम् ॥ २७ ॥

अथ लाक्षागुग्गुलुः—

*लाक्षास्थिसंहृत्ककुभाश्वगन्धाश्चूर्णीकृता नागबलापुरश्च ।
 संभग्नमुक्तास्थिरुजं निहन्यादङ्गानि कुर्यात्कुलिशोपमानि ॥ २८ ॥
 इति लाक्षागुग्गुलुः ।

अथाऽऽभाद्यो गुग्गुलुः—

आमाफलत्रिकव्योषैः सर्वैरेभिः समीकृतैः ।
 तुल्यो गुग्गुलुराजोऽयं भग्नसंधिप्रसाधकः ॥ २९ ॥
 इत्याभाद्यो गुग्गुलुः ।

अथ गोधूमयोगः—

सव्रणस्य तु मग्नस्य व्रणं सर्पिर्मधूत्तमैः ।
 पारिषिच्य कषायैश्च शेषं मग्नवदाचरेत् ॥ ३० ॥
 वातव्याधिविनिर्दिष्टान्स्नेहानत्रापि योजयेत् ।
 वैलिजं मस्मं मधुना पातव्यं हितमोजिना ॥ ३१ ॥
 संधिमङ्गेऽस्थिमङ्गे च विशेषेण प्रशस्यते ।
 ईषद्विदग्धगोधूमचूर्णं पीतं समाक्षिकम् ।
 कटिसंधिषु मग्नेषु मग्नेष्वस्थिषु पूजितम् ॥ ३२ ॥

इति गोधूमयोगः ।

अथ बोलयोगः—

नैमधुसमुत्थं बोलं लीढं क्षौद्रेण मात्रया बुद्ध्या ।
 अस्थिस्रायुशिरासंध्याशयमग्नानि संधयति ॥ ३३ ॥

इति बोलयोगः ।

निषेधः—

लवणं कटुकं क्षारं साम्लं मैथुनमातपम् ।
 व्यायामं च न सेवेत मग्नो रूक्षान्नमेव च ॥ ३४ ॥
 बालानां तरुणानां च भग्नान्याशु भवन्ति वै ।
 समीचीर्न तु वृद्धानां भग्नानां न विशेषतः ॥ ३५ ॥
 इति श्रीयोगतरङ्गिण्यां भग्ननिदानचिकित्साकथनं नाम चतुर्दशा-
 धिकशततमस्तरङ्गः ॥ ११४ ॥

अथ पञ्चदशाधिकशततमस्तरङ्गः ।

अथ नाडीव्रणनिदानम्—

यः शोथमाममतिपक्वमुपेक्षतेऽज्ञो
 यो वा व्रणं प्रचुरपूयमसाधुवृत्तः ।
 अभ्यन्तरं प्रविशति प्रविदार्य तस्य
 स्थानानि पूर्वविहितानि ततः सपूयः ॥ १ ॥

तस्यातिमात्रगमनाद्गतिरिष्यते तु
 नाडीव यद्वहति तेन मता तु नाडी ।
 दोषैस्त्रिभिर्भवति सा पृथगेकशश्च
 समूर्छितैरपि च शल्यनिमित्ततोऽन्धा ॥ २ ॥
 तत्रानिलात्परुषसूक्ष्ममुखी सशूला
 फेनानुविद्धमधिकं स्रवति क्षपासु ।
 पित्ताच्च तुङ्ज्वरकरी परिदाहयुक्ता
 पीतं स्रवत्यधिकमुष्णमहःसु चापि ॥ ३ ॥
 ज्ञेया कफाद्बहुघनाऽर्जुनपिच्छिलासा
 स्तब्धा सकण्डुररुजा रजनीप्रवृद्धा ।
 दाहज्वरश्चसनमूर्छनवक्त्रशोषा
 यस्यां भवन्त्यभिहितानि च लक्षणानि ॥ ४ ॥
 सामादिशोत्पवनापित्तकफप्रकोषा-
 द्घोरां गतिं त्वसुहरामिव कालरात्रिम् ।
 नष्टं कथंचिदनुमात्रमुदीरितेषु
 स्थानेषु शल्यमचिरेण गतिं करोति ॥ ५ ॥
 सा फेनिलं मथितमुष्णमसृग्विमिश्रं
 स्रावं करोति सहसा सरुजं च नित्यम् ।
 नाडी त्रिदोषप्रभवा न सिध्ये-
 च्छेषाश्चतस्रः खलु यत्नसाध्याः ॥ ६ ॥

इति नाडीव्रणनिदानम् ।

अथ नाडीव्रणचिकित्सा—

नाडीनां गतिमन्विष्य शस्त्रेणोत्कृत्वा कर्मबित् ।
 सर्वं व्रणक्रमं कुर्याच्छोधनारोपणादिकम् ॥ ७ ॥
 नाडीं वातकृतां साधु पाटितां लेखयेद्भिषक् ।
 प्रत्यक्पुष्पीफलयुतैस्तिलैः पिष्टैः प्रलेपयेत् ॥ ८ ॥
 पैत्तिकीं तिलमञ्जिष्ठानागदन्तीनिशाह्वयैः ।
 श्लैष्मिकीं तिलयष्ट्याह्वनिकुम्भारिष्टसैन्धवैः ॥ ९ ॥
 शल्यजां तिलमञ्जिष्ठामध्वाज्यैर्लेपयेन्मुहुः ।
 आरग्वधनिशाकालाचूर्णाज्यक्षीरसंयुता ।
 सूत्रवर्तिव्रणे योज्या शोधनी गतिनाशिनी ॥ १० ॥

घोण्टाफलत्वङ्मदनाफलानि

पूगस्य च त्वग्लशुनं च मुख्यम् ।

सुह्यर्कदुग्धेन सहैष कल्को

वर्तीकृतो हन्त्यचिरेण नाडीम् ॥ ११ ॥

सुह्यर्कदुग्धदावीभिर्वर्ति कृत्वा प्रपूरयेत् ।

एष सर्वशरीरस्थां नाडीं हन्यात्प्रयोगराट् ॥ १२ ॥

नाड्याः शस्त्रेण वदनं बृहत्कृत्वा प्रवेशयेत् ।

कुशलो बस्तिविधिना तैलं जात्यादिसाधितम् ॥ १३ ॥

एवमन्यच्च यत्तैलं घृतं वा स्वरसं तथा ।

नाड्या अभ्यन्तरे वैद्यो लघुहस्तः प्रवेशयेत् ॥ १४ ॥

कर्पूरकरसैस्तैलं सिद्धार्थकमवन् भिषक् ।

पचेत्सिन्दूरकल्केन नाडीदुष्टव्रणापहम् ॥ १५ ॥

गुग्गुलुत्रिफलाव्योषैः समांशैराज्यपेषिताम् ।

अक्षप्रमाणां गुटिकां खार्देच्छीताम्बुना नरः ॥ १६ ॥

नाडीदुष्टव्रणं शूलमुदावर्तं भगंदरम् ।

गुल्मं च गुदजान्ह्न्यात्पक्षिराट्पद्मगानिव ॥ १७ ॥

इति सप्ताङ्गो गुग्गुलुः ।

इति श्रीयोगतरङ्गिण्यां नाडीव्रणनिदानचिकित्साकथनं नाम

षष्ठदशाधिकशततमस्तरङ्गः ॥ ११५ ॥

अथ षोडशाधिकशततमस्तरङ्गः ।

अथ भगंदरनिदानम्—

गुदस्य द्यङ्गुले क्षेत्रे पार्श्वतः पिटकार्तिकृत् ।

भिन्नो भगंदरो ज्ञेयः स च पञ्चविधो मतः ॥ १ ॥

पञ्चविधत्वमाह—

वातपित्तकफैस्त्रेधा चतुर्थः संनिपाततः ।

उन्मार्गगः पञ्चमः स्यादेवं पञ्चविधो मतः ॥ २ ॥

दोषैः पृथग्युतैः सर्वैरागन्तुः सोऽष्टधा स्मृतः ।

अपक्वं पिटकामाहुः पाकप्राप्तं भगंदरम् ॥ ३ ॥

पूर्वरूपमाह—

कटीकपालनिस्तोददाहकण्डूरुजादयः ।
भवन्ति पूर्वरूपाणि भविष्यति भगंदरे ॥ ४ ॥

भोजः—

भगं परिसमन्ताच्च गुदं बस्तिं तथैव च ।
मगवद्धारयेद्यस्मात्तस्मादेष भगंदरः ॥ ५ ॥
गूढमूलां सुसंरम्भां रुगाढ्यां रुढकोपनीम् ।
भगंदरकरीं विद्यात्पिटकां नत्वतोऽन्यथा ॥ ६ ॥
तत्र श्यावारुणा तोदभेदस्फुरणरुक्करी ।
पिटका मारुतात्पित्तादुष्टग्रीवावदुत्थिता ॥ ७ ॥
रागिणी तनुरूष्माढ्या ज्वरधूमायनान्विता ।
स्थिरा स्निग्धा महामूला पाण्डुः कण्डुमती कफात् ॥ ८ ॥
श्याक्व ताम्रा सदाहैषा घोररुग्वातपित्तजा ॥ ९ ॥
पाण्डुरा किञ्चिदाश्यावा कृच्छ्रपाका कफानिलात् ।
पादाङ्गुष्ठसमा सर्वैर्दोषैर्नानाविधव्यथा ॥ १० ॥
शूलारोचकतृददाहज्वरच्छर्दिरुपद्रुताः ।
अणतां यान्ति ताः पक्वाः प्रमादादक्रियावताम् ॥ ११ ॥

शतपोनकं दोषमाह—

कषायरूक्षैस्त्वतिकोपितोऽनिलस्त्वपानदेशे पिटकां करोति ।
उपेक्षणात्पाकमुपैति दारुणं रुजं च भिन्नारुणफेनहीनम् ॥ १२ ॥
तत्राऽऽगमो मूत्रपुरीषरेतसां अणैरनेकैः शतपोनकं वदेत् ।

उष्ट्रशिरोधरं दोषमाह—

प्रकोपनैः पित्तमतीव कोपितं करोति रक्तां पिटकां गुदागताम् ॥ १३ ॥
तदाऽऽशुपाकं हिमपूयवाहिनीं भगंदरं तूष्ट्रशिरोधरं वदेत् ॥ १४ ॥

परिस्राविणमाह—

कण्डूयनो घनस्रावी कठिनो मन्दवेदनः ।
श्वेतावभासः कफजः परिस्रावी भगंदरः ॥ १५ ॥

शम्बूकावर्तकमाह—

बहुवणरुजास्रावी पिटका गोस्तनोपमा ।

शम्बूकावर्तवज्राडी शम्बूकावर्तको मतः ॥ १६ ॥

उन्मार्गिणमाह—

क्षताद्गतिः पायुगता विवर्धते ह्युपेक्षणात्स्युः कृमयो विदार्यते ।

प्रकुर्वते मार्गमनेकधा मुखैर्वर्णैस्तमुन्मार्गि मगंदरे वदेत् ॥ १७ ॥

असाध्यत्वमाह—

घोराः सपिटका दुःखाः सर्व एव मगंदराः ।

तेष्वसाध्यस्त्रिदोषोत्थः क्षतजश्च विशेषतः ॥ १८ ॥

वातमूत्रपुरीषाणि कृमयः शुक्रमेव च ।

मगंदराः स्रवन्तस्तु नाशयन्त्याशु मानवम् ॥ १९ ॥

इति मगंदरनिदानम् ।

अथ चिकित्सा—

गुदपिटकायामादौ कुर्याद्द्रक्तावसेचनं मतिमान् ।

*जलसदनाभिरशेषं सा पार्कं न प्रयाति यथा ॥ १ ॥

अपानमार्गपिटकां दहेत्स्वर्णशलाकया ।

अग्निप्रतप्तया पश्चात्कुर्यादग्निव्रणक्रियाम् ॥ २१ ॥

लेपमाह—

वटपत्रेष्टिकाशुण्ठीगुडूच्यः सपुनर्नवाः ।

सुपिष्टाः पिटकावस्थे लेपः शस्तो मगंदरे ॥ ३ ॥

भिन्नक्रियामाह—

पिटकानामपक्वानामपतर्पणपूर्वकम् ।

कर्म कुर्याद्विरेकान्तं भिन्नानां वक्ष्यते क्रिया ॥ ४ ॥

एषणापादनं क्षारवह्निदाहादिकं क्रमम् ।

विधाय व्रणवत्कार्यं यथादोषं यथाक्रमम् ॥ ५ ॥

* क. जलकाभिः ।

लेपमाह—

तिलत्रिवृन्नागदन्तीमञ्जिष्ठाज्यैः ससैन्धवैः ।
 सक्षौद्रैश्च प्रलेपोऽयं भगंदरकुलान्तकृत् ॥ ६ ॥
 रसाञ्जनं हरिद्रे द्वे मञ्जिष्ठानिम्बपल्लवाः ।
 त्रिवृत्तेजोवती दन्ती कल्को नाडीव्रणापहः ॥ ७ ॥
 स्नुह्यर्कदुग्धदार्वाभिर्वर्ति कृत्वा विचक्षणः ।
 भगंदरगतिं ज्ञात्वा दद्याद्दुष्टविशोधनीम् ॥ ८ ॥
 एषा सर्वशरीरस्थां नाडीं हन्यान्न संशयः ॥ ९ ॥
 तिलामयालोध्रमरिष्टपत्रं निशा वचा कुष्ठमगारधूमः ।
 भगंदरे नाड्युपदंशयोश्च दुष्टव्रणे शोधनरोपणोऽयम् ॥ १० ॥
 स्वरुधिरसमेतं मूलतायाः शरीरं
 दूषादि सहितमस्त्रा सारमेयस्य पिष्टम् ।
 भवति समुपलेपादाशुभागंदरीणा-
 मयमधिकतराणामापदां नाशहेतुः ॥ २९ ॥
 *सुमनावटपत्राणि गुडूची विश्वमेषजम् ।
 सैन्धवं तक्रसंपिष्टं लेपाद्भवति भगंदरम् ॥ ३० ॥
 निशार्कक्षीरसिन्धूत्थपुराश्वहननच्छदैः ।
 सिद्धमभ्यञ्जने तैलं भगंदरहरं परम् ॥ ३१ ॥
 इति निशादितैलम् ।

अथ सिक्थकघृतम्—

सिक्थकं तथा शङ्खजीरकं शीर्षतैलकं सर्जखादिरौ ।
 गोघृतं व्रणे साधितं त्विदं सिद्धिदं भवेत्क्षतरोगनाशनम् ॥ ३२ ॥
 इति सिक्थकघृतम् ।

अथ बिडालास्थिलेपः—

त्रिफलारससंयुक्तं बिडालास्थि प्रलेपनात् ।
 भगंदरं निहन्त्याशु दुष्टव्रणाहरं परम् ॥ ३३ ॥
 इति बिडालास्थिलेपः ।

* क. जातिस्तस्याः पत्रम् ।

अथ नवकार्षिको गुग्गुलुः—

त्रिफलापुरकृष्णानां त्रिपञ्चैकांशयोजिता गुट्टिका ।

कुष्ठमगंदरनाडीदुष्टव्रणशोधिनी कथिता ॥ ३४ ॥

इति नवकार्षिको गुग्गुलुः ।

अथ जम्बूकप्रकारः—

जम्बूकस्याऽऽमिषं भुक्त्वा प्रकारैर्वर्धञ्जनादिभिः ।

अजीर्णवर्जी मांसेन मुच्यते तु मगंदरात् ॥ ३५ ॥

दुष्टात्पञ्चविधात्कुष्ठादष्टादशविधादपि ।

इति जम्बूकप्रकारः ।

अथ विष्यन्दनं तैलम्—

चित्रकार्को त्रिवृत्पाठे मलयूहयमारकौ ॥ ३६ ॥

स्नुही वचां लाङ्गलीं च हरितालं मेनःशिलाम् ।

ज्योतिष्मतीं च संहृत्य तैलं धीरो विपाचयेत् ॥ ३७ ॥

एतद्विष्यन्दनं नाम तैलं दद्याद्भगंदरे ।

दुष्टे पञ्चप्रकारेऽपि दूरनाडीगतेऽपि च ॥ ३८ ॥

शोधनं रोपणं चैव सुवर्णकरणं तथा ।

इति विष्यन्दनं तैलम् ।

अथ करवीराद्यं तैलम्—

करवीरनिशादन्तीलाङ्गलीलवणाग्निभिः ॥ ३९ ॥

मातुलुङ्गार्कवत्साह्वैः पक्वं तैलं भगंदरे ।

इति करवीराद्यं तैलम् ।

अथ रूपराजरसः—

रसेन्द्रमागद्वितयं स्लेच्छक्षारं चतुर्गुणम् ॥ ४० ॥

काकजङ्घारसैर्मर्द्यं खल्वे दिवसपञ्चकम् ।

ताम्रसंपुटके रुद्ध्वा सच्छिद्रे हणिङ्कान्तरे ॥ ४१ ॥

निवेश्य बालुकां कृत्वा देयोऽग्निः प्रहराष्टकम् ।

स्वाङ्गशीतं समुद्धृत्य मधुटङ्कणसंयुतम् ॥ ४२ ॥

धमेन्मूषागतं तावद्यावज्जमति तारकत् ।
 रूपराजरसः सोऽयं भगंदरकुलान्तकः ॥ ४३ ॥
 बल्लमात्रममुं लीढ्वा मधुना सह पथ्यमुक् ।
 त्रिफलायाः पिबेत्काथं पश्चात्पथ्यं हितं चरेत् ॥ ४४ ॥
 मुक्तः स्वल्पैरहोभिः स्याद्भगंदरमहागदात् ।

इति रूपराजरसः ।

अथ त्रिनेत्रो रसः—

मागो रसस्य गन्धस्य द्वौ कन्याद्भिर्विमर्दयेत् ॥ ४५ ॥
 कृत्वा गोलं ताम्रपात्रं तावत्तस्योपरि क्षिपेत् ।
 मस्मनाऽऽपूर्य तद्भाण्डं वह्निं कुर्याद्दिनं तले ॥ ४६ ॥
 शीतमुद्धृत्य जम्बीरवारा तं सप्तधा पुटेत् ।
 गुञ्जाऽस्य मधुसर्पिभ्यां हन्ति सद्यो भगंदरम् ॥ ४७ ॥
 तालमूलीं सलशुनां पिबेदनु सकाञ्जिकाम् ।

इति त्रिनेत्रो रसः ।

शस्त्रक्रियाऽपि कथिता शस्त्रसाध्ये भगंदरे ॥ ४८ ॥
 सा च तेनैव कर्तव्या शस्त्रशास्त्रविदैव या ।
 व्यायामं मैथुनं युद्धं पृष्ठयानं गुरूणि च ॥
 रूढव्रणोऽपि यत्नेन वर्जयेद्वत्सरं नरः ॥ ४९ ॥
 इति श्रीयोगतरङ्गिण्यां भगंदरनिदानचिकित्साकथनं नाम
 षोडशाधिकशततमस्तरङ्गः ॥ ११६ ॥

अथ सप्तदशाधिकशततमस्तरङ्गः ।

अथोपदंशनिदानम्—

हस्ताभिघातान्नखदन्तघातादधावनाद्रत्युपसेवनाद्वा ।
 योनिप्रदोषाच्च भवन्ति शिश्वे पञ्चोपदंशा विविधापचारैः ॥ १ ॥

पञ्चप्रकारानाह—

वातेन पित्तेन च शोणितेन कफेन दोषैरखिलैः सरोषैः
 पञ्चोपदंशाः कफवातलिङ्गव्रणास्थिमङ्गश्वयथुप्रदाः स्युः ॥ २ ॥

वातजमाह—

सतोदभेदस्फुरणैः सकृष्णैः स्फोटैर्व्यवस्येत्पवनोपदंशम् ।

पित्तजमाह—

पीतैर्बहुक्लेदयुतैः सदाहैः पित्तेन रक्तमपिशितावभासैः ॥ ३ ॥

कफजमाह—

सकण्डुरैः शोथयुतैर्महद्भिः शुक्लैर्वर्णैः स्रावयुतैः कफेन ।

असाध्यत्वमाह—

नानाविधास्रावरुजोपपन्नमसाध्यमाहुस्त्रिमलोपदंशम् ॥ ४ ॥

विशीर्णमांसं कृमिभिः प्रजग्धं मुष्कावशेषं परिवर्जयेत्तु ।

संजातमात्रे न करोति मूढः क्रियां नरो यो विषयेषु सक्तः ।

कालेन शोथकिमिदाहपाकैर्विशीर्णशिश्वो म्रियते स तेन ॥ ५ ॥

लिङ्गाशोरोगमाह—

अङ्कुरैरिव संजातैरुपर्युपरि संस्थितैः ।

क्रमेण जायते वर्तिस्ताम्रचूडशिखोपमा ॥ ६ ॥

कोशस्याभ्यन्तरे संधौ पर्वसंधिगतापि वा ।

अवेदना पिच्छिलाऽपि दुश्चिकित्स्या त्रिदोषजा ॥ ७ ॥

लिङ्गवर्तिरिति ख्याता लिङ्गार्श इति चापरे ।

स्त्रीपुंसयोर्दारुणोपदंशमाह—

मेढ्रसंधौ व्रणाः केचित्केचित्सर्वाश्रयास्तथा ॥ ८ ॥

कुलत्थाकृतयः केचित्केचित्पद्मदलोपमाः ।

रुजादाहार्तिशोथाः स्युस्तृष्णादाहसमन्विताः ।

स्त्रीणां पुंसां च जायन्त उपदंशास्तु दारुणाः ॥ ९ ॥

इत्युपदंशनिदानम् ।

अथोपदंशचिकित्सा—

स्निग्धस्विन्नस्य तेष्वदादौ ध्वजमध्ये शिराव्यधः ।

जलौकापातनं वा स्यादूर्ध्वाधःशोधनं तथा ॥ १० ॥

सद्योऽपहृतेरक्तस्य रुक्शोफावुपशाम्यतः ।

र्णको रक्ष्यः प्रपत्नैन शिश्रक्षयकरो हि सः ॥ ११ ॥

अथोपचारः—

पटोलनिम्बत्रिफलागुडूचीक्वाथं पिबेद्वा खदिरासनाभ्याम् ।

सगुग्गुलुं वा त्रिफलायुतं वा सर्वोपदंशापहरः प्रयोगः ॥ १२ ॥

वातजमाह—

सपौण्डरीकं मधुकं रास्नाकुष्ठपुनर्नवाः ।

सरलादारुमद्राख्यैर्लेपो बातोपदंशहः ॥ १३ ॥

पित्तजमाह—

गैरिकोऽन्नमस्त्रिंशामधुकोशीरपद्मकैः ।

सचन्दनोत्पलैः स्निग्धैर्लेपः पित्तोपदंशहा ॥ १४ ॥

पित्तास्रजमाह—

निम्बार्जुनाश्वत्थकदम्बशालजम्बूवटोदुम्बरवेतसान्द्रिः ।

प्रक्षालनालेपघृतानि कुर्याच्चूर्णं च पित्तास्रमवोपदंशे ॥ १५ ॥

कफजमाह—

शालाजकर्णाश्वकण्ठधवत्वाग्निः कफोत्थितम् ।

सुरापिष्टाभिरुष्णाभिः सतैलाभिः प्रलेपयेत् ॥ १६ ॥

प्रक्षालने योगमाह—

त्रिफलायाः कषायेण भृङ्गराजरसेन च ।

व्रणप्रक्षालनं कुर्यादुपदंशप्रशान्तये ॥ १७ ॥

बन्धूलदलचूर्णेन दाडिमत्वग्भवेन वा ।

गुण्डनं त्रस्थिचूर्णेन उपदंशहरं परम् ॥ १८ ॥

दहेत्कटाहे त्रिफलां तां मर्षीं मधुसंयुताम् ।

उपदंशे प्रलेपोऽयं सद्यो रोपयति व्रणम् ॥ १९ ॥

जयाजात्यश्वमारार्कशम्याकानां दलैः पृथक् ।

कृतं प्रक्षालने क्वाथं मेदूपाके प्रयोजयेत् ॥ २० ॥

बन्धूकदलचूर्णेन रजसा दाडिमत्वक्चः ।

मुद्रणं तद्व्रणे कुर्याल्लेपं पूगफलेन वा ॥ २१ ॥

अथ भूनिम्बादिघृतम्—

भूनिम्बनिम्बत्रिफलापटोलकरञ्जधात्रीखदिरासनानाम् ।
कषायकल्कैः शृतमाज्यमाशु सर्वोपदंशापहरं प्रदिष्टम् ॥ २२ ॥
इति भूनिम्बादिघृतम् ।

अथ करञ्जाद्यं घृतम्—

करञ्जनिम्बाजुनशालजम्बूवटादिभिः कल्ककषायसिद्धम् ।
सर्पिर्निहन्त्यादुपदंशदोषं सदाहपाकं सुतिरागयुक्तम् ॥ २३ ॥
इति करञ्जाद्यं घृतम्

अथाऽऽगारधूमाद्यं तैलम्—

आगारधूमो रजनी सुराकिण्वं च तैस्त्रिभिः ।
मागोत्तरैः पचेत्तैलं कण्डूशोथरुजापहम् ॥ २४ ॥
शोधनं रोपणं चैव सुवर्णकरणं तथा ।
इत्यागारधूमाद्यं तैलम् ।

अथ पारदाद्यं सर्पिः—

पारदं गन्धकं तालं सिन्दूरं च मनःशिलाम् ॥ २५ ॥
ताम्रपात्रे तु सघृते ताम्रेणैव विमर्दयेत् ।
धर्मे दिनैकं मृदितमेतत्कण्डूपदंशजित् ॥ २६ ॥
इति पारदाद्यं सर्पिः ।

अथोपदंशगजकेसरी रसः—

लेवङ्गं पारदं शुद्धं मरिचं करहाटकम् ।
जन्तुघ्नं मस्तकीं चैव प्रत्येकं कर्षसंमितम् ॥ २७ ॥
चतुष्कर्षं जवानीं च गुडं तद्वद्विनिक्षिपेत् ।
मल्लातकानां च शुभां विंशतिं द्विगुणां बुधः ॥ २८ ॥
चूर्णयित्वा तु तत्सर्वं गुटिकां कारयेद्भिषक् ।
कर्षमात्रां ततः स्वादेदेकां प्रातर्हि मानवः ॥ २९ ॥
ताम्बूलं भक्षयेत्पश्चात्पथ्यं दुग्धौदनं हितम् ।
सप्ताहान्मुच्यते जन्तुः फिरेङ्गाख्योपदंशतः ॥ ३० ॥
संधिशोफास्थिशोफास्थिशूलसंधिरुजोऽपि च ।
उपदंशेमसिंहाख्यो रसोऽसौ शंभुवरेणः ॥ ३१ ॥

सोपदंशनृणां चैव कुठिनां च सुखाय वै ।
इत्युपदंशमजकेसरी रसः ।

अथोपदंशेभकेसरी—

रस आकारकरमो लवंगं मरिचं तथा ॥ ३२ ॥
विडङ्गे मस्तकी चैव प्रत्येकं त्रिलवं मतम् ।
अरुष्कराणां दातव्या द्विगुणा त्वेकविंशतिः ॥ ३३ ॥
दीप्यस्य द्वादश लवा गुडस्यापि तथा मताः ।
युक्त्या संमेल्य गुटिकां खादेत्कर्षद्वयोन्मिताम् ॥ ३४ ॥
पथ्यं दुग्धौदनं रम्यं ताम्बूलं परिवेषयेत् ।
घसाणामेकविंशत्या मुच्यते तूपदंशतः ॥ ३५ ॥

इत्युपदंशेभकेसरी ।

अथोपदंशान्धसूर्यः—

शङ्खोपलं कोलमितं पलत्रिकं क्षुद्रारसं निम्बुरसं तथैव ।
लौहे कटाहे विनिधाय सर्वं संघृष्य सत्वविपचुमन्दजेन ॥ ३७ ॥
दण्डेन यावद्धि घनी भवेच्च सिद्धो भवेन्मुद्गनिभां च मात्राम् ।
दद्यात्फिरङ्गामयके भिषग्भिः स्वेच्छं विधेयं किल पथ्यमस्य ।
तैलाम्लवर्ज्यं निखिलव्रणघ्नं घृतानुपानैरुपदंशसूर्यः ॥ ३७ ॥

इत्युपदंशान्धसूर्यः ।

इति श्रीयोगतरङ्गिण्यामुपदंशनिदानचिकित्साकथनं नाम
सप्तदशाधिकशततमस्तरङ्गः ॥ ११७ ॥

अथाष्टादशाधिकशततमस्तरङ्गः ।

अथ रतिदोषसूतसेवननिदानम्—

वेश्वारतिर्महत्पापं नानावीर्यं पतन्ति च(?) ।
नानाधातु पृथग्भेदं बहुरतिसमाश्रितम् ॥ १ ॥
तत्कथं योनिलिङ्गं च रतिव्रणसमुद्भवम् ।
केशमुत्पार्थ्य पक्ष्म द्वे भ्रुवोर्द्वे केशनाशनम् ॥ २ ॥
सूतस्य सेवनान्नित्यं सूतदोषसमाश्रयात् ।
विदाहश्चाङ्गदाहश्च लिङ्गदाहः शिरोभ्रमः ॥ ३ ॥

इति रतिदोषनिदानम् ।

अथ चिकित्सा—

कतकस्य दलोद्भूतं जले तैलं तिलोद्भवम् ।
 रतिव्रणं हरेच्छ्रेष्ठं पानमात्रान्न संशयः ॥ ४ ॥
 तथा निम्बस्य पत्राणां चर्वणाद्व्रणनाशनम् ।
 गन्धकं शोधितं सम्यक्त्रिफलापुरसंयुतम् ॥ ५ ॥
 मध्वाज्याभ्यां लिहेन्नित्यं त्वग्दोषव्रणनाशनम् ।
 पारदं गन्धकं वङ्गं प्रत्येकं युग्मनिष्ककम् ॥ ६ ॥
 सुश्लक्ष्णां कज्जलीं कृत्वा द्रव्याणीमानि दापयेत् ।
 पोस्तकं तुलसी दीप्यं नागवल्लीदलं तथा ॥ ७ ॥
 प्रत्येकं सप्तनिष्कं स्याद्वटकान्सप्त कारयेत् ।
 एकैकं सप्तदिवसं धूमयोगाद्विनाशयेत् ॥ ८ ॥
 रतिव्रणं शुक्रगतं मर्मगं चातिदुस्तरम् ।
 तक्रं दधि घृतं चैव भोजयेत्परमं हितम् ॥ ९ ॥
 रसं वङ्गं मेलयित्वा श्लक्ष्णचूर्णं तु कारयेत् ।
 मन्धकं बोलतुत्थं च लाक्षा चामृतमस्तकी ॥ १० ॥
 अपामार्गोत्थितं मरुम अहिफेनसमन्वितम् ।
 तुलसीरससंघृष्टमथ वा चाहिवलिजम् ॥ ११ ॥
 निष्कमात्रेण वटकान्धूमयोगेन योजयेत् ।
 सर्वं रतिव्रणहरं पूर्ववत्पथ्ययोगतः ॥ १२ ॥
 मस्तकीं दरदं तुत्थं रजनीं च पृथक्पृथक् ।
 निष्कप्रमाणं संमर्द्य नागवल्लीदलान्वितान् ॥ १३ ॥
 वटकान्सप्त कृत्वाऽथ दिनैकं धूमयोगतः ।
 क्षीरान्नपथ्ययोगेन लिङ्गव्रणहराः पराः ॥ १४ ॥

अथ रसकर्पूरः—

ववभागो भवेत्सूतः फटकी दक्षमागिकः ।
 षटोरेकादशं प्रोक्तं खट्वाश्च द्वादशं क्रमात् ॥ १५ ॥
 सिन्धोस्त्रयोदशं भागं जम्बीराम्लेन मर्दयेत् ।
 पातनायन्त्रयोगेण यात्रकं तु चतुष्टयम् ॥ १६ ॥
 गुञ्जामात्रं तु दातव्यं लवणाम्लविवर्जितम् ।
 सर्ववातोद्भवात्रोगान्त्रणरोगानशेषतः ॥ १७ ॥

जिहन्ति सप्तरात्रेण योगोऽयममृतोपमः ।

अथ तालकभस्म—

तालकं मर्दयेत्सम्यक्ताम्बूलीपर्णवारिणा ॥ १८ ॥
 त्रिदिनं मस्तुनाऽऽमर्द्यं दिनैकं पयसा रवेः ।
 तद्गोलं माण्डमध्यस्थं किंशुकक्षारसंयुतम् ॥ १९ ॥
 त्रिदिनं पाचयेत्सम्यङ् मन्दमध्यहठाग्निना ।
 तालमस्म समाकृष्य तण्डुलद्वयमात्रकम् ॥ २० ॥
 आकलं जातिपत्रं च लवङ्गं जातिकाफलम् ।
 संयोज्य सर्पिषा जम्ध्वा सर्ववातकुलान्तकः ॥ २१ ॥
 वातरक्तं तथा कुष्ठं ग्रहणीं च भगंदरम् ।
 सर्वव्रणान्निहन्त्याशु नाम्ना तालेश्वरो रसः ॥ २२ ॥

इति रसरत्नाकरात् ।

अथान्यो रसकर्पूरः—

सैन्धवं च नवसारटङ्कणं कर्षमात्रफटकेन योजितम् ।
 शुद्धपारदपलैक्रमात्रकं चित्रमूलरसमर्दितं दिनम् ॥ २३ ॥
 काचकूप्यरसपूर्य(?) बुद्धिमाँलोणवालुकसयन्त्रमध्यगम् ।
 पाचयेत्पत्रति वासरार्धकं पूर्णचन्द्रसदृशं तु कर्पूरम् ॥ २४ ॥
 ब्रह्मात्रमपि भक्ष्य(?) रोगिणां शूलवातगजमुग्धकेसरी ।
 सर्वरोगहितयोगमुत्तमं तैलमम्लपटुजान्विवर्जयेत् ॥
 स्नेहयुक्तघृतभोज्यभेषजं पुत्रमित्रगुरुणा सुगोपितम् ॥ २५ ॥
 गन्धकं नवनीतेन वर्तिना घृतमाहरेत् ।
 तद्घृतं सेवयेन्नित्यं सूतदोषेषु पूजितम् ॥ २६ ॥
 सूतदाहे तालदाहे कूष्माण्डरससेवनम् ।
 तथा कुमारीं रम्भाया योजयेत्सूतदोषनुत् ॥ २७ ॥
 तथा निम्बस्य तैलेन पानलेपनयोगतः ।

अथ गन्धकरसायनम्—

गन्धं पलशतं ग्राह्यं सूक्ष्मचूर्णं च कारयेत् ॥ २८ ॥
 माण्डगर्भे क्षीरपूर्णे तन्मुखे वस्त्रबन्धनम् ।
 गन्धं तस्योपरि क्षिप्त्वा ततो माण्डमधोमुखम् ॥ २९ ॥

तत्संधिवन्धनं कृत्वा तदूर्ध्वं वह्निदीपनम् ।
यामार्धं पुटसंयुक्तं स्वाङ्गशीतलमाहरेत् ॥ ३० ॥
तद्गन्धं चूर्णितं कृत्वा अजाक्षीरेण भावयेत् ।
इक्षुदण्डरसश्चैव अमृता मधु गोक्षुरम् ॥ ३१ ॥
वाराही मधुकं कुष्ठं मृङ्गराजं हरिप्रिया ।
एकैकस्वरसेनैव भावयेद्दशवासरम् ॥ ३२ ॥
धर्मयेन्द्रावयेन्नित्यममृतीकरणं यथा ।
पिप्पलीं पिप्पलीमूलं लवङ्गं नागकेशरम् ॥ ३३ ॥
त्रिफलां पद्मकं बीजं समांशं च विनिक्षिपेत् ।
शर्करामधुसंयुक्तं माषमात्रं च सेवयेत् ॥ ३४ ॥
शाल्यन्नं च सगोधूमं घृतं क्षीरं सशर्करम् ।
सेवयेन्नित्यं कृष्णां च वलीपलितनाशनम् ॥ ३५ ॥
जरां तु नाशयेत्पुंसां षण्ढत्वं वह्निमान्द्यताम् ।
कुष्ठानां च दशाष्टानां वाताशीतिनिवारणम् ॥ ३६ ॥
विंशतिं च प्रमेहाणां मूत्रकृच्छ्राणि षोडश ।
व्रणराजं गण्डमालां गुदकीलं मर्गदरम् ॥ ३७ ॥
गुल्मप्लीहविकारघ्नं रजोदोषं हलीमकम् ।
स्तम्भनं वृष्यमायुष्यं सर्वामयनिवारणम् ॥ ३८ ॥
शुक्रमेहादिदोषाणां नाशनं परमं मतम् ।
देहं सुवर्णवर्णाभं दिव्यत्वं च न संशयः ।
सर्वभूतहितं गोप्यं गन्धकाख्यं रसायनम् ॥ ३९ ॥

इति गन्धकरसायनम् ।

अथान्यद्गन्धकरसायनम्—

शुद्धो बलिर्गोपयसा विभाव्यस्ततश्चतुर्जातगुडचिकान्द्रिः ।
पथ्याक्षधात्र्यौषधमृङ्गराजैर्भाव्योऽष्टवारं पृथगार्द्रकेण ॥ ४० ॥
सिद्धे सितां योजय तुल्यभागां रसायनं गन्धकपूर्वकं स्यात् ।
माषद्वयं सेवितमाशु कुर्याद्वीर्यस्य वृद्धिं दृढदेहवह्निम् ॥ ४१ ॥
कण्डूं सपामां रसदोषमुग्रं कुष्ठप्रमेहानुपदंशरोगान् ।
वातं विषूचीं ग्रहणीमजीर्णं रोगानुपानेन विनाशनं स्यात् ॥ ४२ ॥
समस्तगदभञ्जनं मृगदृशां मनोरञ्जनं
सहेमरससंयुतं भजति यो नरो वत्सरम् ॥

न तस्य यमराजमयं भवति वत्सराणां शतं
 बलं भवति कामिनीप्रबलदर्पविद्रावणम् ॥ ४३ ॥
 एतद्रसायनवरं खलु गन्धकाख्यं
 संसेवितं सुविधिना मनुजेन नित्यम् ॥ ४४ ॥

इति सन्धकरसायनम् ।

अथ सिन्दूररसः—

चतुष्पलं तु गन्धस्य पारदं च चतुष्पलम् ।
 पलैकं हरितालं च तालकाधं मनःशिला ॥ ४५ ॥
 तालाधं टङ्कणं शुद्धं नवसारं तदर्धकम् ।
 सर्वं निक्षिप्य खल्वे च मर्दयेत्कज्जलीकृतम् ॥ ४६ ॥
 शाकवृक्षस्य पत्राणां रक्तवर्णं द्रवं हरेत् ।
 तद्रवैर्मर्दयेत्सम्यक्काचकूप्यां विनिक्षिपेत् ॥ ४७ ॥
 स्रटिकया मुखमाच्छाद्य वज्रमुत्तिकया तथा ।
 कूपिकां लेपयेत्सत् शोषयेदातपे खरे ॥ ४८ ॥
 बालुकायन्त्रमध्ये तु कूपिकां तां विनिक्षिपेत् ।
 चुल्लिकायां विनिक्षिप्य वह्निं प्रज्वालयेत्ततः ॥ ४९ ॥
 यामं षोडशमात्रं तु दीप्तमध्यखराग्निना ।
 स्वाङ्गशीतलमादाय खल्वमध्ये विनिक्षिपेत् ॥ ५० ॥
 तत्सिन्दूरसमं द्रव्यं षोडशांशं विनिक्षिपेत् ।
 सर्दयेत्पूर्ववद्द्रव्यं काचकूप्यां विनिक्षिपेत् ॥ ५१ ॥
 एवं सप्तविधं कृत्वा क्षिप्त्वा कूप्यां विपाचयेत् ।
 स्वाङ्गशीतलमादाय उदयार्कसमो रसः ॥ ५२ ॥
 सिन्दूरं सूक्ष्मलं चूर्णं नागदन्तकरण्डके ।
 तत्सिन्दूरं निषेवेत् गुञ्जामात्रप्रमाणतः ॥ ५३ ॥
 शर्करामधुपिप्पल्या प्रातरुत्थाय सेवयेत् ।
 क्षयानेकादश हन्ति संनिपातांश्च योदश ॥ ५४ ॥
 आमवातं च शूलं च नाशयेन्नात्र संशयः ।
 पाण्डुं पञ्चविधं चैव कामलात्रयनाशनम् ॥ ५५ ॥
 सहोदरानष्टपञ्च बुल्मानामपि पञ्च च ।
 अरोचकं पञ्चकासं पञ्चश्वासं जडं हरेत् ॥ ५६ ॥

स्थिरायुः कायसिद्धिश्च मेध्यं चाऽऽशु शुभप्रदम् ।
अनुपानविशेषेण सर्वरोगनिवारणम् ॥ ५७ ॥
इति धन्वन्तरिप्रोक्तं सिन्दूरं लोकपूजितम् ।

इति सिन्दूररसः ।

अथ वीरविक्रमो रसः—

पारदं च पलान्यष्टौ गन्धकं तालकं शिलां ॥ ५८ ॥
त्रितयं पारदं साम्यं मर्दितं सूक्ष्मचूर्णितम् ।
काचकूप्यां च पूर्णेन बालुकायन्त्रपाचितम् ॥ ५९ ॥
त्रिदिनं तमहोरात्रं वाकशुद्धं विचक्षणः ।
स्वाङ्गशीतलमादाय एकवारं सुपूजयेत् ॥ ६० ॥
गुञ्जामात्रं प्रयोक्तव्यं शर्कराव्योषजीरकम् ।
लवङ्गं धान्यकं चाऽऽर्द्रं निर्गुण्डी ग्रन्थिकं वरा ॥ ६१ ॥
तथा पत्रं नागवल्लीगुडूचीमाक्षिकं गुडम् ।
अनुपानं सदा सेवेद्विषमं सांनिपातिकम् ॥ ६२ ॥
रतिदोषं महाशीतं व्रणं नानाविधं हरेत् ।
वीरविक्रमनामाऽयं काश्यपेन हि भाषितः ॥ ६३ ॥

इति श्रीयोगतरङ्गिण्यां रतिदोषसूतसेवनदोषनिदानचिकित्साकथनं
नामाष्टाधिकशततमस्तरङ्गः ॥ ११८ ॥

अथैकोनविंशत्यधिकशततमस्तरङ्गः ।

अथ शुकदोषनिदानम्—

अक्रमाच्छेफसो वृद्धिं योऽभिवाञ्छति मूढधीः ।
व्याधयस्तस्य जायन्ते दश चाष्टौ च शुकजाः ॥ १ ॥

सार्षपिकामाह—

गौरसर्षपसंस्थाना शुकदुर्मग्नहेतुका ।
पिटका श्लेष्मवाताभ्यां ज्ञेया सार्षपिका तु सा ॥ २ ॥

अलजीमाह—

कठिना विषमैरन्तर्बायुनाऽष्ठीलिका भवेत् ।
शूकैस्तु विषमैर्मुमैः पिटकाऽष्ठीलिका भवेत् ॥ ३ ॥

शूकैर्यत्पूरितं शश्वद्भूथितं नाम तत्कफात् ।
कुम्भिका रक्तपित्तोत्था जाम्बवास्थिनिर्माऽसृजा ॥ ४ ॥
तुल्यजां त्वलजीं विद्याद्यथा प्रोक्ता विचक्षणैः ।

पुष्करिकामाह—

मृदितं पीडितं यत्तु संनद्धं वातकोपतः ॥ ५ ॥
पाणिभ्यां भृशसंमूढे संमूढा पिटका भवेत् ।
दीर्घा बह्व्यश्च पिटका दीर्यन्ते मध्यतस्तु याः ॥ ६ ॥
सोऽवमन्थः कफासृग्भ्यां वेदनारोमहर्षकृत् ।
पिटकाभिश्चिता या च पित्तशोणितसंभवा ॥ ७ ॥
पद्मकर्णिकसंस्थाना ज्ञेया पुष्करिका तु सा ।

शतपोनकमाह—

स्पर्शहानिं तु जनयेच्छोणितं शूकदूषितम् ॥ ८ ॥
मुद्गमाषोपमा रक्ता रक्तपित्तोद्भवा च या ।
व्याधिरेषोत्तमा नाम शूकाजीर्णनिमित्तजा ॥ ९ ॥
छिद्वैरणुमुखैर्लिङ्गं चितं यस्य समन्ततः ।
वातशोणितजो व्याधिः स ज्ञेयः शतपोनकः ॥ १० ॥

शोणितार्बुदमाह—

वातपित्तकृतो ज्ञेयस्त्वक्पाको ज्वरदाहवान् ।
कृष्णैः स्फोटैः सरक्ताभिः पिटकाभिर्निपीडितम् ॥ ११ ॥
यस्य बस्तिरुजश्चोग्रा ज्ञेयं तच्छोणितार्बुदम् ।

मांसपाकमाह—

मांसदोषेण जानीयाद्वर्बुदं मांससंभवम् ॥ १२ ॥
शीर्यन्ते यस्य मांसानि यस्य सर्वाश्च वेदनाः ।
विद्यात्तं मांसपाकं तु सर्वदोषकृतं भिषक् ॥ १३ ॥

तिलकालकानाह—

विद्रधिं संनिपातेन यथोक्तमभिनिर्दिशेत् ।
कृष्णानि चित्राण्यथ वा शूकानि सविषाणि च ॥ १४ ॥
धानि तानि पचन्त्याशु मेढ्रं निरवशेषतः ।

कालानि भूत्वा मांसानि शीर्यन्ते यस्य देहिनः ॥ १५ ॥
संनिपातसमुत्थांश्च तान्विद्यात्तिलकालकान् ।

असाध्यत्वमाह—

तत्र मांसारुदं यच्च मांसपाकश्च यः स्मृतः ॥ १६ ॥
विद्राधिश्च न सिध्येत ये च स्युस्तिलकालकाः ।

इति शूकदोषनिदानम् ।

अथ चिकित्सा—

हितं च सर्पिषः पामं पथ्यं चापि विरेचनम् ॥ १७ ॥
हितः शोणितमोक्षश्च शूकरोगेषु देहिनाम् ।

अन्यः—

शूकदोषेषु सर्वेषु विषघ्नीं कारयेत्क्रियाम् ॥ १८ ॥
जलौकाभिर्हरेद्रक्तं रेचयेद्दधु मोजयेत् ।
गुग्गुलुं पाययेच्चापि त्रिफलाक्रोथसंयुतम् ॥ १९ ॥
क्षीरेण लेपसेकांश्च शीतानेव हि कारयेत् ।
उल्लिख्य सार्षपीं तालपत्रेणार्थं प्रलेपयेत् ॥ २० ॥
तिन्दुकत्रिफलालोघ्रैर्गोमूत्रपरिपेषितैः ।
क्रियेयमवमन्थेऽपि रक्तं शोध्यं तथोमयोः ॥ २१ ॥
अष्ठीलायां हृते रक्ते श्लेष्मग्रन्थिक्रियां चरेत् ।
कुम्भिकायां हरेद्रक्तं पक्वायां शोधिते व्रणे ॥ २२ ॥
तिन्दुकत्रिफलालोघ्रैर्लेपस्तैलं च रोपणम् ।
अलज्यां हृतरक्तायां पूर्व एव क्रियाक्रमः ॥ २३ ॥
स्वेदयेद्ब्रूथितं शश्वन्नाडीस्वेदेन बुद्धिमान् ।
सुखोष्णैरुपनाहैश्च व्रणोक्तैरुपनाहयेत् ॥ २४ ॥
उत्तमाख्यां तु पिटकां संस्वेद्य बडिशोद्धृताम् ।
कल्कचूर्णैः कषायाणां क्षौद्रयुक्तैरुपाचरेत् ॥ २५ ॥
क्रमः पित्तविसर्पोक्तः पुष्करीमूढयोर्हितः ।
त्वक्पाके स्पर्शहानौ च सेवयेन्मृदितं पुनः ॥ २६ ॥
बलातैलेन कोष्णेन मधुरैश्चोपनाहयेत् ।
रसक्रिया विधातृष्योल्लिखिते शतपोनकैः ॥ २७ ॥

पृथक्पण्यादिभिः सिद्धं तैलं देयमनन्तरम् ।
 रक्तविद्रधिवत्सर्वा क्रिया शोणितजेऽर्बुदे ॥ २८ ॥
 मांसार्वुदे प्रकुर्वीत क्रियां सद्योव्रणोदिताम् ।
 त्रिफलागुग्गुलुं चापि विशेषेणावचारयेत् ॥ २९ ॥
 मांसपाके वटाद्यस्य गणस्य विधिवत्कृतैः ।
 कषायचूर्णकल्कैश्च सेकोद्धूलनलेपनम् ॥ ३० ॥
 विद्रधौ विधिवत्कार्यं रक्तविद्रधिमेषजम् ।
 वरणादिकषायस्य पानप्रक्षालने हिते ॥ ३१ ॥
 तिलकालं समुल्लिख्य क्षुरेण लघुपाणिना ।
 भिषजा चाथ कर्तव्या सद्योव्रणविधीरिता ॥ ३२ ॥
 मांसार्वुदं मांसपाकं विद्रधिं तिलकालकम् ।
 प्रत्याख्याय प्रकुर्वीत भिषक्तेषां प्रतिक्रियाम् ॥ ३३ ॥
 दार्वा*सुरसयष्ट्याह्वैर्गृहधूमनिशायुतैः ।
 संपक्वं तैलमभ्यङ्गान्मेढ्ररोगं विनाशयेत् ॥ ३४ ॥

अथ रसाञ्जनलेपः—

रसाञ्जनं साह्वयमेकमेव प्रलेपमात्रेण नयेत्प्रशान्तिम् ।
 सपूतिपूयव्रणशोथकण्डूशूलान्वितं सर्वमनङ्गरोगम् ॥ ३५ ॥
 साह्वयमित्यनङ्गरोगस्य विशेषणम् ।

इति रसाञ्जनलेपः ।

इति श्रीयोगतरङ्गिण्यां शूकदोषनिदानचिकित्साकथनं नामैकोनविंशत्य-
 धिकशततमस्तरङ्गः ॥ ११९ ॥

अथ विंशत्यधिकशततमस्तरङ्गः ।

अथकुष्ठनिदानम्—

विरोधीन्यन्नपानानि द्रवस्निग्धगुरूणि च ।
 मजतामागतां छर्दिं वेगांश्चान्यान्प्रनिघ्नताम् ॥ १ ॥
 व्यायाममतिसंतापमतिभुक्त्वा निषेविणाम् ।
 अजीर्णाभ्यशिनां चैव पञ्चकर्मापचारिणाम् ॥ २ ॥

शीतोष्णं लघुमाहारं क्रमं त्यक्त्वा निषेविणाम् ।
 घर्मश्रमभयार्तानां द्रुतं शीताम्बुसेविनाम् ॥ ३ ॥
 नवान्नदधिमत्स्यातिलवणाम्लनिषेविणाम् ।
 माषमूलकपिष्टान्नतिलक्षीरगुडाशिनाम् ॥ ४ ॥
 व्यवायं चाप्यजीर्णेऽन्ने निद्रां च भजतां दिवा ।
 विप्रान्गुरुन्धर्षयन्तां पाप्म कर्म च कुर्वताम् ॥ ५ ॥
 पाप्मभिः कर्मभिः सद्यः प्राक्तनैश्चेरिता मलाः ।
 वातादयस्त्रयो दोषास्त्वग्रक्तं मांसमम्बु च ॥ ६ ॥
 दूषयन्ति स कुष्ठानां सप्तको द्रव्यसंग्रहः ।
 त्वचः कुर्वन्ति वैवर्ण्यं दुष्टाः कुष्ठमुशन्ति तत् ॥ ७ ॥
 अतः कुष्ठानि जायन्ते सप्त, चैकादशैव तु ।
 कुष्ठानि सप्तधा दोषैः पृथग्द्वन्द्वैः समागतैः ॥ ८ ॥
 सर्वेष्वपि त्रिदोषेषु व्यपदेशोऽधिकत्वतः ।
 अतिश्लक्ष्णखरस्पर्शः स्वेदास्वेदौ विवर्णता ॥ ९ ॥
 दाहः कण्डूस्त्वचि स्वापस्तोदः कोष्ठोन्नतिः श्रमः ।
 घणानामधिकं शूलं शीघ्रोत्पत्तिः स्थिरा स्थितिः ॥ १० ॥
 रूढानामतिरूक्षत्वं निमित्तेऽल्पेऽपि कोपनम् ।
 रोमहर्षोऽमृजः काष्ण्यं कुष्ठलक्षणमग्रजम् ॥ ११ ॥

विषमकुष्ठमाह—

कृष्णारुणं कपालाभं यद्रूक्षं परुषं तनु ।
 कपालं तोदबहुलं तत्कुष्ठं विषमं स्मृतम् ॥ १२ ॥

औदुम्बरं कुष्ठमाह—

रुग्दाहरागकण्डूभिः परीतं रोमपिञ्जरम् ।
 उदुम्बरफलाभासं कुष्ठमौदुम्बरं वदेत् ॥ १३ ॥

मण्डलारुख्यं कुष्ठमाह—

श्वेतं रक्तं स्थिरं स्त्यानं सिग्धमुत्सन्नमण्डलम् ।
 कृच्छ्रमन्योन्यसंयुक्तं कुष्ठं मण्डलमुच्यते ॥ १४ ॥

ऋक्षजिह्वाख्यं कुष्ठमाह—

कर्कशं रक्तपर्यन्तमन्तःश्यावं सवेदनम् ।
 यदृक्षजिह्वासंस्थानमृक्षजिह्वं तदुच्यते ॥ १५ ॥

पुण्डरीककुष्ठमाह—

श्वेतं सरक्तपर्यन्तं पुण्डरीकदलोपमम् ।
रक्तान्तं दाहकण्ड्वाढ्यं चितं पद्ममिवांशुभिः ॥ १६ ॥
सोत्सेधं च सरागं च पुण्डरीकं प्रचक्षते ।

काकर्ण कुष्ठमाह—

श्वेतं ताम्रं च तैद्रूपं रजोघृष्टं विमुञ्चति ॥ १७ ॥
प्रायश्चोरसि तत्सिध्ममलाबुकुसुमोपमम् ।
पूर्वं रक्तं च कृष्णं च काकर्णन्तीफलोपमम् ॥ १८ ॥
सदाहमस्पर्शसहं सपाकं तीव्रवेदनम् ।
त्रिदोषलिङ्गं तत्कुष्ठं काकर्णं नैव सिध्यति ॥ १९ ॥

चर्माख्यं कुष्ठमाह—

अस्वेदनं महावस्तु यन्मत्स्यशकलोपमम् ।
तदेव कुष्ठं चर्माख्यं बहलं हस्तिचर्मवत् ॥ २० ॥

किदिभं कुष्ठमाह—

इयावं किणखरस्पर्शं परुषं किदिभं मतम् ।

अलसककुष्ठमाह—

वैपादिकं पाणिपादस्फुटनं तीव्रवेदनम् ॥ २१ ॥
रक्तैरलसकं कुष्ठं गण्डैः कण्डूयनैश्चितम् ।

चर्मदलाख्यं कुष्ठमाह—

सकण्डूरागपिटकादद्रुमण्डलमुद्गतम् ॥ २२ ॥
रक्तं सशोथं कण्डूमत्सस्फोटं दलयत्यपि ।
तच्चर्मदलमाख्यातमस्पर्शसहमुच्यते ॥ २३ ॥

कच्छुकुष्ठमाह—

सूक्ष्मा बह्वयः पिटकाः स्राववत्यः

पामेत्युक्ताः कण्डुमत्यः सदाहाः ।

सैव स्फोटैस्तीव्रदाहैरुपेता

ज्ञेया पाणयोः कच्छुरुग्रा स्फिजोश्च ॥ २४ ॥

स्फोटकुष्ठमाह—

स्फोटाः इयावारुणाभासा विस्फोटाः स्युस्तनुत्वचः ।

शतारुराह—

रक्तं श्यावं सदाहार्ति शतारुः स्याद्बहुव्रणम् ॥ २५ ॥

विचर्चिकामाह—

सकण्डूपिटका श्यावा बहुस्रावा विचर्चिका ।

श्वित्रमाह—

पाण्डुरं श्वित्रमित्युक्तं सस्रावं कण्डुरान्वितम् ॥ २६ ॥

अनग्निदग्धजं साध्यं श्वित्रं वर्ज्यमतोऽन्यथा ।

कुष्ठकण्डूभेदविशेषमाह—

खरं श्यावारुणं रूक्षं वातकुष्ठं सवेदनम् ॥ २७ ॥

पित्तात्प्रकुपितं दाहरागास्रावान्वितं मतम् ।

कफात्क्लेदघनं स्निग्धं सकण्डूशैत्यगौरवम् ॥ २८ ॥

द्विलिङ्गं द्वन्द्वजं कुष्ठं त्रिलिङ्गं सांनिपातिकम् ।

त्वक्स्थे वैवर्ण्यमङ्गेषु कुष्ठे रौक्ष्यं च जायते ॥ २९ ॥

त्वक्स्वापो रोमहर्षश्च स्वेदस्यातिप्रवर्तनम् ।

कण्डूर्विपूयकश्चैव कुष्ठे शोणितसंश्रये ॥ ३० ॥

मांसवृत्तमाह—

बाहुल्यं वक्त्रशोषश्च कार्कश्यं पिटकोद्गमः ।

तोदस्फोटस्थिरत्वं च कुष्ठे मांससमाश्रिते ॥ ३१ ॥

मेदवृत्तमाह—

कौण्यं गतिक्षयोऽङ्गानां संभेदः क्षतसर्पणम् ।

मेदस्थानगते लिङ्गं प्रागुक्तानि तथैव च ॥ ३२ ॥

मज्जावृत्तमाह—

मासाभङ्गोऽक्षिरागश्च क्षतेषु किमिसंभवः ।

स्वरोपधातश्च भवेदस्थिमज्जासमाश्रिते ॥ ३३ ॥

दम्पत्योः कुष्ठबाहुल्याद्दुष्टशोणितशुक्रयोः ।

यदपच्यं तयोजातं ज्ञेयं तदपि कुष्ठितम् ॥ ३४ ॥

साध्यं त्वग्रक्तमांसस्थं वातश्लेष्माधिकं च यत् ।

मेदसि द्वन्द्वजं याप्यं वर्ज्यं मज्जास्थिसंश्रितम् ॥ ३५ ॥

असाध्यत्वमाह—

कृमिकृद्वाहमन्दाग्निसंयुक्तं च त्रिदोषजम् ।
प्रभिन्नं प्रस्रुताङ्गं च रक्तनेत्रं हतस्वरम् ॥ ३६ ॥
पञ्चकर्मगुणातीतं कुष्ठं हन्तीह कुष्ठिनम् ।

दोषाश्रितकुष्ठमाह—

वातेन कुष्ठं कापालं पित्तादौदुम्बरं कफात् ॥ ३७ ॥
मण्डलाख्यं विवर्ची च ऋक्षाख्यं वातपित्तजम् ।
चर्मैककुष्ठं किटिमं सिध्मालसविपादिकाः ॥ ३८ ॥
वातश्लेष्मोद्भवाः श्लेष्मपित्ताद्दुशतारुषी ।

सप्तधामहाकुष्ठमाह—

पुण्डरीकं सविस्फोटं पामा चर्मदलं तथा ॥ ३९ ॥
सर्वेषां कारणं पूर्वं त्रिकं ददु सकाकणम् ।
पुण्डरीकसृक्षजिह्वं महाकुष्ठानि सप्त तु ॥ ४० ॥

कुष्ठभेदवर्णमाह—

कुष्ठैकसंभवं श्वित्रं किलासं वारुणं च यत् ।
निर्दिष्टमपरिस्रावि त्रिधातूद्भवसंश्रयम् ॥ ४१ ॥
वातादुक्षारुणं पित्तात्ताम्रं कमलपत्रवत् ।
सदाहं लोमविध्वंसि कफाच्छ्वेतं घनं गुरु ॥ ४२ ॥
सकण्डूरं क्रमाद्रक्तं मांसमदस्सु चाऽऽदिशेत् ।
वर्णेन चेदमुभयं कृच्छ्रं तच्चोत्तरोत्तरम् ॥ ४३ ॥

तन्मध्ये वर्जनमाह—

अशुक्ललोमबहुलमसंसृष्टमथो नवम् ।
अनग्निदग्धजं साध्यं श्वित्रं वर्ज्यमतोऽन्यथा ॥ ४४ ॥

विशेषवर्जनमाह—

गुह्यपाणितलोष्ठेषु जातमप्यचिरंतनम् ।
वर्जनीयं विशेषेण किलासं सिद्धिमिच्छता ॥ ४५ ॥
स्पर्शकाहारशय्यादिसेवनात्प्रायशो गदाः ।
सर्वे संचारिणो नेत्रत्वग्त्रिकारा विशेषतः ॥ ४६ ॥

प्रसङ्गाद्वात्रसंस्पर्शान्निश्वासात्सहभोजनात् ।
सहशय्यासनाच्चापि वस्त्रमाल्यानुलेपनात् ॥ ४७ ॥
कुष्ठं ज्वरश्च शोषश्च नेत्राभिष्यन्द एव च ।
औपसर्गिकरोगाश्च संक्रामन्ति नरान्नरम् ॥ ४८ ॥

इति कुष्ठनिदानम् ।

अथ चिकित्सा—

वातोत्तरेषु सर्पिर्वमनं श्लेष्मोत्तरेषु कोष्ठेषु ।
पित्तोत्तरेषु मोक्षो रक्तस्य विरेचनं विहितम् ॥ ४९ ॥
सर्पिर्महानीलमुशन्ति वाते पित्ते महातिक्तकमेव तज्ज्ञाः ।
तैलं तु शैरीषमुशन्ति कुष्ठे श्लेष्मात्मकेऽभ्यञ्जनपानयोगे ॥ ५० ॥

रक्तस्रावमाह—

प्रच्छन्नैर्वा जलौकाभिः शृङ्गार्थैर्लाबुशैराव्यधैः ।
स्निग्धस्य मोक्षयेत्कुष्ठे दुष्टं रक्तं पुनः पुनः ॥ ५१ ॥

तस्य क्रियामाह—

स्रुते रक्ते हृते दोषे स्नेहैः संशमितेऽनिले ।
रसायनानि प्राशाश्च प्रशस्ताः कुष्ठिर्ना मताः ॥ ५२ ॥

तस्योपचारः—

वचावासापटोलानां निम्बस्य फलिनीत्वचः ।
कषायो मधुना पीतो वान्तिकृन्मदनान्वितः ॥ ५३ ॥

इति वमने पञ्चकषायः ।

विरेचनं प्रयोक्तव्यं त्रिवृद्दन्तीफलत्रिकैः ।
षष्ठे मासे शिरामोक्षं प्रतिमासे विरेचनम् ॥ ५४ ॥
प्रतिपक्षे च वमनं कुष्ठे लेपं ज्यहे चरेत् ।

लेपमाह—

पथ्याकरञ्जसिद्धार्थनिशावल्गुजसैन्धवैः ॥ ५५ ॥
विडङ्गसहितैः पिष्टैर्लेपो मूत्रेण कुष्ठजित् ।
एलाकुष्ठविडङ्गानि शताह्वा चित्रकं बला ॥ ५६ ॥
दन्ती रसाञ्जनं चेति लेपः कुष्ठविनाशनः ।

अथ सोमराजीबाकूचीचूर्णम्—

सोमराजीमवं चूर्णं शृङ्गबेररसाञ्जनम् ।

उद्धर्तनमिदं हन्ति कुष्ठं रोगकृदास्पदम् ॥ ५७ ॥

इति सोमराजीबाकूचीचूर्णम् ।

तस्य प्रदेहमाह—

मनःशिलाले मरिचांनि तैलमाकं पयः कुष्ठहरः प्रदेहः ।

करञ्जबीजैडगजं सकुष्ठं गोमूत्रपिष्टं च परः प्रदेहः ॥ ५८ ॥

लेपमाह—

धात्रीस्तुहीसर्जरसचक्रमर्दतुषोदकैः ।

कच्छूदद्वहरो लेपः कण्डुत्वग्दोषनाशनः ॥ ५९ ॥

शृगालकर्कटीमूलं हविषा ब्रह्मचारिणा ।

निपीतं शमयत्याशु कुष्ठरोगमसंशयम् ॥ ६० ॥

पर्णानि पिष्ट्वा चतुरङ्गुलस्य तक्त्रेण पर्णान्यथ काकमाच्याः ।

तैलितगात्रस्य नरस्य कुष्ठान्युन्मूलयेदश्वरिपुच्छदैर्वा ॥ ६१ ॥

एडगजकुष्ठसैन्धवसौवीरकसर्षपैः क्रिमिघ्नैश्च ।

क्रिमिसिध्मदद्गुमण्डलकुष्ठानां नाशनो लेपः ॥ ६२ ॥

त्रिफलामुस्तपिण्डीतदार्वाशम्याकवत्सकाः ।

सिद्धार्थः कुष्ठमुच्चायं स्नानपानप्रलेपनैः ॥ ६३ ॥

गुञ्जाचित्रकशङ्खमस्मरजनीदूर्वाभयालाङ्गुली-

स्तुक्सिन्धूत्थकुमारिकाजलधरार्कक्षीरधूमेशजैः ॥

दद्वघ्नेडगजाविडङ्गमरिचक्षौद्रैश्च खारीयुतैः

कार्यं वै गजचर्मवद्वुरकसाकण्डूघ्नमुद्धर्तनम् ॥ ६४ ॥

कासमर्दकमूलानि सौवीरेण तु पेषयेत् ।

दद्वकिटिमकुष्ठानि जयेदेतत्प्रलेपनात् ॥ ६५ ॥

बीजानि वा सर्षपमूलकानां लाक्षारजन्यौ प्रपुञ्जाटबीजम् ।

श्रीवेष्टकं व्योषविडङ्गकुष्ठं पिष्ट्वा च सूत्रेण विलेपनं स्यात् ॥

दद्वूणि सिध्मं किटिमानि पामां कपालकुष्ठं विषमं च हन्युः ॥ ६६ ॥

आरग्वधस्य पत्राणि आरनालेन पेषयेत् ।

दद्वकिटिमकुष्ठानि हन्ति सिध्ममसंशयम् ॥ ६७ ॥

प्रपुन्नाटस्य बीजानि धात्री सर्जरसः स्नुही ।
 सौवीरपिष्टं दद्रूणामेतदुद्धर्तनं परम् ॥ ६८ ॥
 दूर्वाभयासैन्धवचक्रमर्दकुठेरकाः काञ्चित्कतक्रपिष्टाः ।
 त्रिभिः प्रलेपैरपि बद्धमूलां दद्रूं च कण्डूं च विनाशयन्ति ॥ ६९ ॥
 शिखरीरसेन पिष्टं मूलकबीजं प्रलेपतः सिध्मम् ।
 क्षारेण कदल्या वा रजनीमिश्रेण नाशयति ॥ ७० ॥

अथ केसरषष्ठयोगः—

कुष्ठं मूलकबीजं प्रियङ्गवः सर्षपा दुरालम्भा ।
 एतत्केसरषष्ठं निहन्ति चिरकालजं सिध्मम् ॥ ७१ ॥
 इति केसरषष्ठयोगः ।

अथ प्रपुन्नाटादिलेपः—

गन्धपाषाणमिश्रेण यवक्षारेण लेपितम् ।
 सिध्मं नाशमुपैत्याशु कटुतैलयुतेन च ॥ ७२ ॥
 कासमर्दकबीजानि मूलकानां तथैव च ।
 गन्धपाषाणमिश्राणि सिध्मानां परमौषधम् ॥ ७३ ॥
 बीजं मूलकजं निम्बपत्राणि सितसर्षपान् ।
 गृहधूमं च संपिष्य जलेनाङ्गं प्रलेपयेत् ॥ ७४ ॥
 उद्धर्त्य नवनीतेन क्षालयेदुष्णवारिणा ।
 उग्रहादनेन सिध्मानि शाम्यन्त्याशु शरीरिणाम् ॥ ७५ ॥
 लाक्षा श्रीवेष्टकं कुष्ठं हरिद्रे गौरसर्षपाः ।
 व्योषं मूलकबीजानि प्रपुन्नाटफलानि च ॥ ७६ ॥
 एतान्यम्लप्रपिष्टानि कुष्ठेषूद्धर्तनं परम् ।
 सिध्मानां किटिमानां च दद्रूणां च विशेषतः ॥ ७७ ॥
 प्रपुन्नाटार्कदुग्धानि दन्तीजन्तुघ्नसैन्धवैः ।
 गृहधूमनिशायुग्मसिंहीफलविषैः समैः ॥ ७८ ॥
 लेपः समस्तकुष्ठघ्नः सुप्तिवैवर्ण्यनाशनः ।
 इति प्रपुन्नाटादिलेपः ।

अथ स्वादिरोदकम्—

प्रलेपाद्धर्तनस्नानपानभोजनकर्मसु ॥ ७९ ॥

शीतलं खादिरं वारि सर्वत्वग्दोषनाशनम् ।
 दह्यमानाच्च्युतः कुम्भे समूलात्खदिराद्रसः ।
 साज्यधात्रीरसक्षौद्रो हन्यात्कुष्ठं रसायनः ॥ ८० ॥

इति खादिरोदकम् ।

अथ खदिराष्टकक्राथः—

निम्बपत्रशतं पिष्ट्वा निम्बामलकमेव च ।
 विडङ्गबाकुचीकल्कं पिबेद्वा कुष्ठनाशनम् ॥ ८१ ॥
 श्वेतकरवीरमूलं कुटजकरञ्जत्वचो दाव्याः ।
 सुमनःप्रवालयुक्तो लेपः कुष्ठापहः सिद्धः ॥ ८२ ॥
 खदिरत्रिफलानिम्बपटोलासृतवासकैः ।
 अष्टकोऽयं जयेत्कुष्ठकण्डूविस्फोटकानि च ।
 विसर्पधामाकिटिभरोमान्तिकमसूरिकाः ॥ ८३ ॥

इति खदिराष्टकक्राथः ।

अथ नवकषायः—

त्रिफलानिम्बपटोलं मञ्जिष्ठा रोहिणी वचा रजनी ।
 एष कषायोऽभ्यस्तो निहन्ति कफपित्तजं कुष्ठम् ॥ ८४ ॥

इति नवकषायः ।

अथ लघुमञ्जिष्ठादिक्राथः—

मञ्जिष्ठा त्रिफला तिक्ता वचा दारुनिशाऽमृता ।
 निम्बश्चैषां कृतः क्राथः सर्वकुष्ठानि नाशयेत् ॥ ८५ ॥

इति लघुमञ्जिष्ठादिक्राथः ।

अथ सामान्यमञ्जिष्ठादिकषायः—

मञ्जिष्ठा कुटजाऽमृता घनवचा शुण्ठी हरिद्राद्वयं
 क्षुद्रारिष्टपटोलकुष्ठकटुकाभार्गीविडङ्गाग्निकम् ।
 मूर्वादारुकलिङ्गभृङ्गमगधात्रायन्तिपाठावरी-
 गायत्रीत्रिफलाकिरातकमहानिम्बोषणारग्वधम् ॥ ८६ ॥
 श्यामावल्गुजचन्दनं वरुणकं पूतीकशाखोटकं
 वासापर्पटसारिवाप्रतिविषानन्ताविशालाजलम् ।

मञ्जिष्ठादिमिमं कषायविधिना नित्यं पुमान्यः पिबेत्
त्वग्दोषाद्याचिरेण यान्ति निलयं कुष्ठानि चाष्टादश ॥८७॥

इति सामान्यमञ्जिष्ठादिकषायः ।

अथ मध्यममञ्जिष्ठादिकषायः—

मञ्जिष्ठा बाकुची चक्रमर्दत्वक्पिचुमन्दकः ।
हरीतकी हरिद्रा च धात्री वासा शतावरी ॥ ८८ ॥
बला नागबला यष्टी मधुकं क्षुरकोऽपि च ।
पटोलस्य लतोशीरं गुडूची रक्तचन्दनम् ॥ ८९ ॥
मञ्जिष्ठादिरयं क्वाथः कुष्ठानां नाशनः परः ।
वातरक्तस्य संहर्ता कण्डूमण्डलखण्डनः ॥ ९१ ॥

इति मध्यममञ्जिष्ठादिकषायः ।

बृहंस्तु वातरक्ते द्रष्टव्यः ।

अथ वृद्धमञ्जिष्ठादिकषायः—

मञ्जिष्ठा त्रिफला प्रियङ्गुरमृता ब्राह्मी वचा पौष्करं
मृङ्गाख्यस्त्रिकटुः किरातकविषानिर्गुण्डिकारग्वधाः ।
त्रायन्ती खदिरं कटुत्वचवृकीपीताद्वयं रोहिणी
तिक्तापर्पटवासकेन्द्रफलनीनन्ताविशालागदम् ॥ १०० ॥
एरण्डं पिचुमन्दचित्रकवरीभार्गीमलेन्दीसटी
पिल्वानीधवमूलपाडलत्रिवृत्तेजस्विनीवालकम् ।
दन्तीमूलपलाशचन्दनयुगं मुण्डी विडङ्गं त्वचौ
अर्कयोररणी(?)करञ्जधवयोः पर्णानि मूलानि च ॥ १ ॥
क्षुद्राह्वाद्रयदारु++जलदाकह्लारकं कोलक-
मेभिः सिद्धमिमं पटोलसहितं क्वाथं चतुष्पष्टिकम् ।
अष्टांशेन विपाचयेच्च मतिमान्पक्त्वाऽल्पमृद्धाजने
धीत्वा हन्ति खडं सपित्तपवनं कुष्ठानि चाष्टादश ॥ २ ॥

इति वृद्धमञ्जिष्ठादिकषायः ।

अथ गुडूच्यादिक्वाथः—

छिन्नामूर्वाविशालातिविषवृकिशिखीभीरुशिग्रवग्निमन्थो-
ग्राक्षातुर्जतिरास्त्रात्रिकटुकचविका द्वे क्षपे पञ्चकाष्ठम् ।

गोपीपञ्चाङ्गुलालावृषजलजलदारग्वधाः शक्रबिल्वो
ब्राह्मी बाकूचिदूर्वामरखदिरशताह्वाश्वगन्धाजसोदाः॥३॥

शोथघ्नीजीवनीद्राविडसटिजटिला धन्वयासस्त्रिकण्टु-

भूनिम्बो निम्बबिम्बीसुरसुमनबलाचक्रमर्दाः पटोली ।

निर्गुण्डी पर्पटो मार्कवजरणशमीतालिसं चन्दने द्वे

पद्मं मञ्जिष्ठीनीलीत्रिफलकृमिहरं सारिणीसिन्धुकुष्ठम् ॥ ४ ॥

लोध्रं फूती मधूकं शिखरिजलरुहं सर्वमेतत्समांशं

कृत्वा क्वाथो हि सेव्यः सकलतनुगतं रक्तवातं खुडं च ।

उत्तानं चावगाढं पवनकफभवं पित्तरोगं ह्युददं

कुष्ठं चाष्टादशाख्यं व्रणकृमिजठरं शोफशूलज्वरांश्च ॥ ५ ॥

ददं कण्डूं च शोफं प्रदरगदजरार्शःप्रमेहान्निहिनस्ती-

हाभ्यासादस्य मर्त्यो वालितपलितविहीनो गुडूच्यादियोगः ॥ ६ ॥

इतिगुडूच्यादिकाथः ।

अथ शुण्ठ्यादिमहाकषायः—

शुठी निम्बकिराततिक्तककणाः पाठा हरिद्राद्वयं

त्रायन्ती त्रिफलाऽमृताऽब्दकटुका वासा वचा बाकुची ।

मञ्जिष्ठाऽतिविषा दुरालभमहानिम्बाग्निषड्ग्रन्थिका

व्याधिघ्ना गजचिर्भटा सकुटजा मार्गी समुस्ता यवाः ॥ ७ ॥

मूर्वा चैव पटोलपत्रसहिता रक्तं तथा चन्दनं

श्यामा पर्पटसारिवा कृमिहरा गायत्रिकासंयुता ।

गोमूत्रेण महाकषायसरुणोज्झूते पिबेद्यः पुमान् ।

तस्याष्टादश यान्ति नाशमचिरात्कुष्ठानि दुष्टान्यपि ॥ ८ ॥

इति शुण्ठ्यादिमहाकषायः ।

अथ धतूरकादितैलम्—

तिलाज्यत्रिफलाक्षौद्रव्योषमल्लातशर्कराः ।

वृष्याः सप्तमको मेध्यः कुष्ठहा कामचारिणः ॥ ९ ॥

छिन्नायाः स्वरसं चापि सेवमानो यथाबलम् ।

जीर्णे घृते न भुञ्जीत मुद्गयूषौदनैर्नरः ।

अपि पूतिशरीरोऽपि दिव्यरूपी भवेद्भुवम् ॥ १० ॥

इन्द्रासनपञ्चरजो मधुना सितयाऽथ सर्पिषा सहितम् ।

खादेदशेषकुष्ठक्षयकरमस्मात्परं नास्ति ॥ ११ ॥

दहति पतितमात्रं कुष्ठजातीरशेषाः

कुलिशमिव सरोषाच्छक्रहस्ताद्विमुक्तम् ॥ १२ ॥

चक्राङ्कुबीजं स्नुक्क्षीरभावितं मूत्रसंयुतम् ।

रवितप्तं सकिण्वं च लेपनं किटिभापहम् ॥ १३ ॥

पिप्पलीपूतिकायस्थाकुष्ठगोपितचित्रकैः ।

लेपं सम्यक्प्रशंसन्ति किटिमग्नं चिकित्सकाः ॥ १४ ॥

गोमूत्रवारिसंपिष्टैः शिलाकासीसतुत्थकैः ।

लेपः किटिभवीसर्पकुष्ठनाशाय पूजितः ॥ १५ ॥

राजिकागुडयुक्तेन सैन्धवेन प्रलेपितम् ।

विडालचर्मणा बद्धं नाशं चर्मदलं व्रजेत् ॥ १६ ॥

शैलेयकम्पिलुकयष्टिसाहसौराष्ट्रिकासर्जरसोपलानि ।

शिला च चूर्णो नवनीतयुक्तः कुष्ठे स्रवत्यभ्यधिकः प्रदिष्टः ॥ १७ ॥

धत्तूरबीजकल्केन माणकक्षारवारिणा ।

कटुतैलं विषकं तु द्रुतं हन्याद्विपादिकाम् ॥ १८ ॥

इति धत्तूरकादितैलम् ।

आवल्गुजं कासमर्दं चक्रमर्दं निशायुतम् ।

माणिमन्थेन तुल्यांशं रक्तकाञ्जिकपेषितम् ।

कच्छूं कण्डूं जयत्युग्रां सिद्ध एष प्रयोगराट् ॥ १९ ॥

कोमलसिंहास्यदलं सनिशं सुरभीजलेन संपिष्टम् ।

दिवसत्रयेण नियतं शमयति कच्छूं विलेपनतः ॥ २० ॥

हरिद्राकल्कसंयुक्तं गोमूत्रस्य पलद्वयम् ।

पिबेन्नरः कामचारी कच्छूपामाविनाशनम् ॥ २१ ॥

गन्धपाषाणचूर्णं तु कटुतैलेन योजितम् ।

लेपनादथ पानाद्वा कच्छूपामाविनाशनम् ॥ २२ ॥

अथ सिन्दूरायं तैलम्—

सिन्दूरगुग्गुलुरसाञ्जनसिक्थतुत्थैः

कल्कीकृतैः कटुकतैलमिदं सुपक्वम् ।

कच्छूं स्रवत्पिटकिकामथ वाऽपि शुष्का-
मभ्यञ्जनेन सकृदुद्धरति प्रसह्य ॥ २३ ॥

इति सिन्दूराद्यं तैलम् ।

अथ बृहत्सिन्दूराद्यं तैलम्—

सिन्दूरं चन्दनं मांसीं विडङ्गं रजनीद्वयम् ।
प्रियङ्गु पद्मकं कुष्ठं मञ्जिष्ठां खदिरं वचाम् ॥ २४ ॥
जात्यकं त्रिवृतां निम्बं करञ्जं विषमेव च ।
कृष्णाचित्रकलोध्रं च प्रपुन्नाटं च संहरेत् ॥ २५ ॥
श्लक्ष्णपिष्टानि सर्वाणि योजयेत्तैलमात्रया ।
अभ्यङ्गेन प्रयोज्यं तद्वर्णकृत्कुष्ठनाशनम् ॥ २६ ॥
पामां विचर्चिकां कच्छूं विसर्पं विषमेव च ।
रक्तपित्तोत्थितान्हन्ति रोगानेवंविधान्बहून् ।
सिन्दूराद्यमिदं तैलमश्विभ्यां निर्मितं पुरो ॥ २७ ॥

इति बृहत्सिन्दूराद्यं तैलम् ।

अथ निशादिप्रलेपः—

निशासुधारग्वधकाकमाचीपत्रैः सदावीप्रपुन्नाटबीजैः ।
तक्रेण पिष्टैः कटुतैलमिश्रैः पामादिषूद्वर्तनमेतदिष्टम् ॥ २८ ॥

इति निशादिप्रलेपः ।

अथ जीरकतैलम्—

मोशकृत्सिन्धुसंयुक्तं रजनीमाक्षिकेण तु ।
पिष्ट्वा प्रलेपनं योज्यं पामाकच्छूविनाशनम् ॥ २९ ॥
सैन्धवं चक्रमर्दं च सर्षपं पिप्पलीं तथा ।
सेचयेदास्नालेन पामाकण्डूविनाशनम् ॥ ३० ॥
मांसीचन्दनशम्याककरञ्जारिष्टसषपम् ।
यष्टीकुटजदावीभिर्हन्ति कण्डूमयं गणः ॥ ३१ ॥
जीरकस्य पलं पिष्ट्वा सिन्दूरार्धपलं तथा ।
कटुतैलं पचेदाभ्यां सद्यः पामाहरं परम् ॥ ३२ ॥
वृद्धवैद्योपदेशेन पाच्यं तैलं पलायकम् ।

इति जीरकतैलम् ।

अथार्कतैलम्—

अर्कपत्ररसे पक्वं रजनीकल्कसंयुतम् ।

कटुतैलं हरेत्तूर्णं मासात्कच्छूं विचर्चिकाम् ॥ ३३ ॥

इत्यर्कतैलम् ।

अथ त्रिफलागुटिका—

त्रिफलारुष्करलोहैः सावल्गुजभृङ्गलौङ्गलीव्योषैः ।

सगुडैर्वराहकन्दैः पलिकैरेकत्र संमिश्रैः ॥ ३४ ॥

गुटिकां प्रकल्प्य स्वादेदकैकामक्षसंमितां प्रातः ।

कुष्ठं दद्भुकिलासं जित्वा वर्षेण सर्वथा पलितम् ।

जीवति वर्षशतं वै दीप्तहुताशो युवेव सोत्साहः ॥ ३५ ॥

इति त्रिफलागुटिका ।

अथ शशाङ्कलेखादिलेहः—

शशाङ्कलेखा सविडङ्गसारा सपिप्पलीका सहुताशमूला ।

सायोमला सामलका सतैला सर्वाणि कुष्ठानि निहन्ति लीढा ॥ ३६ ॥

इति शशाङ्कलेखादिलेहः ।

अथ त्रिफलामोदकः—

त्रैफलस्य तु चूर्णस्य पलानि दशपञ्च च ।

सप्त चैव विडङ्गानां लोहचूर्णं पलद्वयम् ॥ ३७ ॥

शतं भल्लातकानां च पलानि दश बाकुची ।

शिलाजतु पले द्वे तु द्वे पले गुग्गुलोस्तथा ॥ ३८ ॥

पलं पुष्करमूलस्य पलार्धं पलमेव च ।

सचित्रकं समरिचं पिप्पली विश्वभेषजम् ॥ ३९ ॥

त्वक्पत्रं कुङ्कुमं मुस्ता कार्षिकानुपकल्पयेत् ।

यावन्त्येतानि चूर्णानि तावत्खण्डं प्रदापयेत् ॥ ४० ॥

पलिकान्मोदकान्कृत्वा प्रातरुत्थाय नित्यशः ।

एकैकं मक्षयेत्प्राज्ञो यथेष्टं चात्र भोजनम् ॥ ४१ ॥

कुष्ठान्यष्टादशानीह प्लीहगुल्ममगंदरान् ।

अशीतिं वातजान् रोगांश्च त्वारिंशच्च पित्तजान् ॥ ४२ ॥

विंशतिं श्लैष्मिकांश्चापि संसृष्टान्सांनिपातिकान् ।
 शालाक्यगतरोगांश्च शिरोक्षिभूगतांस्तथा ॥ ४३ ॥
 कण्ठतालुगतांश्चैव जिह्वायामुपजिह्वकम् ।
 ऊर्ध्वजङ्घगते रोगे भुक्तस्योपरि शीलयेत् ॥ ४४ ॥
 शरीरे दापयेत्पूर्वमौदरे मध्यभोजने ।
 निर्दिष्टरोगाञ्छमयेत्क्रियमाणं रसायनम् ॥ ४५ ॥

इति त्रिफलामोदकः ।

अथ पञ्चनिम्बचूर्णम्—

पिचुमन्दफलं पुष्पं त्वक्पत्रं मूलमेव च ।
 पञ्चैतानि सुसूक्ष्माणि समचूर्णानि कारयेत् ॥ ४६ ॥
 अष्टभागावशेषेण खदिरासनवारिणा ।
 भावयित्वा तु संयोज्य द्रव्याण्येतानि दापयेत् ॥ ४७ ॥
 चित्रकोप्यविडङ्गानि व्याधिघातकशर्करान् ।
 मल्लातकहरीतक्यौ शुण्ठ्यामलकगोक्षुरान् ॥ ४८ ॥
 चक्रमर्दकबाकूच्यौ पिप्पलीं मरिचं निशाम् ।
 लोहचूर्णसमायुक्तं समभागं प्रमाणतः ॥ ४९ ॥
 भावयेद्भृङ्गराजेन पुनः शुष्काणि कारयेत् ।
 निम्बार्धचूर्णमेतेषामेकीकृत्य निधापयेत् ॥ ५० ॥
 बिडालपदमात्रं तु सर्पिषा पयसाऽपि वा ।
 प्रातः प्रातर्निषेवेत खदिरासनवारिणा ॥ ५१ ॥
 परिहारो न चान्योऽस्ति पञ्चनिम्बेऽवतिष्ठति ।
 मासमात्रप्रयोगेण कुष्ठं हन्ति रसायनम् ॥ ५२ ॥
 त्वग्दोषं नीलिकाव्यङ्गं तथैव तिलकालकान् ।
 अष्टादशविधं कुष्ठं सप्त चैव महाक्षयान् ॥ ५३ ॥
 सर्वव्याधिविनिर्मुक्तो जीवेद्द्वर्षशतं सुखी ।

इति पञ्चनिम्बचूर्णम् ।

अथ सर्वाङ्गसुन्दरी गुटिका—

मल्लातकसहस्रैकं त्रिफलावारिणि क्षिपेत् ॥ ५४ ॥

द्रोणमात्रे पचेत्तावद्यावत्पादांशोषितम् ।
 शर्कराया दश पलान्येकं बाकूचिकापलम् ॥ ५५ ॥
 तथैवात्रैव देयानि पलानि दश गुग्गुलोः ।
 खदिरारिष्टमञ्जिष्ठाबीजकं चेन्द्रवारुणी ॥ ५६ ॥
 चित्रकं द्वे हरिद्रे च देवदारु हरीतकी ।
 मार्गी वचेति सर्वेषां प्रत्येकं च पलार्धकम् ॥ ५७ ॥
 प्रक्षिप्य गुटिका कार्या नाम्ना सर्वाङ्गसुन्दरी ।
 प्रत्यहं भक्षयेत्कुष्ठी त्वेतां बदरमात्रया ॥ ५८ ॥
 सर्वाण्येवोग्रकुष्ठानि शीघ्रमेव व्यपोहति ।

इति सर्वाङ्गसुन्दरी गुटिका ।

अथैकविंशतिको गुग्गुलुः—

चित्रकं त्रिफला व्योषमजाजी कारवी वचा ॥ ५९ ॥
 सैन्धवातिविषे कुष्ठं चव्यैलायावशूकजम्बू ।
 विडङ्गगन्यजमोदा च मुस्तान्यमरदारु च ॥ ६० ॥
 यावन्त्येतानि सर्वाणि तावन्मात्रं च गुग्गुलुम् ।
 संकुट्य सर्पिषा सार्धं गुटिकां कारयेद्भिषक् ॥ ६१ ॥
 प्रातर्भोजनकाले वा भक्षयेत्तु यथाबलम् ।
 हन्त्यष्टादश कुष्ठानि कृमिदुष्टव्रणानपि ॥ ६२ ॥
 ग्रहण्यर्शोविकारांश्च मुखामयगलग्रहान् ।
 गृध्रसीमथ भग्नं च गुल्मं चापि नियच्छति ।
 व्याधीन्कुष्ठगतांश्चान्याञ्जयेद्विष्णुरिवासुराम् ॥ ६३ ॥

इत्येकविंशतिको गुग्गुलुः ।

अथ तिक्तषट्पलकं घृतम्—

निम्बपटोलं दावीं दुरालभां तिक्तरोहिणीं त्रिफलाम् ।
 कुर्यादर्धपलांशान्पटकं त्रायमाणं च ॥ ६४ ॥
 सलिलाढकसिद्धानां रसेऽष्टभागस्थिते क्षिपेत्पूते ।
 चन्दनकिराततिक्तकमागधिकात्रायमाणं च ॥ ६५ ॥
 मुस्तं वत्सकबीजं कल्कीकृत्यार्धकार्षिकान्मागान् ।
 नव सर्पिषश्च षट्पलमेतत्सिद्धं घृतं पेयम् ॥ ६६ ॥

कुष्ठज्वरगुल्माशौग्रहणीषाण्ड्वामयान्हन्ति ।

पामाविसर्पपिटकाकण्डूगण्डवणान्सिद्धम् ॥ ६७ ॥

इति तिक्तषट्पलकं घृतम् ।

अथ पञ्चतिक्तकं घृतम्—

निम्बं पटोलं व्याघ्रीं च गुडूचीं वासकं तथा ।

कुर्याद्दशपलान्मागानैकैकस्य सुकुट्टितान् ॥ ६८ ॥

जलद्रोणे विपक्तव्यं यावत्पादावशेषितम् ।

घृतप्रस्थं पचेत्तेन त्रिफलागर्भसंयुतम् ॥ ६९ ॥

पञ्चतिक्तमिदं ख्यातं सर्पिः कुष्ठविनाशनम् ।

अशीतिं वातजान् रोगांश्च त्वारिंशच्च पैत्तिकान् ॥ १७० ॥

विंशतिं श्लैष्मिकांश्चैव पानादेवापकर्षति ।

दुष्टव्रणक्रिमीनर्शः पञ्च कासांश्च नाशयेत् ॥ ७१ ॥

इति पञ्चतिक्तकं घृतम् ।

अथ तिक्तकं घृतम्—

त्रिफलाद्विनिशावासायासपर्पटकूलकान् ।

त्रायन्तीकटुकानिम्बान्प्रत्येकं द्विपलोन्मितान् ॥ ७२ ॥

क्वाथयित्वा जलद्रोणे पादशेषस्थितेन तु ।

घृतप्रस्थं पचेद्द्व्यक्षैः पिप्पलीघनचन्दनैः ॥ ७३ ॥

त्रायन्तीशक्रभूनिम्बास्तत्पीतं तिक्तकं घृतम् ।

हन्ति कुष्ठज्वराशांसि श्वयथुं ग्रहणीगदम् ।

पाण्डुरोगं विसर्पं च प्लीहानमपि शस्यते ॥ ७४ ॥

इति तिक्तकं घृतम् ।

अथ महातिक्तकं घृतम्—

सप्तच्छदं प्रतिविषां शम्याकं तिक्तरोहिणीं पाठाम् ।

मुस्तमुशीरं त्रिफलां पटोलपिचुमन्दपर्पटकम् ॥ ७५ ॥

धन्वयवासकचन्दनमुपकुल्यां पद्मकरजन्यौ च ।

षड्ग्रन्थां सविशालां शतावरीं सारिबे चोमे ॥ ७६ ॥

वत्सकबीजं वासां मूर्वांमृतां किराततिक्तं च ।

कल्कान्कुर्यान्मतिमान्यष्ट्याहं त्रायमाणं च ॥ ७७ ॥

कल्कस्य चतुर्भागो जलमष्टगुणं रसोऽमृतफलानाम् ।

द्विगुणो घृतात्प्रदेयस्तत्सर्पिः पाययेत्सिद्धम् ॥ ७८ ॥

कुष्ठानि रक्तपित्तं प्रबलान्यशांसि रक्तवाहीनि ।
 वीसर्पं रक्तोत्थं वातासृक्पाण्डुरोगं च ॥ ७८ ॥
 विस्फोटकान्सपामानुन्मादान्कामलां ज्वरं कण्डूम् ।
 हृद्रोगगुल्मपिडका असृग्दरं गण्डमालां च ॥ १८० ॥
 हन्यादेतत्सद्यः पीतं काले यथाबलं सर्पिः ।
 योगशतैरप्यजितान्महाविकारान्महातिक्तम् ॥ ८१ ॥

इति महातिक्तकं घृतम् ।

अथ महाखादिरं घृतम्—

खदिरस्य तुलाः पञ्च शिंशपासनयोस्तुले ।
 तुलार्धाः सर्व एवैते करञ्जारिष्टवेतसाः ॥ ८२ ॥
 पर्पटः कुटजश्चैव वृषः कृमिहरस्तथा ।
 हरिद्रे कृतमालश्च गुडूची त्रिफला त्रिवृत् ॥ ८३ ॥
 सप्तपर्णश्च संक्षुण्णो दशद्रोणे तु वारिणः ।
 अष्टमागावशेषं तु कषायमवतारयेत् ॥ ८४ ॥
 धात्रीरसं च तुल्यांशं सर्पिषश्चाऽऽढकं पचेत् ।
 महातिक्तककल्कैस्तु यथेक्तैः पलसंमितैः ॥ ८५ ॥
 निहन्ति सर्वकुष्ठानि पानाभ्यङ्गनिषेवणात् ।
 महाखादिरमित्येतत्परं कुष्ठविकारनुत् ॥ ८६ ॥

इति महाखादिरं घृतम् ।

अथ गुग्गुलुपञ्चतिक्तकं घृतम्—

न्निम्बामृतावृषपटोलनिदिग्धिकानां
 भागान्पृथग्दशपलान्विपचेद्घटेऽपाम् ।
 अष्टावशेषितरसेन सुनिःसृतेन
 प्रस्थं घृतस्य विपचेत्पिचुभागकल्कैः ॥ ८७ ॥
 पाठाविडङ्गसुरदारुगजोपकुल्या-
 द्विक्षारनागरनिशामिशिचव्यकुष्ठैः ।
 तेजोवतीमरिचवत्सकदीप्यकाग्नि-
 रोहिण्यपुष्करवचाकणमूलयुक्तैः ॥ ८८ ॥
 मञ्जिष्ठयाऽतिविषया वरया यवान्या
 संशुद्धगुग्गुलुपलैरपि पञ्चसंख्यैः ।

तत्सेवितं च विधिवत्प्रबलं समीरं

संध्यस्थिमज्जगतमप्यथ कुष्ठमीदृक् ॥ ८९ ॥

नाडीत्रणार्बुदभगंदरगण्डमाला

जत्रूर्ध्वसर्वगदशुल्मगुदोत्थमेहान् ।

वक्षमारुचिश्चसनपीनसकासशोफ-

हृत्पाण्डुरोगमदविद्रधिवातरक्तम् ॥ १९० ॥

इति गुग्गुलुपञ्चतित्तकं घृतम् ।

अथ वज्रतैलम्-

वासागुडूचीत्रिफलापटोलकरञ्जनिम्बार्जुनकृष्णवेत्रम् ।

तत्क्राथकल्केन घृतं विपक्वं तद्वज्रकं कुष्ठहरं प्रदिष्टम् ॥ ९१ ॥

विशीर्णकर्णाङ्गुलिहस्तपादः क्रिम्यर्दितो मग्नगलोऽपि मर्त्याः ।

पौराणिकीं कान्तिमवाप्य जीवेदव्याहतो वर्षशतं च कुष्ठी ॥ ९२ ॥

इति वज्रतैलम् ।

अथ तृणतैलम्-

मस्त्रिष्ठारुग्निशाचक्रमर्दारिग्वधपल्लवैः ।

तृणकस्वरसे सिद्धं तैलं कुष्ठहरं कटु ॥ ९३ ॥

इति तृणतैलम् ।

अथ वज्रतैलम्-

सप्तपर्णकरञ्जार्कमालतीकरवीरजम् ।

मूलं सुहीशिरीषाभ्यां चित्रकास्फोटयोरपि ॥ ९४ ॥

करञ्जबीजं त्रिफलां त्रिकटुं रजनीद्वयम् ।

सिद्धार्थकविडङ्गं च प्रपुन्नाटं च संहरेत् ॥ ९५ ॥

मूत्रपिष्टैः पचेत्तैलमेभिः कुष्ठविनाशनम् ।

अभ्यङ्गाद्वज्रकं नाम नाडीदुष्टत्रणापहम् ॥ ९६ ॥

इति वज्रतैलम् ।

अथ लघुमरिचायं तैलम्-

मरिचालशिलाब्दार्कपयोश्वारिजटात्रिवृत् ।

शकृद्रसविशालारुक्निशायुग्दारुचन्दनैः ॥ ९७ ॥

कटुतैलं पचेत्प्रस्थं द्यक्षैर्विषपलान्वितैः ।

सगोमूत्रं तदभ्यङ्गाद्द्रव्यैर्विनाशकृत् ॥ ९८ ॥

सर्वेष्वपि च कुष्ठेषु तैलमेतत्प्रयुज्यते ।

इति लघुमरिचाद्यं तैलम् ।

अथ बृहन्मरिचाद्यं तैलम्—

मरिचं त्रिवृता दन्ती क्षीरमार्कं शकृद्रसः ॥ १९ ॥
 देवदारु हरिद्रे द्वे मांसी कुष्ठं कुचन्दनम् ।
 विशाला करवीरं च हरितालं मनःशिला ॥ २०० ॥
 चित्रको लाङ्गलाख्या च विडङ्गं चक्रमर्दकः ।
 शिरीषः कुटजो निम्बः सप्तपर्णः सुही स्मृता ॥ १ ॥
 शम्याको नक्तमालोऽब्दः खदिरः पिप्पली वचा ।
 ज्योतिष्मती च पलिका विषस्य द्विपलं भवेत् ॥ २ ॥
 आढकं कटुतैलस्य गोमूत्रं तु चतुर्गुणम् ।
 मृत्पात्रे लोहपात्रे वा शनैर्मृद्वग्निना पचेत् ॥ ३ ॥
 पक्त्वा तैलवरं ह्येतन्म्रक्षयेत्कौष्ठिकान्वणान् ।
 पामाविचर्चिकाकण्डूदरविस्फोटकानि च ॥ ४ ॥
 वलयः पलितं छाया नीलीं व्यङ्गं तथैव च ।
 अभ्यङ्गेन प्रणश्यन्ति सौकुमार्यं च जायते ॥ ५ ॥
 प्रथमे वयसि स्त्रीणां नस्यं यासां तु दीयते ।
 परामपि जरां प्राप्य स्तना यान्ति न विक्रियाम् ॥ ६ ॥
 बलीवर्दस्तुरङ्गो वा गजो वा वायुपीडितः ।
 त्रिभिरभ्यञ्जनैर्गाढं भवेन्मारुतविक्रमः ॥ ७ ॥

इति बृहन्मरिचाद्यं तैलम् ।

अथ सर्षपादिचूर्णम्—

सर्षपकरञ्जरजनीदारुनिशादारुमञ्जिष्ठाः ।
 त्रिफला सटीपटीरश्वेतामूर्वाप्रियङ्गूमाः ॥ ८ ॥
 त्रिकटुत्रिगन्धकेसरलाक्षाश्चैषां कृतं रजः श्लक्ष्णम् ।
 उद्धूलनेन रक्तजपित्तजवातोत्थितं वाऽपि ।
 निस्तोदभेदपीडाकम्पस्फुटनं विनाशयति ॥ ९ ॥

इति सर्षपादिचूर्णम् ।

अथ विषतैलम्—

मक्तमालं हरिद्रे द्वे अर्कं तगरुमेव च ।
 करवीरवचाकुष्ठमास्फोतारक्तचन्दनम् ॥ १० ॥
 मालती सप्तपर्णी च मञ्जिष्ठा सिन्दुवारकाः ।
 एषामर्धपलान्भागान्विषस्य द्विपलं भवेत् ॥ ११ ॥
 चतुर्गुणे गवां मूत्रे तैलप्रस्थं विपाचयेत् ।
 श्वित्रविस्फोटकिटिभकीटलूताविचर्चिकाः ॥ १२ ॥
 कण्डूकच्छूविकाराश्च ये व्रणा विषदूषिताः ।
 विषतैलमिदं नान्ना सर्वव्रणविशोधनम् ॥ १३ ॥

इति विषतैलम् ।

अथ प्रक्रिया—

शुद्धसूतं पलमितं सैन्धवं च पलोन्मितम् ।
 शुद्धतालकमुष्टिं च पलार्धं शुक्तिजं रजः ॥ १४ ॥
 द्रोणपुष्पीरसे तालं घस्रं संस्थाप्य चोद्धरेत् ।
 ततो विमर्दयेत्सर्वं खल्वे कूष्माण्डजद्रवैः ॥ १५ ॥
 शुक्तिकां संपुटे दत्त्वा वस्त्रैः पलाशमस्मनि ।
 संस्थाप्य संपुटं युक्त्या सूत्रबद्धं गुरुक्त्या ॥ १६ ॥
 सभस्मवस्त्रं संवेष्ट्य तत्संवेष्ट्य मृदम्बरैः ।
 पलाशमस्मनि स्थाप्य स्वल्पहण्डीगतेऽथ तम् ॥ १७ ॥
 संमुञ्च्य शुष्कं विपचेद्गते गजमिते भिषक् ।
 स्वाङ्गशीतं समुद्धृत्य संपुटं सौषधं दृढम् ॥ १८ ॥
 कूष्माण्डवारिणा खल्वे संमर्द्यापूपिकां चरेत् ।
 पुनरेवंप्रकारेण पुटद्वन्द्वं समाचरेत् ॥ १९ ॥
 महातालेश्वरो नाम्ना रसः कुष्ठान्तकृद्भवेत् ।
 आर्द्रकद्रवसंयुक्तं दद्याद्भुञ्जोन्मितं रसम् ॥ २० ॥
 दिनत्रयं ततो गुञ्जाद्वयं वा रक्तिकात्रयम् ।
 षष्टिकामक्तमार्देण सह पथ्यं समाचरेत् ॥ २१ ॥
 यदि स्थातुं न शक्नोति तदा दुग्धौदनं चरेत् ।
 मलत्कुष्ठानि सर्वाणि हृतघ्राणाङ्गुलीनि च ॥ २२ ॥

अष्टादशापि नश्यन्ति मण्डलान्नात्र संशयः ।

इति महातालकेश्वरो रसः ।

अथान्यो महातालकेश्वरो रसः—

तालं ताप्यशिलासूतं शुद्धं सैन्धवटङ्कणम् ॥ २३ ॥

सर्मांशं चूर्णयेत्खल्वे सूताद्विगुणगन्धकम् ।

गन्धतुल्यं मृतं ताम्रं जम्बीरैर्दिनपञ्चकम् ॥ २४ ॥

मर्दितं षट्पुटेः पाच्यं भूधरे संपुटोदरे ।

पुटे पुटे द्रवैर्मर्द्यं सर्वमेतत्तु षट्पलम् ॥ २५ ॥

द्विपलं मारितं ताम्रं लोहमस्म चतुष्पलम् ।

जम्बीराम्लेन तत्सर्वं दिनं मर्द्यं पुटेऽल्लघु ॥ २६ ॥

त्रिंशदंशं विषं चास्य क्षिप्त्वा तस्य विचूर्णयेत् ।

माहिषाज्यैः संमिश्रं निष्कार्धं मक्षयेत्सदा ॥ २७ ॥

मध्वाज्यैर्बाकुचीचूर्णं कर्षमात्रं लिहेद्भु ॥

सर्वं कुष्ठं निहन्त्याशु महातालेश्वरो रसः ॥ २८ ॥

इति महातालेश्वरो रसः ।

अथ भल्लातकावलेहः—

निम्बगोपारुणाकद्वी*त्रायन्तीत्रिफलाघनम् ।

पर्पटावल्गुजानन्तावचाखदिरचन्दनम् ॥ २९ ॥

पाठाशुण्ठीसटीमार्गीवासाभूनिम्बवत्सकम् ।

श्यामेन्द्रवारुणीमूर्वाविडङ्गानि विषानलम् ॥ ३० ॥

हस्तिकर्णासृताब्दाह्वपटोलं रजनीद्वयम् ।

कृष्णारग्वधसप्ताह्वं शिरीषं चोच्चटाफलम् ॥ ३१ ॥

मञ्जिष्ठा लाङ्गुली रास्ना नक्तमालः पुनर्नवा ।

वृन्तीबीजकसारश्च भृङ्गराजकुरण्टकम् ॥ ३२ ॥

एषां द्विपलिकाम्भागाञ्जलद्रोणे विपाचयेत् ।

अष्टमागावशिष्टं च कषायमवतारयेत् ॥ ३३ ॥

भल्लातकसहस्राणि क्षिपेच्छित्त्वाऽर्मणेऽम्मासि ।

चतुर्भागावशिष्टं तु कषायमवतारयेत् ॥ ३४ ॥

* क. मृद्वी ।

तौ कषायौ समादाय वस्त्रपूतौ तु कारयेत् ।
 एकीकृत्य कषायौ तौ पुनरग्रावधिश्रयेत् ॥ ३५ ॥
 गुडस्यैकतुलां दत्त्वा लेहवत्साधयेद्भिषक् ।
 भल्लातकसहस्रस्य तत्र बीजानि दापयेत् ॥ ३६ ॥
 त्रिकटुं त्रिफलां मुस्तं विडङ्गं चित्रकं तथा ।
 चन्दनं सैन्धवं कुष्ठं दीप्यकं च पलं पलम् ॥ ३७ ॥
 चातुर्जातं च सञ्चूर्ण्य घृतभाण्डे निधापयेत् ।
 सौगन्धिकस्य दातव्यं चूर्णं पलचतुष्टयम् ॥ ३८ ॥
 महामल्लातको ह्येष महादेवेन निर्मितः ।
 प्राणिनां तु हितार्थाय नाशयेच्छीघ्रमेव तु ॥ ३९ ॥
 श्वित्रमौदुम्बरं ददुमृष्यजिह्वं सकाकणम् ।
 पुण्डरीकं च चर्माख्यं विस्फोटं रक्तमण्डलम् ॥ ४० ॥
 कृच्छ्रं कापालिकं कुष्ठं पामां चापि विपादिकाम् ।
 अशांसि षट्प्रकाराणि श्वासं कासं भगंदरम् ॥ ४१ ॥
 अनुपानेन दातव्यं छिन्नातोयेन तं भिषक् ।
 भोजनेन सदा योज्यमुष्णं चाम्लं विशेषतः ॥ ४२ ॥
 अन्यान्यपि च कुष्ठानि नाशयेन्नात्र संशयः ।

इति मल्लातकावलेहः ।

अथ कुष्ठकुठारः—

शुद्धसूतसमो गन्धो मृतायस्ताम्रगुग्गुलुः ॥ ४३ ॥
 त्रिफला च महानिम्बश्चित्रकश्च शिलाजतु ।
 इत्येतच्चूर्णितं कुर्यात्प्रत्येकं पलसंमितम् ॥ ४४ ॥
 चतुष्पष्टिः करञ्जस्य बीजचूर्णपलानि वै ।
 तावद्वेयं मृतं ताम्रं मध्वाज्याभ्यां विलोडयेत् ॥ ४५ ॥
 स्निग्धे भाण्डे स्थितं खादेद्विनिष्कं सर्वकुष्ठनुत् ।
 रसः कुष्ठकुठारोऽयं गलत्कुष्ठनिवारणः ॥ ४६ ॥

इति कुष्ठकुठारः ।

अथाष्टादशविधकुष्ठचिकित्सा—

शालिकोद्रवगोधूमयवमुद्गादयो हिताः ।
 पुराणाः कुष्ठिते तिक्तशाकजाङ्गलसंयुताः ॥ ४७ ॥

नीचलोमनखो नित्यं नित्यमौषधतत्परः ।

योषिन्मांससुरावर्जी कुष्ठी कुष्ठमपोहति ॥ ४८ ॥

इत्यष्टादशविधकुष्ठचिकित्सा ।

अथ श्वित्राण्याह—

श्वित्रिणो हृतदोषस्य हृतरक्तस्य वाऽसकृत् ।

खदिराम्बुयवान्नानां तृप्तस्य मलयूरसः ।

सगुडः शस्यते पाने यवागूमण्डमोजनः ॥ ४९ ॥

खदिरामलककषायं बाकुचिबीजान्वितं पिबेन्नित्यम् ।

शङ्खेन्दुकुन्दधवलं श्वित्रं हन्तीह तच्छीघ्रम् ॥ २५० ॥

विभीतकत्वङ्मलयूजढानां क्वाथेन पीतं गुडसंयुतेन ।

आवलगुजं बीजमपाकरोति श्वित्राणि कुष्ठान्यपि पुण्डरीकम् ॥ ५१ ॥

इति विभीतकादिक्वाथः ।

अथ स्वल्पनीलीधृतम्—

मेचकमलयूवल्कलकलितरुफलबल्कयोः कृतः क्वाथः ।

गुडबाकुचीरजोयुक्पीतः श्वित्राणि नाशयति ॥ ५२ ॥

मार्कवपत्रं खादेद्भृष्टं तैलेन लोहपात्रस्थम् ।

बीजकशृतं च दुग्धं तदनु पिबेच्छ्वित्रनाशाय ॥ ५३ ॥

वायस्यैडगजाकुष्ठकृष्णाभिर्गुटिकाः कृताः ।

वस्तमूत्रेण संपिष्टा घ्नन्ति श्वित्राणि लेपतः ॥ ५४ ॥

चित्रकगुञ्जावल्कलमलयूवल्कं प्रपिष्टमिममूत्रेण ।

लेपाद्घ्नन्ति श्वित्रं कतिचिद्दोभिश्चिरस्थमपि ॥ ५५ ॥

शिलापामार्गमस्मापि लेपाच्छ्वित्रं विनाशयेत् ।

किं पुनर्यदि युज्येत धनंजयजटात्रचा ॥ ५६ ॥

कुडवो वलगुजबीजान्द्वरितालचतुर्थभागसंमिश्रः ।

मूत्रेण गवां पिष्टः सुवर्णकरणः परं श्वित्रे ॥ ५७ ॥

त्रिफलां नीलिनीपत्रं लोहचूर्णं रसाञ्जनम् ।

श्वेतगुञ्जां दन्तिदन्तमस्म तुत्थं च मार्कवम् ॥ ५८ ॥

मेष्ठीदुग्धेन संपिष्य स्थापयेल्लोहमाजने ।

दिनमेकं ततो लिम्पेन्मुहुः श्वित्रेष्वनुक्रमात् ।

श्वित्राण्यनेन लेपेन निजवर्णं त्यजन्ति हि ॥ ५९ ॥

सायोरजःकृष्णतिलाञ्जनानि सावल्गुजान्यामलकानि जग्ध्वा ।
पिष्टानि मृङ्गस्य सकृद्रसेन हन्युः किलासं परि घृष्टलेपात् ॥ ६० ॥

वराया आढकप्रस्थौ द्वावयोरजसो मतौ ।

वायसीकाकमाच्योस्तु द्वे तुले शङ्खिनी तुला ॥ ६१ ॥

द्विद्रोणेऽर्षां पचेदेतत्पादभागावशेषितम् ।

पचेत्तेन घृतं प्रस्थं कषायेण मिषग्वरः ॥ ६२ ॥

अरुणां वत्सकफलं ज्यूषणं देवदारु च ।

निदिग्धिकां मृङ्गराजं पारावतपद्मीमपि ॥ ६३ ॥

पिष्ट्वा क्षिपेद्जामूत्रे कल्कमेनमतन्वितम् ।

नीलकं नाम विख्यातं घृतं श्वित्रनिषूदनम् ॥ ६४ ॥

श्वित्राणि रञ्जयत्येतत्पानाभ्यञ्जनयोजितम् ।

इति स्वल्पनीलीघृतम् ।

अथ महानीलघृतम्—

आरग्वधं वायसी च सुरसा मद्यन्तिका ॥ ६५ ॥

एकैकस्य तुलाऽऽदेया त्रैफलं चाऽऽढकत्रयम् ।

दन्ती दारुहरिद्रा च कुटजं वरुणत्वचः ॥ ६६ ॥

चित्रकश्चार्कमूलं च काकमाची निदिग्धिका ।

एषां दशपलान्मागांश्चतुर्द्रोणेऽम्भसः पचेत् ॥ ६७ ॥

अष्टमागावशिष्टं तु पूतं पुनरधिश्चयेत् ।

दधि सर्पिश्च दुग्धं च गोमूत्रं च शकृद्रसम् ॥ ६८ ॥

एकैकमाढकं दद्यात्प्रत्येकं वस्त्रगालितम् ।

अवल्गुजं त्रिकटुकं नक्तमालफलानि च ॥ ६९ ॥

त्रिफला चित्रको दन्ती मुस्तं कटुकरोहिणी ।

पिचुमन्दश्च शिग्रुश्च तथेङ्गुदिफलानि च ॥ ७० ॥

किराततिक्तकं श्यामा नीलिनी नीलमुत्पलम् ।

कल्कैरेतैर्घृतं सिद्धं पाययेच्छ्वित्ररोगिणम् ॥ ७१ ॥

महानीलमिति ख्यातमेतच्छ्वित्रापहं परम् ।

भगंदरं तथाऽर्शांसि कुष्ठान्यष्टादशैव तु ॥ ७२ ॥

अथर्वविहितो योगो ब्रह्मदण्ड इवाऽऽहितः ।

श्वित्रिणां श्वित्ररोगेषु पानाभ्यञ्जनतः स्मृतः ॥ ७३ ॥

इति महानीलघृतम् ।

अथ ज्योतिष्मतीतैलम्—

मयूरकक्षारजले सप्तकृत्वः परिस्रुते ।

सिद्धं ज्योतिष्मतीतैलमभ्यङ्गाच्छिद्रनाशनम् ॥ ७४ ॥

इति ज्योतिष्मतीतैलम् ।

अथ श्वित्रेभसिंहो रसः—

शुद्धसूतबालिकज्जलं शुभं वह्नयुग्ममवलिह्य सर्षिषा ।

वायसीशशिकलाविमीतकक्षौद्रमक्षमितमैक्षवान्वितम् ।

शीलयेदनु पयः पिबेदिमं श्वित्रदन्तिहरिरीरितो रसः ॥ ७५ ॥

इति श्वित्रेभसिंहो रसः ।

अथ शशिलेखा वटी—

शुद्धसूतं समं गन्धं तुल्यं च घृतताम्रकम् ।

मर्दितं बाकुचीकाथैर्दिनैकं वटकीकृतम् ॥ ७६ ॥

निष्कमात्रां सदा खादेच्छिद्रघ्नीं शशिलेखिकाम् ।

बाकुचीतैलकर्षेकं सक्षौद्रमनु पाययेत् ॥ ७७ ॥

इति शशिलेखा वटी ।

अथ श्वेतारिः—

शुद्धसूतसमं गन्धं त्रिफलां मृङ्गराजकम् ।

गुञ्जां मल्लातके कृष्णां निम्बबीजं समं पृथक् ॥ ७८ ॥

मर्दयेद्मृङ्गजद्रावैर्दिनमेकं निरन्तरम् ।

वायसीत्वग्रसैर्दया मावनाश्चैकविंशतिः ॥ ७९ ॥

बाकुचीबीजनिर्यूहैस्तावत्तिस्रः प्रकल्पयेत् ।

ततः सिद्धो भवेदेष श्वेतारिर्नामतो रसः ।

मध्वाज्यैर्निष्कमात्रं तं खादेच्छ्वित्रविनाशनम् ॥ ८० ॥

इति श्वेतारिः ।

अथ कुष्ठाद्युपदंशादौ तालादिलेपनम्—

तालं सूतबली शिला च तुवरीसिक्थं वचा धूम्रकं

मुद्गदारं सुरशङ्खजीरस्सकं गैरीकसिन्दूरकम् ।

पूगं माहिषशृङ्गकं द्विरजनी निम्बं वरा माक्षिकं

भृष्टं तुत्थमिदं समांशमखिलं चूर्णद्विभागं घृतम् ॥ ८१ ॥

पात्रे ताम्रमये मिधाय सकलं ताम्रेण संघर्षयेद्
 यामैकं हरिताललेपनमिदं सर्वान्त्रणान्नाशयेत् ।
 पूयं स्त्रावयुतं कृमींश्च पिटकां सर्वोपदंशव्रणा-
 न्नाडीकुष्ठभगंदरान्मुनिदिनात्सर्वान्गदान्नाशयेत् ॥ ८२ ॥

इति कुष्ठाद्युपदंशादौ तालादिलेपनम् ।

अथ तालकभस्म रसरत्नप्रदीपात्—

तले काञ्चिकदेवपुष्पकवराक्राथे तु दोलाभिधे
 यन्त्रे तालकशोधनं निगदितं तं दालकं भावयेत् ।
 वारान्विंशति पिप्पलोत्थसलिलैः खल्वे निधायाऽऽतपे
 बद्ध्वा गोलमथास्य पिप्पलजयामूत्यर्धपूर्णं न्यसेत् ॥ ८३ ॥
 भाण्डे तत्र पुनर्विभूतिमरणं कृत्वा शरावं मुखे
 दत्त्वाऽग्नौ विपचेद्भजाह्वयपुटे वन्यैः सहस्रोपलैः ।
 एवं यामचतुष्टयेन विशदं स्याद्भस्म सर्वं गदे
 योग्यं कुष्ठखुडोपदंशपवने नाडीव्रणे शस्यते ॥ ८३ ॥

इति तालकभस्म रसरत्नप्रदीपात् ।

अथ तालकभूतिक्रिया माधवेनानुभूता—

शुद्धं पत्राख्यतालं द्विपलपरिमितं मित्रदुग्धैर्दिनैकं
 संमर्द्य खल्वमध्ये दृढतरगुटिकां भस्ममूषघितां च (?) ।
 कृत्वा भस्माविलैस्त्रिः परिमितवसनैर्लेपितां तां च मूषां
 विच्छे मृत्स्वर्परेऽश्वत्थजमसितयुगप्रस्थमात्रं विधेयम् ॥ ८४ ॥
 तस्मिन्मूषां च धृत्वा तदुपरि भसितं प्रस्थयुग्मं दृढं च
 चुह्यामारोप्य पश्चाद्बटुककुम्पतीन्पूजयेद्योगसिद्धये ।
 कुर्यादश्वत्थकाष्ठैर्विधिवदथ कृशानुस्त्रियामं च पश्चा-
 च्छुद्धोऽभूत्तालकेशो हिमकरधवलः सर्वरोगेषु योज्यः ॥ ८५ ॥
 गुञ्जैकं वाऽर्धगुञ्जं निखिलगदहरेणानुपानेन दद्यात्
 कुष्ठं मेहोपदंशान्पवनकसनकं रक्तपित्तं खुडं च ।
 पाण्डुं शोफं ज्वरादीन्त्रणमखिलमजीर्णं बिहन्ति क्रमेण
 क्षाराम्लं वातवज्ज्वलपलितविहीनो भवेत्सेव्यमानः ॥ ८६ ॥

इति तालभूतिक्रिया माधवेनानुभूता ।

इति श्रीयोगतरङ्गिण्यां कुष्ठनिदानचिकित्साकथनं नाम विंशत्यधिक-
 शततमस्तरङ्गः ॥ १२० ॥

अथैकविंशत्यधिकशततमस्तरङ्गः ।

अथोददर्शनीतपित्तकोठनिदानम्—

शीतमारुतसंस्पर्शात्प्रदुष्टौ कफमारुतौ ।
 पित्तेन सह संभूय बहिरन्तर्विसर्पतः ॥ १ ॥
 पिपासारुचिह्वलासदेहसादाङ्गौस्वम् ।
 रक्तलोचनता तेषां पूर्वरूपस्य लक्षणम् ॥ २ ॥
 वरटीदंशसंस्थानः शोथः संजायते बहिः ।
 सकण्डूतोदबहुलश्छर्विर्ज्वरविदाहवान् ॥ ३ ॥
 उदर्दमिति तं प्राहुः शीतपित्तमथापरे ।
 वाताधिकं शीतपित्तमुदर्दं तु कफाधिकम् ॥ ४ ॥
 सोत्सङ्गैश्च सरागैश्च कण्डूमद्भिश्च मण्डलैः ।
 शैशिरः कफजो व्याधिरुदर्दः परिकीर्तितः ॥ ५ ॥
 असम्यग्मनोदीर्णपित्तश्लेष्मविनिग्रहैः ।
 मण्डलानि सकण्डूनि रागवन्ति बहूनि च ॥ ६ ॥
 उत्कोठः सानुबन्धस्तु कोठ इत्यभिधीयते ।

इत्युददर्शनीतपित्तकोठनिदानम् ।

अथ चिकित्सा—

शीतपित्ते तु वमनं पटोलारिष्टवासकैः ॥ ७ ॥
 त्रिफलापुरकृष्णाभिर्विरेकश्चात्र शस्यते ।
 अभ्यङ्गः कटुतैलेन सेकश्चोष्णेन वारिणा ॥ ८ ॥
 त्रिफलां क्षौद्रसंयुक्तां खादेद्वा नवकार्षिकीम् ।
 आर्द्रकस्य रसः पेयः पुराणगुडमिश्रितः ॥ ९ ॥
 शीतपित्तापहः श्रेष्ठो वह्निमान्द्यविनाशकः ।
 सिद्धार्थरजनीकल्कं प्रपुञ्जाटतिलैः सह ॥ १० ॥
 कटुतैलेन संमिश्रमेतदुद्वर्तनं हितम् ।
 यः सर्पिःसैन्धवाम्यक्तदेह आरक्तकं बली ॥ ११ ॥
 शयीत तस्य शाम्यन्ति शीतपित्तादयो गदाः ।
 सगुडं दीप्यकं यस्तु किञ्चित्कटुकतैलकम् ॥ १२ ॥

मक्षयेत्तस्य नश्यन्ति सोवर्दाः कोठसंज्ञकाः ।
 सिद्धार्थरजनीकुष्ठप्रपुञ्जादतिलैः सह ॥ १३ ॥
 कटुतैलेन संमिश्रमेतदुद्वर्तनं हितम् ।
 शीतपित्त उदर्वे च तथोत्कोष्ठाभिधे गदे ॥ १४ ॥

इति सिद्धार्थककाथः ।

अथाऽऽर्द्रकखण्डम्—

घृतगैरिकसिन्धूत्थकुसुम्भकुसुमैः समैः ।
 उद्वर्तनं प्रशंसन्ति कोठोवर्दादिनाशने ॥ १५ ॥
 क्रिमिदुहृहरः कार्यः शीतपित्तेऽखिलक्रमः ।
 घृतं पीत्वा महातित्तं शोणितं मोक्षयेत्तथा ॥ १६ ॥
 स्निग्धस्विन्नस्य संशुद्धिमादौ कोठे समाचरेत् ।
 ततः कुष्ठहरः सर्वो विधेयो विधिरादरात् ॥ १७ ॥

निम्बस्य पत्राणि सदा घृतेन धात्रीविमिश्राणि नरः प्रयुज्यात् ।
 विस्फोटकोठक्रिमिशीतपित्तं कण्डूं सपित्तं च कफं च हन्यात् ॥ १८ ॥

आर्द्रकं प्रस्थमेकं स्याद्गोघृतं कुडवद्वयम् ।
 गोदुग्धं प्रस्थयुगुलं तदर्धा शर्करा मता ॥ १९ ॥
 पिप्पलीपिप्पलीमूलमरिचं विश्वभेषजम् ।
 चित्रकं च विडङ्गं च मुस्तकं नागकेसरम् ॥ २० ॥
 स्वगेलापत्रकर्चूरं प्रत्येकं षलमात्रकम् ।
 विधाय पाकं विधिवत्खादेदेतत्पलोन्मितम् ॥ २१ ॥
 इदमार्द्रकखण्डाख्यं शतर्भुक्ते व्यपोहति ।
 शीतपित्तमुदर्वं च शीतमुत्कोठ एव च ॥ २२ ॥
 यक्ष्माणं रक्तपित्तं च कासश्वासमरोचकम् ।
 वातगुल्ममुदावर्तं शोथकण्डूकृमीनपि ॥ २३ ॥
 दीपयेदुदरे वह्निं बलवीर्यं विवर्धयेत् ।
 वपुः पुष्टं प्रकुरुते तस्मात्सेव्यमिदं सदा ॥ २४ ॥

इत्यार्द्रकखण्डम् ।

अथ ताम्रयोगः—

शुद्धं पारदगन्धकाभिकलितं युक्त्या हतं यः पुमा-
 नद्यात्ताम्रमनतनं शशिकलाक्षौद्रान्वितं पथ्यमुक् ।

कोठोर्दृक्शीतपित्तजरुजो नश्यन्त्यवश्यं दिनै-
रूपैरस्य नरस्य यान्ति विलयं कुष्ठानि चाष्टादश ॥ २५ ॥
इति ताम्रयोगः ।

इति श्रीयोगतरङ्गिण्यामुदर्दशीतपित्तकोठनिदानचिकित्साकथनं
नामैकविंशत्यधिकशततमस्तरङ्गः ॥ १२१ ॥

अथ द्वाविंशत्यधिकशततमस्तरङ्गः ।

अथाम्लपित्तनिदानम्—

विरुद्धदुष्टाम्लविदाहिपित्तप्रकोपिपानान्नभुजो विदग्धम् ।
पित्तं स्वदेहोपचितं पुरा यत्तदम्लपित्तं प्रवदन्ति तज्ज्ञाः ॥ १ ॥
अविपाककृमोत्क्लेदतित्ताम्लोद्गारगौरवैः ।
हृत्कण्ठदाहारुचिभिरम्लपित्तं वदेद्भिषक् ॥ २ ॥

पित्तजमाह—

तृड्दाहमूर्छाभ्रममोहकारि प्रयात्यधो वा विविधप्रकारम् ।
हृत्लासकोठानलसादहर्षस्वेदाङ्गपीतत्वकरं कदाचित् ॥ ३ ॥
वान्तं हरित्पीतकनीलकृष्णमारुक्तरक्ताभमतीव चाम्लम् ।
मांसोदकामं त्वतिपिच्छलामं श्लेष्मानुयातं विविधं रसेन ॥ ४ ॥
भुक्ते विदग्धेऽप्यथ वाऽप्यभुक्ते करोति तित्ताम्लवर्णिं कदाचित् ।
उद्गारमेवंविधमेव कण्ठहृत्कुक्षिदाहं शिरसो रुजां वा ॥ ५ ॥
करचरणदाहमौष्ण्यं महतीमरुचिं ज्वरं च कफपित्तम् ।
जनयति कण्डूमण्डलपिटकाचितगात्ररोगचयम् ॥ ६ ॥
रोगोऽयमम्लपित्ताख्यो यत्नात्संसाध्यते नवः ।
चिरोत्थितो भवेद्याप्यः कष्टसाध्यः स कस्यचित् ॥ ७ ॥
सानिलं सानिलकफं सकफं तच्च लक्षयेत् ।
दोषलिङ्गेन मतिमान्मिषड्योहकरं हि तत् ॥ ८ ॥

वातजमाह—

कम्पप्रलापमूर्छाचिमिचिमिगात्रावसादशूलानि ।
तमसो दर्शनविभ्रमप्रमोहहर्षाः समीरयुते ॥ ९ ॥

कफजमाह—

कफनिष्ठीवनगौरवजडन्तारुचिशीतसाद्वमिलेपाः ।
दहनबलसादकण्डूनिद्राश्चिह्नं कफानुगते ।

वातकफजमाह—

उभयमिदमेव चिह्नं मारुतकफसंभवे भवत्यम्ले ॥ १० ॥

कफपित्तजमाह—

तिक्ताम्लकटुकोद्गारवमिहृत्कण्ठदाहकृत् ।
भ्रमो मूर्च्छाऽरुचिश्छर्दिरालस्यं च शिरोरुजा ॥ ११ ॥
प्रसेको मुखमाधुर्यं श्लेष्मपित्तस्य लक्षणम् ।

इत्यम्लपित्तनिदानम् ।

अथैतच्चिकित्सा—

अम्लपित्ते तु वमनं पटोलारिष्टवासकैः ॥ १२ ॥
कारयेन्मर्दनं क्षौद्रैः सिन्धुयुक्तैस्ततो भिषक् ।
विरेचनं त्रिवृच्चूर्णं मधुधात्रीफलद्रवैः ॥ १३ ॥
सम्यग्वान्तविरिक्तस्य सुस्निग्धस्यानुवासनम् ।
आस्थापनं चिरोत्थेऽत्र देयं दोषाद्यपेक्षया ॥ १४ ॥
तिक्तभूयिष्ठमाहारं पानं चापि प्रयोजयेत् ।

पथ्यमाह—

यवगोधूमचणकमकुष्ठकमसूरकाः ॥ १५ ॥
मुद्गाढकीयवाः पथ्याः क्षीरं च ससितं नवम् ।
पुराणशालिलाजानां सक्तून्समधुशर्करान् ॥ १६ ॥
घोलं पीत्वाऽम्लपित्तार्तः पिबेत्तद्रोगशान्तये ।
पूतीकरञ्जशुङ्गानि घृतभृष्टानि भक्षयेत् ॥ १७ ॥
एणमांसरसं वाऽपि सह भक्तेन भक्षयेत् ।
विदग्धे भोजने कार्यं वमनं कोष्णवारिणा ॥ १८ ॥
अन्नं संमूर्च्छितं तस्य सुखं निह्नियते यतः ।
ऊर्ध्वगं वमनैर्विद्वानधोगं रेचनैर्हरेत् ॥ १९ ॥

कृतवमनविरेकस्यापि दोषोपशान्ति-
 र्भवति न यदि कार्यो रक्तमोक्षोऽस्य युक्त्या ।
 कृतशिशिरविलेपस्याम्लपित्तघ्नमक्षयौ-
 वनसमुदिततृप्तेर्वातरक्षा च कार्या ॥ २० ॥
 चित्रकैरण्डमूलानि यवाश्च सयवासकाः ।
 जलेन कथितं पीतं कोष्ठदाहाम्लपित्तजित् ॥ २१ ॥

इति चित्रकाविकाथः ।

अथ द्राक्षादिगुटी—

द्राक्षापथ्ये समे कृत्वा तयोस्तुल्यां सितां क्षिपेत् ।
 संकुट्याक्षद्वयमितां तत्पिण्डीं रचयेद्भिषक् ॥ २२ ॥
 तां स्वादेदम्लपित्तातो हृत्कण्ठदहनापहाम् ।
 तृणमूर्च्छाभ्रममन्दाम्भिनाशिनीमामवातहाम् ॥ २३ ॥

इति द्राक्षादिगुटी ।

अथाविपत्तिकरं चूर्णम्—

एलावरात्रिकटुमुस्तविडङ्गपत्रै-
 स्तुल्यं लवङ्गमखिलं द्विगुणत्रिधारम् ।
 चूर्णीकृतं सकलतुल्यसितं तदम्ल-
 पित्तोदरघ्नमविपत्तिकरं नराणाम् ॥ २४ ॥

इत्यविपत्तिकरं चूर्णम् ।

अथैलादिचूर्णम्—

एलातुगाव्योषशिवामयानां
 त्वग्ग्रन्थिपाटीरदलाम्लकानाम् ।
 चूर्णं सितातुल्यमपाकरोति
 प्रौढाम्लपित्तं दिवसास्यमुक्तम् ॥ २५ ॥

इत्यैलादिचूर्णम् ।

अथाभयाद्यवलेहः—

अमयापिप्पलीद्राक्षासिताधन्वयवासकम् ।
 मधुना कण्ठहृद्दाहमूर्च्छाश्लेष्माम्लपित्तनुत् ॥ २६ ॥

इत्यभयाद्यवलेहः ।

अथ यवादिकाथः—

निस्तुष्यववृषधात्रीकथितं सलिलं त्रिगन्धमधुसहितम् ।
द्रुततरमभिहरति वमिं संजनितामम्लपित्तेन ॥ २७ ॥
इति यवादिकाथः ।

अथ गुडूच्यादिः—

गुडूचीचित्रकारिष्टपटोलैः कथितं पिबेत् ।
क्षौद्रयुक्तं निहन्त्येतच्छर्दिं पित्ताम्लसंभवाम् ॥ २८ ॥
इति गुडूच्यादिः ।

अथ दशाङ्गकाथः—

वासासृतापर्पटकनिम्बभूनिम्बमार्कवैः ।
त्रिफलाकुलकैः काथः सक्षौद्रश्चाम्लपित्तिहा ॥ २९ ॥
इति दशाङ्गकाथः ।

अथ पटोलादिकषायः—

पटोलधात्रीयवपिप्पलीनां काथं पिबेत्क्षौद्रयुतं सुशीतम् ।
स ह्यम्लपित्तं विनिहन्ति शीघ्रमग्नेर्बलं बाहुबलं च दद्यात् ॥ ३० ॥
इति पटोलादिकषायः ।

अथ त्रिकटुकाद्यं चूर्णं लेहश्च—

त्रिकटुकसकण्टकारीपर्पटकारिष्टकुटजबीजानाम् ।
सौराष्ट्रिकापटोलीत्रायन्तीदारुमूर्वाणाम् ।
तिक्तामृणालमलयजकलिङ्गकैलाकिराततिक्तानाम् ।
सवचातिविषाकेसरदीप्यकमधुशिगुबीजानाम् ॥ ३२ ॥
चूर्णं पटघृष्टमिदं पीतं शिशिरेण वारिणा प्रातः ।
क्षौद्रेण चाथ लीढं प्रायेणाधोगतं हन्ति ।
अतिविषममम्लपित्तं पथ्यभुजो वासरैः कैश्चित् ॥ ३३ ॥
इति त्रिकटुकाद्यं चूर्णं लेहश्च ।

अथ पिप्पलीघृतम्—

अधोगतेऽम्लपित्ते तु पैत्तिकग्रहणीविधिः ।
पाचनं दीपनीयं च वीक्ष्य वीक्ष्यावचारयेत् ॥ ३४ ॥
ज्वलन्तमिव चाऽऽत्मानं मन्यते योऽम्लपित्तवान् ।
तस्य संशोधनं पथ्यं न शान्तिः शोधनं विना ॥ ३५ ॥

अचिरोत्थे चिरोत्थे वा वमनं तत्र कारयेत् ।
 सवाते सविवन्धेऽस्मिन्निहता कंसहरीतकी ॥ ३६ ॥
 अम्लपित्ते प्रयोक्तव्यः कफपित्तहरो विधिः ।
 गुडकूष्माण्डकं चैव तथा खण्डामलक्यपि ॥ ३७ ॥
 गुडक्षीरकणासिद्धं सर्पिरत्र प्रयोजयेत् ।
 पिप्पलीकाथकल्काभ्यां घृतं सिद्धं मधुप्लुतम् ॥ ३८ ॥
 अम्लपित्तविनाशाय प्रातरुत्थाय ना पिबेत् ।

इति पिप्पलीघृतम् ।

अथ शतावरीघृतम्—

शतावरीमूलकल्कं घृतप्रस्थं पयः समम् ॥ ३९ ॥
 पचेन्मृद्वग्निना सम्यक्क्षीरं दत्त्वा चतुर्गुणम् ।
 नाशयेदम्लपित्तं च वातपित्तोत्थितान्गदान् ॥ ४० ॥
 रक्तपित्तं तृषं मूर्छां श्वासं संतापमेव च ।
 पेयोऽत्रेन्दीवरीमूलरसो वैद्यैर्निगद्यते ॥ ४१ ॥

इति शतावरीघृतम् ।

अथ द्राक्षाद्यं घृतम्—

द्राक्षामृताशक्रपटोलपत्रैः सोशीरधात्रीघनचन्दनैश्च ।
 त्रायन्तिकापद्मकिरातधान्यैः कल्कैः पचेत्सर्पिरुपेतभेभिः ॥ ४२ ॥
 मुञ्जीत मात्रां सह भोजनेन द्राक्षाघृतस्यास्य पलप्रमाणम् ।
 बलासपित्तं ग्रहणीं प्रवृद्धां कासाग्निसादज्वरमम्लपित्तम् ।
 सर्वं निहन्याद्घृतमेतदाशु सम्यक्प्रयुक्तं ह्यमृतोपमं च ॥ ४३ ॥

इति द्राक्षादिघृतम् ।

अथ नारिकेलखण्डपाको योगरत्नावलितः—

कुडवपरिमितं स्यान्नारिकेलं सुपिष्टं
 पलपरिमितसर्पिःपाचितं तुल्यखण्डम् ।
 निजपयासि तदेतत्प्रस्थमात्रे विपक्वं
 गुडवदथ सुशीते शाणमात्रं क्षिपेच्च ॥ ४४ ॥
 धान्याकपिप्पलिपयोदतुगाद्विजीरैः
 साकं त्रिजातमिमकेसरवद्विचूर्णम् ।

हन्त्यम्लपित्तमरुचिं क्षयमस्रपित्तं

शूलं वमिं सकलपौरुषकारि पुंसाम् ॥ ४५ ॥

इति नारिकेलखण्डपाको योगरत्नावलितः ।

अथ खण्डपिप्पल्यवलेहो योगरत्नावल्याः—

पिप्पल्याः कुडवं चूर्णं घृतस्य कुडवद्वयम् ।

पलषोडशकं खण्डाच्छतावर्याः पलाष्टकम् ॥ ४६ ॥

शिवायाः स्वरसस्यापि पलषोडशकं मतम् ।

क्षीरप्रस्थद्वये साध्ये लेहीभूतेऽत्र निक्षिपेत् ॥ ४७ ॥

त्रिजातकामयाजाजीधान्यमुस्तशिवातुगाः ।

एतेषां कार्षिकं चूर्णं कर्षार्धं कृष्णजीरकम् ॥ ४८ ॥

नागरं नागकं जातीफलं समरिचं हिमम् ।

दत्त्वा पलत्रयं क्षौद्रं स्निग्धमाण्डे विनिक्षिपेत् ॥ ४९ ॥

प्रातर्यथाबलं लिह्यादम्लपित्तप्रशान्तये ।

हृल्लासारोचकच्छर्दिपिपासादाहनाशनम् ॥ ५० ॥

शूलहृद्रोगशमनं हृद्यं चेदं रसायनम् ।

इति खण्डपिप्पल्यवलेहो योगरत्नावल्याः ।

अथ रसामृतम्—

त्रिकटुत्रिफलामुस्ताविडङ्गदहनाः समाः ॥ ५१ ॥

एतेषां चूर्णितानां च प्रत्येकं तु पलं भवेत् ।

कर्षद्वयं गन्धकस्य रसस्य कवलग्रहः ॥ ५२ ॥

बिडालपदमात्रं तु लिह्यात्समधुसर्पिषा ।

शीतोदकं चानुपिबेत् क्रमाद्भुज्यं पयोऽपि वा ॥ ५३ ॥

अम्लपित्तं चाग्निमान्द्यं परिणामरुजं तथा ।

कामलां पाण्डुरोगं च हन्यादेतन्न संशयः ॥ ५४ ॥

इति रसामृतम् ।

अथ लीलाविलासो रसः—

रसो बलिवर्योम रविश्च लोहं धात्रयक्षनीरेस्त्रिदिनं विमर्द्य ।

तदल्पभृष्टं मृदु मार्कवेन संमर्दयेदस्य च बल्युग्मम् ।

हन्त्यम्लपित्तं मधुनाऽवलीढं लीलाविलासो रसरत्न एषः ॥ ५५ ॥

इति लीलाविलासो रसः ।

अथ धात्रीलोहम्—

धात्रीचूर्णस्याष्टौ पलानि चत्वारि लोहचूर्णस्व ।
यष्टीमधुकरजसो द्विपलं दद्यात्पटाद्भलितम् ॥ ५६ ॥
अमृताक्राथेनैतच्चूर्णं भाव्यं त्रिसप्तधा युक्त्या ।
चण्डातपेषु शुष्कं भूयः पिष्ट्वा नवे घटे स्थाप्यम् ॥ ५७ ॥
सर्पिर्मधुसंयुक्तं मक्तादौ मध्यतस्ततोऽन्ते च ।
त्रीनपि वारान्खादेत्पथ्यं दोषानुबन्धेन ॥ ५८ ॥
भक्तस्याऽऽदौ शमयति दोषान्पित्तानिलोत्थितानाशु ।
मध्येऽन्ते विष्टम्भं जयति नृणां दह्यते नास्त्रम् ॥ ५९ ॥
पानाघ्नकृतान्दोषान्मक्तान्ते शीलितं जयति ।
एवं जीर्यति चान्ने शूलं नृणां सुकष्टमपि हन्ति ॥ ६० ॥
हरति च सहसा युक्तो योगोऽयमाशु तज्जरत्पित्तम् ।
चक्षुष्यः पलितघ्नः कफपित्तसमुद्भवाञ्जयेद्रोगान् ।
रक्तं प्रसाधयति च पाण्डुत्वं कामलां जयति ॥ ६१ ॥

इति धात्रीलोहम् ।

अथ वृषपुष्पादिचूर्णम्—

वृषपुष्पं करञ्जस्य पलवस्त्रिफलत्वचः ।
चूर्णमेतद्रसैर्भाव्यं धात्र्यास्तद्वच्च फाणितैः ॥ ६२ ॥
कौटजैश्च मधून्मिश्रं पाययेत्तण्डुलाम्बुना ।
पित्तश्लेष्महरं नान्यदितः श्रेष्ठं रसायनम् ॥ ६३ ॥

इति वृषपुष्पादिचूर्णम् ।

अथ गुडायो मोदकः—

गुडपिप्पलिपथ्याभिस्तुल्याभिर्मोदकः कृतः ।
पित्तश्लेष्महरः प्रोक्तो मन्दाग्नित्वं च नाशयेत् ॥ ६४ ॥

इति गुडायो मोदकः ।

अथ खण्डकूष्माण्डकावलेहः—

पाठापटोलंदलचन्दनधान्यधात्री-
वासावराङ्गदलनागकणामयाभिः ।

लेहः सिताज्यमधुभिः शिलया च पिण्डी
 हन्त्यम्लपित्तमरुचिज्वरदाहशोषान् ॥ ६५ ॥
 हन्त्यम्लपित्तवभनारुचिदाहमोह-
 खालित्यमेहतिमिरवणशुक्रदोषान् ।
 मुक्त्वा नरः सततमामलकीरसेन
 वृद्धोऽप्यनेन हि भवेत्तरुणी रिरंसुः ॥ ६६ ॥
 कूष्माण्डस्य रसो ग्राह्यः पलानां शतमात्रकम् ।
 रसतुल्यं गवां क्षीरं धात्रीचूर्णं पलाष्टकम् ॥ ६७ ॥
 धात्रीतुल्या सिता योज्या गव्यमाज्यं पलद्वयम् ।
 मन्दाग्निना पचेत्सर्वं यावद्भवति पिण्डितम् ॥ ६८ ॥
 पलार्धं पलमेकं वा प्रत्यहं भक्षयेद्दिनम् ।
 खण्डकूष्माण्डकं ख्यातमम्लपित्तापहं परम् ॥ ६९ ॥

इति खण्डकूष्माण्डकावलेहः ।

अथ नारिकेलखण्डपाकः—

कुडवं नारिकेलस्य सूक्ष्मं दृषदि पेषितम् ।
 शुभ्रखण्डस्य कुडवं सर्वमेतच्चतुर्गुणम् ॥ ७० ॥
 आलोढ्य नारिकेलस्य जले मृद्वाग्निना पचेत् ।
 नारिकेलजलालाभे गव्ये पयसि तत्पचेत् ॥ ७१ ॥
 पलमात्रस्तदर्धोऽपि भक्षितः प्रत्यहं नरैः ।
 नारिकेलकखण्डोऽयं पुंस्त्वनिद्राबलप्रदः ॥ ७२ ॥
 अम्लपित्तं रक्तपित्तं शूलं च परिणामजम् ।
 क्षयं क्षपयति क्षिप्रं शुष्कं दावानलो यथा ॥ ७३ ॥

(पलमात्रगव्यघृतेन नारिकेलस्य मर्जनं कर्तव्यमिति संप्रदायः)
 इति नारिकेलखण्डपाकः ।

अथ बृहन्नारिकेलपाकः—

प्रस्थं तु नारिकेलस्य सूक्ष्मं दृषदि पेषितम् ।
 निष्कुलीकृतकूष्माण्डखण्डानामर्धमाढकम् ॥ ७४ ॥
 तद्वयं भर्जयेद्गव्ये घृते तु कुडवोन्मिते ।
 ततस्तत्र क्षिपेच्छुद्धं गोदुग्धं चाऽऽढकोन्मितम् ॥ ७५ ॥
 तत्रैव निक्षिपेद्गव्ये सितां प्रस्थद्वयोन्मिताम् ।
 पचेत्सर्वाणि चैकत्र मृदुना वह्निना भिषक् ॥ ७६ ॥

सुपक्वे शीतले तत्र चूर्णीकृत्य विनिक्षिपेत् ।
 सूक्ष्मैलां धान्यकं धात्रीं पर्पटं जलदं जलम् ॥ ७७ ॥
 उशीरं चन्दनं द्राक्षां शृङ्गाटं च कसेरुकम् ।
 त्वक्पत्रकं सकर्चूरं कर्षयुग्मं पृथक्पृथक् ॥ ७८ ॥
 सर्वं संमिश्रयेद्रक्षेद्भाजने मृन्मये नवे ।
 पलमात्रमिदं प्रातर्भक्षयेद्वा यथाबलम् ॥ ७९ ॥
 एतन्निषेवितं हन्ति रोगानेतान्न संशयः ।
 अम्लपित्तज्वरं पित्तं रक्तपित्तमरोचकम् ॥ ८० ॥
 वातरक्तं तृषां दाहं पाण्डुरोगं सकामलाम् ।
 क्षयं क्षपयते क्षिप्रं शूलं च परिणामजम् ॥ ८१ ॥
 नारिकेलकखण्डोऽयमश्विभ्यां भाषितः पुरा ।
 वर्णदो बृंहणो वृष्यः पुंस्त्वनिद्राबलप्रदः ॥ ८२ ॥

इति बृहन्नारिकेलपाकः ।

पित्तश्लेष्मकरं सर्वं वर्जयेदम्लपित्तवान् ।

विशेषान्माषदध्यम्लक्षारतीक्ष्णसुरात्ययम् (?) ॥ ८३ ॥

इति श्रीयोगतरङ्गिण्यामम्लपित्तनिदानचिकित्साकथनं नाम द्वाविंशत्य-
 धिकशततमस्तरङ्गः ॥ १२२ ॥

अथ त्रयोविंशत्यधिकशततमस्तरङ्गः ।

अथ विसर्पनिदानम्—

लवणाम्लकटूष्णादिसेवनाद्दोषकोपतः ।
 विसर्पः सप्तधा ज्ञेयः सर्वतः परिसर्पणात् ॥ १ ॥
 वातिकः पैतिकश्चैव कफजः सांनिपातिकः ।
 चत्वार एते वीसर्पा वक्ष्यन्ते द्वंद्वजास्त्रयः ॥ २ ॥
 आग्नेयो वातपित्ताभ्यां ग्रन्थ्याख्यः कफवातजः ।
 यस्तु कर्दमको घोरः स पित्तकफसंभवः ॥ ३ ॥
 रक्तं लसीका त्वङ्मांसं दूष्यं दोषास्त्रयो मलाः ।
 विसर्पाणां समुत्पत्तौ विज्ञेयाः सप्त धातवः ॥ ४ ॥

वातजमाह—

तत्र वातात्परीसर्पो वातज्वरसमव्यथः ।

शोफस्फुरणनिस्तोदभेदायामार्तिहर्षवान् ॥ ५ ॥

पित्तजमाह—

पित्ताद्भुतगतिः पित्तज्वरालिङ्गोऽतिलोहितः ।

कफजमाह—

कफात्कण्डूयनः स्निग्धः कफज्वरसमानरुक् ॥ ६ ॥

संनिपातजमाह—

संनिपातसमुत्थश्च सर्वलिङ्गसमन्वितः ।

वातपित्तविसर्पमाह—

वातपित्तविसर्पस्तु ज्वरातीसारतृड्भ्रमैः ॥ ७ ॥

अस्थिमेदाग्निसदनतमकारोचकैर्युतः ।

करोति सर्वमङ्गं च दीप्ताङ्गारावकीर्णवत् ॥ ८ ॥

यं यं देशं विसर्पश्च विसर्पति भवेत्स च ।

शान्तागारासितो(?) नीलो रक्तो वाऽऽशूपचीयते ॥ ९ ॥

अग्निदग्ध इव स्फोटैः शीघ्रं गत्वा द्रुतं स च ।

मर्मानुसारी घीसर्पः स्याद्वातोऽतिबलस्ततः ॥ १० ॥

व्यथेताङ्गं हरेत्संज्ञां निद्रां च श्वासमीरयेत् ।

हिक्कां च स गतोऽवस्थामीदृशीं लभते न ना ॥ ११ ॥

कचिच्छर्मारतिग्रस्तो भूमिशय्यासनादिषु ।

चेष्टमानस्ततः क्लिष्टो मनोदेहश्चमोद्भवाम् ॥ १२ ॥

दुष्प्रबोधोऽश्नुते निद्रां सोऽग्निवीसर्प उच्यते ।

ग्रन्थारूपमाह—

कफेन रुद्धः पवनो भित्त्वा तं बहुधा कफम् ॥ १३ ॥

रक्तं वा वृद्धरक्तस्य त्वक्शिरास्त्रायुर्मांसगम् ।

दूषयित्वा च दीर्घाणुवृत्तस्थूलखरात्मनाम् ॥ १४ ॥

ग्रन्थीनां कुरुते मालां रक्तानां तीव्ररुग्ज्वराम् ।

श्वासकासातिसारास्यशोषहिक्कावमिभ्रमैः ॥ १५ ॥

मोहवैवर्ण्यमूर्छाङ्गमङ्गाग्निसदनैर्युतः ।

इत्ययं ग्रन्थिवीसर्पः कफमारुतकोपजः ॥ १६ ॥

कर्दमाख्यमाह—

कफपित्ताज्ज्वरस्तम्भो निद्रा तन्द्रा शिरोरुजा ।
 अङ्गावसादविक्षेपप्रलापारोचकभ्रमाः ॥ १७ ॥
 मूर्छाग्निहानिर्भेदोऽस्त्रां पिपासेन्द्रियगौरवम् ।
 आमोपवेशनं लेपः स्रोतसां च विसर्पति ॥ १८ ॥
 प्रायेणाऽऽमाशये गृह्णन्नैकदेशं न चातिरुक् ।
 पिटकैरवकीर्णोऽतिपीतलोहितपाण्डुरैः ॥ १९ ॥
 स्निग्धोऽसितो मेचकामो मलिनः शोथवान्गुरुः ।
 गम्भीरपाकः प्राज्योष्मा स्पृष्टः क्लिन्नोऽवदीर्यते ॥ २० ॥
 पङ्कवच्छीर्णमांसश्च स्फुटस्नायुशिरागणः ।
 शवगन्धी सवीसर्पः कर्दमाख्यमुशन्ति तम् ॥ २१ ॥

तस्योपद्रवाः—

बाह्यहेतोः क्षतात्कुद्भः सरक्तं पित्तमीरयेत् ।
 विसर्पं मारुतः कुर्यात्कुलत्थसदृशैश्चितम् ॥ २२ ॥
 स्फोटैः शोफज्वररुजादाहाद्यं श्यावलोहितम् ।
 ज्वरातिसारवमथ्रुतृणमांसदरणक्लमाः ।
 अरोचकाविपाकौ च विसर्पाणामुपद्रवाः ॥ २३ ॥

सिद्धासिद्धमाह—

सिध्यन्ति वातकफपित्तकृता विसर्पाः
 सर्वात्मकः क्षतकृतश्च न सिद्धिमेति ।
 पित्तात्मकोऽञ्जनवपुश्च भवेदसाध्यः
 कृच्छ्राश्च मर्मसु भवन्ति हि सर्व एव ॥ २४ ॥

इति विसर्पनिदानम् ।

अथैतच्चिकित्सा—

पूर्वमेव विसर्पेषु कुर्याल्लङ्घनरूक्षणे ।
 विरेकवमनालेपसेचनासृग्विमोक्षणैः ॥ २५ ॥
 उपाचरेद्यथादोषं विसर्पानविदाहिभिः ।
 पटोलपिचुमन्दाभ्यां पिप्पल्या मदने न वा ॥ २६ ॥
 विसर्पे वमनं शस्तं तथा चेन्द्रियवैः सह ।
 त्रिफलारससंयुक्तं सर्पिस्त्रिवृतया सह ॥ २७ ॥

प्रयोक्तव्यं विरेकार्थं विसर्पज्वरनाशनम् ।

रास्नां नीलोत्पलं दारु चन्दनं मधुकं बलाम् ।

पिष्ट्वाऽऽज्यक्षीरवाँलेपो वातवीसर्पनाशनः ॥ २८ ॥

इति रास्नादिलेपः ।

अथ पटोलादिकाथः—

कुष्ठं शताह्वा सुरदारु मुस्ता वाराहिकुस्तुम्बुरु कृष्णगन्धा ।

वातेऽर्कवंशार्तगलाश्च योज्याः सेकेषु लेपेषु तथा घृतेषु ॥ २९ ॥

प्रपौण्डरीकमञ्जिष्ठापद्मकोशीरचन्दनैः ।

सयष्टीन्दीवरैः पैत्ते क्षीराद्यैश्च प्रलेपनम् ॥ ३० ॥

कसेरुशृङ्गाटकपद्मगुन्द्राः सशैवलाः स्रोत्पलकर्दमश्च ।

वस्त्रान्तराः पित्तकृते विसर्पे लेपा विधेयाः सघृताः सुशीताः ॥ ३१ ॥

कनीयः पञ्चमूलस्य यवबल्कलकस्य वा ।

कषायः पित्तवीसर्पे पाने सेकेऽपि शस्यते ॥ ३२ ॥

श्लैष्मिकेऽत्र वमिः कार्या पूर्वं रेचनकं ततः ।

मदनं मधुकं निम्बं वत्सकस्य फलानि च ॥ ३३ ॥

एतैर्वमिर्विधातव्या विसर्पे कफसंमवे ।

गायत्रीसप्तपर्णाब्दवासारग्वधदारुभिः ॥ ३४ ॥

कुटन्नटैर्मवेलेपो विसर्पे श्लेष्मसंमवे ।

त्रिफलापद्मकोशीरसमङ्गाकरवीरकम् ॥ ३५ ॥

नलमूलमनन्ता च लेपः श्लेष्मविसर्पहा ।

मुस्तारिष्टपटोलानां काथः श्लेष्मविसर्पहा ।

धात्रीपटोलमुद्गानामथ वा घृतसंयुतः ॥ ३६ ॥

कुलकवृषकिशतारिष्टतिकाक्षपथ्या-

मलकमलयजानां कौशिकाढ्यः कषायः ।

सकलगदसमुत्थं हन्ति वीसर्पमुग्रं

ज्वरवामितनुदाहभ्रान्तिवृष्णारुजाभिः ॥ ३७ ॥

इति पटोलादिकाथः ।

अथ त्रायमाणादिकाथः—

त्रायन्तिनिम्बवृन्दाकुण्डलिधात्रीपटोलकटुकामिः ।

काथः सकणाक्षौद्रञ्चिदोषवीसर्पदर्पहा कथितः ॥ ३८ ॥

इति त्रायमाणादिकाथः ।

अथ दशाङ्गलेपः—

सर्पिषा शतधौतेन कृतो लेपो मुहुर्मुहुः ।
 निहन्ति सर्ववीसर्पं सर्पं पतगराडिव ॥ ३९ ॥
 शिरीषयष्टीनतचन्दनैलामांसीहरिद्राद्वयकुष्ठवालैः ।
 लेपो दशाङ्गः सघृतः प्रयोज्यो वीसर्पकुष्ठव्रणशोथहारी ॥ ४० ॥
 इति दशाङ्गलेपः ।

अथ मांस्यादिलेपः—

मांसी सर्जरसो लोधं मधुकं सहरेणुकम् ।
 मूर्वा नीलोत्पलं पद्मं शिरीषकुसुमानि च ।
 एतैः प्रदेहः कथितो वह्निवीसर्पनाशनः ॥ ४१ ॥
 इति मांस्यादिलेपः ।

अथ त्रायमाणादिकाथः—

शतधौतघृतविमिश्रः कल्कस्त्वक्पञ्चकस्य लेपेन ।
 बहुदाहकलितमुच्चैरग्निसर्पं विनाशयति ॥ ४२ ॥
 न्यग्रोधपादो गुन्द्रा च कदलीगर्भ एव च ।
 एतैर्ग्रन्थिविसर्पघ्नो लेपो धौताज्यसंयुतः ॥ ४३ ॥
 शतधौतघृतोन्मिश्रः शिरीषत्वग्रजःकृतः ।
 लेपः शमयति क्षिप्रं विसर्पं कर्दमाभिधम् ।
 त्रिदोषघ्नीं क्रियां कुर्याद्विसर्पे द्वंद्वसंभवे ॥ ४४ ॥
 त्रायमाणपटोलपर्पटकच्छुराकटुरोहिणीः
 षावकेन लघीयसा परिपाच्य साधुशृतं हितम् ।
 हन्ति सर्वविसर्पजालमुपद्रवौघसमायुतं
 द्वंद्वजं विषजं च तं पुरसंयुतं गुणवत्तरम् ॥ ४५ ॥
 इति त्रायमाणादिकाथः ।

अथ गुडूच्यादिकाथः—

अमृतवृषपटोलं निम्बवल्कैरुपेतं
 त्रिफलखदिरसारो व्याधिघातश्च तुल्यम् ।
 कथितमिदमशेषं गुग्गुलोष्टद्वयुक्तं
 हरति विषविसर्पान्कुष्ठमष्टादशापि ॥ ४६ ॥
 इति गुडूच्यादिकाथः ।

अथ वृषाद्यं घृतम्—

वृषखदिरपटोलनिम्बपत्रत्वग्मृतामलकीकषायकल्कैः ।

घृतमभिनवमेतदाशु पक्वं जयति विसर्पमदास्रकुष्ठगुल्मान् ॥ ४७ ॥
इति वृषाद्यं घृतम् ।

अथ गौराद्यं सर्पिः—

द्वे हरिद्वे स्थिरा मूर्वा सारिवा चन्दनद्वयम् ।

मधुकं मधुपर्णी च पद्मकं पद्मकेसरम् ॥ ४८ ॥

उशीरमुत्पलं मेदा त्रिफला पञ्चवल्कलम् ।

कल्कैरक्षसमैरेभिर्घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ ४९ ॥

विषवीसर्पविस्फोटकीटलूताव्रणापहम् ।

गौराद्यमिति विख्यातं सर्पिः श्लेष्ममरुत्प्रणुत् ॥ ५० ॥

इति गौराद्यं सर्पिः ।

अथ करञ्जाद्यं तैलम्—

करञ्जसप्तच्छदलाङ्गुलीकास्नुह्यर्कदुग्धानलभृङ्गराजैः ।

तैलं निशामूत्रविषैर्विपक्वं विसर्पविस्फोटविचार्षिकान्नम् ॥ ५१ ॥
इति करञ्जाद्यं तैलम् ।

कुष्ठेषु ये रसा यानि सर्पांषि कथनानि च ।

चूर्णादीन्यपि सर्वाणि विसर्पेष्वपि तान्यलम् ॥ ५२ ॥

कुष्ठामयस्फोटमसूरिकोक्तचिकित्सयाऽप्याशु हरेद्विसर्पान् ।

सर्वान्विपक्वान्परिशोध्य धीमान्ब्रणक्रमेणोपचरेद्यथोक्तम् ॥ ५३ ॥

इति श्रीयोगतरङ्गिण्यां विसर्पनिदानचिकित्साकथनं नाम त्रयोविंशत्यधि-
कशततमस्तरङ्गः ॥ १२३ ॥

अथ चतुर्विंशत्यधिकशततमस्तरङ्गः ।

अथ स्नायुकनिदानम्—

शाखासु कुपितो दोषः शोथं कृत्वा विसर्पवत् ।

मिनत्ति तत्क्षते तत्र सोष्मा मांसं विशोष्य च ॥ १ ॥

कुर्यात्तन्तुनिर्मं जीवं तनुवृत्तं सितद्युतिम् ।

बहिः शनैः क्षताद्याति च्छेदात्कोपमुपैति सः ॥ २ ॥

तत्पाताच्छोफशान्तिः स्यात्पुनः स्थानान्तरे भवेत् ।

स स्नायुक इति ख्यातः क्रिया चात्र विसर्पवत् ॥ ३ ॥

वातेन श्यावरूक्षः सरुगथ दहनान्नीलपीतः सदाहः

पित्तेऽथ श्लेष्मणः स्यात्पृथुगरिमयुतोऽथ द्विदोषे द्विलिङ्गः ।

रक्तेनाऽऽरक्तकान्तिः समधिकदहनोऽथाखिलैः सर्वलिङ्गो

रोगोऽसावष्टधेत्थं मुनिभिरभिहितः स्नायुकस्तन्तुकीटः ॥ ४ ॥

बाह्वोर्यदि प्रमादेन जङ्घयोस्त्रुट्यति क्वचित् ।

संकोचं खञ्जतां वाऽपि छिन्नस्तन्तुः करोत्यसौ ॥ ५ ॥

इति स्नायुकनिदानम् ।

अथ चिकित्सा—

अथातिविषायं चूर्णम्—

अहिंस्रामूलगोमूत्रकल्कालेपस्तु वातजे ।

पञ्चवल्कलकल्केन हितो लेपोऽत्र पित्तजे ॥ ६ ॥

श्लेष्मजे स्नायुके लेपः प्रशस्तः काश्चनारजः ।

तद्वाभ्यां द्वंद्वजे लेपः सर्वैस्तैः सर्वजे हितः ॥ ७ ॥

रक्तजे स्नायुके लेपो वटप्लक्षत्वचो हितः ।

विसर्पोक्ताः क्रियाः सर्वाः स्नायुके तु हिता मताः ॥ ८ ॥

विशेषः कथ्यते कोऽपि स्नायुके शीघ्रसौख्यकृत् ।

स्नेहस्वेदप्रलेपादि कर्म कुर्याद्यथाबलम् ॥ ९ ॥

बब्बूलबीजं गोमूत्रपिष्टं हन्ति प्रलेपनात् ।

स्नायुकानि समस्तानि सशोथानि रुजन्ति च ॥ १० ॥

गव्यं सर्पिस्त्र्यहं पीत्वा निर्गुण्डीस्वरसं त्र्यहम् ।

पिबन्स्नायुकमत्युग्रं निहन्त्येव न संशयः ॥ ११ ॥

मूलं सुषव्या हिमवारिपिष्टं पानादिना तन्तुगर्दं प्रचण्डम् ।

शान्तिं नयेत्सव्रणमाशु पुंसां गन्धर्वगन्धेन घृतेन पीत्वा ॥ १२ ॥

सौमाञ्जनमूलदलैर्लेपः काञ्जिकसंयुतैः ।

हन्ति स्नायुकमत्युग्रं विसर्पमपि दुःसहम् ॥ १३ ॥

टङ्कणं हिङ्गुनेपालगुडमर्कपयोन्वितम् ।

त्रिदिनं बन्धयेत्पिण्डं स्नायुकं हन्ति निश्चयः ॥ १४ ॥

अतिविषमुस्तकमार्गीविश्वौषधपिप्पलीबिभीतकानाम् ।

चूर्णं तन्तुकृमिघ्नं पुंसामुष्णेन वारिण्या पीतम् ॥ १५ ॥

इत्यतिविषाद्यं चूर्णम् ।

अथ शिशुमूलादिलेपः—

शिशुमूलदलैः पिष्टैः काञ्जिकेन ससैन्धवैः ।

लेपः स्नायुकरोगाणां शमनः परमः स्मृतः ॥ १६ ॥

इति शिशुमूलादिलेपः ।

अहिंस्रामूलकल्कस्य प्रलेपः स्नायुकं जयेत् ।

पारावतपुरीषस्य मधुना कल्कितस्य च ।

गिलिता गुटिका हन्ति स्नायुकामयमुद्धतम् ॥ १७ ॥

इति श्रीयोमतरङ्गिण्यां स्नायुकनिदानचिकित्साकथनं नाम चतुर्विंशत्यधि-
कशततमस्तरङ्गः ॥ १२४ ॥

अथ पञ्चविंशत्यधिकशततमस्तरङ्गः ।

अथ विस्फोटनिदानम्—

कट्वम्लतीक्ष्णोष्णविदाहिरूक्षक्षारैरजीर्णाध्यशनातपैश्च ।

तथर्तुदोषेण विपर्ययेण कुप्यन्ति दोषाः पवनाद्यस्तु ॥ १ ॥

त्वचमाश्रित्य ये रक्तमांसास्थीनि प्रदूष्य च ।

घोरान्कुर्वन्ति विस्फोटान्सर्वाञ्ज्वरपुरःसरान् ॥ २ ॥

अग्निदग्धनिभाः स्फोटाः सज्वरा रक्तपित्तजाः ।

कचिस्सर्वत्र वा देहे विस्फोटा इति संस्मृताः ॥ ३ ॥

अष्टधात्वमाह—

दोषैः पृथग्द्वयैः सर्वैरथ वाऽपि च तेऽष्टधा ।

वातजलक्षणमाह—

शिरोरुक्कूलभूयिष्ठं ज्वरतृट्पर्वभेदनम् ॥ ४ ॥

सुकृष्णवर्णता चेति वातविस्फोटलक्षणम् ।

पित्तजलक्षणमाह—

ज्वरदाहरुजास्रावपाकतृष्णाभिरन्वितम् ॥ ५ ॥

पीतलोहितवर्णं च पित्तविस्फोटलक्षणम् ।

कफजलक्षणमाह—

छर्द्यरोचकजाड्यानि कण्डूकाठिन्यपाण्डुताः ॥ ६ ॥
अवेदनश्चिरात्पाकः स विस्फोटः कफात्मकः ।

कफपित्तजलक्षणमाह—

कण्डूर्दाहो ज्वरश्छर्दिरेतैस्तु कफपैत्तिकः ॥ ७ ॥

वातपित्तजलक्षणमाह—

वातपित्तकृतो यस्तु कुरुते तीव्रवेदनाम् ।

कफवातजलक्षणमाह—

कण्डूस्तैमित्यगुरुभिर्जानीयात्कफवातिकम् ॥ ८ ॥

त्रिदोषजलक्षणमाह—

मध्ये निम्नोन्नतोऽन्ते च कठिनोऽल्पप्रपाकतः ।
दाहरागतृषामोहछर्दिमूर्छारुजो ज्वरः ॥ ९ ॥
अलाषो वेपथुस्तन्द्रा सोऽसाध्यस्तु त्रिदोषजः ।

पित्तहेतुजमाह—

रक्ता रक्तसमुत्थानां गुञ्जाविट्टमसंनिभाः ॥ १० ॥
वेदितव्यास्तु रक्तेन पैत्तिकेन तु हेतुना ।

असाध्यत्वमाह—

न ते सिद्धिं समायान्ति सिद्धैर्योगवरैरपि ॥ ११ ॥
एकदोषोत्थितः साध्यः कृच्छ्रसाध्यो द्विदोषजः ।
सर्वरूपान्वितो घोरस्त्वसाध्यो मूर्धुपद्रवः ॥

तस्योपद्रवाः—

तृट्कासर्मांससंकोचदाहहिक्रामदक्षयाः ।
विसर्पविस्फोटकृतास्त्वसाध्याः स्युरुपद्रवाः ॥ १३ ॥
हिक्रा श्वासोऽरुचिस्तृष्णा चाक्लमर्दो हृदि व्यथा ।
विसर्पज्वरहृल्लासा विस्फोटानामुपद्रवाः ॥ १४ ॥

इति विस्फोटनिदानम् ।

अथ चिकित्सा—

द्विपञ्चमूलादिकाथः—

सत्राऽऽदौ लङ्घनं कार्यं वमनं पथ्यभोजनम् ।
 यथादोषबलं वीक्ष्य प्रोक्तं युक्तं च रेचनम् ॥ १५ ॥
 क्षुधिते लङ्घिते वान्ते जीर्णशालियवादिभिः ।
 मुद्गाढकीमसूराणां रसैर्वा विश्वसंयुतैः ॥ १६ ॥
 सुनिषण्णकवेत्राग्रतण्डुलीयककेम्बुकैः ।
 कुलकाभीरुकैरेभिः सपर्पटकतीनसैः ॥ १७ ॥
 कारवलैश्च कुसुमैर्निम्बपल्लवबिल्वजैः ।
 तिक्तयूषसमायुक्तैर्मोजनं संप्रयोजयेत् ॥ १८ ॥
 द्विपञ्चमूलीं रास्नां च दार्व्युशीरं दुरालमाम् ।
 सामृतं धान्यकं मुस्तं काथयित्वा शृतं पिबेत् ॥ १९ ॥
 विस्फोटं वातसंभूतं निहन्त्येतन्न संशयः ।

इति द्विपञ्चमूलादिकाथः ।

अथ द्राक्षादिकाथः—

द्राक्षाकाश्मर्यखर्जूरपटोलारिष्टचन्दनैः ॥ २० ॥
 लाजाकुलकदुस्पर्शैः काथः शर्करया युतः ।
 विस्फोटं पित्तजं हन्ति सोपद्रवमसंशयम् ॥ २१ ॥

इति द्राक्षादिकाथः ।

अथ भूनिम्बादिकाथः—

भूनिम्बनिम्बवासाश्च त्रिफलेन्द्रयवासकाः ।
 पिशुमन्दः पटोली च काथमेषां सशर्करम् ॥ २२ ॥
 पीत्वा विमुच्यते नूनं कफविस्फोटकान्नरः ।

इति भूनिम्बादिकाथः ।

अथ द्वादशाङ्गः—

किराततिक्तकारिष्टयष्ट्याह्वाम्बुदपर्पटैः ॥ २३ ॥
 पटोलवासकोशीरत्रिफलाकौटजैः शृतम् ।
 द्वादशाङ्गं नरः पीत्वा विस्फोटेभ्यो विमुच्यते ॥ २४ ॥
 द्वंद्वजेभ्यस्त्रिदोषोत्थाद्रक्तजाच्च हिताशनः ।

इति द्वादशाङ्गः ।

अथामृतादिकाथः—

अमृतवृषपटोलं मुस्तकं सप्तपर्णं
खदिरमसितवेत्रं निम्बपत्रं हरिद्रे ।
शृतमिति सविसर्पाः कुष्ठविस्फोटकण्डू-
रपनयति मसूरीः शीतपित्तं ज्वरं च ॥ २५ ॥

इत्थमृतादिकाथः ।

अथ दशाङ्गलेपः—

कपीतनकूतकरात्रियुग्मं मांसीनतैलामधुवारिशितैः ।
लेपः ससर्पिः प्रणुदत्यवश्यं विस्फोटदाहज्वरकान्विसर्पान् ॥ २६ ॥
इति दशाङ्गलेपः ।

अथ कम्पिलाद्यं तैलम्—

कम्पिलकं विडङ्गानि बत्सकं त्रिफलां बलाम् ।
पटोलं पिचुमन्दं च लोध्रमुस्तप्रियङ्गुकम् ॥ २७ ॥
धातकीं खदिरं सर्जमेलामगुरुचन्दनम् ।
पिष्ट्वा साध्यं भवेत्तैलं तत्परं व्रणरोपणम् ॥ २८ ॥
इति कम्पिलाद्यं तैलम् ।

अथ पञ्चतित्तकं घृतम्—

पटोलसप्तच्छदनिम्बवासाफलत्रयच्छिन्नरुहाविपक्रम् ।
तत्पञ्चतित्ताभिधमाज्यमत्ति त्रिदोषविस्फोटविसर्पकण्डूः ॥ २९ ॥
इति पञ्चतित्तकं घृतम् ।

इति श्रीयोगतरङ्गिण्यां विस्फोटनिदानचिकित्साकथनं नाम षड्विंशत्य-
धिकशततमस्तरङ्गः ॥ १२९ ॥

अथ षड्विंशत्यधिकशततमस्तरङ्गः ।

अथ मसूरिकानिदानम्—

कटुम्ललवणक्षारविरुद्धाध्यशनाशनैः ।
कुष्ठनिष्पावशाकाद्यैः प्रदुष्टैः पवनोदकैः ॥ १ ॥
कुष्ठग्रहेक्षणाद्वाऽपि देशे दोषाः समुद्धताः ।
जनयन्ति शरीरेऽस्मिन्नुद्वेगैरक्तेन संयुताः ॥ २ ॥

मसूराकृतिसंस्थानाः पिटकाः स्युर्मसूरिकाः ।
तत्प्राग्रूपं ज्वरः कण्डूर्गात्रमङ्गोऽरुचिर्भ्रमः ॥ ३ ॥
त्वचि शोथः सवैवर्ण्यं नेत्ररोगास्तथैव च ।

वातमसूरिका आह—

स्फोटाः कृष्णारुणा रूक्षास्तीव्रवेदनयाऽन्विताः ॥ ४ ॥
कठिनाश्चिरपाकाश्च भवन्त्यनिलसंभवाः ।

पित्तजा आह—

संध्यस्थिपर्वणां भेदः कासकम्पारतिभ्रमाः ॥ ५ ॥
शोथस्ताल्वोष्ठजिह्वानां तृष्णा चारुचिसंयुता ।
रक्ताः पीतासिताः स्फोटाः सदाहास्तीव्रवेदनाः ॥ ६ ॥
मुदवोऽचिरपाकाश्च पित्तकोपसमुद्भवाः ।

रक्तपित्तजा आह—

विद्भेदश्चाङ्गमर्दश्च दाहस्तृष्णाऽरुचिस्तथा ॥ ७ ॥
मुखपाकोऽक्षिरोगश्च ज्वरस्तीव्रः सुदारुणः ।
रक्तजायां भवन्त्येते विकाराः पित्तलक्षणाः ॥ ८ ॥

कफजा आह—

कफप्रसेकस्तैमित्यं शिरोरुग्गात्रगौरवम् ।
हृल्लासश्चारुचिर्निद्रा तन्द्रालस्यसमन्विता ॥ ९ ॥
श्वेताः स्निग्धा भृशं स्थूलाः कण्डूरा मन्दवेदनाः ।
मसूरिकाः कफोत्थाश्च चिरपाकाः प्रकीर्तिताः ॥ १० ॥

त्रिदोषजा आह—

नीलाश्चिपिटविस्तीर्णा मध्ये निम्ना महारुजाः ।
ग्रभूताश्चिरपाकाश्च पूतिस्रावास्त्रिदोषजाः ॥ ११ ॥

चर्मसंज्ञिता आह—

कण्ठरोधोऽरुचिस्तन्द्रा प्रलापारतिसंयुताः ।
दुश्चिकित्स्याः समुद्दिष्टाः पिटकाश्चर्मसंज्ञिताः ॥ १२ ॥

कफपित्तजा आह—

रोमकूपोन्नतिसमा रागिण्यः कफपित्तजाः ।
कासारोचकसंयुक्ता रोमान्त्यो(?) ज्वरपूर्विकाः ॥ १३ ॥

त्वग्गता आह—

तोयबुद्बुदसंकाशास्त्वग्गतास्तु मसूरिकाः ।

रसगता आह—

स्वल्पदोषाः प्रजायन्ते भिन्नास्तोयं स्रवन्ति च ॥ १४ ॥

रक्तगता आह—

रक्तस्था लोहिताकाराः शीघ्रपाकास्तनुत्वचः ।

साध्या नात्यर्थदुष्टाश्च भिन्ना रक्तं स्रवन्ति च ॥ १५ ॥

मांसगता आह—

मांसस्थाः कठिनाः स्निग्धाश्चिरपाकास्तनुत्वचः ।

गात्रशूलोऽरतिः कण्डूस्तृषाज्वरसमन्विताः ॥ १६ ॥

मेदोगता आह—

मेदोजा मण्डलाकारा मृदवः किञ्चिदुन्नताः ।

घोरज्वरपरीताश्च स्थूलाः स्निग्धाः सवेदनाः ॥ १७ ॥

संमोहारतिसंतापाः कश्चिदाभ्यो विनिस्तरेत् ।

क्षुद्रा गात्रसमा रूक्षाश्चिपिटाः किञ्चिदुन्नताः ॥ १८ ॥

मज्जागता आह—

मज्जोत्था भृशसंमोहवेदनारतिसंयुताः ।

छिन्दन्ति मर्मधामानि प्राणानाशु हरन्ति च ॥ १९ ॥

भ्रमरेणेव विन्द्वानि कुर्वन्त्यस्थीनि सर्वतः ।

शुक्रगता आह—

पक्वाभाः पिटकाः स्निग्धाः श्लक्षणाश्चात्यर्थवेदनाः ॥ २० ॥

स्तैमित्यारतिसंमोहदाहोन्मादसमन्विताः ।

शुक्रजायां मसूर्यां तु लक्षणानि भवन्ति हि ॥ २१ ॥

सदोषा आह—

निर्दिष्टं केवलं चिह्नं दृश्यते तु न जीवति ।

दोषमिश्राश्च सप्तैता द्रष्टव्या दोषलक्षणैः ॥ २२ ॥

साध्यासाध्यत्वमाह—

त्वग्गता रक्तजाश्चैव पित्तजाः श्लेष्मजास्तथा ।

श्लेष्मपित्तकृताश्चैव सुखसाध्या मसूरिकाः ॥ २३ ॥

एता विनाऽपि क्रियया प्रशाम्यन्ति शरीरिणाम् ।
 वातजा वातपित्तोत्थाः श्लेष्मवातकृताश्च याः ॥ २४ ॥
 कृच्छ्रसाध्यतमास्तास्तु यत्नादेता उपाचरेत् ।
 अतोऽन्यास्तु विनिर्दिष्टा यास्तु सम्यक्क्रियां विना ॥ २५ ॥
 न सिद्धिर्जायतेर्नृणां स्तवं नाम्नामुपाचरेत् ।
 असाध्याः संनिपातोत्थास्तासां वक्ष्यामि लक्षणम् ॥ २६ ॥
 प्रवालसदृशाः काश्चित्काश्चिज्जम्बूफलोपमाः ।
 लोहजालनिभाः काश्चिदतसीफलसंनिभाः ॥ २७ ॥
 आसां बहुविधा वर्णा जायन्ते दोषभेदतः ।
 कासहिक्काप्रमेहाश्च ज्वरस्तीव्रः सुदारुणः ॥ २८ ॥
 प्रलापश्चारुचिर्मूर्च्छा तृष्णा दाहोऽतिघूर्णता ।
 मुखेन प्रसवेद्रक्तं तथा घ्राणेन चक्षुषा ॥ २९ ॥
 कण्ठे घुर्घुरकं कृत्वा श्वसन्नत्यर्थदारुणम् ।
 मसूरिकामिभूतस्य यस्यैतानि भिषग्वरः ॥ ३० ॥
 लक्षणानीह दृश्यन्ते न दद्यात्तत्र भेषजम् ।
 मसूरिकाभिभूतो यो भृशं घ्राणेन निश्चसेत् ॥ ३१ ॥
 स भृशं त्यजति घ्राणं तृष्णार्तो वायुदूषितः ।
 मसूरिकान्ते शोफः स्यात्कूर्परे मणिबन्धके ॥ ३२ ॥
 तथाऽसफलके वाऽपि दुश्चिकित्स्यः सुदारुणः ।

कोद्ववाकारमाह—

कफमारुतसंभूतः कोद्ववो नामतो गदः ॥ ३३ ॥
 अपाकः कोद्ववाकारः सूचिनिस्तोदकारकः ।
 जलशूक इवाङ्गेषु विध्यतीव विशेषतः ॥ ३४ ॥
 सप्ताहाद्वादशाहाद्वा ततः स्वस्थो नरो भवेत् ।

इति मसूरिकानिदानम् ।

अथैतच्चिकित्सा—

मसूरिकायां कुष्ठोक्ता लेपनादिक्रिया हिता ॥ ३५ ॥
 पित्तश्लेष्मविसर्पोक्ता क्रिया वा संप्रशस्यते ।

अथ वेणुत्वगादिधूपः—

वेणुत्वक्सुरसा लाक्षा कार्पासास्थिमयूरकाः ॥ ३६ ॥

यवपिष्टं विषं सर्पिर्वचा ब्राह्मी सुवर्चला ।
धूपनार्थं यथालामं धूपमेनं प्रयोजयेत् ॥ ३७ ॥
आदावयं प्रयोक्तव्यो वश्यन्त्यस्मान्मसूरिकाः ।
न गृह्णन्ति विषं केचिद्यथालामश्रुतेरिह ॥ ३८ ॥

इति वेणुत्वगादिधूपः ।

अथ वानर्यादिकाथः—

श्वेतचन्दनकल्काढ्यं हि*लमोचीभवं रसम् ।
पिबेन्मसूरिकारम्भे केवलं पारदान्वितम् ॥ ३९ ॥
सर्वासां वमनं पूर्वं पटोलारिष्टप्रवासकैः ।
कषायैश्च वचावत्सयष्ट्याह्वफलकल्कितैः ॥ ४० ॥
सक्षौद्रं पाययेद्ब्राह्मीरसं वा हेलमोचिकम् ।
वान्तस्य रेचनं देयं शमनं त्वबले नरि ॥ ४१ ॥
उमाभ्यां हृतदोषस्य विशुष्यन्ति मसूरिकाः ।
निर्विकाराः स्वल्पपूयाः पच्यन्ते चाल्पवेदनाः ॥ ४२ ॥
वानरीबीजजनितं कथितं पर्युषितमुत्तमे दिवसे ।
चैत्रस्य पापरोगो न भवति पिबतां क्वचिन्नृणाम् ॥ ४३ ॥

इति वानर्यादिकाथः ।

अथ बृहत्पटोलादिकाथः—

नारीणां वामपादस्थं नराणामपसव्यगम् ।
पापरोगमयं बन्धाच्छिवास्थि विनिवारयेत् ॥ ४४ ॥
चैत्रासितभूतदिने रक्तपताकान्विता स्नुही भवने ।
धवलितकलशे न्यस्ता पादरुजं दूरतो धत्ते ॥ ४५ ॥
पटोलं सारिवा मुस्तं पाठा कटुकरोहिणी ।
खदिरः पिचुमन्दश्च बला धात्री विकङ्कतः ॥ ४६ ॥
एषां कषायः पानात्तु हन्ति वातमसूरिकाम् ।

इति बृहत्पटोलादिकाथः ।

अथ निम्बादिकाथः—

न्यग्रोधप्लक्ष्ममञ्जिष्ठशिरीषोदुम्बरत्वचाम् ॥ ४७ ॥

ससर्पिष्कं मसूर्यां तु वातजायां प्रलेपनम् ।
 एतस्यां शोधनं नैव कार्यं वैद्येन जानता ॥ ४८ ॥
 तत्राऽऽदौ तर्पणं कार्यं लाजचूर्णेः सशर्करैः ।
 आदावेव मसूर्यां तु पित्तजायां प्रयोजयेत् ॥ ४९ ॥
 निम्बादिक्रथितं तेन प्रशाम्यति मसूरिका ।

तद्यथा—

निम्बः पर्पटकं पाठा पटोलं चन्दनद्वयम् ॥ ५० ॥
 वासा दुरालमा धात्री सेव्यं कटुरोहिणी ।
 एतेषां क्रथितं शीतं सितया मधुरीकृतम् ॥ ५१ ॥
 मसूरिकां पित्तकृतां हन्ति रक्तोत्तरामपि ।

इति निम्बादिक्राथः ।

अथ द्राक्षादिक्राथः—

द्राक्षाकाश्मर्यखर्जूरपटोलारिष्टवासकैः ॥ ५२ ॥
 लाजामलकदुस्पर्शैः क्रथितं शर्करान्वितम् ।
 मसूरिकां पित्तकृतां रक्तजां च विनाशयेत् ॥ ५३ ॥

इति द्राक्षादिक्राथः ।

अथ पञ्चमूलादिक्राथः—

शिरीषोदुम्बराश्वत्थशेलुन्यग्रोधवल्कलैः ।
 प्रलेपः सघृतः शीतं व्रणवीसर्पदाहहा ॥ ५४ ॥
 खदिरारिष्टपत्रैश्च शिरीषोदुम्बरत्वचा ।
 कुर्याल्लेपं कफोत्थायां मसूर्यां भिषगुत्तमः ॥ ५५ ॥
 वृषपत्ररसं दद्यात्पानार्थं मधुसंयुतम् ।
 कफजायां मसूर्यां तु कठिनायां विक्षेपतः ॥ ५६ ॥
 बृहतः पञ्चमूलस्य वृषपत्रयुतस्य च ।
 कषायः शमयेत्पीतः कफोत्थां तु मसूरिकाम् ॥ ५७ ॥

इति पञ्चमूलादिक्राथः ।

अथ दुरालभादिक्राथः—

दुरालभा पर्पटकं पटोलं कटुरोहिणी ।
 पिबेन्मसूर्यामेतेषां क्राथं पित्तकफात्मनि ॥ ५८ ॥

इति दुरालभादिक्राथः ।

अथ गुडूच्यादिः—

गुडूचीपर्पटानन्ताकटुकाक्वाथितं पिबेत् ।

वातपित्तमसूर्यां तु घोरोपद्रवमाजि च ॥ ५९ ॥

इति गुडूच्यादिः ।

अथ नागरादिः—

नागरमुस्तगुडूचीधान्यकभार्गीवृषैः कृतः क्वाथः ।

वातश्लेष्ममसूरीदूरी कुरुतेऽनुपानतः सत्यम् ॥ ६० ॥

इति नागरादिः ।

अथ निम्बादिकाथः—

निम्बः पर्पटकं पाठा पटोलं कटुरोहिणी ।

वासा दुरालमा धात्री ससेव्यं चन्दनद्वयम् ॥ ६१ ॥

एष निम्बादिकः ख्यातः क्वाथः शर्करयाऽन्वितः ।

मसूरीं सर्वजां हन्ति सर्वोपद्रवसंयुताम् ॥ ६२ ॥

इति निम्बादिकाथः ।

अथ काञ्चनारादिः—

काञ्चनारत्वचः क्वाथस्ताप्यचूर्णविचूर्णितः ।

निर्गत्यान्तः प्रविष्टां तु मसूरीं बाह्यतो नयेत् ॥ ६३ ॥

इति काञ्चनारादिः ।

अथ पटोलादिः—

पटोलकुण्डलीमुस्तावृषधन्वयवासकैः ।

भूनिम्बनिम्बकटुकापर्पटैश्च शृतं जलम् ॥ ६४ ॥

मसूरीः शमयेदामाः पक्काश्चैव विशोधयेत् ।

नातः परतरं किञ्चिच्छीतलाज्वरशान्तये ॥ ६५ ॥

इति पटोलादिः ।

अथ खदिराष्टकम्—

खदिरत्रिफलारिष्टपटोलामृतवासकैः ।

क्वाथोऽष्टभागो जयति रोमान्तिकमसूरिकाः ।

कुष्ठविस्फोटवीसर्पकण्डूवादीनापि पानतः ॥ ६६ ॥

इति खदिराष्टकम् ।

अथ पटोलादिकाथः—

पटोलमूलारुणतण्डूलीयकं तथैव धात्रीखदिरेण संयुतम् ।
पिबेज्जलं सुकथितं सुशीतलं मसूरिकारोगविनाशनं परम् ॥ ६७ ॥
इति पटोलादिकाथः ।

अथ शिरीषादिचूर्णम्—

शिरीषोदुम्बराश्वत्थवटप्लक्षत्वचां रजः ।
उद्धूलनेन जयति मसूरीक्लेदमुल्बणम् ॥ ६८ ॥
इति शिरीषादिचूर्णम् ।

अथ निम्बादिधावनम्—

निम्बातिमुक्तकास्फोताबिम्बीवेतसवल्कलम् ।
शृतशीतं प्रयोक्तव्यं मसूरीव्रणधावने ॥ ६९ ॥
इति निम्बादिधावनम् ।

अथाञ्जनम्—

शम्बूकमांसं स्वरसेन नेत्रे समञ्जयेत्तेन मसूरिकाभ्यः ।
न जायते तत्र भयं भवन्ति नैताः प्रजातास्तु शमं प्रयान्ति ॥ ७० ॥
इत्यञ्जनम् ।

अथ मसूरीधूपनम्—

रालाहिङ्गुरसोनैश्च धूपयेत्ता मसूरिकाः ।
कृमयो न पतन्त्यत्र जाताः शाम्यन्ति ते लघु ॥ ७१ ॥
इति मसूरीधूपनम् ।

आर्द्रकस्य रसं दद्याद्हरदेन समन्वितम् ।
कफप्रकोपे घुर्घुरके मसूर्यां कण्ठरोधने ॥ ७२ ॥
अतिक्लेदे प्रदातव्यमारण्योपलभस्मकम् ।
यथादोषं प्रदातव्यं पथ्यमत्र विचक्षणैः ॥ ७३ ॥
कुर्याद्ब्रणविधानं च मसूर्यां तैलवर्जितम् ।
तथा शोणितसंसृष्टाः काश्चिच्छोणितमोक्षणैः ॥ ७४ ॥
काश्चिद्विनाऽपि क्रियया सिध्यन्त्याशु मसूरिकाः ।
काश्चिक्रियाकलापेन न सिध्यन्ति मसूरिकाः ॥ ७५ ॥
कृष्णाः कृष्णतराः काश्चिद्यत्नात्सिध्यन्ति वा न वा ।
स्तवपाठैः सिद्धमन्त्रैर्जपैर्ग्रहविधानतः ॥ ७६ ॥

शीतलाराधनैश्चण्डीपाठैश्चैता उपाचरेत् ।

अयमेव विधिः कार्यः कोद्रवाख्यामयेऽपि च ॥ ७७ ॥

अथ मसूरिकाभेदस्य शीतलाया अधिकारः—

देव्या शीतलया क्रान्ता मसूर्येव हि शीतला ।

ज्वर एव यथाभूताधिष्ठितो विषमज्वरः ॥ ७८ ॥

सा च सप्तविधा ख्याता तासां भेदान्प्रचक्षमहे ।

ज्वरपूर्वा बृहत्स्फोटैः शीतला बृहती भवेत् ॥ ७९ ॥

सप्ताहान्निःसरत्येषा सप्ताहात्पूर्णतां व्रजेत् ।

ततस्तृतीये सप्ताहे शुष्यति स्खलति त्वचम् ॥ ८० ॥

तासां मध्ये यदा काश्चित्पाकं गत्वा स्रवन्ति च ।

तत्रावधूलनं कुर्याद्वनगोमयमस्मना ॥ ८१ ॥

निम्बसत्पत्रशाखाभिर्मक्षिकामपसारयेत् ।

जलं च शीतलं दद्याज्ज्वरेऽपि न तु तद्भवेत् ॥ ८२ ॥

स्थापयेत्तं स्थले पूते रम्ये रहसि शीतले ।

नाशुचिः संस्पृशेत्तं तु न च तस्यान्तिकं व्रजेत् ॥ ८३ ॥

बहवो भिषजो नात्र भेषजं योजयन्ति हि ।

केचित्प्रयोजयन्त्येव मर्तं तेषामथ ब्रुवे ॥ ८४ ॥

ये शीतलेन सलिलेन विपिष्य सम्यक्

चिश्चाजबीजसहितां रजनीं पिबन्ति ।

तेषां भवन्ति न कदाचिदपीह देहे

पीडाकरा जगति शीतलिकाविकाराः ॥ ८५ ॥

मोचारसेन सहितं सितचन्दनं ये

वासारसेन मधुकं मधुकेन वाऽथ ।

आदौ पिबन्ति सुमनास्वरसेन मिश्रं

ते नाऽऽप्नुवन्ति भुवि शीतलिकाविकारान् ॥ ८६ ॥

बध्नीयान्निम्बपत्राणि परितो मर्तनान्तरे ।

कदाचिदपि नो कार्यमुच्छिष्टस्य प्रवेशनम् ॥ ८७ ॥

स्फोटेष्वधिकदाहेषु रक्षारेणूत्करो हितः ।

तेन ते शोषमायान्ति प्रपाकं न भजन्ति च ॥ ८८ ॥

रक्षारेणूत्करः शुष्कगोमयभस्मचूर्णप्रक्षेपः ।

चन्दनं वासबो वस्तं गुडूची द्राक्षया सह ।

एषां शीतकषायस्तु शीतलाज्वरमोशनः ॥ ८९ ॥
 जषहोमोपहारैश्च दानैः स्वस्त्ययनार्चनैः ॥
 विप्रगोशंभुगौरीणां पूजनैस्ताः शमं नयेत् ॥ ९० ॥
 स्तोत्रं च शीतलादेव्याः पठेच्छीतलिनोऽन्तिके ।
 बाह्यणः श्रद्धया युक्तस्तेन शाम्यन्ति शीतलाः ॥ ९१ ॥

अभ्यङ्गधौताम्बरधारणानि श्मश्रुक्रियामङ्गललेपकृत्वम् ।
 वाद्यारवादीनि च तद्गुणार्तगेहे प्रशस्तानि वदन्ति सन्तः ॥ ९२ ॥

अथ शीतलाष्टकम्—

स्कन्द उवाच—

भगवन्देवदेवेश शीतलायाः स्तवं शुभम् ।
 वक्तुमर्हस्यशेषेण विस्फोटकमयापहम् ॥ ९३ ॥

ईश्वर उवाच—

वन्देऽहं शीतलां देवीं रासमस्थां दिगम्बराम् ।
 मार्जनीकलशोपेतां शूर्पालंकृतमस्तकाम् ॥ ९४ ॥
 वन्देऽहं शीतलां देवीं सर्वरोगमयापहाम् ।
 यामासाद्य निवर्तेत विस्फोटकभयं महत् ॥ ९५ ॥
 शीतले शीतले चेति यो ब्रूयाद्वाहपीडितः ।
 विस्फोटकभयं घोरं क्षिप्रं तस्य प्रणश्यति ॥ ९६ ॥
 यस्त्वामुदकमध्ये तु धृत्वा संपूजयेन्नरः ।
 विस्फोटकभयं घोरं कुले तस्य न जायते ॥ ९७ ॥
 शीतले ज्वरदग्धस्य पूतिगन्धगतस्य च ।
 प्रनष्टचक्षुषः पुंसस्त्वामाहुर्जीवनौषधम् ॥ ९८ ॥
 शीतले तनुजान् रोगान्नृणां हरासि दुस्तरान् ।
 विस्फोटकविशीर्णानां त्वमेकाऽमृतवर्षिणी ॥ ९९ ॥
 गलगण्डग्रहा रोगा ये चान्ये दारुणा नृणाम् ।
 त्वदनुष्ठानमात्रेण शीतले यान्ति संक्षयम् ॥ १०० ॥
 न मन्त्रो नौषधं किञ्चित्पापरोगस्य विद्यते ।
 त्वमेका शीतले त्रासि नान्यां पश्यामि देवताम् ॥ १०१ ॥
 मृणालतन्तुसदृशीं नाभिहन्मध्यसंस्थिताम् ।
 यस्त्वां विचिन्तयेद्देवि तस्य मृत्युर्न जायते ॥ २ ॥

अष्टकं शीतलादेव्या यः पठेन्मानवः सदा ।
 विस्फोटकमयं घोरं कुले तस्य न जायते ॥ ३ ॥
 श्रोतव्यं पठितव्यं च नरैर्मक्तिसमन्वितैः ।
 उपसर्गविनाशाय परं स्वस्त्ययनं महत् ॥ ४ ॥
 शीतलाष्टकमेतद्धि न देयं यस्य कस्यचित् ।
 किंतु तस्मै प्रदातव्यं भक्तिश्रद्धान्वितो हि यः ॥ १०५ ॥
 इति श्रीस्कन्दपुराणे काशीखण्डे शीतलाष्टकस्तोत्रं संपूर्णम् ।
 इति श्रीयोगतरङ्गिण्यां मसूरिकाशीतलानिदानचिकित्साकथनं नाम
 षड्विंशत्यधिकशततमस्तरङ्गः ॥ १२६ ॥

अथ सप्तविंशत्यधिकशततमस्तरङ्गः ।

अथ क्षुब्धरोगनिदानम्—

तत्राऽऽदावजगल्लिकामाह—

स्निग्धा सवर्णा ग्रथिता नीरुजा मुद्गसंनिमा ।
 पिटका कफवातोत्था बालानामजगल्लिका ॥ १ ॥

यवप्रख्यामाह—

यवाकारा मुकठिना ग्रथिता मांससंनिता ।
 पिटका श्लेष्मवाताभ्यां यवप्रख्येति सा स्मृता ॥ २ ॥

अन्धालजीमाह—

घनामवक्त्रां पिटकामुन्नतां परिमण्डलाम् ।
 अन्धालजीमल्पपूयां तां विद्यात्कफवातजाम् ॥ ३ ॥

विवृतामाह—

विवृतास्यां महादाहां पक्रोदुम्बरसंनिमाम् ।
 सुमण्डलां पित्तकृतां विवृतां नाम तां विदुः ॥ ४ ॥

कच्छपिकामाह—

ग्रन्थयः पञ्च वा षड्वा दारुणः कच्छपोक्षताः ।
 कफानिलाभ्यां पिटका श्लेष्मा कच्छपिका बुधैः ॥ ५ ॥

वल्मीकमाह—

ग्रीवांसकक्षाकरपाददेशे संधौ गले वा त्रिभिरेव दोषैः ।
 ग्रन्थिः स वल्मीकवदक्रियाणां जातः क्रमेणैव गतः स पाकम् ॥ ६ ॥
 मुखैरनेकैः स्फुटितोदवद्भिर्विसर्पवत्सर्पति चोन्नताग्रैः ।
 वल्मीकमाहुर्मिषजो विकारं निष्प्रत्यनीकं चिरजं विशेषात् ॥ ७ ॥

इन्द्रवृद्धामाह—

पद्मकर्णिकवन्मध्ये पिटकाभिः समाचिताम् ।
 इन्द्रवृद्धां तु तां विद्याद्वातपित्तोत्थितां भिषक् ॥ ८ ॥

गर्दभिकामाह—

मण्डलाकृतिमुत्सन्नां सरक्तां पिटकाचिताम् ।
 रुजाकरीं गर्दभिकां तां विद्याद्वातपित्तजाम् ॥ ९ ॥

पाषाणगर्दभमाह—

वातश्लेष्मसमुद्भूतः श्वयथुर्हनुसंधिजः ।
 स्थिरो मन्दरुजः स्तिग्धो ज्ञेयः पाषाणगर्दभः ॥ १० ॥

पनसिकामाह—

कर्णस्याभ्यन्तरे जातां पिटकामुग्रवेदनाम् ।
 स्थिरां पनसिकां तां तु विद्याद्वातकफोत्थिताम् ॥ ११ ॥

जालगर्दभमाह—

विसर्पवत्सर्पति यः शोफस्तनुरपाकवान् ।
 दाहज्वरकरः पित्तात्स ज्ञेयो जालगर्दभः ॥ १२ ॥

इरिवेल्लिकामाह—

पिटकामुत्तमाङ्गस्थां वृत्तामुग्ररुजाकरीम् ।
 सर्वात्मिकां सर्वलिङ्गां जानीयादिरिवेल्लिकाम् ॥ १३ ॥

कक्षामाह—

बाहुपार्श्वासकक्षेषु कृष्णस्फोटां सवेदनाम् ।
 पित्तप्रकोपसंभूतां कक्षामिति विनिर्दिशेत् ॥ १४ ॥

गन्धनामाह—

एकामैतादृशीं दृष्ट्वा पिटकां स्फोटसंनिभाम् ।
त्वग्गतां पित्तकोपेन गन्धनामां प्रचक्षते ॥ १५ ॥

अग्निरोहिणीमाह—

कक्षामागेषु ये स्फोटा जायन्ते मांसदारणाः ।
अन्तर्दाहज्वरकरा दीप्तपावकसंनिमाः ॥ १६ ॥
सप्ताहाद्द्वादशाहाद्वा पक्षाद्वा घ्नन्ति मानवम् ।
तामग्निरोहिणीं विद्यादसाध्यां संनिपाततः ॥ १७ ॥

चिप्पमाह—

नखमांसमधिष्ठाय वातपित्तं च देहिनाम् ।
कुरुते दाहपाकौ तु तं व्याधिं चिप्पमादिशेत् ॥ १८ ॥

कुनखमाह—

तदेवाल्पतरैर्दोषैः कुनखं परुषं वदेत् ।
अभिघातात्प्रदुष्टो यो नखो रूक्षोऽसितः खरः ॥ १९ ॥
भवेत्तं कुनखं विद्यात्कुलीरमिति संज्ञितम् ।

अनुशयीमाह—

गम्भीरामल्पसंरम्भां सवर्णामुपरिस्थिताम् ॥ २० ॥
पादस्यानुशयीं तां तु विद्यावन्तःप्रपाकिनीम् ।

विदारिकामाह—

विदारीकन्दवद्वृत्ता कक्षावद्भक्षणसंधिषु ॥ २१ ॥
विदारिका भवेद्रक्ता सर्वजा सर्वलक्षणा ।

शर्करार्बुदमाह—

प्राप्य मांसशिराम्नायुश्लेष्ममेदोऽनिलस्तथा ॥ २२ ॥
ग्रंथिं कुर्वत्यसौ भिन्नो मधुसर्पिर्वसानिमम् ।
स्रवत्यास्रावमनिलस्तत्र वृद्धिं गतः पुनः ॥ २३ ॥
मांसं विशोष्य ग्रथितः शर्करा जनयत्यतः ।
दुर्गन्धिं क्लिन्नमत्यर्थं नानावर्णं ततः शिराः ॥ २४ ॥
सृजन्ति रक्तं सहसा तं विद्याच्छर्करार्बुदम् ।

पाददारीमाह—

परिक्रमणशीलस्य वायुरत्यर्थरूक्षयोः ॥ २५ ॥

पादयोः कुरुते दारीं सरुजां तलसंश्रिताम् ।

कदरमाह—

शर्करोन्मथिते पादे क्षते वा कण्टकादिभिः ॥ २६ ॥

ग्रन्थिः कीलवदुत्सन्नो जायते कदरं तु तत् ।

अलसमाह—

क्लिन्नाङ्गुल्यन्तरो पादौ कण्डूदाहरुज्जान्वितौ ॥ २७ ॥

दुष्टकर्मसंस्पर्शादलसं तं विभावयेत् ।

इन्द्रलुप्तमाह—

रोमकूपानुगं पित्तं वातेन सह मूर्छितम् ॥ २८ ॥

प्रख्यावयति रोमाणि ततः श्लेष्मा सशोणितः ।

रुणद्धि रोपकूपास्तु ततोऽन्येषामसंभवः ॥ २९ ॥

तविन्द्रलुप्तं खालित्यं रुज्येति च विभाव्यते ।

दारुणकमाह—

दारुणः कण्डुरा रूक्षा केशभूमिः प्रपुट्यते ॥ ३० ॥

कफमारुतकोपेन विद्याद्वारुणकं तु तत् ।

अरुणषिकामाह—

अरुणषि बहुवक्त्राणि बहुक्लेदीनि मूर्धनि ॥ ३१ ॥

कफासृक्क्रिमिकोपेन नृणां विद्यादरुणषिकाम् ।

पलितमाह—

क्रोधशोकश्रमकृतः शरीरोष्मा शिरोगतः ॥ ३२ ॥

पित्तं च केशान्पचति पलितं तेन जायते ।

मुखदूषिकामाह—

शारुमलीकण्टकप्रख्याः कफमारुतरक्तजाः ॥ ३३ ॥

जायन्ते पिटका यूनां विज्ञेया मुखदूषिकाः ।

पद्मिनीकण्टकमाह—

कण्टकैराचितं वृत्तं मण्डलं पाण्डु कण्डुरम् ॥ ३४ ॥

पद्मिनीकण्टकप्रख्यैस्तदाख्यं कफवातजम् ।

जतुमणिमाह—

संममुच्छन्नमरुजं मण्डलं कफरक्तजम् ॥ ३५ ॥

सहजं लक्ष्म चैकेषां लक्ष्यो जतुमणिस्तु सः ।

मशमाह—

अवेदनं स्थिरं चैव यस्मिन्गात्रे तु दृश्यते ॥ ३६ ॥

माषवत्कृष्णमुत्सन्नमनिलान्मशमादिशेत् ।

तिलकालंकानाह—

नीलानि तिलमात्राणि नीरुजानि समानि च ॥ ३७ ॥

वातपित्तकफोद्रेकात्तान्विद्यात्तिलकालकान् ।

न्यच्छमाह—

महद्वा यदि वाऽत्यल्पं श्यामं वा यदि वा सितम् ॥ ३८ ॥

नीरुजं मण्डलं गात्रे न्यच्छमित्यभिधीयते ।

व्यङ्गमाह—

क्रोधायासप्रकुपितो वायुः पित्तेन संयुतः ॥ ३९ ॥

मुखंमागत्य सहसा मण्डलं विसृजत्यतः ।

नीरुजं तनुकं श्यावं मुखे व्यङ्गं तमादिशेत् ॥ ४० ॥

नीलिकामाह—

कृष्णामेवंगुणां गात्रे मुखे वा नीलिकां विदुः ।

पाण्डुत्वमाह—

वायुनोदीरितः श्लेष्मा त्वचं प्राप्य विशुष्यति ॥ ४१ ॥

ततस्त्वग्जायते पाण्डुः क्रमेण च विचेतना ।

प्रसुप्तिमाह—

अल्पकण्डूरतिक्रिदा सा प्रसुप्तिः प्रकीर्तिता ॥ ४२ ॥

विवर्तिकामाह—

परुषं परुषस्पर्शं व्यङ्गं श्यावं च मारुतात् ।

पित्तासाग्रं तथाऽऽनीलं श्वेतान्तं कण्डुमत्कफात् ॥ ४३ ॥

रक्ताद्रक्ततमात्ताग्रं शेषं चिमिचिमायते ।

मर्दनात्पीडनाद्वाऽपि तथैवाप्यभिधाततः ॥ ४४ ॥

मेदूचर्म यदा वायुर्मज्जते सर्वतश्चरन् ।
 तदा वातोपसृष्टत्वाच्चर्म तत्परिवर्तते ॥ ४५ ॥
 मणेरधस्तात्कोशस्तु ग्रन्थिरूपेण लम्बते ।
 सवेदनं सदाहं च पाकं च व्रजति क्वचित् ॥ ४६ ॥
 विवर्तितेति तां विद्यात्सरुजां वातसंभवाम् ।
 सकण्डूः कठिना वाऽपि सैव श्लेष्मसमन्विता ॥ ४७ ॥

अवपाटिकामाह—

अल्पीयसीं यदा हर्षाद्वलाद्गच्छेत्स्त्रियं नरः ।
 हस्ताभिघातादपि वा चर्मण्युद्धर्तिते बलात् ॥ ४८ ॥
 मर्दनात्पीडनाद्वाऽपि शुक्रवेगविघाततः ।
 यस्याश्च पाट्यते चर्म तां विद्यादवपाटिकाम् ॥ ४९ ॥

निरुद्धप्रकशमाह—

घातोपसृष्टे मेदू वै चर्म संश्रयते मणिम् ।
 मणिश्चर्मोपनद्धस्तु मूत्रस्रोतो रुणद्धि च ॥ ५० ॥
 निरुद्धप्रकशे तस्मिन्मन्दधारमवेदनम् ।
 मूत्रं प्रवर्तते जन्तोर्मणिर्विव्रियते न च ॥ ५१ ॥
 निरुद्धप्रकशं विद्यात्सरुजं वातसंभवम् ।

रुद्धगुदमाह—

वेगसंधारणाद्वायुर्विहतो गुदसंश्रितः ॥ ५२ ॥
 निरुणद्धि महत्स्रोतः सूक्ष्मद्वारं करोति च ।
 मार्गस्य सौक्ष्म्यात्कृच्छ्रेण पुरीषं तस्य गच्छति ॥ ५३ ॥
 संनिरुद्धगुदं व्याधिमेनं विद्यात्सुषुप्तरम् ।

अहिपूतनमाह—

शकृन्मूत्रसमायुक्तेऽधौतेऽपाने शिशोर्मवेत् ॥ ५४ ॥
 स्विन्ने वा स्नाप्यमाने वा कण्डू रक्तकफोद्भवा ।
 कण्डूयनात्ततः क्षिप्रं स्फोटसावश्च जायते ॥ ५५ ॥
 एकीभूतं त्रणैर्घोरं तं विद्यादहिपूतनम् ।

वृषणकच्छूमाह—

आनोत्सादनहीनस्य मलो वृषणसंस्थितः ॥ ५६ ॥

यदा प्रक्लिद्यते स्वेदात्कण्डूं स जनयेत्ततः ।
कण्डूयनात्ततः क्षिप्रं स्फोटस्रावश्च जायते ॥ ५७ ॥
प्राहुर्वृषणकच्छूं तां श्लेष्मरक्तप्रकोपजाम् ।

गुदभ्रंशमाह—

प्रवाहणातिसाराभ्यां निर्गच्छति गुदो बहिः ॥ ५८ ॥
रूक्षदुर्बलदेहस्य तं गुदभ्रंशमादिशेत् ।

सूकरदंष्ट्रकमाह—

सदाहो रक्तपर्यन्तस्त्वक्पाकी तीव्रवेदनः ॥ ५९ ॥
कण्डूमाञ्ज्वरकारी च शोथः सूकरदंष्ट्रकः ।

इति क्षुद्ररोगनिदानम् ।

अथ क्षुद्ररोगचिकित्सा—

तत्राजगल्लिकामामां जलौकाभिरुपाचरेत् ॥ ६० ॥
शुक्तिसौराष्ट्रिकाक्षारकल्कैश्चाऽऽलेपयेन्मुहुः ।
श्लेष्मविद्राधिकल्केन जयेच्चानुशयीं मिषक् ॥ ६१ ॥
विघृतामिन्द्रवृद्धां च गर्दभं जालगर्दभम् ।
इरिवेल्लीं गन्धनामां जयेत्पित्तविसर्पवत् ॥ ६२ ॥
मधुरौषधसिद्धेन सर्पिषा नाशयेद्ब्रणम् ।
नीलीपटोलयोर्मूलं जलपिष्टं प्रलेपयेत् ॥ ६३ ॥
पिप्पलीलेपनाद्भ्रन्ति जालगर्दभजां रुजाम् ।
रक्तावसेकैर्बहुभिः स्वेदनैरपतर्पणैः ॥ ६४ ॥
जयेद्विदारिकां लेपैः शिशुदेवदुमोद्भवैः ।
पनसिकां कच्छपिकामनेन विधिना जयेत् ॥ ६५ ॥
साधयेत्कठिनानन्याऽऽशोथान्दोषसमन्वितान् ।
अन्धालजीं कच्छपिकां तथा पाषाणगर्दभम् ॥ ६६ ॥
सुरदारुशिलाकुष्ठैः स्वेदयित्वा प्रलेपयेत् ।
कफमारुतशोथघ्नो लेपः पाषाणगर्दभे ॥ ६७ ॥
शस्त्रेणोत्कृत्य बल्मीकं क्षाराग्निभ्यां प्रसाधयेत् ।
मनःशिलालमल्लातसूक्ष्मैलागुरुचन्दनैः ॥ ६८ ॥
जातीपल्लवकल्कैश्च निम्बतैलं विपाचयेत् ।
बल्मीकं नाशयेत्तद्धि बहुच्छिद्रं बहुद्रवम् ॥ ६९ ॥

पाददारीषु तु शिरां व्यधयेत्तलशोधनीम् ।
 स्नेहस्वेदोपपन्नौ तु पादौ चाऽऽलेपयेन्मुहुः ॥ ७० ॥
 मधूच्छिष्टवसामज्जाघृत*क्षारैर्विमिश्रितैः ।
 ससर्जसिन्धूद्भवयोश्चूर्णं मधुघृतप्लुतम् ।
 निर्मथ्य कटुतैलाक्तं हितं पादप्रमार्जनम् ॥ ७१ ॥

अथोपोदकाद्यं तैलम्—

उपोदकासर्षेपनिम्बमोचककर्कारुकैर्वारुकमस्मतोये ।
 तैलं विपक्वं लवणेन युक्तं तत्पाददारीं विनिहन्ति लेपात् ॥ ७२ ॥
 इत्युपोदकाद्यं तैलम् ।

अथ चाङ्गेरीघृतम्—

अलसेऽम्लैश्चिरं सिक्तौ चरणौ परिलेपयेत् ।
 पटोलारिष्टकासीसत्रिफलाभिर्मुहुर्मुहुः ॥ ७३ ॥
 करञ्जबीजं रजनी कासीसं मधुकं मधु ।
 रोचना हरितालं च लेपोऽयमलसे हितः ॥ ७४ ॥
 लाक्षामयारसो लेपः कार्यं वा रक्तमोक्षणम् ।
 बृहतीरससिद्धेन तैलेनाभ्यज्य बुद्धिमान् ॥ ७५ ॥
 शिलारोचनकासीसचूर्णैर्वा प्रतिसारयेत् ।
 दहेत्कद्वरमुद्घृत्य तैलेन दहनेन वा ॥ ७६ ॥
 चिप्पमुष्णाम्बुना स्विन्नमुद्घृत्याभ्यज्य तं व्रणम् ।
 दत्त्वा सार्जरसं चूर्णं बद्ध्वा व्रणवदाचरेत् ॥ ७७ ॥
 स्वरसेन हरिद्रायाः पात्रे कृष्णायसेऽमयाम् ।
 घृष्ट्वा तज्जेन कल्केन लिम्पेच्चिप्पं पुनः पुनः ॥ ७८ ॥
 निम्बोदकेन वमनं पद्मिनीकण्टके हितम् ।
 निम्बोदके कृतं सर्पिः सक्षौद्रं पानमिष्यते ॥ ७९ ॥
 निम्बारग्वधकल्कैर्वा मुहुरुद्धर्तनं हितम् ।
 अहिपूतनके धात्र्याः पूर्वं स्तन्यं विशोधयेत् ॥ ८० ॥
 त्रिफलाखादिरक्ताथैर्वर्णानां धावनं सदा ।
 करञ्जत्रिफलाकल्कैः सर्पिः सिद्धं शिशोर्हितम् ॥ ८१ ॥

* यवक्षारः ।

रसाञ्जनं विशेषेण पानलेपनयोर्हितम् ।
 गुदभ्रंशो गुदं स्नेहैरभ्यज्याऽऽशु प्रवेशयेत् ॥ ८२ ॥
 प्रविष्टं स्वेदयेच्चापि बद्धं *गोपनया मृशम् ।
 कोमलं पद्मिनीपत्रं यः खादेच्छर्करान्वितम् ॥ ८३ ॥
 एतन्निश्चित्य निर्दिष्टं न तस्य गुदनिर्गमः ।
 वृक्षाम्लानलचाङ्गेरीविश्वपाठायवाग्रजम् ॥ ८४ ॥
 तत्रेण शीलयेत्पायुभ्रंशार्तोऽनलदीपनम् ।
 गुदं च गव्यपयसा म्रक्षयेद्विशङ्कितः ॥ ८५ ॥
 दुष्प्रवेशो गुदभ्रंशो विशत्याशु न संशयः ।
 मूषकाणां वसाभिर्वा गुदे सम्यक्प्रलेपनम् ॥ ८६ ॥
 सुस्विन्नमूषिकामांसेनाथ वा स्वेदयेद्गुदम् ।
 चाङ्गेरीकोलदध्यम्लनागरक्षारसंयुतम् ॥ ८७ ॥
 घृतमुत्कथितं पेयं गुदभ्रंशरुजापहम् ।

इति चाङ्गेरीघृतम् ।

अथ हरिद्रादिलेपस्तैलम्—

क्षीरे महत्पञ्चमूलं मूषिकामन्त्रवर्जिताम् ॥ ८८ ॥
 पक्त्वा तस्मिन्पचेत्तैलं वातघ्नौषधसंयुतम् ।
 गुदभ्रंशमिदं तैलं पानाभ्यङ्गाच्छमं नयेत् ॥ ८९ ॥
 स्वेदोपनाहौ परिकर्तिकायां कृत्वा समभ्यज्य घृतेन पश्चात् ।
 प्रवेशयेच्चर्म शनैः प्रवृष्टे मांसैः सुखोष्णैरुपनाहयेत्तत् ॥ ९० ॥
 स्नेहस्वेदैस्तथैवैनां चिकित्सेद्वपाटिकाम् ।
 चर्मकीलं जतुमणिं मशकांस्तिलकालकान् ॥ ९१ ॥
 उद्धृत्य शस्त्रेण दहेत्क्षाराग्निभ्यामशेषतः ।
 यौवने पिडकान्यच्छनीलिकाव्यङ्गशर्कराः ॥ ९२ ॥
 शिरावेधैः प्रलेपैश्च जयेद्भ्यञ्जनैस्तथा ।
 लोध्रधान्यवचालेपस्तारुण्यपिटकापहः ॥ ९३ ॥
 तद्वद्गोरोचनायुक्तं मरिचं मुखलेपनात् ।
 सिद्धार्थकवचालोध्रसैन्धवैश्च प्रलेपनम् ॥ ९४ ॥
 वमनं च निहन्त्याशु पिटकां यौवनोद्भवाम् ।
 जातीफलं चन्दनं च मरिचं सह पेक्षितम् ॥ ९५ ॥

मुखलेपेन हन्त्याशु पिटकां यौवनोद्भवांम् ।
 व्यङ्गेषु चार्जुनत्वक्च मञ्जिष्ठावृषमाक्षिकैः ॥ ९६ ॥
 लेपः सनवनीतो वा श्वेताश्वखुरजा मषी ।
 रक्तचन्दनमञ्जिष्ठाकुष्ठलोध्रं प्रियङ्गवः ॥ ९७ ॥
 वटाङ्कुरा मसूराश्च व्यङ्गघ्ना मुखकान्तिदाः ।
 व्यङ्गानां लेपनं शस्तं रुधिरेण शशस्य वा ॥ ९८ ॥
 वरुणस्य कषायेण मुखमाक्षाल्य लेपयेत् ।
 तेनैव दधिमिश्रेण पिटकानीलशान्तये ॥ ९९ ॥
 केवलान्पयसा पिष्ट्वा तीक्ष्णाञ्जशाल्मलिकण्टकान् ।
 आलिप्तं त्र्यहमेतेन भवेत्पद्मोपमं मुखम् ॥ १०० ॥
 मसूरैः सर्पिषा पिष्टैर्लिप्तमास्त्रं पयोन्वितैः ।
 सप्तरात्रेण भवति पुण्डरीकदलप्रभम् ॥ १ ॥
 सातुलुङ्गजटासर्पिःशिलागोशकृतो रसः ।
 मुखकान्तिकरो लेपः पिडकातिलकालजित् ॥ २ ॥
 कालीयकोत्पलामयदधिसरबदरास्थिमध्यफलनीभिः ।
 लिप्तं भवति हि वदनं शशिप्रभं सप्तरात्रेण ॥ ३ ॥
 रक्षोघ्नशर्वरीद्वयमञ्जिष्ठागैरिकाज्यवस्तपयः ।
 सिद्धेन लिप्तमाननमिन्दुवदेतेन कल्केन ॥ ४ ॥
 परिणतदधिशरपुङ्खैः कुवलयदलकुष्ठचन्दनोशीरैः ।
 मुखकमलकान्तिकारी भृकुटीतिलकालकाञ्जयति ॥ ५ ॥
 हरिद्राद्वययष्ट्याह्वकालीयककुचन्दनम् ।
 प्रपौण्डरीकमञ्जिष्ठापद्मपद्मककुङ्कुमैः ॥ ६ ॥
 कपित्थतिन्दुकण्डक्षवटपत्रैः पयोन्वितैः ।
 लेपयेत्कल्कितैरेतैस्तैलं वाऽभ्यञ्जने पचेत् ॥ ७ ॥
 पिटकां नीलिकां व्यङ्गांस्तिलकान्मुखदूषकान् ।

इति हरिद्रादिलेपस्तैलम् ।

अथ कनकतैलम्—

मधुकस्य कषायेण तैलस्य कुडवं पचेत् ॥ ८ ॥
 कल्कैः प्रियङ्गुमञ्जिष्ठाचन्दनोत्पलकेसरैः ।
 कनकं नाम तत्तैलं मुखकान्तिकरं परम् ॥ ९ ॥
 अतीव नीलिकाव्यङ्गशोधनं परमार्चितम् ।

इति कनकतैलम् ।

अथ मञ्जिष्ठाद्यं तैलम्—

मञ्जिष्ठा मधुकं लाक्षा मातुलुङ्गं सयष्टिकम् ॥ ११० ॥
 कर्षप्रमाणैरेतैस्तु तैलस्य कुडवं तथा ।
 आजं पयस्तु द्विगुणं शनैर्मृद्वग्निना पचेत् ॥ ११ ॥
 नीलिकापिडकाव्यङ्गानभ्यङ्गादेव नाशयेत् ।
 मुखं प्रसादोपचितं वलीपलितवर्जितम् ॥ १२ ॥
 सप्तरात्रप्रयोगेण भवेत्कनकसंनिभम् ।

इति मञ्जिष्ठाद्यं तैलम् ।

अथ कुङ्कुमाद्यं तैलम्—

कुङ्कुमं चन्दनं लाक्षा मञ्जिष्ठा मधुयष्टिका ॥ १३ ॥
 कालीयकमुशीरं च पद्मकं नीलमुत्पलम् ।
 न्यग्रोधपादाः प्लक्षस्य शृङ्गाः पद्मस्य केशरम् ॥ १४ ॥
 द्विपञ्चमूलैः सहितैः कषायैः पलिकैः पृथक् ।
 जलाढकं विपक्तव्यं पादशेषमथोद्धरेत् ॥ १५ ॥
 मञ्जिष्ठा मधुकं लाक्षा पत्राङ्गं मधुयष्टिका ।
 कर्षप्रमाणैरेतैस्तु तैलस्य कुडवं पचेत् ॥ १६ ॥
 अजाक्षीरं तद्विगुणं शनैर्मृद्वग्निना पचेत् ।
 सम्यक्पक्वं परं ह्येतन्मुखवर्णप्रसाधनम् ॥ १७ ॥
 नीलिकापिडकाव्यङ्गानभ्यङ्गादेव नाशयेत् ।
 सप्तरात्रप्रयोगेण भवेत्कनकसंनिभम् ॥ १८ ॥
 कुङ्कुमाद्यमिदं तैलमश्विभ्यां निर्मितं पुरा ।

इति कुङ्कुमाद्यं तैलम् ।

अथापरं कुङ्कुमाद्यं तैलम्—

कुङ्कुमं किंशुकं लाक्षा मञ्जिष्ठा रक्तचन्दनम् ॥ १९ ॥
 कालीयकं पद्मकं च मातुलुङ्गस्य केशरम् ।
 कुसुमं मधुयष्टी च फलिनी मदयन्तिका ॥ २० ॥
 निशे द्वे रोचना पद्ममुत्पलं च मनःशिला ।
 काकोल्यादिसमायुक्तैरेभिरक्षसमैर्मिषक् ॥ २१ ॥
 लाक्षारसपयोम्यां च तैलप्रस्थं विपाचयेत् ।
 कुङ्कुमाद्यमिदं तैलमभ्यङ्गात्काञ्चनोपसम् ॥ २२ ॥

करोति वदनं सद्यः पुष्टिलावण्यकान्तिदम् ।
सौभाग्यलक्ष्मीजननं वशीकरणमुत्तमम् ॥ २३ ॥

इति कुङ्कुमाद्यं तैलम् ।

अथ हरिद्राद्यं तैलम्—

अरुणिकायां रुधिरेऽवसिक्ते
शिराव्यधेनाथ जलौकसा वा ।
निम्बाम्बुसिक्ते शिरसि प्रलेपो
देयोऽश्ववर्चोरससैन्धवाभ्याम् ॥ २४ ॥
पुराणमपि पिण्याकं पुरीषं कुक्कुटस्य च ।
मूत्रपिष्टप्रलेपोऽयं शीघ्रं हन्यादरुणिकाम् ॥ २५ ॥
हरिद्राद्वयमस्त्रिष्टा त्रिफलारिष्टचन्दनैः ।
एतत्तैलमरुणिकां सिद्धमभ्यञ्जने हितम् ॥ २६ ॥

इति हरिद्राद्यं तैलम् ।

अथ विषतैलम्—

दारुणे तु शिरां विध्येत्स्निग्धस्विन्नां ललाटजाम् ।
अवपीडशिरोवस्तीनभ्यङ्गनांश्चावचारयेत् ॥ २७ ॥
कोद्रवाणां तूणक्षारपानीयं परिधावने ।
कार्यो दारुणके मूर्ध्नि प्रलेपो मधुसंयुतः ॥ २८ ॥
प्रियालबीजमधुकुष्ठमिश्रैः ससैन्धवैः ।
काञ्चिकैस्तत्र सप्ताहं लेपो दारुणक्रापहः ॥ २९ ॥
मालतीकरवीराग्निनक्तमालविपाचितम् ।
तैलमभ्यञ्जने शस्तमिन्द्रलुप्तापहं परम् ॥ ३० ॥
इदं हि त्वरितं हन्ति दारुणं नियतं नृणाम् ।
स्तुहीपयः पयोऽर्कस्य मार्कवं लाङ्गलीं विषम् ॥ ३१ ॥
मूत्रमाजं सगोमूत्रं रक्तिकां सेन्द्रवारुणीम् ।
सिद्धार्थकं तीक्ष्णतैलं गर्भं दत्त्वा विपाचयेत् ॥ ३२ ॥
बाहिना मृदुना पक्वं तैलं खालित्यनाशनम् ।
कूर्मपृष्ठसमानाऽपि रुक्षाया लोमतस्करी ॥ ३३ ॥
दग्धा साऽनेन जायेत ऋक्षशावीव लोमशा ।

इति विषतैलम् ।

अथ गुञ्जातैलम्—

त्रिफलायोरजोमांसीमार्कवोत्पलसारिवैः ॥ ३४ ॥
 ससैन्धवैः पचेत्तैलमभ्यङ्गादत्यसीं जयेत् ।
 चित्रकं दन्तिनीमूलं कोशातकिसमन्वितम् ॥ ३५ ॥
 कल्कं पिष्ट्वा पचेत्तैलं केशशङ्खविनाशनम् ।
 गुञ्जाफलैः पचेत्तैलं भृङ्गराजरसेन तु ।
 कण्डूदारुणहृत्कुष्ठकपालव्याधिनाशनम् ॥ ३६ ॥

इति गुञ्जातैलम् ।

अथ भृङ्गराजतैलम्—

भृङ्गराजत्रिफलोत्पलंसारि लोहपुरीषसमन्वितवारि ।
 तैलमिदं पच दातुणह्वारि कुञ्चितकेशवनस्थिरकारि ॥ ३७ ॥
 इति भृङ्गराजतैलम् ।

अथ प्रपौण्डरीकाद्यं तैलम्—

प्रपौण्डरीकमधुकपिप्पलीचन्दनीत्पलैः ।
 कार्ष्णिकैस्तैलकुडवैस्तैर्द्विरामलकीरसः ॥ ३८ ॥
 साध्यः सप्रतिमर्शः स्यात्सर्वशीर्षगदापहः ।
 इति प्रपौण्डरीकाद्यं तैलम् ।

अथ चन्दनाद्यं तैलम्—

इन्द्रलुप्तै शिरां विद्ध्वा शिलाकासीसतुत्थकैः ॥ ३९ ॥
 छिषयेत्परितः कल्कैस्तैलमभ्यञ्जने हितम् ।
 कुट्टन्नटशिखीजातीकरञ्जकरवीरकैः ॥ ४० ॥
 अवगाढपदं वाऽपि प्रच्छयित्वा पुनः पुनः ।
 गुञ्जाफलैश्चिरं लिम्पेत्केशभूमिं समन्ततः ।
 इन्द्रलुप्तापहो लेपौ मधुना बृहतीरसः ॥ ४१ ॥
 बृहतीरसफलपिष्टं गुञ्जाफलमूलमिन्द्रलुप्तस्य ।
 कनकविघृष्टस्य ततो दातव्यं प्रच्छित्तस्य सदा ॥ ४२ ॥
 मधुकेन्दीवरमूर्वातिलाज्यगोक्षीरभृङ्गलेपेन ।
 अचिराद्भवन्ति केशा घनदृढमूलायता मृदवः ॥ ४३ ॥
 वटावरोहकोशिन्योश्चूर्णेनाऽऽदित्यपाचितम् ।
 गुडूचीस्वरसे तैलमभ्यङ्गात्केशरोहणम् ॥ ४४ ॥

चन्दनं मधुकं मूर्वा त्रिफला नीलमुत्पलम् ।
 कान्ता वटावरोहश्च गुडूची विषमेव च ॥ ४५ ॥
 लोहचूर्णं तथा केशी सारिवे द्वे तथैव च ।
 मार्कवस्वरसेनैव तैलं मृद्वग्निना पचेत् ॥ ४६ ॥
 शिरःसु पतिताः केशा जायन्ते कुञ्चिता घनाः ।
 हृढमूला मृजाद्याश्च तथा भ्रमरसंनिमाः ॥ ४७ ॥
 नस्येनाकालपलितं निहन्यात्तैलमुत्तमम् ।

इति चन्दनाद्यं तैलम् ।

अथ कृष्णीकरणम्—

तैलं संयष्टीमधुकक्षीरधात्रीफलैः शृतम् ॥ ४८ ॥
 नस्ये दत्तं जनयति केशाञ्जमश्रूणि वाऽप्यथ ।
 हस्तिदन्तमर्षीं कृत्वा दार्वीस्वरसमाविताम् ॥ ४९ ॥
 लोमान्येतेन जायन्ते हस्तपादतलेष्वपि ।
 कर्षं एको हरीतक्या द्विकर्षामलकं तथा ॥ ५० ॥
 ताम्रचूर्णं कर्षमात्रं सर्वमेकत्र कारयेत् ।
 वस्त्रपूतं कृतं पश्चादम्लतक्रेण पेषयेत् ॥ ५१ ॥
 मर्दयेत्त्रिदिनं यावत्पश्चात्केशेषु लेपयेत् ।
 सप्ताहात्परतौ नित्यं त्रिवारान्ते प्रयत्नतः ॥ ५२ ॥
 उक्तानुक्तेषु लेपेषु वेष्टेतैरण्डपत्रकैः ।
 कुर्याद्वात्रौ दिवा स्नानं युक्तिरेषा प्रशस्यते ॥ ५३ ॥
 त्रिफला नीलिनीपत्रं लोहं भृङ्गरजः समम् ।
 अविमूत्रेण संयुक्तं कृष्णीकरणमुत्तमम् ॥ ५४ ॥
 त्रिफलाचूर्णसंयुक्तं लोहचूर्णं विनिक्षिपेत् ।
 ईषत्पत्रे नारिकेले भृङ्गराजरसान्विते ॥ ५५ ॥
 मासमेकं तु निक्षिप्य सम्यग्गर्तात्समुद्धरेत् ।
 ततः शिरो मुण्डयित्वा लेपं दद्याद्भिषग्वरः ॥ ५६ ॥
 संवेष्ट्य कदलीपत्रैर्मोचयेत्सप्तमे दिने ।
 क्षालयेत्त्रिफलाक्राथैः क्षीरमांसरसाशिनः ॥ ५७ ॥
 कपालरञ्जनं चैतत्कृष्णीकरणमुत्तमम् ।

इति कृष्णीकरणम् ।

अथ पटोलघृतम्—

उत्पलं पयसा सार्धं मासं भूमौ निधापयेत् ।
 केशानां कृष्णकरणं स्नेहनं च विधीयते ॥ ५८ ॥
 लोहमलामलकलैः सजपाकुसुमैर्नरः सदास्नायी ।
 पलितानीह न पश्यति गङ्गास्नायीव नरकाणि ॥ ५९ ॥
 निम्बस्य बीजानि विभावितानि
 भृङ्गस्य तोयेन तथाऽसनस्य ।
 तैलं तु तेषां विनिहन्ति नस्यं
 दुग्धान्नभोक्तुः पलितं समूलम् ॥ ६० ॥
 निम्बस्य तैलं प्रकृतिस्थमेवं
 नस्यं विधेयं विधिना यथावत् ।
 मासेन गोक्षीरभुजो नरस्य
 चिरात्प्रभूतं पलितं निहन्ति ॥ ६१ ॥
 क्षीरात्समार्कवरसाद्विप्रस्थे मधुकोत्पले ।
 तैलस्य कुडवं पक्वं तन्नस्यं पलितापहम् ॥ ६२ ॥
 कासीसरोचनातुत्थहरितालरसाञ्जनैः ।
 अम्लपिष्टैः प्रलेपोऽयं मुष्ककच्छ्राहिपूतने ॥ ६३ ॥
 पटोलपत्रत्रिफलारसाञ्जनविपाचितम् ।
 पीतं घृतं नाशयति कृच्छ्रमप्यहिपूतनम् ॥ ६४ ॥

इति पटोलघृतम् ।

रजनीमार्कवमूलं पिष्टं शीतेन वारिणा तुल्यम् ।
 हन्ति विसर्पं लेपाद्वराहदशनाह्वयं घोरम् ॥ ६५ ॥
 वचालोध्रमुशीरं च सर्पिः सर्जरसं तथा ।
 गैरिकं मधुकं सिक्थमजाक्षीरेण पेषयेत् ॥ ६६ ॥
 कर्णौ तेन प्रवर्धेते नारीणां च पयोधरौ ।
 मुखं चन्द्रोपमं कुर्यात्पादौ पद्मदलोपमौ ॥ १६७ ॥

इति श्रीयोगतरङ्गिण्यां क्षुद्ररोगनिदानचिकित्साकथनं नाम सप्तविंशत्यधि-
 कशततमस्तरङ्गः ॥ १२७ ॥

अथाष्टाविंशत्यधिकशततमस्तरङ्गः ।

अथ मुखरोगनिदानम् ।

मत्स्यमाहिषवाराहापिशिताभ्रकमूलकम् ।
 माषसूपदधिक्षीरशुक्तेक्षुरसफाणितम् ॥ १ ॥
 अवाक्शय्यां च *मजतो दन्तधावनघर्षणात् ।
 धूमच्छर्दनगण्डूषानुचितं च शिराव्यधम् ॥ २ ॥
 क्रुद्धाः श्लेष्मोल्बणा दोषाः कुर्वन्त्यन्तर्मुखे गदान् ।
 मुखरोगाः पञ्चषष्टिः सप्तस्वायतनेषु च ॥ ३ ॥
 तत्र त्वायतनान्योष्ठौ दन्ता दन्तासनं तथा ।
 तालु कण्ठश्च जिह्वा च तथा सर्वश्च संमतः ॥ ४ ॥
 आनूपपिशितक्षीरदधिमाषादिसेवनात् ।
 मुखमध्ये गदान्कुर्युः क्रुद्धा दोषाः कफोल्बणाः ॥ ५ ॥

वातजमाह—

तत्र खण्डोष्ठ इत्युक्तो वातेनौष्ठो द्विधाकृतः ।
 कर्कशौ पुरुषौ स्तब्धौ संप्राप्तानिलवेदनौ ॥ ६ ॥
 दाल्येते परिपाट्येते चौष्ठौ मारुतकोपतः ।

पित्तजमाह—

चीयेते पिटकाभिश्च सरुजाभिः समन्ततः ॥ ७ ॥
 सदाहपाकपिटकौ पीतामासौ च पित्ततः ।

कफजमाह—

सवर्णाभिस्तु चीयेते पिटकाभिरवेदनौ ॥ ८ ॥
 भवतस्तु कफादोष्ठौ पिच्छिलौ शीतलौ गुरु ।

संनिपातजमाह—

सकृत्कृष्णौ सकृत्पीतौ सकृच्छ्रुवेतौ तथैव च ॥ ९ ॥
 संनिपातेन विज्ञेयावनेकपिटकाचितौ ।

रक्तजमाह—

खर्जूरफलवर्णाभिः पिटकाभिर्निपीडितौ ॥ १० ॥

रक्तोपसृष्टौ रुधिरं स्रवन्तौ शोणितप्रभौ ।
 मांसदुष्टौ गुरुस्थूलौ मांसपिण्डवदुन्नतौ ॥ ११ ॥
 जन्तवश्चात्र मूर्च्छन्ति नरस्योभयतोमुखात् ।
 सर्पिर्मण्डप्रतीकाशौ मेदसा कण्डुरौ मृदू ॥ १२ ॥
 स्वच्छं स्फटिकसंकाशं संस्रावं स्रवतो भृशम् ।
 तयोर्व्रणो न संरोहेन्मृदुत्वं नोपगच्छति ॥ १३ ॥
 अ(ओ)ष्ठौ पर्यवदीर्यते पाट्यते चाभिघाततः ।
 ग्रथितौ च पुनः स्यातां कण्डुलौ दशनच्छदौ ॥ १४ ॥
 जलबुद्बुदवद्वातं कफादोष्ठे जलाबुद्मम् ।

इत्योष्ठरोगनिदानम् ।

अथाष्टौ दन्तमूलजाः—

शीतादव्याधिमाह—

शोणितं दन्तवेष्टेभ्यो यस्याकस्मात्प्रवर्तते ॥ १५ ॥
 दुर्गन्धीनि सकृष्णानि प्रक्लेदीनि मृदूनि च ।
 दन्तमांसानि शीर्यन्ते पचन्ति च परस्परम् ॥ १६ ॥
 शीतादो नाम स व्याधिः कफशोणितसंभवः ।

दन्तपुष्पुटकमाह—

दन्तयोस्त्रिषु वां शोथो बदरास्थिनिमोऽतिरूक् ॥ १७ ॥
 दन्तपुष्पुटको नाम स व्याधिः कफरक्तजः ।

दन्तवेष्टमाह—

स्रवन्ति पूयं रुधिरं चला दन्ता भवन्ति च ॥ १८ ॥
 दन्तवेष्टः स विज्ञेयो दुष्टशोणितसंभवः ।

लालास्राविणमाह—

श्वयथुर्दन्तमूलेषु रुजावान्कफरक्तजः ॥ १९ ॥
 लालास्रावी स विज्ञेयः सौषिरो नाम नामतः ।

महासौषिरमाह—

दन्ताश्चलन्ति वेष्टेभ्यस्तालु चाप्यवदीर्यते ॥ २० ॥
 यस्मिन्स सर्वजो व्याधिर्महासौषिरसंज्ञितः ।

परिदरमाह—

दन्तमांसानि शीर्यन्ते यस्मिन्धीवति चाप्यमृक् ॥ २१ ॥
पित्तामृक्कफजो व्याधिर्ज्ञेयः परिदरो हि सः ।

अपकुशमाह—

वेष्टेषु दाहः पाकश्च ताभ्यां दन्ताश्चलन्ति च ॥ २२ ॥
अभ्याघातात्प्रस्रवन्ति शोणितं मन्दवेदनाः ।
आध्मायन्ते स्रुते रक्ते मुखं पूति च जायते ॥ २३ ॥
यस्मिन्सोऽपकुशो नाम पित्तरक्तकृतो गदः ।

विदर्भमाह—

घृष्टेषु दन्तमांसेषु संरम्भो जायते महान् ॥ २४ ॥
भवन्ति दन्ताश्च चलाः स विदर्भोऽभिघातजः ।

इत्यष्टौ दन्तमूलजाः ।

अथ दन्तवेष्टगताः—

खलिवर्धनमाह—

मारुतेनाधिको दन्तो जायते तीव्रवेदनः ॥ २५ ॥
वर्धनः स मतो व्याधिर्जाति रुक्च प्रशाम्यति ।
दन्ताधिकोऽधिदन्ताख्यः स चोक्तः खलिवर्धनः ॥ २६ ॥

करालमाह—

शनैः शनैः प्रकुपितो वायुर्दन्तसमाश्रितः ।
करालान्विकटान्दन्तान्करालो न स सिध्यति ॥ २७ ॥

अधिमांसकमाह—

हनव्ये पश्चिमे दन्ते महाशोथो महारुजः ।
लालास्रावी कफकृतो विज्ञेयः सोऽधिमांसकः ॥ २८ ॥
दन्तान्ते कीलवच्छोथो हनुकर्णरुजाकरः ।
दन्तमूलगता नाड्यः पञ्च ज्ञेया यथेरिताः ॥ २९ ॥

इति दन्तवेष्टगताः ।

अथ दन्तरोगनिदानम्—

दन्तविद्रधिमाह—

दन्तमांसमलैः सास्रैर्बाह्यजः श्वयथुर्महान् ।
सदाहरुक्प्रवेद्भिन्नः पूयासं दन्तविद्रधिः ॥ ३० ॥

दालनमाह—

दीर्यमाणेष्विव रुजा मृशं दन्तेषु जायते ।
दालनो नाम स व्याधिः सदागतिनिमित्तजः ॥ ३१ ॥

क्रिमिदन्तकमाह—

सशूलं दन्तमाश्रित्य दोषैरुल्बणमारुतैः ।
शोषिते मज्जसुषिरे दन्ते निर्मलपूरिते ॥ ३२ ॥
पूतित्वात्कृमयः सूक्ष्मा जायन्ते जायते ततः ।
कृष्णच्छिद्रश्चलस्रावी ससंरम्भो महारुजः ॥ ३३ ॥
अनिमित्तरुजो वातात्स ज्ञेयः क्रिमिदन्तकः ।

भञ्जनकमाह—

वक्त्रं वक्त्रं भवेद्यस्य दन्तमङ्गश्च जायते ॥ ३४ ॥
कफवातकृतो व्याधिः स भञ्जनकसंज्ञकः ।

दन्तहर्षमाह—

शीतरूक्षत्ववाताम्लस्पर्शमक्षाक्षमा द्विजाः ॥ ३५ ॥
भवन्त्यम्लाशनेनैव सरुजाश्चलिता इव ।
पित्तमारुतकोपेन दन्तहर्षः स नामतः ॥ ३६ ॥

दन्तशर्करामाह—

मलो दन्तगतो यस्तु कफमारुतशोषितः ।
शर्करेव खरस्पर्शा ज्ञेया सा दन्तशर्करा ॥ ३७ ॥

कपालिकामाह—

कपालेष्विव दीर्यत्सु दन्तानां सैव शर्करा ।
कपालिकेति पठिता ज्ञेया दन्तविनाशिनी ॥ ३८ ॥

श्यावदन्तकमाह—

योऽसृङ्मिश्रेण पित्तेन दग्धो दन्तस्त्वशेषतः ।
श्यावतां नीलतां वाऽपि गतः स श्यावदन्तकः ॥ ३९ ॥

हनुमोक्षमाह—

वातेन तैस्तैर्मावैश्च हनुसंधिर्विसंहतः ।
हनुमोक्ष इति ज्ञेयो व्याधिरर्दितलक्षणः ॥ ४० ॥

इति दन्तरोगनिदानम् ।

अथ जिह्वागताः—

वातजामाह—

जिह्वाऽनिलेन स्फुटिता प्रसुप्ता भवेच्च शाकच्छदनप्रकाशा ।

पित्तजामाह—

पित्तात्सदाहैरुपचीयते च दीर्घैः सरक्तैरथ कण्टकैश्च ॥ ४१ ॥

कफजामाह—

कफेन गुर्वी बहलान्विता वा मांसोच्छ्रयैः शाल्मलिकण्टकाद्यैः ।

अधोगतो यः श्वयथुः प्रगाढः सोऽलाससंज्ञः कफरक्तमूर्तिः ॥ ४२ ॥

जिह्वां स तु स्तम्भयति प्रवृद्धो

मूले च जिह्वा भृशमेति पाकम् ।

जिहाग्ररूपः श्वयथुः स जिह्वा-

मुन्नम्य जातः कफरक्तमूलः ।

लालाकरः कण्डुयुतः सचोषः

सा तूपजिह्वा पठिता भिषग्भिः ॥ ४३ ॥

इति जिह्वागताः ।

अथ तालुगताः—

कण्ठशुण्डीमाह—

श्लेष्मासृग्भ्यां तालुमूलात्प्रवृद्धो

दीर्घः शोथो ध्मातवस्तिप्रकाशः ।

तृष्णाकासश्वासकृत्तं वदन्ति

व्याधिं वैद्याः कण्ठशुण्डीति नाम्ना ॥ ४४ ॥

तुण्डिकेरीमाह—

शोथः शूलस्तोददाहप्रपाकी प्रागुक्ताभ्यां तुण्डिकेरी मत्ता तु ।

ध्रुषमाह—

शोथस्तब्धो लोहितस्तालुदेशे ज्ञेयो रक्तात्स ध्रुषो रुग्ञ्वरश्च ॥ ४५ ॥

कच्छपमाह—

कूर्मोत्सन्नो वेदनः शीघ्रजन्मा रोगो ज्ञेयः कच्छपः श्लेष्मणा तु ।

अर्बुदमाह—

पद्माकारं तालुमध्ये तु शोथं विद्याद्रक्तादर्बुदं प्रोक्तलिङ्गम् ॥४६॥
मांससंघातमाह—

दुष्टं मांसं नीरुजं तालुमध्ये कफात्स्थूलं मांससंघातमाहुः ।
पुष्पुटमाह—

अरुक्थिरः कोलनिमः कफेन मेदोयुक्तः पुष्पुटस्तालुदेशे ॥ ४७ ॥

तालुपाकमाह—

शोथोऽत्यर्थं दीर्यते तालुमध्यं
श्वासश्चोग्रस्तालुशोषोऽनिलोत्थः ।
पित्तं कुर्यात्पाकमत्यर्थघोरं
तालुन्येवं तालुपाकं वदन्ति ॥ ४८ ॥

इति तालुगताः ।

अथ कण्ठगताः—

रोहिणीमाह—

गलेऽनिलः पित्तकफौ तु मूर्छितौ
प्रदूष्य मांसं च तथैव शोणितम् ।
गलोपसंरोधकरैस्तथाऽङ्कुरै-
र्निहन्त्यसून्व्याधिरियं हि रोहिणी ॥ ४९ ॥

जिह्वासमन्ताद्भृशवेदनास्तु मांसाङ्कुराः कण्ठनिरोधनाः स्युः ।
सा रोहिणी वातकृता प्रदिष्टा वातात्मकोपद्रवगाढयुक्ता ॥ ५० ॥
क्षिप्रोद्भूमा क्षिप्रविदाहपाका तीव्रज्वरा पित्तनिमित्तजा स्यात् ।
स्रोतोनिरोधिन्यचलोन्नता च स्थिराङ्कुरा या कफसंमवा सा ॥ ५१ ॥
गम्भीरपाकिन्यनिवार्यवीर्या त्रिदोषलिङ्गाञ्चितयोत्थिता तु ।

स्फोटैश्चिता पित्तसमानलिङ्गा

साध्या प्रदिष्टा रुधिरात्मिका तु ॥ ५२ ॥

साऽऽद्या त्रिदोषजा हन्ति त्र्यहात्कफसमुद्भवा ।

पञ्चाहात्पित्तसंभूता सप्ताहात्पवनोत्थिता ॥ ५३ ॥

कण्ठशालूकमाह—

कोलास्थिमात्रः कफसंभवो यो ग्रन्थिर्गले कण्टकशूकभूतः ।
स्वरः स्थिरः शस्त्रनिपातसाध्यस्तं कण्ठशालूकमिति ब्रुवन्ति ॥ ५४ ॥

अधिजिह्वाह—

जिह्वाग्ररूपः श्वयथुः कफाज्जु जिह्वोपरिष्ठादपि रक्तमिश्रात् ।
ज्ञेयोऽधिजिह्वः खलु रोग एष विकर्षयेदागतपाकमेनम् ॥ ५५ ॥

बलयमाह—

बलास एवाऽऽयतमुन्नतं च ग्रन्थिं करोत्यन्नगतिं निवार्य ।
तं सर्वथैवाप्रतिवार्यवीर्यं विवर्जनीयं बलयं वदन्ति ॥ ५६ ॥

बलाससंज्ञकमाह—

गलोपरोधं कुरुतः प्रवृद्धौ श्लेष्मानिलौ श्वासरुजोपपन्नम् ।
मर्मच्छिदं दुस्तरमेनमाहुर्बलाससंज्ञं निपुणा विकारम् ॥ ५७ ॥

एकवृन्दमाह—

वृत्तोन्नतोऽन्तःश्वयथुः सदाहः सकण्डुरोऽपाक्यमृदुर्गुरुश्च ।
नामैकवृन्दः परिकीर्त्यतेऽसौ व्याधिर्बलासक्षतजप्रसूतः ॥ ५८ ॥

वृन्दमाह—

समुन्नतं वृत्तममन्ददाहं तीव्रज्वरं वृन्दमुदाहरन्ति ।
तच्चापि पिचक्षतजप्रकोपाज्ज्ञेयं सतोदं पवनात्मकं तु ॥ ५९ ॥

शतघ्नीमाह—

वर्तिर्घना कण्ठनिरोधिनी या चिताऽतिमात्रं पिशितप्ररोहैः ।
अनेकरुक्प्राणहरी त्रिदोषाज्ज्ञेया शतघ्नी तु शतघ्निरूपा ॥ ६० ॥

गिलायुमाह—

ग्रन्थिर्गले त्वामलकास्थिमात्रः
स्थिरोऽल्परुग्गः कफरक्तमूर्तिः ।
संलक्ष्यते सक्तमिवाशनं च
स शस्त्रसाध्यस्तु गिलायुसंज्ञः ॥ ६१ ॥

गलविद्रधिमाह—

सर्वं गलं व्याप्य समुत्थितो यः
शोथो रुजो यत्र वसन्ति सर्वाः ।
स सर्वदोषो गलविद्रधिस्तु
तस्यैव तुल्यः खलु सर्वजस्य ॥ ६२ ॥

गलौघमाह—

शोथो महानन्नजलावरोधी तीव्रज्वरो वायुगतेर्निहन्ता ।
कफेन जातो रुधिरान्वितेन गले गलौघस्त्वभिधीयते सः ॥ ६३ ॥

स्वरघ्नमाह—

यस्ताम्यमानः श्वसिति प्रसक्तं भिन्नस्वरः शुष्कविमुक्तकण्ठः ।
कफोपदिग्धेष्वनिलायनेषु ज्ञेयः सतोद्ः श्वसनात्स्वरघ्नः ॥ ६४ ॥

मांसतानमाह—

प्रतानवान्यः श्वयथुः सुकष्टो गलोपरोधं कुरुते क्रमेण ।
स मांसतानः कथितोऽवलम्बी प्राणप्रणुत्सर्वकृतो विकारः ॥ ६५ ॥

विदारीमाह—

सदाहतोद्ः श्वयथुः सताम्रमन्तर्गले पूतिविशीर्णमांसम् ।
पित्तेन विद्याद्वदने विदारीं पार्श्वे विशेषात्स तु येन शेते ॥ ६६ ॥
इति कण्ठगताः ।

अथ सर्वमुखरोगनिदानम्—

स्फोटैः सतोदैर्वदनं समन्ताद्यस्याऽऽचितं सर्वसरः स वातात् ।
रक्तैः सदाहैः पिटकैः सपीतैर्यस्याऽऽचितं चापि स पित्तकोपात् ॥ ६७ ॥
अवेदनैः कण्डुयुतैः सवर्णैर्यस्याऽऽचितं चापि स वै कफेन ।
रक्तेन पित्तोदित एक एव कौश्वित्प्रदिष्टो मुखपाकरोगः ॥ ६८ ॥
ओष्ठप्रकोपे वज्र्याः स्युर्मांसरक्तत्रिदोषजाः ।
दन्तमूले तु वज्र्यौ तु त्रिलिङ्गगतिसौषिरौ ॥ ६९ ॥

असाध्यानाह—

दन्तेषु च न सिध्यन्ति श्यावदालनमञ्जनाः ।
जिह्वागतेष्वलासस्तु तालव्येष्वर्बुदं तथा ॥ ७० ॥
स्वरघ्नो बलयो वृन्दो बलासः सविदारिकः ।
गलौघो मांसतानश्च शतघ्नी रोहिणी गले ॥ ७१ ॥
असाध्याः कीर्तिता ह्येते रोगा नव दशैव तु ।
तेषु चापि क्रियां वैद्यः प्रत्याख्याय समाचरेत् ॥ ७२ ॥
इति सर्वमुखरोगनिदानम् ।

ओष्ठरोगोपक्रमः—

स्नेहांस्तथोष्णान्परिषेकलेपान्घृतस्य पानं रसमोजनं च ।
 अभ्यञ्जनस्वेदनलेपनं तदोष्ठे विद्ध्यात्पवनाभिभूते ॥ ७३ ॥
 तैलं घृतं सर्जरसं ससिक्थं रास्नागुडं सैन्धवगैरिकं च ।
 पक्त्वा समांशं दशनच्छदानां त्वग्भेदहन्तु व्रणरोपणं च ॥ ७४ ॥
 रालं मधूच्छिष्टगुडेन पक्वं तैलं घृतं वा विनिहन्ति लेपात् ।
 त्वंक्तोदपारुष्यरुजोऽधरस्य पूयास्रसंस्त्रावमपि प्रसह्य ॥ ७५ ॥
 वेधं शिराणां वमनं विरेकं तिक्तस्य पानं रसमोजनं च ।
 शीतान्प्रदेहान्परिषेचनं च पित्तोपसृष्टेष्वधरेषु कुर्यात् ॥ ७६ ॥
 रक्तपित्तोपधातोत्थाञ्जलौकाभिरुपाचरेत् ।
 ओष्ठामयानत्र हिता पित्तविद्राधिसत्क्रिया ॥ ७७ ॥
 शिरोविरेचनं धूमः स्वेदः कवलधारणम् ।
 हृते रक्ते प्रयोक्तव्यमोष्ठपाके कफात्मके ॥ ७८ ॥
 त्रिदोषजे वाऽप्यथ दुष्टमांससमुद्भवेऽप्योष्ठगदे प्रशस्ता ।
 रक्तस्रुतिश्चानु हितः प्रलेपस्त्वक्पञ्चकस्यातिमृदूकृतस्य ॥ ७९ ॥
 प्रियङ्गुत्रिफलालोधचूर्णं पक्वेऽधरे हितम् ।
 प्रक्लिप्ते शीर्णमांसे च किं वा श्रेष्ठामधूकजम् ॥ ८० ॥

इत्योष्ठरोगोपक्रमः ।

अथ दन्तरोगोपक्रमः—

शीतादेऽस्रस्रुतिं कृत्वा कुर्याद्दण्डूषधारणम् ।
 शुण्ठीपर्पटकक्वाथैः कवोष्णैश्च मुहुर्मुहुः ॥ ८१ ॥
 दन्तमूलसमुत्थेषु दन्तोत्थेषु गदेषु च ।
 रक्तमोक्षं प्रशंसन्ति जलौकालाबुशृङ्गकैः ॥ ८२ ॥
 दन्तपुष्पुटके शस्ता सदा कफहरी क्रिया ।
 दन्तवेष्टे विधिः कार्यो रक्तपित्तनिवर्हणः ॥ ८३ ॥
 वैदर्भेऽपकुशे चैव तथा परिदरे गदे ।
 सौषिरद्वितये रक्तस्रुतेः पश्चात्प्रशस्यते ॥ ८४ ॥
 मुस्ताप्रियङ्गुत्रिफलावासालोधपुनर्नवाः ।
 निष्काथ्य तत्कषायेण कोष्णेनाऽऽस्ये विधारणम् ॥ ८५ ॥

कारस्करस्थूलजीरकुष्ठशुण्ठीकुटन्नटैः ।
 मूत्रपिष्टैर्बहिर्लेपः शस्तः शोथरुजापहः ॥ ८६ ॥
 दन्तरोगेषु सर्वेषु शस्तो वातहरो विधिः ।
 षक्ततैलं कवोष्णं च शस्तं कवलधारणे ॥ ८७ ॥
 कुष्ठं दार्वी लोध्रमब्दं समङ्गा
 पाठा तिक्ता तेजनी पीतिका च ।
 एषां चूर्णं घृष्टमाशु द्विजानां
 रक्तस्रावं हन्ति कण्डूं रुजं च ॥ ८८ ॥

इति कुष्ठादिचूर्णम् ।

अथ जातीपत्रादिचूर्णम्—

जातीपत्रपुनर्नवागजकणाकोरण्टकुष्ठं वचा
 शुण्ठी कीप्यहरीतकीति च समं श्लक्ष्णं भृशं चूर्णयेत् ।
 लघुचूर्णं वदने धृतं विजयते दौर्गन्ध्यदन्तव्यथां
 चाश्रल्यं त्वमतिव्रणश्वयथुरुक्कण्डूकृमिव्यापदः ॥ ८९ ॥

इति जातीपत्रादिचूर्णम् ।

अथ कणाद्यं चूर्णम्—

कणासिन्धूथजरणचूर्णं तूणं व्यपोहति ।
 वर्षणाद्वन्तचाश्रल्यव्यथाशोथास्रसंस्रवान् ॥ ९० ॥

इति कणाद्यं चूर्णम् ।

अथ जीरकादिचूर्णम्—

जरणलवणपथ्याशाल्मलीकण्टकाना-
 मनुदिनमनुघृष्टं दन्तमूलेषु चूर्णम् ।
 व्रणद्वरणरुगस्रस्रावचाश्रल्यशोथा-
 नपनयति विवस्वानन्धकारानिवाऽऽशु ॥ ९१ ॥

इति जीरकादिचूर्णम् ।

अथ भद्रमुस्तादिर्गुटी—

भद्रमुस्तामयाव्योषविडङ्गारिष्टपल्लवैः ।
 मोमूत्रपिष्टैर्गुटिकां छायाशुष्कां प्रकल्पयेत् ॥ ९२ ॥
 तां निधाय मुखे स्वप्याच्चलदन्तातुरो नरः ।
 नातः परतरं किञ्चिच्चलदन्तस्य मेषजम् ॥ ९३ ॥

इति भद्रमुस्तादिर्गुटी ।

अथ दशमूल्यादितैलघृते—

दशमूलीकषायेण तैलं वा घृतमेव वा ।
 विपक्रं केवलं शस्तं सक्षौद्रं दन्तचालने ॥ ९४ ॥
 कराले दन्तहर्षे च कापाल्यां सौषिरद्वये ।
 गण्डूषधारणाल्लेपात्पानान्नस्याच्च शस्यते ॥ ९५ ॥

इति दशमूल्यादितैलघृते ।

अथ लोधाद्यं तैलम्—

नाडीव्रणहरं कर्म दन्तनाडीषु कारयेत् ।
 यद्वन्तमधि जायेत नाडीदन्तं तमुद्धरेत् ॥ ९६ ॥
 छित्त्वा मांसानि शस्त्रेण यद्यन्यः स्यान्न चोपरि ।
 उद्धृते तूत्तरे दन्ते शोणितं संस्रवत्यति ॥ ९७ ॥
 रक्ताभियोगात्पूर्वोक्ता घोरा रोगा भवन्ति हि ।
 चलमप्युत्तरं दन्तमतो नापहरेद्भिषक् ॥ ९८ ॥
 शोधयित्वा हरेच्चापि क्षारेण ज्वलनेन वा ।
 गतिं हिनस्ति हन्वस्थि दशने समुपस्थितम् ॥ ९९ ॥
 तस्मात्समूलं दशनमुद्धरेद्भग्नमस्थि च ।
 लोध्रखादिरमज्जिष्ठायष्ट्याह्वैश्चापि साधितम् ॥ १०० ॥
 तैलं संशोधनं हन्याद्वन्तनाडीगतिं क्रमात् ।

इति लोधाद्यं तैलम् ।

अथ सहचरकाथः—

कोष्णं सहचरकाथं खदिरक्षौद्रसंयुतम् ।
 धृत्वाऽऽस्येन मुहुर्हन्ति तद्यथाशोथविद्रधीन् ॥ १ ॥

इति सहचरकाथः ।

अथ सहाचराद्यं तैलम्—

तुलां धृतां नीलसहाचरस्य द्रोणाम्भसा संश्रपयेद्यथावत् ।
 पूत्वा चतुर्भागशृतेऽत्र तैलं पचेच्छनैरर्धपलप्रमाणैः ॥ २ ॥
 कल्कैरनन्ताखदिरारिमेदजम्ब्वाम्रयष्टीमधुकोत्पलानाम् ।
 तत्तैलमास्येन धृतं कवोष्णं स्थैर्यं द्विजानां विदधाति सद्यः ॥ ३ ॥
 इति सहाचराद्यं तैलम् ।

फलान्यम्लानि शीताम्बु रूक्षान्नं दन्तधावनम् ।
तथाऽतिकठिनं मक्ष्यं दन्तरोगे विवर्जयेत् ॥ ४ ॥

इति दन्तरोगोपक्रमः ।

अथ जिह्वारोगोपक्रमः—

जिह्वागतविकाराणां शस्तं शोणितमोक्षणम् ।
ततोऽमृताकणानिम्बकटुकाकवलो हितः ॥ ५ ॥
काञ्चनारत्वचः काथः प्रातरास्ये धृतः सुखः ।
कुर्यात्सखदिरो जिह्वादरणोन्मूलनं मुहुः ॥ ६ ॥
नवे जिह्वालसेऽप्येवं तं तु शस्त्रेण न स्पृशेत् ।
उन्नम्य जिह्वामाकृष्टां बडिशेनाधिमज्जिकाम् ॥ ७ ॥
छेदयेन्मण्डलाग्रेण तीक्ष्णोष्णैर्घर्षणादिना ।

इति वाग्महात् ।

उपजिह्वां समुल्लिख्य क्षारेण प्रतिसारयेत् ॥ ८ ॥
शिरोविरेकगण्डूषधूमैरेनामुपाचरेत् ।
व्योषक्षारामयावह्निचूर्णमेतत्प्रसारणम् ॥ ९ ॥
उपजिह्वाप्रशान्त्यर्थं तैलं वा तैः प्रशस्यते ।

इति जिह्वारोगोपक्रमः ।

अथ तालुरोगोपक्रमः—

युक्त्यात्कफहरं शुण्ड्यां रसगण्डूषधारणे ॥ ११० ॥
कुष्ठोषणवचासिन्धुकणापाठाप्लवैः समैः ।
सक्षौद्रैर्मिषजा कार्यं गलशुण्ड्याः प्रघर्षणम् ॥ ११ ॥
छेदयेद्युक्तितो वृद्धां सुमिषगलशुण्डिकाम् ।
मण्डलाग्रेण जिह्वाया उपरिष्ठात्प्रलम्बिनीम् ॥ १२ ॥
अत्यादानात्स्रवेद्रक्तं सनिमित्तमन्त्रियेत वा ।
हीनादानान्द्रवेच्छोथो लालास्रावो भ्रमस्तथा ॥ १३ ॥
तस्माद्वैद्यः प्रयत्नेन तां छिस्वैनं क्रमं चरेत् ।
सक्षौद्रैर्व्योषसिन्धूथैस्तद्व्रणं प्रतिसारयेत् ॥ १४ ॥
गलशुण्डी शमं याति कञ्जीक्षीरविलेपिता ।
तुण्डिकेयां ध्रुवे कूर्मे संघाते तालुपुष्पुटे ॥ १५ ॥

एष एव विधिः कार्यो विशेषः शस्त्रकर्मणि ।
तालुपाके तु कर्तव्यं विधानं पित्तनाशनम् ॥ १६ ॥

इति तालुरोगोपक्रमः ।

अथ गलरोगोपक्रमः—

साध्यानां रोहिणीनां तु हितं शोणितमोक्षणम् ।
छर्दनं धूमपानं च गण्डूषो नस्यकर्म च ॥ १७ ॥
तथाऽन्तर्बाह्यतः स्विन्नां वातरोहिणिकां लिखेत् ।
अङ्गुल्यग्रेण शस्त्रेण नखाग्रेणाथ वा भिषक् ॥ १८ ॥
बातजां तां गते रक्ते लवणैः प्रतिसारयेत् ।
सुखोष्णान्स्नेहकवलान्पञ्चमूलाम्बुनाऽथ वा ॥ १९ ॥
कृत्वा मुहूर्तं स्थित्वाऽथ वातघ्नं पथ्यमाचरेत् ।
विस्राव्य पित्तसंभूतां सिताक्षौद्रप्रियङ्गुभिः ॥ २० ॥
घर्षयेद्धोध्रपत्तङ्गैः कवलः कथितैर्हितः ।
उपाचरेद्देवमेवं प्रत्याख्यायास्रसंभवाम् ॥ २१ ॥
अङ्गारधूमकटुभिः कफजां प्रतिसारयेत् ।
श्वेताविडङ्गदार्वीषु तैलं सिद्धं ससैन्धवम् ॥ २२ ॥
नस्यकर्मणि दातव्यं कवलं तु कफोच्छ्रये ।
विस्राव्य कण्ठशालूकं साधयेत्तुण्डिकेरिवत् ॥ २३ ॥
एककालं यवान्नं च मुञ्जीत स्निग्धमल्पशः ।
उपजिह्वकवच्चापि साधयेदधिजिह्वकम् ॥ २४ ॥
उन्नम्य जिह्वामाकृष्य बडिशेनाधिजिह्वकम् ।
छेदयेन्मण्डलाग्रेण तीक्ष्णोष्णैरौषधैः पुनः ॥ २५ ॥
घर्षयेदेकवृन्दं तु विस्राव्याथ बिघर्षयेत् ।
गिलायुं चापि शस्त्रेण साधयेत्तैश्च घर्षयेत् ॥ २६ ॥
अमर्मजं सुपक्वं च छेदयेद्गुलविद्रधिम् ।
कण्ठरोगेष्वसृङ्गोक्षस्तीक्ष्णैर्नस्यादिकर्म च ॥ २७ ॥
पाने काथो हितो निम्बदार्वीन्द्रजशिवाकृतः ।
हरीतकीकषायो वा हितोऽत्र क्षौद्रसंयुतः ॥ २८ ॥
पाठा रसाञ्जनं मूर्वा तेजोह्वेति सुचूर्णितम् ।
क्षौद्रयुक्तं प्रदातव्यं कण्ठरोगे भिषङ्मतम् ॥ २९ ॥

गृहधूमो यवक्षारः पाठाव्योषरसाञ्जनम् ।

तेजोह्वात्रिकलालोध्रं चित्रकश्चेति चूर्णकम् ॥ १३० ॥

सक्षौद्रं धारयेदास्ये गलरोगहरं परम् ।

कालकं नाम तच्चूर्णं दन्तास्यगलरोगनुत् ॥ ३१ ॥

इति कालकं चूर्णम् ।

अथ पीतकं चूर्णम्—

मनभशिला यवक्षारो हरितालं ससैन्धवम् ।

दाबीत्वक्चेति संचूर्ण्य माक्षिकेण समन्वितम् ॥ ३२ ॥

मूर्छितं घृतमण्डेन कण्ठरोगेषु धारयेत् ।

मुखरोगेषु च श्रेष्ठं पीतकं नामतः स्मृतम् ॥ ३३ ॥

इति पीतकं चूर्णम् ।

अथ तेजोवत्यादिगुटिका—

तेजोवतीं दारुनिशां सकृष्णां यवाग्रजं ताक्षर्यगिरिं च पाठाम् ।

क्षौद्रेण कुर्याद्गुटिकां मुखेन तां धारयेत्सर्वगलामयघ्नीम् ॥ ३४ ॥

इति तेजोवत्यादिगुटिका ।

इति गलरोगोपक्रमः ।

अथ सर्वमुखपाकचिकित्सा—

वातसर्वसरं तूर्णं लवणैः प्रतिसारयेत् ।

तैलं वातहरैः सिद्धं हितं कवलनस्ययोः ॥ ३५ ॥

पित्तात्मके सर्वसरे कार्यः पित्तहरो विधिः ।

प्रतिसाण्णगङ्गूषधूमाः संशोधनानि च ॥ ३६ ॥

कफात्मके सर्वसरे क्रमं कुर्यात्कफापहम् ।

इति सर्वोपक्रमः ।

अथ पञ्चपल्लवकषायः—

मुखपाके शिरावेधः शिरःकायविरेचनम् ॥ ३७ ॥

घृतमूत्रमधुक्षीरैर्धूमैश्च कवलग्रहः ।

मुखपाकहरं मूयो जातीपत्रस्य चर्वणम् ॥ ३८ ॥

जातीपत्रामृताद्राक्षायामदावीफलत्रिकैः ।

काथः क्षौद्रयुतः शीतो गण्डूषान्मुखपाकजित् ॥ ३९ ॥

कृष्णजीरककुष्ठेन्द्रयधचर्वणतस्त्र्यहात् ।
 मुखपाकव्रणक्लेददौर्गन्ध्यमुपशाम्यति ॥ १४० ॥
 पटोलनिम्बजम्बवाम्रमालतीनां तु पल्लवैः ।
 कृतः काथः प्रयोक्तव्यो मुखपाकस्य धावने ॥ ४१ ॥

इति पञ्चपल्लवकषायः ।

अथ सप्तच्छदादिकाथः—

सप्तच्छदोशीरपटोलमुस्ताहरीतकीतिक्तकरोहिणीभिः ।
 यष्ट्याह्वरस्त्रिद्वयमचन्दनैश्च काथं पिबेत्पाकहरं मुखस्य ॥ ४२ ॥
 इति सप्तच्छदादिकाथः ।

अथ पटोलादिकाथः—

पटोलशुण्ठीत्रिफलाविशाला-
 त्रायन्तितिक्ताह्वनिशामृतानाम् ।
 पीतः कषायो मधुना निहन्ति
 मुखे स्थितश्चाऽऽस्यगदानशेषान् ॥ ४३ ॥
 इति पटोलादिकाथः ।

अथ खदिरादिगुटिका—

खदिरस्य तुलां तोयद्रोणे पक्त्वाऽष्टशेषिते ।
 जातीकोशेन्दुयूपाङ्गचातुर्जातमृगाण्डजैः ॥ ४४ ॥
 पृथक्कर्षमितैः पिष्टैर्मेलयित्वा चणोपमाम् ।
 गुटीं कृत्वा मुखे धृत्वा तां निहन्त्यखिलान्गदान् ।
 जिह्वौष्ठदन्तवदनगलतालुसमुद्भवान् ॥ ४५ ॥

इति खदिरादिगुटिका ।

कुष्ठैलवालुकैला समधुकधान्याकयष्टिमधुकबला ।
 हराति मुखपूतिगन्धं रसोनमदिरातिगन्धं च ॥ ४६ ॥
 ताम्बूलमध्यस्थितचूर्णकेन दग्धं मुखं यस्य भवेत्कथंचित् ।
 तैलेन गण्डूषमसौ विदध्यादम्लारनालेन पुनः पुनर्वा ॥ ४७ ॥
 जातीदलैलामधुमातुलुङ्गपत्रैः सलाजैर्युतपिप्पलीकैः ।
 कृतोऽबलेहः कुरुते नराणां कण्ठे ध्वनिं किन्नरनादतुल्यम् ॥ ४८ ॥

प्रियङ्गुकाश्मीरककोलमज्जाह्रीबेरकैश्चन्दनभागयुक्तैः ।

षिष्टैः प्रलेपो विहितो मुखस्य द्युतिं शशाङ्कादधिकां विधत्ते ॥ १४५ ॥

इति श्रीयोगतरङ्गिण्यां मुखरोगनिदानचिकित्साकथनं नामाष्टा-

विंशत्यधिकशततमस्तरङ्गः ॥ १२८ ॥

अथैकोनत्रिंशदधिकशततमस्तरङ्गः ।

अथ कर्णरोगनिदानम्—

समीरणः श्रोत्रगतोऽन्यथा चरन्

समन्ततः शूलमतीव कर्णयोः ।

करोति दोषैश्च यथास्वमावृतः

स कर्णशूलः कथितो दुराचरः ॥ १ ॥

कर्णनादमाह—

कर्णश्रोत्रस्थिते वाते शृणोति विविधान्स्वरान् ।

भैरीमृदङ्गशङ्खानां कर्णनादः स उच्यते ॥ २ ॥

बाधिर्यमाह—

यदा शब्दवहं वायुः श्रोत्रमावृत्य तिष्ठति ।

शुद्धश्लेष्मान्वितो वाऽपि बाधिर्यं तेन जायते ॥ ३ ॥

कर्णक्ष्वेडमाह—

वायुः पिप्सादिभिर्युक्तो वेणुघोषोपमस्वनम् ।

करोति कर्णयोः क्ष्वेडं कर्णक्ष्वेडः स कीर्तितः ॥ ४ ॥

कर्णसंस्त्रावमाह—

शिरोभिधातादथ वा निमज्जतो जलप्रपाकादथ वाऽपि विद्रधेः ।

सवेद्धि पूयं श्रवणोऽनिलादितः स कर्णसंस्त्राव इति प्रदिष्टः ॥ ५ ॥

कर्णगूथकमाह—

मारुतः कफसंयुक्तः कर्णकण्डूं करोति च ।

पित्तोपशोधितः श्लेष्मा जायते कर्णगूथकः ॥ ६ ॥

कर्णप्रतिनाहमाह—

स कर्णगूथो द्रवतो यदा गतो विलापितो घ्राणमुखं प्रपद्यते ।
तदा स कर्णप्रतिनाहसंज्ञितो भवेद्विकारः शिरसोऽर्धभेदकृत् ॥७॥

क्रिमिकर्ममाह—

यदा तु मूर्च्छन्त्यथ वाऽपि जन्तवः
सृजन्त्यपत्यान्यथ वाऽपि मक्षिकाः ।
तदञ्जनत्वाच्छ्रवणो *निरुध्यते
भिषग्मिरुक्तः क्रिमिकर्ण इत्ययम् ॥ ८ ॥

कर्णगतकीटलक्षणमाह—

पतङ्गाः शतपद्यश्च कर्णस्रोतः प्रविश्य हि ।
अरतिं व्याकुलत्वं च भृशं कुर्वन्ति वेदनाम् ॥ ९ ॥
कर्णो निस्तुद्यते यस्य तथा फुरफुरायते ।
कीटे चरति रुक्तीवा निष्पन्दे मन्दवेदना ॥ १० ॥

क्षताभिघातजमाह—

क्षताभिघातप्रभवस्तु विद्रधिर्मवेत्तथा दोषकृतः परः पुनः ।
सरक्तपीतारुणमस्रमास्रवेत्प्रतोदधूमायनदाहचोषवान् ॥ ११ ॥

पूतिकर्णकमाह—

कर्णपाकस्तु पित्तेन कोथविष्केदकृद्भवेत् ।
कर्णविद्रधिपाकाद्वा जायते चाम्बुपूरणात् ॥ १२ ॥
पूयं स्रवति वा पूतिं स ज्ञेयः पूतिकर्णकः ।
कर्णशोथार्बुदाशांसि जानीयादुक्तलक्षणैः ॥ १३ ॥

वातादिजन्यस्रावमाह—

नादोऽतिरुक्कर्णमलस्य शोषः
स्रावस्तनुश्चाऽऽस्रवणं च वातात् ।
शोथः सरागो दरणं विदाहः
सपित्तपूतिस्रवणं च पित्तात् ॥ १४ ॥

* क. 'रुच्यत इति पाठान्तरम् ।

वैश्रुत्यकण्डूस्थिरशोथयुक्त-

स्निग्धः स्रुतिः श्लेष्ममवा च नीरुक् ।

सर्वणि रूपाणि तु संनिपातात्-

स्रावश्च तत्राधिकदोषवर्णः ॥ १५ ॥

अथ कर्णपालिगताः-

परिपोटकमाह-

सौकुमार्याच्चिरोत्सृष्टे सहसामिप्रवर्धिते ।

कर्णपाल्याः मवेच्छोथः सरुजः परिपोटकान् ॥ १६ ॥

कृष्णारुणनिमस्तब्धः स वातात्परिपोटकः ।

उत्प्रातमाह-

युष्मिरणसंयोगात्ताडनाद्धर्षणादपि ॥ १७ ॥

शोथः पाल्याः मवेच्छयावो दाहपाकरुजान्वितः ।

रक्तो वा रक्तपित्ताभ्यामुत्पातः स गदो मतः ॥ १८ ॥

उन्मन्थकमाह-

कर्णं बलाद्धर्षयतः पाल्याः वायुः प्रकुप्यति ।

कफं संगृह्य कुरुते शोफं स्तब्धं सवेदनम् ॥ १९ ॥

उन्मन्थकः स विज्ञेयो विकारः कफवातजः ।

दुर्विद्धे दोषमाह-

संवर्धमाने, दुर्विद्धे कण्डूदाहरुजान्वितः ॥ २० ॥

शोफो भवति पाकश्च त्रिदोषो दुःखवर्धनः ।

परिलेहिनमाह-

कफासृक्कृमयः कुद्धाः सर्षपामा विसर्पिणः ॥ २१ ॥

कुर्वन्ति पाल्याः पिटकाः कण्डूदाहरुजान्विताः ।

कफासृक्किसिंभूताः सविसर्पास्तु ताः क्रमात् ॥ २२ ॥

लिहेयुः सकलाः पालिं परिलेहीति स स्मृतः ।

इति कर्णरोगनिदानम् ।

अथ कर्णरोगचिकित्सा-

कर्णशूले कर्णनादे बाधिर्ये क्षत्रेड एव च ॥ २३ ॥

चतुर्णामपि रोगाणां सामान्यं भेषजं विदुः ।
 स्निग्धं वातहरैः स्नेहैः स्विन्नं चापि विरेचयेत् ॥ २४ ॥
 भुक्तोपरि हितं सर्पिर्बस्तिकर्म च पूजितम् ।

अथ खल्लतैलम्—

अश्वत्थपत्रखल्लं तु विधाय बहुपत्रकम् ॥ २५ ॥
 अङ्गारपूर्णं तैलाक्तं विदध्याच्छ्रवणोपरि ।
 तत्तैलं स्रवते तस्मात्खल्लादङ्गारतापितात् ॥ २६ ॥
 तत्प्राप्तं श्रवणस्रोतः सद्यो गृह्णाति वेदनाम् ।

इति खल्लतैलम् ।

अथ हिङ्गवायं तैलम्—

शृङ्गबेररसं क्षौद्रं सैन्धवं तैलमेव च ।
 कदुष्णं कर्णयोर्धार्यं कर्णपीडापहं परम् ॥ २७ ॥
 अर्कस्य पत्रं परिणामपीतं घृतेन लिप्तं शिखिना च तप्तम् ।
 आपीड्य तोयं श्रवणे निषिक्तं निहन्ति शूलं बहुवेदनं च ॥ २८ ॥
 हुतभुजि परितप्तात्किञ्चिदाज्येन लिप्तात्
 करतलपरिपिष्टौदूढसेहुण्डपत्रात् ।
 शालितममलमम्भः श्रोत्रयोर्ह्यस्तमस्तं
 गमयति पृथुपीडां शूलमप्यञ्जसैव ॥ २९ ॥
 तीव्रशूलातुरे कर्णे सशब्दे क्लेदवाहिनि ।
 छागमूत्रं प्रशंसन्ति कोष्णं सैन्धवसंयुतम् ॥ ३० ॥
 हिङ्गुतुम्बुरुशुण्ठीभिः सिद्धं तैलं तु सार्षपम् ।
 कर्णशूले प्रणादे वा बाधिर्येऽपि हितं मृतम् ॥ ३१ ॥

इति हिङ्गवायं तैलम् ।

अथापामार्गतैलम्—

अपामार्गक्षारजले तत्कृतकल्केन साधितं तिलजम् ।
 अपहरति कर्णनादं बाधिर्यं चापि पूरणतः ॥ ३२ ॥
 इत्यपामार्गतैलम् ।

अथ भूलतातैलम्—

सिद्धं भूलतया तैलं सार्धपं मन्दवह्निना ।

तस्य पूरणमात्रेण कर्णनाडी प्रशाम्यति ॥ ३३ ॥

इति भूलतातैलम् ।

अथ शम्बूकतैलम्—

शम्बूकस्य तु मांसेन कटुतैलं विपाचितम् ।

तस्य पूरणमात्रेण कर्णनाडी प्रशाम्यति ॥ ३४ ॥

इति शम्बूकतैलम् ।

अथ चत्वारि तैलानि—

आर्द्रकसूर्यावर्तकसौमाञ्जनमूलकस्वरसाः ।

मधुतैलसैन्धवयुताः पृथगुक्ताः कर्णशूलहराः ॥ ३५ ॥

तैलं काञ्जिकबीजपूरकरसक्षौद्रैः समूत्रैः शृतं

स्यात्क्षौद्रार्द्रकशिगुमूलकदलीकन्दद्रवैर्वा समम् ।

शुण्ठीतुम्बुरुहिङ्गुभिः शृतमपि स्यात्कर्णशूलापहं

सिद्धं बिल्वगरेण सजपयसा मूत्रेण बाधिर्यजित् ॥ ३६ ॥

इति चत्वारि तैलानि ।

अथ क्षारतैलम्—

हिङ्गवद्ददारुमिसिमूलकमस्मभूर्ज-

त्वक्क्षारसिन्धुरुचकोद्भिदशिगुविश्वैः ।

सस्वार्जिकाविडवचाञ्जनमातुलुङ्गै-

रम्भारसैः समधु सूक्तमिदं विपक्वम् ॥ ३७ ॥

तैलं प्रसिद्धमिति तच्छ्रवणामयघ्नं

कर्णप्रणाद्वधिरत्वहरं नराणाम् ।

भूमस्तकश्रवणशङ्कुलिकान्तराल-

शूलापहं चरकसुश्रुतपूजितं च ॥ ३८ ॥

इति क्षारतैलम् ।

अथ मधुसूक्तम्—

जम्बीराणां फलरसः प्रस्थैकः कुडवोन्मितम् ।

माक्षिकं तत्र दातव्यं पिप्पली च पलोन्मिता ॥ ३९ ॥

घृतमाण्डे निधायैतद्धान्यराशौ विधारयेत् ।

मासेन तज्जातरसं मधुसूक्तं प्रजायते ॥ ४० ॥

इति मधुसूक्तम् ।

अथ दीपिका तैलम्—

महतः पञ्चमूलस्य काण्डान्यष्टाङ्गुलानि च ।

क्षौमेणाऽऽवेष्ट्य संसिच्य तैलेनाऽऽदीपयेत्ततः ॥ ४१ ॥

यत्तैलं च्यवते तेभ्यः सुखोष्णं तत्प्रयोजयेत् ।

करोति दीपिकातैलं सद्यो गृह्णाति वेदनाम् ॥ ४२ ॥

इति दीपिकातैलम् ।

अथ समुद्रफेनचूर्णम्—

समुद्रफेनचूर्णं तु न्यस्तं भवणसंज्ञके ।

एयस्रवं वणं सान्द्रं हन्ति ध्वान्तमिवाशुमान् ॥ ४३ ॥

इति समुद्रफेनचूर्णम् ।

अथ विषयोगः—

गोमूत्रेण विधे घृष्टा सशूले चवणे क्षिपेत् ।

सद्य एव स्रवः शूलः कण्डूः पीडा च शास्वति ॥ ४४ ॥

इति विषयोगः ।

अथ रास्नायो गुग्गुलुः—

रुजः स्यान्मार्दवं यावत्तावत्संस्थापयेद्द्रवम् ।

अवेदनेऽत्र मात्राणां तैलाद्यैः स्थापयेच्छतम् ॥ ४५ ॥

वृक्षजानुकरावर्तो निमेषोन्मेष एव वा ।

लब्धाक्षरद्वयोच्चारो यावन्मात्रामितिस्त्वयम् ॥ ४६ ॥

रास्नासृतैरण्डसुराह्वविश्वं तुल्यं पुरेणोपविमृष्य खादेत् ।

वातामये कर्णाशिरोगदे च नाडीव्रणे चापि मगदरे च ॥ ४७ ॥

इति रास्नायो गुग्गुलुः ।

अथ पञ्चकषायः—

कर्णप्रक्षालने शस्तं कवोष्णं सुरमीजलम् ।

पथ्यामलकमञ्जिष्ठालोध्रतिन्दुकवाश्च वा ॥ ४८ ॥

इति पञ्चकषायः ।

अथ कुष्ठाद्यं तैलम्—

जातीपत्ररसे तैलं विपक्वं पूतिकर्णजित् ।
किंवा रसाञ्जनं नारीस्तन्यघृष्टं तदर्थकृत् ॥ ४९ ॥
कुष्ठहिङ्गुवचादारुशताह्वाविश्वसैन्धवैः ।
पूतिकर्णापहं तैलं वस्तमूत्रेण साधितम् ॥ ५० ॥

इति कुष्ठाद्यं तैलम् ।

अथ गन्धकतैलम्—

चूर्णेन गन्धकशिलारजनीमवेन
वस्वंशकेन कटुतैलपलाटकं च ।
धतूरपत्ररसतुल्यमिधं विपक्वं
नाडीं जयेच्चिरमवामपि कर्णजाताम् ॥ ५१ ॥

इति गन्धकतैलम् ।

अथ कर्णकुमौ योगत्रयम्—

वार्ताकधूमस्त्रेहो वा सार्पयोऽप्यथ तालुकम् ।
गोमूत्रपिष्टं भवति निहितं किमिनुद्भवेत् ॥ ५२ ॥

इति कर्णकुमौ योगत्रयम् ।

अथ कृमिकर्णे योगचतुष्टयम्—

सूर्यावर्तकस्वरसं रसं वा सिन्दुधारिजम् ।
लाङ्गलीमूलतोयं वा त्र्यूषणं वाऽपि चूर्णितम् ॥ ५३ ॥
एते योगास्तु चत्वारः पूरणात्कृमिकर्णके ।
कृमीन्निर्मूलयन्त्याशु शतपद्यस्रपादिकान् ॥ ५४ ॥

इति कृमिकर्णे योगचतुष्टयम् ।

अथ कृमिकर्णयोगः—

हलिरविमक्ते एकीकृत्य बुधो गालयेद्दृढं क्षुण्णे ।
वसनेन तद्रसेन श्रवणे परिपूरयेद्भृशं युक्त्या ॥ ५५ ॥
कर्णजलौका नियतं कृमिकीटपिपीलिकास्तथाऽन्येऽपि ।
निपतन्ति निरवशेषाः कारण्डाश्चापि मुण्डस्थाः ॥ ५६ ॥

इति कृमिकर्णयोगः ।

अथ कर्णमलहरणोपायः—

प्रक्षेद्य धीमांस्तैलेन प्रविलाप्य च शोधनैः ।

कर्णगूथं तु मतिमान्निषगजह्याच्छलाकया ॥ ५७ ॥

इति कर्णमलहरणोपायः ।

अथ कर्णप्रतीनाहे क्रियामाह—

अथ कर्णप्रतीनाहे स्नेहस्वेदौ प्रयोजयेत् ।

ततो विरिक्तशिरसः क्रियां प्रोक्तां समाचरेत् ॥ ५८ ॥

निषेधमाह—

बाधिर्यं बालंवृद्धोत्थं सहजं चापि वर्जयेत् ।

स्नानं शीताम्बुपानं च मेशुनं चापि वर्जयेत् ॥ ५९ ॥

इति कर्णरोगचिकित्सा ।

अथ कर्णपालिरोगचिकित्सा—

अथ शतावरीतैलम्—

पालीसंशोषणे कुर्याद्वातकर्णरुजः क्रियाम् ।

स्वेदयेद्यत्नतस्तां तु स्विन्नां संवर्धयेच्छनैः ॥ ६० ॥

माहिषनवनीतयुतं सप्ताहं धान्यराशिपर्युषितम् ।

नवमुसलिकन्दचूर्णं वृद्धिकरं कर्णपालीनाम् ॥ ६१ ॥

शतावरीवाजिगन्धापयस्यैरण्डबीजकैः ।

तैलं विपक्रं सक्षीरं पालीनां पुष्टिकृत्परम् ॥ ६२ ॥

इति शतावरीतैलम् ।

अथ जीवनीयतैलम्—

नीत्वाऽस्तं परिपोटं च चन्द्रिकां च प्रयत्नतः ।

कल्केन जीवनीयेन तैलं पयसि पाचयेत् ॥ ६३ ॥

आनूपमांसक्राथेन पालिपोषणवर्धनम् ।

इति जीवनीयतैलम् ।

अथ जीवन्त्याद्यं तैलम्—

शीतैर्लेपैर्जलौकाभिः कर्णोत्पातमुपाचरेत् ॥ ६४ ॥

जीवन्त्या चाश्वगन्धार्कबाकूचीबीजसैन्धवैः ।

हलिनीसुरसाभ्यां च गोधाकङ्कवसान्वितम् ॥ ६५ ॥

पक्वं तैलं तदभ्यङ्गादुन्मन्थं नाशयेद्ध्रुवम् ।

इति जीवन्त्याद्यं तैलम् ।

दुःखवर्धनकं सिक्त्वा जम्बाम्राश्वत्थपत्रजैः ॥ ६६ ॥

क्वाथैस्तैलेन सुस्निग्धं तच्चूर्णेश्चावधूलयेत् ।

बहुशो गोमयैस्तप्तं स्वेदितं परिलेपितम् ॥ ६७ ॥

घनसारैः समालिम्पेदजामूत्रेण कल्कितैः ।

कर्णपाल्यामया येऽन्ये यथास्वं तानुपाचरेत् ॥ ६८ ॥

इति कर्णपालिचिकित्सा ।

इति श्रीयोगतरङ्गिण्यां कर्णरोगनिदानचिकित्साकथनं नामैकोन-

त्रिंशदधिकशततमस्तरङ्गः ॥ १२९ ॥

अथ त्रिंशदधिकशततमस्तरङ्गः ।

अथ नासारोगोपक्रमः—

आनह्यते यस्य विशुष्यते च प्रक्लिद्यते धूप्यति चैव नासा ।

न वेत्ति यो गन्धरसांश्च जन्तुर्जुष्टं व्यवस्येत्तमपीनसेन ॥ १ ॥

तं चानिलश्लेष्ममवं विकारं ब्रूयात्प्रतिश्यायसमानलिङ्गम् ।

पूतिनासमाह—

दोषैर्विदग्धैर्गलतालुमूले संमूर्छितो यस्य समीरणस्तु ॥ २ ॥

निरेति पूतिर्मुखनासिकाभ्यां तं पूतिनासं प्रवदन्ति रोगम् ।

नासिकापाकमाह—

घ्राणाश्रितं पित्तमरुंषि कुर्याद्यस्मिन्विकारे बलवांश्च पाकः ॥ ३ ॥

तं नासिकापाकमिति व्यवस्येद्विक्लेदकोथावपि चातिमात्रम् ।

पूयरक्तमाह—

दोषैर्विदग्धैरथ वाऽपि जन्तोरललाटदेशेऽभिहतस्य तैस्तैः ॥ ४ ॥

नासा स्रवेत्पूयमसृग्विमिश्रं तं पूयरक्तं प्रवदन्ति रोगम् ।

क्षवथुमाह—

घ्राणाश्रिते मर्मणि संप्रदुष्टो यस्यानिलो नासिकाया निरेति ॥ ५ ॥

कफानुयातो बहुशोऽतिशब्दस्तं रोगमाहुः क्षवथुं विधिज्ञाः ।

क्षवथुभेदमाह—

तीक्ष्णोपयोगादतिजिघ्रतो वा भावात्कटून्कनिरीक्षणाद्वा ॥ ६ ॥
सूत्रादिभिर्वा तरुणास्थिमर्मण्युद्घाटितेऽन्यः क्षवथुर्निरेति ।

भ्रंशथुमाह—

अभ्रश्यते नासिकयैव यस्य सान्द्रो विदग्धो लवणः कफस्तु ॥ ७ ॥
आकसंचितो मूर्धनि पित्ततप्ते तं भ्रंशथुं रोगमुदाहरन्ति ।

दीप्तमाह—

घ्राणे भृशं दाहसमन्विते तु विनिःसरेद्धूम इवेह वायुः ॥ ८ ॥
नासा प्रदीप्तेव च यस्य जन्तोर्व्याधिं तु तं दीप्तमुदाहरन्ति ।

प्रतीनाहमाह—

उच्छ्वासमार्गं तु कफः सवातो रुन्ध्यात्प्रतीनाहमुदाहरेत्तम् ॥ ९ ॥

स्रावमाह—

घ्राणाद्घनः पीतसितस्तनुर्वा दोषः स्रवेत्स्रावमुदाहरेत्तम् ।

नासापरिशोषमाह—

घ्राणाश्रिते स्रोतसि मारुतेन गाढं प्रतप्ते परिशोषिते च ।
कृच्छ्राच्छ्लेष्मसेदूर्ध्वमधश्च जन्तुर्यस्मिन्स नासापरिशोष *उक्तः ॥ १० ॥

आमपीनसमाह—

शिरोधुरुत्वमरुचिर्नासास्रावस्तनुस्वरः ।
क्षामः ष्ठीवत्यतोऽभीक्ष्णमामपीनसलक्षणम् ॥ ११ ॥
आमलिङ्गान्वितः श्लेष्मा घनः खेषु निमज्जति ।
स्वरवर्णविशुद्धिश्च परिपक्वस्य लक्षणम् ॥ १२ ॥

प्रतिश्यायमाह—

संधारणाजीर्णरजोतिभाष्यक्रोधतुवैषम्यशिरोभितापैः ।
प्रजागरातिस्वपनाम्बुशीतैरवश्यया मैथुनबाष्पशोकैः ॥ १३ ॥

* उक्त इत्यस्याग्र अयं ग्रन्थो ग. पुस्तके—सर्वात्मकार्बुदमाह—

दोषैस्त्रिभिस्तैः पृथगेकैश्च कूपालथार्शासि तथैव शोषम् ।

सालाक्यसिद्धं तमवेक्ष्य वाऽपि सर्वात्मकं सप्तधमर्बुदं स्यात् ॥ १ ॥

मूल एवास्याऽऽवश्यकत्वेऽप्यशुद्धत्वात्प्रत्यन्तराभावाच्चाधो निर्दिष्टः ।

संस्त्यानक्षोषे शिरसि प्रवृद्धो वायुः प्रतिश्यायमुदीरयेत्तु ।
पूर्वरूपमाह—

चयं गता मूर्ध्नि तु मारुतादयः

पृथक् समस्ताश्च तथैव शोणितम् ॥ १४ ॥

प्रकुप्यमाना विविधैः प्रकोषनैस्ततः प्रतिश्यायकरा भवन्ति हि ।

क्षवप्रवृत्तिः शिरसोऽतिपूर्णता तथाऽङ्गमर्दः परिहृष्टरोमता ।

उपद्रवाश्चाप्यपरे पृथग्विधा नृणां प्रतिश्यायपुरःसराः स्मृताः ॥ १५ ॥

वातजप्रतिश्यायमाह—

आनद्धा पिहिता नासा तनुस्रावप्रसेकिनी ।

गलताल्वोष्ठशोषश्च निस्तोदः शङ्खयोस्तदा ॥ १६ ॥

भवेत्स्वरोपघातश्च प्रतिश्यायेऽनिलात्मके ।

पित्तजप्रतिश्यायमाह—

उष्णः सपीतकः स्रावो घ्राणात्स्रवति पैत्तिके ॥ १७ ॥

कृशोऽतिपाण्डुः संतप्तो भवेदुष्णाभिपीडितः ।

सधूममग्निं सहसा वमतीव स मानवः ॥ १८ ॥

कफजप्रतिश्यायमाह—

घ्राणात्कफकृते श्वेतः कफश्वेतः प्रवर्तते ।

शुक्लावभासः शूनाक्षो भवेद्गुरुशिरा नरः ॥ १९ ॥

संनिषातजप्रतिश्यायमाह—

गलताल्वोष्ठशिरसां कण्डूभिरतिपीडितः ।

भूत्वा भूत्वा प्रतिश्यायो योऽकस्मात्संप्रवर्तते ॥ २० ॥

संपक्वो वाऽप्यपक्वो वा स सर्वप्रभवः स्मृतः ।

लिङ्गानि चैव सर्वेषां पीनसानां च सर्वजे ॥ २१ ॥

कष्टसाध्यत्वमाह—

प्रक्लिद्यते पुनर्नासा पुनश्च परिशुष्यति ।

पुनरानह्यते वाऽपि पुनर्विव्रियते तथा ॥ २२ ॥

निश्वासश्चातिदुर्गन्धिर्नरो गन्धं न वेत्ति च ।

एवं दुष्टप्रतिश्यायं जानीयात्कृच्छ्रसाधनम् ॥ २३ ॥

असाध्यत्वमाह—

रक्तजे तु प्रतिश्याये रक्तस्रावः प्रवर्तते ।
 ताम्राक्षश्च भवेज्जन्तुरोघातप्रपीडितः ॥ २४ ॥
 दुर्गन्धोच्छ्वासवदनो नरो गन्धान्न वेत्ति सः ।
 सर्व एव प्रतिश्याया नरस्याप्रतिकाारिणः ॥ २५ ॥
 दुष्टतां यान्ति कालेन तदाऽसाध्या भवन्ति च ।
 मूर्च्छन्ति चात्र कृमयः श्वेताः स्निग्धास्तथाऽणवः ॥ २६ ॥
 कृमिजो यः शिरोरोगस्तुल्यं तेनास्य लक्षणम् ।
 बाधिर्यमान्ध्यमूकत्वं घोरांश्च नयनामयान् ॥ २७ ॥
 शोषाग्निसादकासादीन्वृद्धाः कुर्वन्ति पीनसाः ।
 अर्बुदं सप्तधा शोथाश्चत्वारोऽर्शश्चतुर्विधम् ॥ २८ ॥
 चतुर्विधं रक्तपित्तमुक्तं घ्राणेऽपि तद्विदुः ।

इति नासारोगनिदानम् ।

अथ चिकित्सा—

सर्वेषु पीनसेष्वादौ निवातागारगो भवेत् ॥ २९ ॥
 शिरसोऽभ्यञ्जनं स्वेदनस्य कट्वम्लभोजनैः ।
 घृतपानैश्च वमनैर्यथा सम्यक्समाचरेत् ॥ ३० ॥
 पञ्चमूलीशृतं क्षीरं किं वा स्याच्चित्रकोऽभया ।
 सर्पिर्गुडो विडङ्गश्च यूषः पीनसशान्तये ॥ ३१ ॥

अथ गुडाद्यो योगः—

गुडमरिचविमिश्रं पीतमाशु प्रकामं
 हरति दधि नराणां पीनसं दुर्निवारम् ।
 यदि तु सघृतमन्नं श्लक्ष्णगोधूमचूर्णैः
 कृतमुपहरतेऽसौ तत्कुतोऽस्यावकाशः ॥ ३२ ॥

इति गुडाद्यो योगः ।

अथ मरिचादियोगः—

सर्वेषु सर्वकालं पीनसरोगेषु जातमात्रेषु ।
 मरिचगुडेन च दध्ना मुञ्जीत नरः सुखं लभते ॥ ३३ ॥
 इति मरिचादियोगः ।

अथ चित्रकादिगुटी—

कटुत्रिकं चित्रकतित्तिडीकं तालीसपत्रं चविकाम्लसंज्ञम् ।

विचूर्णितं जीरकचूर्णयुक्तमेलात्वचातत्सुरभीकृतं च ।

मिश्रं पुराणेन गुडेन दद्यात्तत्पीनसानां परिपाचनार्थम् ॥ ३४ ॥

इति चित्रकादिगुटी ।

अथ कट्फलादिचूर्णं काथश्च—

कट्फलं शृङ्गबेरं च पिप्पली मरिचानि च ।

सटी पुष्करमूलं च मार्गी मधुरसा वरा ॥ ३५ ॥

अमघा कृष्णलवणं शुङ्गी कर्कटकस्य च ।

एतच्चूर्णं वरं प्रोक्तं काथो वा मूत्रमूर्छितः ॥ ३६ ॥

पीनसे स्वरभेदे च तमके सहलीमके ।

संनिपातेऽनिलकफे कासे श्वासे च शस्यते ॥ ३७ ॥

इति कट्फलादिचूर्णं काथश्च ।

अथ पाठाद्यं तैलम्—

अपीनसे पूतिनस्ये च जन्तोः स्नेहस्वेदौ छर्दनं संस्त्रनं च ।

द्वितं भवेल्लघु तीक्ष्णं च भुक्तमुष्णं तोयं धूमपानं च कार्यम् ॥ ३८ ॥

कफघ्नमन्नं वार्ताकं कुलत्थाढकिमुद्रजाः ।

यूषाः ससैन्धवव्योषाः शस्ताश्चोष्णास्त्वपीनसे ॥ ३९ ॥

कलिङ्गहिङ्गुमरिचलाक्षासुरसकट्फलैः ।

कृष्णोग्राशिगुजन्तुघ्नैरवपीडस्तु पीनसे ॥ ४० ॥

पाठाद्विरजनीमूर्वापिप्पलीजातिपल्लवैः ।

दन्त्या च तैलं सिद्धं स्यान्न स्यात्सम्यगपीनसे ॥ ४१ ॥

इति पाठाद्यं तैलम् ।

अथ सर्जादिकषायो घृतं च—

सर्जार्जुनोदुम्बरवत्सकानां त्वचां कषायैः परिधावनेन ।

कषायकल्कैरपि चैभिरेव सिद्धं घृतं घ्राणविपाकनाशि ॥ ४२ ॥

इति सर्जादिकषायो घृतं च ।

अथ पीनसादिषु—

नासावनाहे कर्तव्यं पानं गव्यस्य सर्पिषः ॥ ४३ ॥

नासास्रावे घ्राणयोश्चूर्णमुक्तं
 नाड्याऽऽदेयं येऽवपीडाश्च पथ्याः ।
 तीक्ष्णान्धूमान्देवदार्वग्निकाभ्यां
 मांसं चाऽऽजं पथ्यमत्राऽऽदिशन्ति ॥ ४४ ॥

इति पीनसादिषु ।

अथ व्याघ्रीतैलम्—

व्याघ्रीदन्तीवचाशिग्रुसुरसाव्योषसिन्धुजैः ।
 सिद्धं तैलं नसि क्षिप्तं पूतिनासागदापहम् ॥ ४५ ॥

इति व्याघ्रीतैलम् ।

अथ शिग्रुतैलम्—

शिग्रुसिंहीनिकुम्भानां बीजैः सव्योषसैन्धवैः ।
 बिल्वपत्ररसे सिद्धं तैलं स्यात्पूतिनस्यनुत् ॥ ४६ ॥

इति शिग्रुतैलम् ।

घृतगुग्गुलुमिश्रस्य कपित्थस्य प्रयत्नतः ।
 धूमं क्षवथुरोगघ्नं भ्रंशथुघ्नं च निर्दिशेत् ॥ ४७ ॥
 शुण्ठीकुष्ठकणाबिल्वद्राक्षाकल्ककषायवत् ।
 तैलं पक्वमथाऽऽज्यं वा नस्यात्क्षवथुनाशनम् ॥ ४८ ॥

नस्यं हितं निम्बरसाञ्जनाभ्यां दीप्ते शिरःस्वेदनमल्पशस्तु ।
 नस्ये कृते क्षीरजलावसेकाञ्जशंसन्ति भुञ्जीत च मुद्गयूषैः ॥ ४९ ॥
 नासास्रावेऽतिनस्यानि तीक्ष्णद्रव्यस्य कल्पयेत् ।
 नासाशोषे क्षीरपानं ससितं च प्रशस्यते ॥ ५० ॥

अथ प्रतिश्यायप्रतीकारः—

प्रतिश्यायेषु सर्वेषु गृहं वातविवर्जितम् ।
 वस्त्रेण गुरुणोष्णेन शिरसो वेष्टनं हितम् ॥ ५१ ॥
 विडङ्गं सैन्धवं हिङ्गुं गुग्गुलुं समनःशिलाम् ।
 प्रतिश्याये वचायुक्तं शक्त्या धूमं पिबेन्नरः ॥ ५२ ॥
 प्रतिश्यायेषु सशिरःपीडेषु नवसागरम् ।
 समानकलिकाचूर्णं सूक्ष्मं संचूर्ण्य तद्वयम् ॥ ५३ ॥

गुञ्जामात्रं तु तच्चूर्णं नस्यं प्रधमनं चरेत् ।
 नश्यन्त्यनेन नस्येन प्रतिश्यायशिरोरुजः ॥ ५४ ॥
 सवचं चूर्णमाधाय वाससा षोटलीकृतम् ।
 कारवीं वस्त्रबद्धां वा प्रतिश्यायमपोहति ॥ ५५ ॥
 सटीतामलकीव्योषचूर्णं सर्पिर्गुडान्वितम् ।
 हरेद्घोरं प्रतिश्यायं पार्श्वहृद्द्विस्तिशूलनुत् ॥ ५६ ॥

इति सव्याद्यं चूर्णम् ।

अथ चित्रकहरीतकी—

घृततैलसमायुक्तं सक्तुधूमं पिबेन्नरः ।
 स धूमः स्यात्प्रतिश्यायकासहिक्काहरः परः ॥ ५७ ॥
 प्रतिश्याये पिबेद्धूमं सर्वगं च समायुतम् ।
 चातुर्जातिकचूर्णं वा घ्रेयं वा कृष्णजरिकम् ॥ ५८ ॥
 पुटपक्वं जयापत्रं तैलं सैन्धवसंयुतम् ।
 प्रतिश्यायेषु सर्वेषु शीलितं परमौषधम् ॥ ५९ ॥
 पिप्पल्यः शिशुबीजानि विडङ्गमरिचानि च ।
 अवपीडः प्रशस्तोऽयं प्रतिश्यायनिवारणे ॥ ६० ॥
 शिरसोऽभ्यञ्जनैः स्वेदैर्नस्यैर्मन्दाल्पभोजनैः ।
 वमनैर्घृतपानैश्च तान्यथास्वमुपाचरेत् ॥ ६१ ॥
 कृमिघ्ना ये क्रमाः प्रोक्तास्तान्वै कृमिषु योजयेत् ।
 धावनानि कृमिघ्नानि भेषजानि च बुद्धिमान् ॥ ६२ ॥
 रक्तपित्तानि शोथाश्च तथाऽशांस्यर्बुदानि च ।
 नासिकायां स्युरेतेषां स्वं स्वं कुर्याच्चिकित्सितम् ॥ ६३ ॥
 गृहधूमकणादारुक्षारनक्ताह्वसैन्धवैः ।
 सिद्धं शिखरिबीजैश्च तैलं नासार्शसे हितम् ॥ ६४ ॥

चत्वार्यत्र शतानि चित्रकजटायुक्पञ्चमूलासृता-

धात्रीणामुदकर्मणैस्त्रिभिरपां द्रोणेन च क्वाथयेत् ।

पादस्थे कथने गुडस्य च तुलां पथ्याढकेनान्वितां

पक्त्वाऽस्मिञ्छूतशीतले तु मधुनः प्रस्थार्धमच्छं क्षिपेत् ॥ ६५ ॥

व्योषस्य त्रिसुगन्धिकस्य च पलान्यत्रैव षट् प्राक्षिपेत्

क्षारस्यार्धपलं रसायनमिदं संसेव्यते सर्वदा ।

शोषश्वासमलाप्रवृत्तिवमथुश्लेष्मप्रतिश्यायिभिः

क्षीणोरःक्षतहिक्रिमिः कफशिरोरुग्मिः प्रनष्टाग्निभिः ॥ ६६ ॥
इति चित्रकहरीतकी ।

अथ हिङ्गवादितैलम्—

हिङ्गुव्योषविडङ्गकट्फलवचारुक्ती*क्षणगन्धायुतै-

र्लाक्षाश्वेतपुनर्नवाकुटजैः पुष्पोद्भवैः सौरभैः ।

इत्येभिः कटुतैलमेतदनले मन्दे समूत्रे शृतं

पीतं नासिकया यथाविधि भवेन्नासामयिभ्यो हितम् ॥ ६७ ॥
इति हिङ्गवादितैलम् ।

अनुक्तान्नासिकारोगानिह वातादिलक्षणैः ।

ज्ञात्वा भिषगुपाचर्याद्यथास्वं सुसमाहितः ॥ ६८ ॥

इति श्रीयोगतरङ्गिण्यां नासारोगचिकित्साकथनं नाम

त्रिंशदधिकशततमस्तरङ्गः ॥ १३० ॥

अथैकत्रिंशदधिकशततमस्तरङ्गः ।

अथ नेत्ररोगनिदानम्—

उष्णाभितप्तस्य जलप्रवेशाद्दूरेक्षणात्स्वप्नविपर्ययाच्च ।

स्वेदाद्रजोधूमनिषेवणाच्च छेर्देर्विघाताद्वमनातियोगात् ॥ १ ॥

द्रवान्नपानादतिसेवनाच्च विण्मूत्रशुक्रानिलनिग्रहाच्च ।

प्रसक्तसंरोदनशोककोपाच्छिरोमितापादतिमद्यपानात् ॥ २ ॥

तथा ऋतूनां च विपर्ययेण क्लेशाभिघातादतिमैथुनाच्च ।

बाष्पग्रहात्सूक्ष्मनिरीक्षणाच्च नेत्रे विकाराश्चनयन्ति दोषाः ॥ ३ ॥

वातात्पित्तात्कफाद्रक्तादभिष्यन्दश्चतुर्विधः ।

प्रायेण जायते घोरः सर्वनेत्रामयाकरः ॥ ४ ॥

वातजविकारानाह—

निस्तोदनस्तम्भनरोमहर्षसंकोचपाण्ड्यशिरोमितापाः ।

विशुष्कभावः शिशिराश्रुता च वाताभिपन्ने नयने भवन्ति ॥ ५ ॥

* क. सौभाजननाम ।

पित्तजविकारानाह—

दाहप्रपाकौ शिशिराभिनन्दा धूमायनं बाष्पसमुच्छ्रयश्च ।
उष्णाश्रुता पीतकनेत्रता च पित्ताभिपन्ने नयने भवन्ति ॥ ६ ॥

कफजविकारानाह—

उष्णाभिनन्दा गुरुताऽक्षिशोकः कण्डूपदेहावतिशीतता च ।
स्रावो बहुः पिच्छिल एव चापि कफाभिपन्ने नयने भवन्ति ॥ ७ ॥

रक्तजविकारानाह—

ताम्राश्रुता लोहितनेत्रता च राज्यः समन्तादतिलोहिताश्च ।
पित्तस्य लिङ्गानि च यानि तानि रक्ताभिपन्ने नयने भवन्ति ॥ ८ ॥

तत्राधिमन्थदोषमाह—

वृद्धैरेतैरभिष्यन्दैर्नराणामक्रियावताम् ।
तावन्तस्त्वधिमन्थाः स्युर्नयने तीव्रवेदनाः ॥ ९ ॥
उत्पाद्यत इवात्यर्थं नेत्रं निर्मथ्यते तथा ।
शिरोर्ध्वं वेदनां विद्यादधिमन्थं स्वलक्षणैः ॥ १० ॥

दोषजदृष्टिघातस्य नियमदिनान्याह—

हन्याद्दृष्टिं श्लैष्मिकः सप्तरात्राद्योऽधीमन्थो रक्तजः पञ्चरात्रात् ।
षड्रात्राद्वा वातिको वै निहन्यान्मिथ्याचारात्पैत्तिकः सद्य एव ॥ ११ ॥

आमान्वितमाह—

उदीर्णवेदनं नेत्रं रागशोथसमान्वितम् ।
घर्षनिस्तोद्गूलाश्रुयुक्तमामान्वितं विदुः ॥ १२ ॥

पक्वदोषमाह—

मन्दवेदनता कण्डूः संरम्भाश्रुप्रशान्तता ।
प्रसन्नवर्णता चाक्ष्णोः संपर्कं दोषमादिशेत् ॥ १३ ॥

नेत्रपाकमाह—

कण्डूपदेहाश्रुयुतः पक्वोदुम्बरसंनिभः ।
संरम्भी पच्यते यस्तु नेत्रपाकैः स शोथजः ।
शोफहीनानि लिङ्गानि नेत्रपाके त्वशोथजे ॥ १४ ॥

हताधिमन्थरोगमाह—

उपेक्षणादाक्षि यदाऽधिमन्थो वातात्मकः सादयति प्रसह्य ।
रुजामिरुग्राभिरसाध्य एष हताधिमन्थः खलु नाम रोगः ॥ १५ ॥

वातपर्ययमाह—

वारं वारं च पर्येति भ्रुवौ नेत्रे च मारुतः ।
रुजश्च विविधास्तीव्राः स ज्ञेयो वातपर्ययः ॥ १६ ॥

शुष्कनेत्रपाकमाह—

यत्कूणितं दारुणरूक्षवर्त्म संदृश्यते चाऽऽविलदर्शनं च ।
सुदारुणं यत्प्रतिबोधने च शुष्काक्षिपाकोपहतं तदक्षि ॥ १७ ॥

अन्यतोवातमाह—

यः श्यावदृक्कर्णशिराहनुस्थो मन्यागतो वाऽप्यनिलोत्थितो वा ।
कुर्याद्विजं वै भ्रुवि लोचने च तमन्यतोवातमुदाहरन्ति ॥ १८ ॥

अम्लाध्युषितनेत्रमाह—

श्यावं लोहितपर्यन्तं सर्वं चाक्षि प्रपच्यते ।
सदाहशोथं सस्रावमम्लाध्युषितमम्लतः ॥ १९ ॥

शिरोत्पातनेत्रदोषमाह—

अवेदना वाऽपि सवेदना वा यस्याक्षिराज्यो हि भवन्ति ताम्राः ।
मुहुर्विरज्यन्ति च याः स तादृग्व्याधिः शिरोत्पात इति प्रदिष्टः ॥ २० ॥
मोहाच्छिरोत्पात उपेक्षितस्तु जायेत रोगः स शिराप्रहर्षः ।
ताम्राक्षमस्रं स्रवति प्रगाढं तथा न शक्नोत्यभिवीक्षितुं च ॥ २१ ॥
इति सर्वगताः ।

अथ कृष्णगताः—

निमग्नरूपं तु भवेद्धि कृष्णे सूक्ष्मेव विद्धं प्रतिमाति यद्वै ।
स्रावं स्रवेदुष्णमतीव यच्च तत्स्रवणं शुक्रमुदाहरन्ति ॥ २२ ॥
दृष्टेः समीपे न भवेत्तु यच्च न चावगाढं न च संस्रवेच्च ।
अवेदनं वा न च युग्मशुक्रं न सिद्धिमायाति कदाचिदेव ॥ २३ ॥
स्यन्दात्मकं कृष्णगर्तं सचोषं शङ्खेन्दुकुन्दप्रतिमावभासम् +
वैहायसाभ्रप्रतनुप्रकाशमथावर्णं साध्यतमं वदन्ति ॥ २४ ॥

गम्भीरजातं बहलं च शुक्रं चिरोत्थितं चापि विवर्जनीयम् ।
 विच्छिन्नमध्यं पिशितावृतं च चलं शिरासूक्ष्ममदृष्टिकृच्च ॥ २५ ॥
 द्वित्वगतं लोहितमन्ततश्च चिरोत्थितं चापि विवर्जनीयम् ।
 उष्णाश्रुपातः पिटका च नेत्रे यस्मिन्भवेन्मुद्गनिभं च शुक्रम् ॥ २६ ॥
 तदप्यसाध्यं प्रवदन्ति केचिदन्यच्च यत्तित्तिरिपक्षतुल्यम् ।
 श्वेतः समाक्रामति सर्वतो हि दोषेण यस्यासितमण्डलं तु ॥ २७ ॥
 तमक्षिपाकात्ययमक्षिकोपं सर्वात्मकं वर्जयितव्यमाहुः ।
 अजापुरीषप्रतिमो रुजावान्संलोहितो लोहितपिच्छिलाश्रुः ॥ २८ ॥
 विगृह्य कृष्णं प्रचयोऽभ्युपैति तं चाजकाजातमिति व्यवस्येत् ॥ २९ ॥
 इति कृष्णगताः ।

अथ दृष्टिगताः—

प्रथमपटलगतदोषजविकारानाह—

प्रथमे पटले दोषो यस्य दृष्ट्यां व्यवस्थितः ।
 अव्यक्तानि च रूपाणि कदाचिद्यश्च पश्यति ॥ ३० ॥

द्वितीयपटलगतदोषजविकारानाह—

दृष्टेर्भृशं विह्वलत्वं द्वितीयं पटलं गते ।

त्रितीयपटलगतदोषजविकारानाह—

मक्षिका मशकांश्चापि जलकानि च पश्यति ॥ ३१ ॥
 मण्डलानि पत्तिकाश्च मरीचीन्कुण्डलानि च ।
 परिपुवांश्च विविधान्वर्षमभ्रतमासि च ॥ ३२ ॥
 दूरस्थानि च रूपाणि मन्यते स समीपतः ।
 समीपस्थानि दूरे च दृष्टेर्गोचरविभ्रमात् ॥ ३३ ॥
 यत्नवानपि चात्यर्थं सूचीपाशं न पश्यति ।
 ऊर्ध्वं पश्यति नाधस्तात्तृतीयं पटलं गते ॥ ३४ ॥

चतुर्थपटलगतदोषजविकारानाह—

महान्यपि च रूपाणि छादितानीव चाम्बरैः ।
 कर्णनासाक्षिहीनानि विकृतानि च पश्यति ॥ ३५ ॥
 यथादोषं च रज्येत दृष्टेर्दोषे बलीयसि ।
 अधस्थिते समीपस्थं दूरस्थं चोपरिस्थिते ॥ ३६ ॥

पार्श्वस्थिते तथा दोषे पार्श्वस्थं नैव पश्यति ।
 समन्ततः स्थिते दोषे संकुलानि च पश्यति ॥ ३७ ॥
 दृष्टिमध्यस्थिते दोषे स एकं मन्यते द्विधा ।
 द्विधास्थिते त्रिधा पश्येद्बहुधा चानवस्थिते ॥ ३८ ॥
 दोषे दृष्ट्याश्रिते तिर्यङ्महद्भ्रस्वं च पश्यति ।
 तिमिराख्यः स वै दोषश्चतुर्थपटलं गतः ॥ ३९ ॥

लिङ्गनाशमाह—

यद्यप्युपेक्षमाणस्य चतुर्थपटलं गतः ।
 रुणद्धि सर्वतो दृष्टिं लिङ्गनाशमतः परम् ॥ ४० ॥
 लिङ्गनाशं मलः कुर्याच्छादयेद्दृष्टिमण्डलम् ।
 अस्मिन्नपि तमोभूते नातिरूढे महागदे ॥ ४१ ॥
 चन्द्रादित्यौ सनक्षत्रावन्तरिक्षे च विद्युतः ।
 निर्मलानि च तेजांसि भ्राजिष्णूनि च पश्यति ॥ ४२ ॥
 स एव लिङ्गनाशस्तु नीलिकाकाचसंज्ञितः ।

वातजदोषे रूपदर्शनम्—

वातेन चात्र रूपाणि भ्रमन्तीव स पश्यति ॥ ४३ ॥
 आविलान्यरुणाभानि व्याविद्धानीव मानवः ।

पित्तजदोषे रूपदर्शनम्

पित्तेनाऽऽदित्यखद्योतशुक्रचापतडिद्वुणान् ॥ ४४ ॥
 नृत्यतश्चैव शिखिनः सर्वं नीलं च पश्यति ।

कफजदोषे रूपदर्शनम्—

गौरचामरगौराणि श्वेताभ्रप्रमितानि च ॥ ४५ ॥
 कफेन पश्येद्रूपाणि स्निग्धानि च सितानि च ।
 पश्येदसूक्ष्माण्यत्यर्थं व्यञ्जे चैवाभ्रसंप्लवम् ॥ ४६ ॥
 सलिलप्लावितानीव परिजाड्यानि मानवः ।

रक्तजदोषे रूपदर्शनम्—

पश्येद्रक्तानि रक्तेन तमांसि विविधानि च ॥ ४७ ॥
 ससितान्येव कृष्णानि पीतान्यपि च मानवः ।

संनिपातजदोषे रूपदर्शनम्—

संनिपातेन चित्राणि विप्लवतानि च पश्यति ॥ ४८ ॥

बहुधा वा द्विधा वाऽपि सर्वाण्येव समन्ततः ।
हीनाधिकाङ्गान्यथ वा ज्योतीष्यपि च पश्यति ॥ ४९ ॥
पित्तं कुर्यात्परिम्लायि मूर्छितं रक्ततेजसा ।
पीता दिशस्तु खद्योतमादित्यमिव पश्यति ॥ ५० ॥
विकीर्यमाणान्खद्योतैर्वृक्षांस्तेजोभिरेव वा ।

षड्विधरागलक्षणमाह—

वक्ष्यामि षड्विधं रागैर्लिङ्गनाशमतः परम् ॥ ५१ ॥
रागोऽरुणो मारुतजः प्रदिष्टो म्लायी च नीलश्च तथैव पित्तात् ।
कफात्सितः शोणितजस्तु रक्तः समस्तदोषप्रभवो विचित्रः ॥ ५२ ॥
अरुणं मण्डलं दृष्ट्यां स्थूलकाचारुणप्रभम् ।
परिम्लायिनि रोगे स्यान्म्लायि नीलं च मण्डलम् ॥ ५३ ॥
दोषक्षयात्स्वयं तत्र कदाचित्स्यात्प्रदर्शनम् ।
अरुणं मण्डलं वार्ताञ्चञ्चलं परुषं तथा ॥ ५४ ॥
पित्तान्मण्डलमानीलं कांस्याभं पीतमेव च ।
श्लेष्मणा बहलं स्निग्धं शङ्खकुन्देन्दुपाण्डुरम् ॥ ५५ ॥
चलपद्मपलाशस्थः शुक्लो बिन्दुरिवाम्भसः ।
सूक्ष्ममाने तु नयने मण्डलं तद्विसर्पति ॥ ५६ ॥
प्रवालपद्मपत्राभं मण्डलं शोणितात्मकम् ।
हृष्टिरागो भवेच्चित्रो लिङ्गनाशे त्रिदोषजे ।
यथास्वं दोषलिङ्गानि सर्वेष्वेव भवन्ति हि ॥ ५७ ॥

षड्रोगानाह—

यथा नरः पित्तविदग्धदृष्टिः कफेन चान्यस्त्वथ धूमदर्शी ।
यो ह्रस्वजातो नकुलान्धता च गम्भीरसंज्ञा च तथैव दृष्टिः ॥ ५८ ॥
षड्रलिङ्गनाशाः षड्भिमे च रागा दृष्ट्याश्रिताः षट्च षडेव चापि ।

पित्तविदग्धदृष्टिमाह—

पित्तेन दुष्टेन विदग्धदृष्टिः पीता भवेद्यस्य नरस्य दृष्टिः ॥ ५९ ॥
पीतानि रूपाणि च मन्यते यः स वै नरः पित्तविदग्धदृष्टिः ।
प्राप्ते तृतीयं पटलं तु दोषे दिवा न पश्येन्नशि वीक्षते च ॥ ६० ॥

रात्रौ स शीतानुगृहीतदृष्टिः पित्ताल्लभावादधि तानि पश्येत् ।

श्लेष्मविदग्धदृष्टिमाह—

तथा नरः श्लेष्मविदग्धदृष्टिस्तान्येव शुक्लानि च मन्बते सः ॥ ६१ ॥

त्रिषु स्थितो यः पटलेषु दोषो नक्तान्ध्यमापादयति प्रसह्य ।

दिवा स सूर्यानुगृहीतदृष्टिः पश्येत्स रूपाणि कफाल्लभावात् ॥ ६२ ॥

धूमदर्शिनमाह—

शोकज्वरायासशिरोभितापैरस्याहता यस्य नरस्य दृष्टिः ।

धूमांस्तथा पश्यति सर्वभावान्स धूमदर्शीति नरः प्रदिष्टः ॥ ६३ ॥

ह्रस्वजात्यमाह—

यो ह्रस्वजात्यो दिवसेषु कृच्छ्राद्धस्वाणि रूपाणि च तेन पश्येत् ।

नकुलान्ध्यमाह—

विद्योतते यस्य नरस्य दृष्टिर्दोषाभिपन्ना नकुलस्य यद्वत् ॥ ६४ ॥

चित्राणि रूपाणि दिवा स पश्येत्स वै विकारो नकुलान्ध्यसंज्ञः ।

गम्भीरसंज्ञकमाह—

दृष्टिर्विरूपा श्वसनोपसृष्टा संकुच्यतेऽभ्यन्तरतस्तु याति ॥ ६५ ॥

रुजावगाढा च तमक्षिरोगं गम्भीरकेति प्रवदन्ति तज्ज्ञाः ।

बाह्यौ पुनर्द्वाविह संप्रदिष्टौ निमित्ततश्चाप्यनिमित्ततश्च ॥ ६६ ॥

निमित्ततस्तत्र शिरोभितापाज्ज्ञेयस्त्वभिष्यन्दनिदर्शनैः सः ।

विदीर्यते सीदति हीयते वा नृणामभीघातहता च दृष्टिः ॥ ६७ ॥

सुरार्पिगन्धर्वमहोरगाणां संदर्शनेनापि च भास्करस्य ।

हन्येत दृष्टिर्मनुजस्य यस्य स लिङ्गनाशस्त्वनिमित्तसंज्ञः ।

तत्राक्षि विस्पष्टमिवावभाति वैदूर्यवर्णा विमला च दृष्टिः ॥ ६८ ॥

इति दृष्टिगताः ।

अथ शुक्लगताः—

प्रस्तारि तनु विस्तीर्णं श्यावं रक्तनिभं सिते ।

सश्वेतं मृदु शुक्लार्म शुक्ले तद्वर्धते चिरात् ॥ ६९ ॥

पद्माभं मृदुरक्तार्म यन्मांसं चीयते सिते ।

पृथुमृद्वाधमांसार्म बहलं च यकृन्निभम् ॥ ७० ॥

स्थिरं प्रसारि मांसाढ्य शुष्कं स्नाय्वर्म पञ्चमम् ॥ ७१ ॥

श्यायाः स्युः पिशितनिमाश्च बिन्दवो ये
 शुक्त्यामास्त्वसितसिताश्च शुक्तिसंज्ञाः ।
 एका यः शशरुधिरोपमश्च बिन्दुः
 शुक्लस्थो भवति तदजुनं वदन्ति ॥ ७२ ॥
 श्लेष्ममारुतकोपेन यच्छुक्लं मांसमुन्नतम् ।
 पिष्टवत्पिष्टकं विद्धि मलाक्तादर्शसंनिभम् ॥ ७३ ॥
 जालाभः कठिनशिरो महान्सरक्तः
 संतानः स्मृत इह जालसंज्ञितस्तु ।
 शुक्लस्थाः सितपिटकाः शिरावृता या-
 स्ता विद्यादसितसमीपजाः शिराजाः ॥ ७४ ॥
 कांस्याभोऽमृदुरथ वारिबिन्दुकल्पो
 विज्ञेयो नयनसिते बलासरूपः ॥ ७५ ॥

इति शुक्लगताः ।

अथ संधिगताः—

पक्वः शोथः संधिजो यः सतोदः स्रवेत्पूयं स हि पूयालसाख्यः ।
 ग्रन्थिर्नास्ति दृष्टिसंधावपाकी कण्डूप्रायो नीरुजस्तूपनाहः ॥ ७६ ॥
 गत्वा संधीनश्रुमार्गेण दोषाः कुर्युः स्रावाल्लक्षणैः स्वैरुपेतान् ।
 तं हि स्रावं नेत्रनाडीति चक तस्या लिङ्गं कीर्तयिष्ये चतुर्था ॥ ७७ ॥
 पाकात्संधौ संस्रवेद्यस्तु पूयं पूयास्रावः स गदः सर्वजस्तु ।
 श्वेतं सान्द्रं पिच्छिलं यः स्रवेत् श्लेष्मस्रावोऽसा विकारो मतस्तु ।
 रक्तास्रावः शोणितोत्थो विकारः स्रवेदुष्णं तत्र रक्तं प्रभूतम् ।
 हरिद्राभं नीलमुष्णं जलं वा पित्तात्स्रावः संस्रवेत्संधिमध्यात् ॥ ७९ ॥
 ताम्रा तन्वी दाहशूलोपपन्ना ज्ञेया रक्तात्पर्वणी वृत्तशोफा ।
 जाता संधौ शुक्लकृष्णोऽलजी स्यात्तस्मिन्नेव ख्यापिता पूर्वलिङ्गैः ॥ ८० ॥
 किमिं ग्रन्थि वर्त्मनः पक्ष्मणश्च कण्डूं कुर्युर्जन्तवः संधिजाताः ।
 नानारूपा वर्त्मशुक्लान्तसंधौ चरन्त्यन्तर्नयनं दूषयन्तः ॥ ८१ ॥
 इति संधिगताः ।

अथ वर्त्मपक्ष्मजाः—

आभ्यन्तरमुखी ताम्रा बाह्यतो वर्त्मनश्च या ।
 सोत्सङ्गोत्सङ्गपिटका रक्तजा स्थूलकण्डुरा ॥ ८२ ॥

वर्त्मनः पिटका ध्माता भिद्यन्तेऽधः स्रवन्ति च ।
 कुम्भीकबीजसदृशाः कुम्भिकाः संनिपातजाः ॥ ८३ ॥
 स्राविण्यः कण्डूरा गुर्व्यो रक्तसर्पपसंनिभाः ।
 रुजावत्यश्च पिटकाः पोथक्य इति संज्ञिताः ॥ ८४ ॥
 पिटका या खरा स्थूला सूक्ष्माभिरभिसंभृता ।
 वर्त्मस्था शर्करा नाम स रोगो वर्त्मदूषकः ॥ ८४ ॥
 एवार्बुबीजसदृशाः पिटका मन्दवेदनाः ।
 सूक्ष्माः खराश्च वर्त्मस्थास्तदर्शो वर्त्म कीर्तितम् ॥ ८६ ॥
 दीर्घाङ्कुरः खरस्तब्धो दारुणोऽभ्यन्तरोद्भवः ।
 व्याधिरेषोऽभिविरूपातः शुष्काशो नाम नामतः ॥ ८७ ॥
 दाहतोदवती ताम्रा पिटका या तु वर्त्मजा ।
 मृद्धी मन्दरुजा सूक्ष्मा ज्ञेया साऽञ्जननामिका ॥ ८८ ॥
 वर्त्मोपचीयते यस्य पिटकाभिः समन्ततः ।
 सवर्णाभिः स्थिराभिश्च विद्याद्वहलवर्त्म तत् ॥ ८९ ॥
 कण्डूमताऽल्पतोदेन वर्त्मशोथेन यो नरः ।
 न समं छादयेदक्षि भवेद्वन्धः स वर्त्मनः ॥ ९० ॥
 सुद्वल्पवेदनं ताम्रं यद्वर्त्मसममेव तत् ।
 अकस्माच्च भवेद्रक्तं क्लिन्नवर्त्मेति तद्विदुः ॥ ९१ ॥
 क्लिन्नं पुनः पित्तयुतं शोणितं विदहेद्यदा ।
 ततः क्लिन्नत्वमापन्नमुच्यते वर्त्मकर्दमः ॥ ९२ ॥
 वर्त्म यद्वाह्यतोऽन्तश्च श्यावं शूनं सवेदनम् ।
 तदाहुः श्याववर्त्मेति वर्त्मरोगविशारदाः ॥ ९३ ॥
 अरुजं बाह्यतः शूनं वर्त्म यस्य नरस्य हि ।
 प्राक्लिन्नवर्त्म तद्विद्यात्क्लिन्नमत्यर्थमन्ततः ॥ ९४ ॥
 यस्य धौतान्यधौतानि संनह्यन्ते पुनः पुनः ।
 वर्त्मन्यपरिपक्वाणि चापरे क्लिन्नवर्त्म तत् ॥ ९५ ॥
 विमुक्तसंधि निश्चेष्टं वर्त्म यस्य निमील्यते ।
 एतद्वातहतं नाम जानीयादक्षिचिन्तकः ॥ ९६ ॥
 वर्त्मान्तरस्थं विषमं ग्रन्थिभूतमवेदनम् ।
 आचक्षीतार्बुदमिति सरक्तमविलम्बितम् ॥ ९७ ॥

निमेषणीः शिरा वायुः प्रविष्टः संधिसंश्रितः ।
 चालयत्यतिवर्त्मानि निमेष इति तं विदुः ॥ ९८ ॥
 वर्त्मस्थो यो विवर्धेत लोहितो मृदुरङ्कुरः ।
 तद्रक्तजं शोणितार्शश्छिन्नं छिन्नं प्रवर्धते ॥ ९९ ॥
 अपाकी कठिनस्थूलो ग्रन्थिर्वर्त्मभवो रुजः ।
 लैगणो नाम स व्याधिलिङ्गतः परिकीर्तितः ॥ १०० ॥
 त्रयो दोषा बहिः शोथं कुर्युश्छिद्राणि वर्त्मनोः ।
 प्रस्रवन्त्यन्तरुदकं विसवद्विसवर्त्मवत् ॥ १ ॥
 प्रचालितानि वातेन पक्ष्माण्यक्षि विशन्ति हि ।
 घृष्यन्त्याक्षि मुहुस्तानि संरम्भं जनयन्ति च ॥ २ ॥
 असिते सितभागे च मूलकोशात्पतन्त्यपि ।
 पक्ष्मकोपः स विज्ञेयो व्याधिः परमदारुणः ॥ ३ ॥
 वर्त्मपक्ष्माशयगतं पित्तं रोमाणि शातयेत् ।
 कण्डूं दाहं च कुरुते पक्ष्मशातं तमादिशेत् ॥ ४ ॥
 वाताद्या वर्त्मसंकोचं जनयन्ति यदा मलाः ।
 तदा द्रष्टुं न शक्नोति कुञ्चनं नाम तद्विदुः ॥ ५ ॥
 इति नेत्ररोगनिदानम् ।

अथ नेत्ररोगचिकित्सा—

क्रियामाह—

लङ्घनालेपनस्वेदशिराव्यधविरेचनैः ।
 उपाचरेदभिष्यन्दमञ्जनाश्रोतनादिभिः ॥ ६ ॥
 अक्षिकुक्षिभवा रोगाः प्रतिश्यायव्रणज्वराः ।
 पञ्चैते पञ्चरात्रेण शुद्धिमायान्ति लङ्घनात् ॥ ७ ॥
 अञ्जनं पूरणं क्वाथपानमामे न शस्यते ।
 आचतुर्थाद्दिनादाममभिष्यन्दे विलोचनम् ॥ ८ ॥
 ततः संपक्वदोषस्य प्रथमाञ्जनमाचरेत् ।

अत्राञ्जनस्यर्तुसमानकालमाह—

हेमन्ते शिशिरे चापि मध्याह्नेऽञ्जनमिष्यते ॥ ९ ॥
 पूर्वाह्णे चापराह्णे च ग्रीष्मे शरदि चेप्यते ।
 वर्षास्वनभ्रे नात्युष्णे वसन्ते तु सदैव हि ॥ ११० ॥

अञ्जयित्वा वाममक्षि पश्चाद्दक्षिणमञ्जयेत् ।

सेलुभिर्वस्त्रखण्डेन बद्धैः कासीसवाप्लुतैः ।

अक्षणोराश्रयोतनं शस्तमभिष्यन्दे मुहुर्मुहुः ॥ ११ ॥

आश्रयोतने सत्रिफला सलोधा सचन्दना दारुनिशा प्रशस्ता ।

आलेपने सैन्धवगैरिकं च सताक्षर्यशैलामयमेतदिष्टम् ॥ १२ ॥

अथाऽऽश्रयोतनमात्रा—

अष्टौ दश द्वादश बिन्द्वस्तु संलेखनस्नेहनरोपणेषु ।

आश्रयोतनेषु क्रमशो विधेया मात्रास्तु तिस्रो नयनामयेषु ॥ १३ ॥

शोथं च दाहरोगं च क्लेदं कण्डूं तथा रुजम् ।

अक्षणोराशु प्रसेकं च क्षिप्रमाश्रयोतनं हरेत् ॥ १४ ॥

इत्याश्रयोतनमात्रा ।

अथ वाङ्मात्रा—

निमेषोन्मेषणं पुंसामङ्गुल्यां छोटिकाऽथ वा ।

गुर्वक्षरोच्चारणं वा वाङ्मात्रेयं स्मृता बुधैः ॥ १५ ॥

इति वाङ्मात्रा ।

अथाऽऽश्रयोतनम्—

सेकस्तु दिवसे कार्यो रात्रौ वाऽऽत्यन्तिके गदे ।

स यथा—

एरण्डदलमूलत्वक्शृतमाजं पयो हितम् ।

सुखोष्णं नेत्रयोः सिक्तं वाताभिष्यन्दनाशनम् ॥ १६ ॥

पथ्याक्षामलखाखसफलवल्कलकल्केन सूक्ष्मवस्त्रेण ।

कृत्वा पोटलिकां तामहिफेनोत्थद्रवेणाक्ताम् ॥ १७ ॥

निदधीत लोचन स्यात्सर्वाभिष्यन्दसंशमः शीघ्रम् ।

योगोऽयमृषिभिरुक्तो जगदुपकाराय कारुणिकैः ॥ १८ ॥

स्नानं कृष्णातिलैश्चापि चक्षुष्यमनिलापहम् ।

आमलैः सततं स्नानं परं दृष्टिबलावहम् ॥ १९ ॥

त्रिफलायाः कषायस्तु धावनास्नेत्ररोगजित् ।

कवलान्मुखरोगघ्नः पानतः कामलापहः ॥ २० ॥

काथक्षीरद्रवस्नेहबिन्दूनां यत्तु पातनम् ।

द्यङ्गुलोन्मिलिते नेत्रे प्रोक्तमाश्रयोतनं हितम् ॥ २१ ॥

वाते तिक्तं तथा स्निग्धं पित्ते मधुरशीतलम् ।
 कफे तिक्तोष्णरूक्षं स्यात्कमादाश्रयोतनं हितम् ॥ २२ ॥
 आश्रयोतनं न कर्तव्यं निशायां केनचित्कचित् ।
 बिल्वादिपञ्चमूलेन बृहत्येरण्डशिग्रुभिः ॥ २३ ॥
 क्वाथ आश्रयोतने कोष्णो वाताभिष्यन्दनाशनः ।
 त्रिफलाश्रयोतनं नेत्रे सर्वाभिष्यन्दनाशनम् ॥ २४ ॥

इत्याश्रयोतनम् ।

अथोपनाहौ—

जात्याः पत्रैर्घृतभृष्टैश्चक्षुष्यमुपनाहनम् ।
 अथ वा निम्बपत्रैः स्यादुपनाहोऽक्षिरोगजित् ॥ २५ ॥

इत्युपनाहौ ।

अथ पटोलादिकाथः—

यष्टीं गुडूचीं त्रिफलां सदावीं निष्काश्य तत्क्वाथमथ प्रभाते ।
 निपीय नेत्रे च निषिच्य तेन सद्योऽक्षिकोपं विजहाति जन्तुः ॥ २६ ॥
 श्वेतलोधं घृते भृष्टं चूर्णितं वस्त्रगालितम् ।
 उष्णाम्बुना विमृदितं सेकादक्षिरुजो जयेत् ॥ २७ ॥
 यष्टीगैरिकसिन्धूत्थदावीताक्षर्यैः समांशकैः ।
 जलपिष्टैर्बहिर्लेपः सर्वनेत्ररुजापहः ॥ २८ ॥
 घृतभृष्टं जलपिष्टं वस्त्रनिविष्टं तिरीटमपहरति ।
 दावीक्वाथपरिप्लुतमाश्रयोतनतोऽक्षिकोपमद्वात् ॥ २९ ॥
 पटोलघननागरैर्वृषवरागुडूचीहिमै-
 ररिष्टैर्मधुकान्वितैरपि च पञ्चमूल्या शृतम् ।
 समीरकफपित्तजं जयति सर्वनेत्रामयं
 रुगश्रुतिमिरक्षयश्चयथुकोपकण्डूरपि ॥ ३० ॥

इति पटोलादिकाथः ।

अथ वासादिकाथः—

आट्ठरूपामयानिम्बधात्रीमुस्ताक्षवल्कलैः ।
 स्रावं रक्तकफं हन्ति चक्षुष्यं वासकादिकम् ॥ ३१ ॥

इति वासादिकाथः ।

अथ महावासादिकाथः—

वासाघनं निम्बपटोलपत्रं तित्तामृतावत्सकचन्दनं च ।
 कलिङ्गद्वार्वीदहनं च शुण्ठी भूनिम्बधात्रीविजयाविभीतम् ॥ ३२ ॥
 यवांश्च निष्काश्य तमष्टशेषं पूर्वेऽह्नि संस्थापितमग्निमेऽह्नि ।
 प्रातः पिबेद्बुद्दशुक्रकण्डूतैर्मिर्यदाहव्रणपिल्लरोगान् ॥ ३३ ॥
 पिण्डोपनाहौ पटलानि नेत्ररोगानशेषानपरांश्च हन्यात् ।

इति महावासादिकाथः ।

अथाम्लिकाञ्जनम्—

वातारिपत्रे पुटपाचितावां द्रवं दलानां वरमम्लिकायाः ॥ ३४ ॥
 संमर्दयेत्सिन्धुफलेन कांस्ये तेनाञ्जनेनाञ्जितलोचनस्य ।
 सद्योऽक्षिनिस्पन्दमकाण्डकण्डूस्तथाऽभिमन्थानपि हन्ति सत्यम् ॥ ३५ ॥
 इत्यम्लिकाञ्जनम् ।

अथ राजमार्तण्डात्—

प्रत्यक्पुष्पीमूलं ताम्रमये भाजने ससिन्धूत्थम् ।
 मधुना सहितं घृष्टं चक्षुष्कोपं हरत्याशु ॥ ३६ ॥
 इति राजमार्तण्डात् ।

अथ चित्रकादिकाथः—

चित्रकमूलत्रिफलापटोलयवसाधितं पिबेद्दम्भः ।
 सघृतं निशि चक्षुष्यं तिमिरं च विशेषतो हन्ति ॥ ३७ ॥
 इति चित्रकादिकाथः ।

अथ धात्र्यादिकाथः—

धात्रीफलं निम्बकपित्थपत्रं यष्ट्याह्वलोध्रं खदिरं तिलाश्च ।
 काथः सुशीतो नयने निषिक्तः सर्वप्रकारं विनिहन्ति शुक्रम ॥ ३८ ॥
 इति धात्र्यादिकाथः ।

अथ राजमार्तण्डात्—

वटक्षीरेण संयुक्तं श्लक्ष्णं कर्पूरजं रजः ।
 क्षिप्रमञ्जनतो हन्ति शुक्रं चापि घनोन्नतम् ॥ ३९ ॥
 इति राजमार्तण्डात् ।

किंशुकस्वरसभावितं मुहुर्नक्तमालतरुबीजजं रजः ।

वर्तियोगविधिना विनाशयेदाशु नेत्रगतारोगपाण्डुताम् ॥ ४० ॥

अथ त्रिफलायोगः—

यस्त्रैफलं चूर्णमपथ्यवर्जं सायं समश्नोति समाक्षिकाज्यम् ।

स मुच्यते नेत्रभवैर्विकारैर्भृत्यैर्यथा क्षीणधनो मनुष्यः ॥ ४१ ॥

इति त्रिफलायोगः ।

अथ चन्द्रोदयवर्तिः—

त्रिफलायाः कषायेण प्रातर्नयनधावनात् ।

जाता रोगा विनश्यन्ति न भवन्ति कदाचन ॥ ४२ ॥

निशाद्वयाभयामांसीकुष्ठकृष्णाविचूर्णितैः ।

सर्वनेत्राभयान्हन्यादेतत्सौगतमञ्जनम् ॥ ४३ ॥

शिवोषणकणावचामयशिलाक्षमज्जाम्बुजै-

रजास्तनजमर्दितैर्भवति नाम चन्द्रोदया ।

इयं हरति वर्तिका तिमिरकाचकण्डर्बुदा-

धिमांसकुसुमादिकानपि गदाञ्जलेनाञ्जनात् ॥ ४४ ॥

इति चन्द्रोदयवर्तिः ।

अथ चन्द्रकलावर्तिः—

मुक्ताभस्मसिताभ्रपौररसकस्रोतोञ्जनैणाण्डजा

तुत्थाम्मोभवशङ्खनाभिचपलाभृङ्गोत्तमामज्जभिः ।

वर्तिश्चन्द्रकला निहन्ति तिमिरं चित्रं किमत्र स्फुटं

कण्डूमण्डलकाचशुक्रतिमिराम्मःस्रावपिल्लादिनुत् ॥ ४५ ॥

इति चन्द्रकलावर्तिः ।

अथ नयनामृतम्—

रसेन्द्रभुजगौ तुल्यौ तयोर्द्विगुणमञ्जनम् ।

सूततुर्याशकर्पूरमञ्जनं नयनामृतम् ॥ ४६ ॥

तिमिरं पटलं काचं शुक्रममार्जुनानि च ।

क्रमात्पथ्याशिनो हन्ति तथाऽन्यानपि दृग्गदान् ॥ ४७ ॥

इति नयनामृतम् ।

अथ गुटिकाञ्जनम्—

कलितरुफलमज्जा स्निग्धपट्टे प्रपिष्टा
 हरति नयनपुष्पं स्तन्ययोगाञ्जनेन ।
 श्रवणमलसमेतं मारिचं पङ्कमक्षणोः
 क्षपयति किल नैशीमन्धतां स्त्रीपयोक्तम् ॥ ४८ ॥
 हिङ्गुना द्रोणपुष्प्या वा रसेनाञ्जितलोचनः ।
 अचिरात्कामलोत्पन्नां पीततां हन्ति नेत्रयोः ॥ ४९ ॥
 पिप्पली त्रिफलालाक्षालोध्र सैन्धवसंयुतम् ।
 भृङ्गराजरसे घृष्टं गुटिकाञ्जनमिष्यते ॥ ५० ॥
 अर्म सतिमिरं काचं कण्डूं शुक्रं तथाऽर्जुनम् ।
 अञ्जनं नेत्रजान् रोगान्निहन्त्येतन्न संशयः ॥ ५१ ॥

इति गुटिकाञ्जनम् ।

अथ नारायणाञ्जनम्—

तुलस्या बिल्वपत्रस्य रसौ ग्राह्यौ समांशकौ ।
 ताभ्यां तुल्यं पयो नार्याञ्जितयं कांस्यमाजने ॥ ५२ ॥
 गजवह्न्या दृढं मर्द्यं ताम्रेण प्रहरं पुनः ।
 कज्जलत्वं समुत्पाद्य तेनाञ्जितविलोचनः ।
 सद्यो नेत्ररुजं हन्ति सशूलां पाकजामपि ॥ ५३ ॥

इति नारायणाञ्जनम् ।

अथ नक्तान्ध्यकेतुः—

हरेणुकां सैन्धवसंप्रयुक्तां स्रोतो जयुक्तामुपकुल्यया च ।
 पिष्ट्वाऽजमूत्रेण कृता च वर्तिर्नक्तान्ध्यविध्वंसकरी नराणाम् ॥ ५४ ॥
 इति नक्तान्ध्यकेतुः ।

अथ नागार्जुनी शलाका—

निर्वापयेत्त्रैफलके कषाये नागं विधिज्ञः शतधा हुताशे ।
 संताप्य संताप्य ततः शलाकां कृत्वाऽस्य शुद्धेन रसेन लिम्पेत् ॥ ५५ ॥
 तथाऽञ्जिताक्षो मनुजः क्रमेण सुपर्णदृष्टिर्मवति प्रसह्य ।
 जयेद्भिष्यन्दमथाधिमन्थमर्जुनौ वै तिमिराणि पिल्लान् ॥ ५६ ॥
 इति नागार्जुनी शलाका ।

अथ शशिकला वर्तिः—

रसकजलजनाभीपौरतुथं समांशं
वसनगलितमेतन्निम्बुनीरेण पिष्टम् ।
हरति शशिकलैतद्वर्तिरम्मोज्जिताक्षणे-
स्तिमिरकुसुमकण्डूस्त्रावरागार्मपिल्लान् ॥ ५७ ॥

इति शशिकला वर्तिः ।

अथ चन्द्रप्रभा वर्तिः—

चन्दनं गैरिकं लाक्षा मालतीकलिकाऽपि च ।
व्रणशुक्रहरा वर्तिः शोणितस्य प्रसाधिनी ॥ ५८ ॥
कतकस्य फलं शङ्खः तिन्दुकं रूप्यमेव च ।
कांस्ये निघृष्टं स्तन्येन क्षतशुक्रार्तिरागजित् ॥ ५९ ॥
न बिना शोणितं शुक्रं क्षतपाकात्ययाजकाः ।
भवन्ति रुधिरं तेन जलौकाभिरतो हरेत् ॥ १६० ॥
रजनिमरिचनिम्बाम्भोदपथ्याविडङ्गं
सकणमजजलैस्तद्वर्तिकाऽनुष्णशुष्का ।
जयति तिमिरमद्भिः स्त्रीपयोभिस्तु पुष्पं
पटलमरुमधुर्गोवारिणा पिञ्चदं च ॥ ६१ ॥

इति चन्द्रप्रभा वर्तिः ।

अथ रत्नाञ्जनम्—

अयस्थं त्रिफलाकाथं सर्पिषा सह योजितम् ।
भुक्तोपरि पिबेत्सायं मासेनान्धोऽपि पश्यति ॥ ६२ ॥
भुक्त्वा पाणितलं घृष्ट्वा चक्षुषोर्यदि दीयते ।
अचिरेणैव तद्वारि तिमिराणि व्यपोहति ॥ ६३ ॥
विगतघननिशीथे प्रातरुत्थाय नित्यं
पिबति खलु नरो यो घ्राणरन्ध्रेण वारि ।
स भवति मतिपूर्णश्चक्षुषा ताक्ष्यतुल्यो
वालिलितविहीनः सर्वरोगैर्विमुक्तः ॥ ६४ ॥

कासश्वासातिसारज्वरजठरकटीकुष्ठकोष्ठप्ररूढा

मूत्राघातोदरार्शःश्वयथुगलशिरःकर्णनासाक्षिरोगाः ।

ये चान्ये वातपित्तक्षतजकफमवा व्याधयः सन्ति जन्तो-

स्तांस्तानभ्यासयोगादपनयति पयः पीतमन्ते निशायाः ॥६५॥

नवरत्नी घनसारः कस्तूरी चेति भिन्नमेकलवाः ।
 तत्तुल्यौ रसनागो सर्वसमं यामुनं समुद्दिष्टम् ॥ ६६ ॥
 सर्वं शुद्धं युक्त्या योजितमेतत्पृथक्पृथग्योज्यम् ।
 गृध्रोलूकद्वुग्म्बुत्रिफलाक्वाथैर्वरीहिमाम्भोभिः ॥ ६७ ॥
 ब्रह्मदुमूलवारा योषिद्वुग्धेन च त्रेधा ।
 एतद्वर्तिश्छायाशुष्का रत्नाञ्जनाख्या स्यात् ॥ ६८ ॥
 वाराञ्जनात्रिसंध्यं तिमिरं पटलं तथा काचम् ।
 स्रावं रागं कण्डूमर्मार्जुनपिलशुक्राणि ॥ ६९ ॥
 अन्यानपीन्द्रियसितासितरोगांश्च वर्मजातांश्च ।
 हन्त्येषा किं बहुनाऽप्यन्धमनन्धं नरं कुरुते ॥ १७० ॥

इति रत्नाञ्जनम् ।

अथ वैदेही वर्तिः—

कतकं चन्दनं लाक्षा मरिचं मधुकोत्पलम् ।
 तुत्थाक्षामलकाद्वीजं मनोह्वासुमनः सिता ॥ ७१ ॥
 विडङ्गोदधिफेनैलाशङ्कनाभिरसाञ्जनम् ।
 एषा दृष्टिप्रदा वर्तिर्विदेहेन विनिर्मिता ॥ ७२ ॥
 नित्योपयोगात्पटलं तिमिरं शुक्तिराजिके ।
 शुष्काक्षिरोगौ तोदं च विवृद्धिं चार्ममेव च ॥ ७३ ॥
 निहन्ति रोगानेतांश्च त्रिदोषानपि दुस्तरान् ।

इति वैदेही वर्तिः ।

अथ त्रिफलाघृतम्—

त्रिफलाक्वाथकल्काभ्यां सपयस्कं वरं घृतम् ॥ ७४ ॥
 तिमिराण्यचिराद्धन्याद्घृतमेतन्निशामुखे ।

इति त्रिफलाघृतम् ।

अथ मध्यमं त्रैफलं घृतम्—

त्रिफला त्र्यूषणं द्राक्षा मधुकं कटुरोहिणी ॥ ७५ ॥
 प्रपौण्डरीकं सूक्ष्मैला विडङ्गं नागकेसरम् ।
 नीलोत्पलं सारिवे द्वे चन्दनं रजनीद्वयम् ॥ ७६ ॥
 कार्षिकेः पयसा तुल्यं द्विगुणत्रिफलारसम् ।
 घृतप्रस्थं पचेदेतत्सर्वनेत्ररुजापहम् ॥ ७७ ॥

तिमिरं च जलस्रावं कामलां काचमर्बुदम् ।
 विसर्पं पटलं कण्डूं तोदं च श्वयथुं पृथुम् ॥ ७८ ॥
 अन्यानपि बहून्रोगान्नेत्रजान्वर्त्मजानपि ।
 निहन्ति सर्पिरेतत्तु मास्करस्तिमिरं यथा ॥ ७९ ॥
 न चैवास्मात्परं किञ्चिद्द्वेषजं काश्यपादिभिः ।
 दृष्टिप्रसादनं दृष्टं तदेतन्नैफलं घृतम् ॥ १८० ॥

इति मध्वमं त्रैफलं घृतम् ।

अथ महात्रैफलं घृतम्—

प्रत्येकं त्रिफलामृतावृषवरीभृङ्गामलक्यम्बुना
 तुल्येनाऽऽजपयः समं च हविषः पात्रं पचेत्कल्कितैः ।
 क्षुद्राक्षीरधरावरोत्पलकणायष्टीमधूकैः सिता-
 द्राक्षाभ्यां च समस्तनेत्रगदजित्सर्पिर्महात्रैफलम् ॥ ८१ ॥

इति महात्रैफलं घृतम् ।

दक्षाण्डत्वक्शिलाकाचशङ्खचन्दनसैन्धवैः ।
 चूर्णितैरञ्जनं प्रोक्तं पुष्पार्मादिनिकृन्तनम् ॥ ८२ ॥

अथ मुक्तादिमहाञ्जनं भावप्रकाशात्—

मुक्ताकर्पूरकाचागरुमरिचकणासैन्धवं सैलवालं
 शुण्ठीकङ्कोलकांस्थत्रपुरजनिशिलाशङ्खनाम्यभ्रतुत्यम् ।
 दक्षाण्डत्वक्च साक्षक्षतजयुतशिवाक्कीतकं राजवर्तं
 जातीपुष्पं तुलस्याः कुसुममभिनवं बीजमस्यास्तथैव ॥ ८३ ॥
 पूतीकनिम्बार्जुनमद्रमुस्तं सताम्रसारं रसगर्भयुक्तम् ।
 प्रत्येकमेषां खलु माषमेकं बलेन पिष्ट्वा मधुनाऽतिसूक्ष्मम् ॥ ८४ ॥
 भवन्ति रोगा नयनाश्रिता ये नितान्तमात्रोपचिताश्च तेषाम् ।
 विधीयते शान्तिरवश्यमेव मुक्तादिनाऽण्डेन महाञ्जनेन ॥ ८५ ॥

क्षतजं कुङ्कुमं रसगर्भं रसाञ्जनम् ।

इति मुक्तादिमहाञ्जनं भावप्रकाशात् ।

सर्वं शाकमचक्षुष्यं चक्षुष्यं शाकपञ्चकम् ।
 जीवन्तीवास्तुमत्स्याक्षीमेघनादपुनर्नवम् ॥ ८६ ॥
 माषारनालकटुतैलजलावगाह-
 क्षुद्राक्षुरैश्च सुरतैर्निशि जागरैश्च ।

शाकाम्लमत्स्यदधिफाणितवेसवारै-

श्वक्षुः क्षयं व्रजति सूर्यविलोकनाच्च ॥ ८७ ॥

शालितण्डुलगोधूममुद्गसैन्धवगोधृतम् ।

गोपयश्च सिता क्षौद्रं पथ्यं नेत्रगदे स्मृतम् ॥ ८८ ॥

नेत्रे त्वभिहते कुर्याच्छीतमाश्रयोतनं हितम् ।

पुनर्नवामूलकल्कात्पिण्डीलेपे कुचन्दनम् ।

मत्तः स्त्रीस्तन्यसेकश्च रक्तमोक्षश्च शस्यते ॥ १८९ ॥

इति श्रीयोगतरङ्गिण्यां नेत्ररोगनिदानचिकित्साकथनं नामैक-

त्रिंशदधिकशततमस्तरङ्गः ॥ १३१ ॥

अथ द्वात्रिंशदधिकशततमस्तरङ्गः ।

अथ शिरोरोगनिदानम्—

शिरोरोगास्तु जायन्ते वातपित्तकफैस्त्रिभिः ।

संनिपातेन रक्तेन क्षयेण किमिभिस्तथा ।

सूर्यावर्तोऽनन्तवातोऽर्धावभेदकशङ्ककौ ॥ १ ॥

वातजमाह—

यस्वानिमित्तं शिरसो रुजश्च भवन्ति तीव्रा निशि चातिमात्रम् ।

बन्धोपतापैश्च भवेद्विशेषः शिरोमितापः स समीरणेन ॥ २ ॥

पित्तजमाह—

यस्योष्णमङ्गारचितं यथैव भवेच्छिरो धूमवती च नासा ।

शीतेन रात्रौ च भवेद्विशेषः शिरोमितापः स तु पित्तकोपात् ॥ ३ ॥

कफजमाह—

शिरो भवेद्यस्य कफोपदिग्धं गुरु प्रतिस्तब्धमथो हिमं च ।

शूनाक्षिकूटं वदनं च यस्य शिरोमितापः स कफप्रकोपात् ॥ ४ ॥

त्रिदोषजमाह—

शिरोमितापे त्रितयप्रवृत्ते सर्वाणि लिङ्गानि मुहुर्भवन्ति ।

रक्तजमाह—

रक्तात्मकः पित्तसमानलिङ्गः स्पर्शासहृत्वं शिरसो भवेच्च ॥ ५ ॥

असृग्वसाश्लेष्मसमीरणानां शिरोगतानामिह संक्षयेण ।
क्षवप्रवृत्तिः शिरसोऽभितापः कष्टो भवेदुग्ररुजोऽतिमात्रम् ॥ ६ ॥
संस्वेदनच्छर्दनधूमनस्यैरसृग्विमोक्षैश्च विवृद्धिमेति ।

क्रिमिजमाह—

निस्तुद्यते यस्य शिरोऽतिमात्रं संभक्ष्यमाणं स्फुरतीव चान्तः॥७॥
घ्राणाच्च गच्छेत्सलिलं सरक्तं शिरोभितापः क्रिमिभिः स घोरः ।

सूर्यावर्तमाह—

सूर्योदये वा प्रतिमन्दमन्दमक्षिभुवौ सकसमुपैति गाढम् ॥ ८ ॥
विवर्धते चांशुमता सहैव सूर्याप्रवृत्तौ विनिवर्तते च ।
शीतेन शान्तिं लभते कदाचिदुष्णेन जन्तुः सुखमाप्नुयाच्च॥९॥
सर्वात्मकं कष्टतमं विकारं सूर्याप्रवृत्तं समुदाहरन्ति ।

अनन्तवातमाह—

दोषास्तु दुष्टास्त्रय एव मन्यां संपीड्य गार्हंसरुजां सतीवाम् ॥१०॥
कुर्वन्ति साक्षिभुवि शङ्खदेशे स्थितिं करोत्याशु विशेषतस्तु ।
गण्डस्य पार्श्वे च करोति कम्पं हनुग्रहं लोचनजांश्च रोगान्॥११॥
अनन्तवातं तमुदाहरन्ति दोषत्रयोत्थं शिरसो विकारम् ।

अर्धावभेदकमाह—

रूक्षाशनात्यध्यशनवातावश्यायमैथुनैः ।
वेगसंधारणायासव्यायमैः कुपितोऽनिलः ॥ १२ ॥
केवलः सकफो वाऽर्धं गृहीत्वा शिरसोऽनिलः ।
मन्याभूशङ्खकर्णाक्षिललाटार्धेऽतिवेदनाम् ॥ १३ ॥
शस्त्रारणिनिर्मां कुर्यात्तीव्रां सोऽर्धावभेदकः ।
नयनं चाथ वा श्रोत्रमतिवृद्धो विनाशयेत् ॥ १४ ॥

शङ्खकमाह—

पित्तरक्तानिला दुष्टाः शङ्खदेशे तु मूर्छिताः ।
तीव्ररुग्दाहरागं च शोफं कुर्वन्ति दारुणम् ॥ १५ ॥
स शिरो विषवद्वेगी निरुध्याऽऽशु गलं तथा ।
त्रिरात्राज्जीवितं हन्ति शङ्खको नामतः परम् ॥ १६ ॥

अथ हाज्जीवति भैषज्यं प्रत्याख्यायास्य कारयेत् ।
इति शिरोरोगनिदानम् ।

अथ चिकित्सा—

वातिके तु शिरोरोगे स्नेहस्वेदावसेचनम् ॥ १७ ॥
पानान्नमुपनाहस्तु कुर्याद्वातामयापहान् ।
पैत्तिके तत्र शिशिरं लेपपानान्नभेषजम् ॥ १८ ॥
श्लैष्मिके लङ्घनं रुक्षं लेपस्वेदादि कारयेत् ।
रक्तजे रक्तपित्तघ्नो विधिश्चास्रविमोक्षणम् ॥ १९ ॥
संनिपातसमुत्थेऽत्र घृतं तैलं च बस्तयः ।
धूमनस्यशिरोरेकलेपस्वेदाद्यमाचरेत् ॥ २० ॥
त्रिकटुकपुष्कररजनीरास्त्रासुरदारुतुरगगन्धानाम् ।
क्वाथः शिरोर्तिजालं नासापीतो निवारयति ॥ २१ ॥
नागरकल्कविमिश्रं क्षीरं नस्येन योजितं नृणाम् ।
नानादोषोद्भूतां शिरोरुजं हन्ति तीव्रतराम् ॥ २२ ॥
संकुट्य शर्करार्धांशा दाडिमीकलिकाः शुभाः ।
घ्नन्ति स्वरसनस्येन सद्यो मूर्धरुज पृथुम् ॥ २३ ॥
कुष्ठमेरण्डमूलं च लेपात्काञ्जिकपेषितम् ।
शिरोर्तिं नाशयत्याशु पुष्पं वा मुचुकुन्दजम् ॥ २४ ॥
देवदारु नतं कुष्ठं मलवं विश्वभेषजम् ।
लेपः काञ्जिकसंपिष्टस्तैलयुक्तः शिरोर्तिनुत् ॥ २५ ॥
नस्येन कलिकाचूर्णं नवसागरजं रजः ।
वातश्लेष्मभवां पीडां शिरसो हन्ति सर्वथा ॥ २६ ॥

अथ षड्बिन्दुघृतम्—

मधुमधुकविडङ्गैः सभृङ्गराजनागरैर्घृतं सिद्धम् ।
षड्बिन्दुनस्यदानादेतच्छीर्षामयं हन्ति ॥ २७ ॥

इति षड्बिन्दुघृतम् ।

अथ षड्बिन्दुतैलम्—

एरण्डमूलं तगरं शताह्वा जीवन्तिरास्ना सह सैन्धवं च ।
भृङ्गं विडङ्गं मधुयष्टिका च विश्वौषधं कृष्णतिलस्य तैलम् ॥ २८ ॥
अजापयस्तैलविमिश्रितं च चतुर्गुणे भृङ्गरसे विमिश्रम् ।
युक्त्या विपक्रं लघुनाऽग्निनेतत्षड्बिन्दुनाम प्रसवेत्तु तैलम् ॥ २९ ॥

षड्बिन्दवो नासिकयाऽस्य योज्याः शीघ्रं निहन्युः शिरसो मदांस्ते ।
 च्युतांश्च दन्तान्पलितांश्च केशान्दुर्बद्धमूलांश्च दृढी करोति ।
 सुपर्णचक्षुःप्रतिमं च चक्षुर्बाह्वोर्बलं चाप्यधिकं करोति ॥ ३० ॥
 इति षड्बिन्दुतैलम् ।

अथ शिरोबस्तिविधिः—

निश्चलस्योपविष्टस्य तैलैरुष्णैः प्रपूरयेत् ।
 शिरोबस्तिं शिरःपीडापरीतस्य नरस्य हि ॥ ३१ ॥
 धारयेदारुजः शान्तेर्यामं यामार्धमेव वा ।
 शिरोबस्तिर्जयत्येव शिरोरोगं मरुद्भवम् ॥ ३२ ॥
 हनुमन्याक्षिकर्णार्तिमर्दितं मूर्धकम्पनम् ।
 तैलेनाऽऽपूर्य मूर्धानं पञ्चमात्राशतानि च ॥ ३३ ॥
 तिष्ठेच्छ्लेष्मणि पित्तेऽष्टौ दश वाते शिरोगते ।
 विना भोजनमेवायं शिरोबस्तिः प्रशस्यते ॥ ३४ ॥
 पञ्चाहं षडहं वाऽपि सप्ताहं चैवमाचरेत् ।

इति शिरोबस्तिविधिः ।

अथ विडङ्गाद्यं तैलम्—

क्षयजे तु शिरोरोगे कर्तव्यो बृंहणो विधिः ॥ ३५ ॥
 पाने बस्तौ च सर्पिः स्याद्वातघ्नमधुरैः शृतम् ।
 क्षयकासापहं चात्र सर्पिः पथ्यतमं मतम् ॥ ३६ ॥
 कृमिजे तु शिरोरोगे व्योषनक्ताह्वशिगुजैः ।
 अजमूत्रेण संपिष्टैर्नस्यं कृमिहरं परम् ॥ ३७ ॥
 विडङ्गं स्वर्जिकादन्तिहिङ्गुगोमूत्रसंयुतम् ।
 विपक्वं सार्षपं तैलं कृमिघ्नं नस्यतः स्मृतम् ॥ ३८ ॥

इति विडङ्गाद्यं तैलम् ।

अथ कुङ्कुमयोगः—

सूर्यावर्ते शिरावेधो नावनं क्षीरसर्पिषोः ।
 हितः क्षीरघृताभ्यासस्ताभ्यां सह विरेचनम् ॥ ३९ ॥
 मृङ्गराजरसश्छागक्षीरतुल्योऽर्कतापितः ।
 सूर्यावर्तं निहन्त्याशु नस्येनैष प्रयोगराट् ॥ ४० ॥

सशर्करं कुङ्कुममाज्यभृष्टं नस्यं विधेयं पचनासृगुत्थे ।
 भृशङ्ककर्णाक्षिशिरोर्धशूले दिनाभिवृद्धिप्रमवे च रोगे ॥ ४१ ॥
 इति कुङ्कुमयोगः ।

अथ योगचतुष्टयमिन्द्रलुप्ते—

सितोपलायुतं घृष्टं मदनं गोपयोन्वितम् ।
 मस्यतोऽनुविते सूर्ये निहन्त्येवार्धभेदकम् ॥ ४२ ॥
 सारिवोत्पलकुष्ठानि मधुकं चाम्लपेषितम् ।
 सर्पिस्तैलगुतं लिम्पेत्सूर्यावतार्धभेदके ॥ ४३ ॥
 पीत्वा शशमुण्डरसं मरिचैरवचूर्णितम् ।
 मौजनादौ तु सप्ताहात्सूर्यावतार्धभेदकौ ॥ ४४ ॥
 हन्ति सर्वात्मकौ शीतं दुःखदौ भृशदारुणौ ।
 भद्रश्रियं पुण्डरीकं मधुकं नीलमुत्पलम् ॥ ४५ ॥
 पद्माख्यं वेतसं दूर्वा लामज्जकमथापि वा ।
 दार्वाहरिद्रामस्त्रिषाशिरीषोशीरपद्मकम् ॥ ४६ ॥
 एतैरालेपनं कुर्याच्छङ्ककस्य प्रशान्तये ।
 अनन्तवाते कर्तव्यो रक्तमोक्षः शिराव्यधैः ॥ ४७ ॥
 आहारश्च विधातव्यो वातपित्तविनाशनः ।
 मांसी कुष्ठं तिलाः कृष्णाः सारिवामूलमुत्पलम् ।
 सक्षौद्रं क्षीरपिष्टानि केशसंवर्धनानि हि ॥ ४८ ॥
 मार्कवस्वरसमादितगुञ्जाबीजचूर्णपरिपाचिततैलम् ।
 मिश्रितं त्रुटिजयालुरकुष्ठैः केशमारजननं जनतायाः ॥ ४९ ॥
 मांसीबलाबकुलजामलकैः सकुष्ठैः
 पिष्टैः प्रलिप्तशिरसो न पतन्ति केशाः ।
 स्निग्धायतातिकुटिलाकृतयो भवन्ति
 ये प्रच्युता अपि मिलिन्दकुलप्रकाशाः ॥ ५० ॥
 बृहतीफलरसपिष्टं गुञ्जायाः फलमथापि वा मूलम् ।
 हेमनिघृष्टं लिप्तं व्यपनयति महेन्द्रलुप्ताख्यम् ॥ ५१ ॥
 नीलोत्पलाक्षफलमभ्रतिलाजगन्धाः
 सार्धं प्रियङ्गुलतया समधूककल्काः ।
 संपिष्य यः प्रकुरुते बहुशः प्रलेपं
 खालित्यमस्य न पदं विदधाति मूर्ध्नि ॥ ५२ ॥

पुराणमथ पिण्याकं पुरीषं कुक्कुटस्य च ।
 मूत्रपिष्टः प्रलेपोऽयं शीघ्रं हन्यादरुंधिकाम् ॥ ५३ ॥
 बिल्वस्य मज्जा पिष्टेन सह दध्ना हयद्विषः ।
 स्नायात्प्रलिप्य मूर्धानमरुंधिविनिवृत्तये ॥ ५४ ॥
 दध्ना योऽनुदिनं मर्त्यो मूर्धानमनुलिम्पति ।
 अरुंधिका सर्वथाऽस्य नश्यत्यल्पैस्तु वासरैः ॥ ५५ ॥
 पिप्पलं बीजमधुककुष्ठमाषैः ससैन्धवैः ।
 कार्यो दारुणके मूर्ध्नि प्रलेपो मधुसंयुतः ॥ ५६ ॥
 आम्रबीजस्य चूर्णेन शिवाचूर्णं समं कृतम् ।
 दुग्धपिष्टं प्रलेपेन दारुणं हन्ति दारुणम् ॥ ५७ ॥
 रसस्तिक्तपटोलस्य पत्राणां तद्विलेपनात् ।
 इन्द्रलुप्तं शमं याति त्रिभिरेव दिनेर्ध्रुवम् ॥ ५८ ॥
 इन्द्रलुप्तापहो लेपो मधुना बृहतीरसः ।
 गुञ्जामूलं फलं वाऽपि मल्लातकरसेऽपि वा ॥ ५९ ॥
 इति योगचतुष्टयमिन्द्रलुप्ते ।

अथ महानीलतैलम्—

हस्तिदन्तमषीं कृत्वा छागीदुग्धरसाञ्जनम् ।
 लोमान्यनेन जायन्ते लेपात्पाणितलेष्वपि ॥ ६० ॥
 चतुष्पदानां त्वग्रोमनखशृङ्गास्थिमस्मभिः ।
 तैलेन सह लेपोऽयं रोमसंजननः परः ॥ ६१ ॥
 इन्द्रवारुणिकाबीजतैलेनाभ्यङ्गमाचरेत् ।
 प्रत्यहं तेन कालाग्निसंनिमाः कुन्तला अलम् ॥ ६२ ॥
 अयोरजो मृङ्गराजस्त्रिफला कृष्णमृत्तिका ।
 स्थितमिक्षुरसे मासं लेपनात्पलितं जयेत् ॥ ६३ ॥
 त्रिफला नीलिनीपत्रं लौहं मृङ्गरजःसमम् ।
 अविमूत्रेण संपिष्टं लेपात्कृष्णीकरं परम् ॥ ६४ ॥

तिलतैलभृष्टगोणीखण्डयन्त्रितमाजूमफलरक्तिः ४ नवसागररती ४
 तुत्थरती ४ ताम्रपत्ररती ४ एतच्चतुष्टयं लोहमर्दकेनैव लोहपात्र आम-
 रसं गृहीत्वा यावद्रक्तकपिशता भवति तावन्मर्दयित्वा तेन कल्केन
 श्वेतान्कैचांस्तण्डुलार्धमानेन संमर्द्य लिम्पेत् । पश्चादेरण्डपत्रैरावेष्ट्य
 सुप्यात् । प्रातस्तैलामलकाभ्यां स्नात्वा भ्रमरसदृशकेशो भवति ।

काश्मर्यर्जुनपुष्पजाम्बवहिमश्यामारुणायोवरा-
 पिण्डीताग्निकणासनोत्पलमृणालीपङ्कनील्यञ्जनैः ।
 मल्लाम्रास्थिकसीसपुण्ड्रमदयन्तीषाकुचीतिल्वकै-
 स्तुल्यैर्द्विःसणबीजसौरसदलार्कैश्चार्कमौजासुरैः ॥ ६५ ॥
 यष्टीभृङ्गकुरण्टकैश्च सितिभिर्द्वेधेक्षतैलं महा-
 नीलं धात्र्युदकेऽर्कतः पयसि चेज्जत्रूर्ध्वकेशार्तिषु ॥ ६६ ॥
 इति महानीलतैलम् ।

अथ शांकरी कृतिः-

साबुनशुष्कटङ्कः १, काम्बिसेन्दुरटङ्कः १, कळिचुनाटङ्कः १, एतद्वै-
 षधत्रयं घोषेऽङ्गुल्या यावन्नखं कपिशं भवति तावन्मर्दयेत् । ततो रूक्षेषु
 कक्षेषु गाढमङ्गुल्या घर्षणपूर्वं लिम्पेत् । घटिकार्धं स्थापयित्वा तैलामल-
 काभ्यां स्नायात् । सणसदृशकेशोऽपि भ्रमरसदृशकेशो भवति ।

इति शांकरी कृतिः ।

अथ तैलकृष्णीकृतिः-

मुरडशङ्खटङ्काः ४, छारूटङ्काः ४, एतद्वयं माहिषाम्लतक्रेण नख-
 कापिशं खल्वे संमर्द्य तेन कल्केन रूक्षान्कचानालिप्य वातारिपत्रै-
 रावेष्ट्य प्रहरं तिष्ठेत् । ततस्तत्र कल्के शुष्के तैलामलकाभ्यां स्नात्वा
 शङ्खपाण्डुकुरलोऽपि भिन्नाञ्जनसदृशकेशो नरो भवति ।

माजूफळतोळा १, हरीतकीतो० १, अम्बरा तो०, ७ खर्पर तो० २,
 तुतिआ तो० १, लिलवरी तो० १०, नवसागर तो० १, लोहचूर्ण तो०
 १, फटकी तो० १, ताम्रविद् तो० २, भृङ्गद्रवैः पिष्ट्वाऽयःपात्रे
 त्रिदिनं संधितेनानेन रूक्षान्केशानालिप्य वातारिपत्रैरावेष्ट्य सुप्यात् ।
 ततः प्रातस्तैलामलकैः स्नात्वा सितकेशोऽसितकेशो भवति ।

इति तैलकृष्णीकृतिः ।

निम्बतैलैः पूतितैलैरिङ्गुदीतैलतोऽपि वा ।

मल्लीतैलैः क्षारमृदा लेपो वा यौकनाशनः ॥ ६७ ॥

इति श्रीयोगतरङ्गिण्यां शिरोरोगचिकित्साकथनं नाम

द्वात्रिंशदधिकशततमस्तरङ्गः ॥ १३२ ॥

अथ त्रयविंशदधिकशततमस्तरङ्गः ।

अथ स्त्रीरोगाः—

अथ स्त्रीपुष्पजननोपायः—

सगुडः श्यामतिलानां काथः पीतः सुशीतलो नार्या ।
जनयति कुसुमं सहसा गतमपि सुचिरं निरातङ्कम् ॥ १ ॥
तिलसेलुकारवीनां काथं पीत्वाऽपि नष्टरजाः ।
सगुडं शिशिरं वनिता जनयति कुसुमं न संदेहः ॥ २ ॥
इक्ष्वाकुबीजदन्तीचपलागुडमदनकिण्वयावशूकैः ।
सस्नुक्क्षीरैर्वर्तियोनिगता कुसुमसंजननी ॥ ३ ॥
कार्पासबीजमज्जानां चूर्णं तैलेन पाययेत् ।
तेन संजायते पुष्पं युवतीनां चिरंतनम् ॥ ४ ॥

इति श्रीयोगतरङ्गिण्यां कुसुमसंजननविधिकथनं नाम त्रय-
विंशदधिकशततमस्तरङ्गः ॥ १३३ ॥

अथ चतुर्विंशदधिकशततमस्तरङ्गः ।

अथ प्रदरनिदानम्—

विरुद्धमद्याध्यशनादजीर्णाद्गर्भप्रपातादतिमैथुनाच्च ।
यानाध्वशोकादतिकर्षणाच्च भाराभिघाताच्छयनादिव च ॥ १ ॥

वातजमाह—

असृग्दरं भवेत्सर्वं साङ्गमर्दं सवेदनम् ।
तस्यातिवृद्धौ दौर्बल्यं भ्रमो मूर्छा कुमस्तृषा ॥ २ ॥
दाहः प्रलापः पाण्डुत्वं तन्द्रा रोगाश्च वातजाः ।

कफजमाह—

तं श्लेष्मपित्तानिलसंनिपातैश्चतुष्प्रकारं प्रदरं वदन्ति ॥ ३ ॥
आमं सपिच्छप्रतिमं सपाण्डु पुलकतोयप्रतिमं कफाक्षु ।

पित्तजमाह—

सपीतनीलासितरक्तमुष्णं पित्तार्तियुक्तं मृशवेगि पित्तात् ॥ ४ ॥

द्वंद्वजमाह—

रूक्षानिलं फेनिलमल्पमल्पं वातार्तिवातात्पिशितोदकामम् ।

त्रिदोषजमाह—

सक्षौद्रसर्पिर्हरितालवर्णं मज्जाप्रकाशं कुणपं त्रिदोषम् ॥ ५ ॥

तच्चाप्यसाध्यं प्रवदन्ति तज्ज्ञा न तत्र कुर्वीत मिषक्विकित्ताम् ।

शुद्धार्तवमाह—

मासादपिच्छदाहार्ति पञ्चरात्रानुबन्धि च ॥ ६ ॥

नैवाति बहु नात्यल्पमार्तवं शुद्धमादिशेत् ।

शशासृक्प्रतिमं यच्च यद्वा लाक्षारसोपमम् ॥ ७ ॥

तदार्तवं प्रशंसन्ति यदप्सु न विरज्यते ।

असाध्यमाह—

शश्वत्स्त्रवन्तमास्रावं तृषादाहज्वरान्वितम् ॥ ८ ॥

क्षीणरक्तं दुर्बलं च तमसाध्यं विनिर्दिशेत् ।

इति प्रवरनिदानम् ।

अथ चिकित्सा—

नागरं मधुकं तैलं सिता दधि च तत्समम् ॥ ९ ॥

खजेनोन्मथितं पीतं वातप्रदरनाशनम् ।

दध्ना सौवर्चलाजाजीमधुकं नीलमुत्पलम् ॥ १० ॥

पिबेत्क्षौद्रयुतं नारी वातासृग्दरशान्तये ।

एलामंशुमतीं द्राक्षामुशीरं तिक्तरोहिणीम् ॥ ११ ॥

चन्दनं कृष्णलवणं सारिवालोधसंयुतम् ।

वातासृग्दरशान्त्यर्थं पिबेद्दध्ना सहाङ्गना ॥ १२ ॥

पित्तासृग्दरशान्त्यर्थं सक्षौद्रं ललना पिबेत् ।

वासकस्य गुडूच्या वा रसं किंवा वरीमवम् ॥ १३ ॥

मद्यैर्निम्बगुडूच्योश्च रोहितस्याथ वा रसम् ।

कफप्रदरनाशाय पिबेद्वा मलयूरसम् ॥ १४ ॥

काकजङ्घामूलरसं मधुना सह मामिनी ।

सलोधचूर्णमापीय कफप्रदरकं जयेत् ॥ १५ ॥

पथ्यामलकविभीतकविश्वौषधदारुरजनीनाम् ।

सक्षौद्रलोध्रचूर्णः काथो हन्त्येष सर्वजं प्रदूरम् ॥ १६ ॥

इति पथ्यादिः ।

अथ दार्व्यादिः—

दार्वीरसाञ्जनवृषाब्दकिरातबिल्व-

मल्लातकैरवकृतो मधुना कषायः ।

पीतो जयत्यतिबलं प्रदूरं सशूलं

पीतासितारुणविलोहितनीलशुक्लम् ॥ १७ ॥

इति दार्व्यादिः ।

तण्डुलीयकमूलं हि तण्डुलाम्बुप्रपेक्षितम् ।

सताक्षर्यशैलं सक्षौद्रं प्रपीतं प्रदूरं जयेत् ॥ १८ ॥

पिष्टं तण्डुलतोयेन कुशमूलं सशारदम् ।

सरसाञ्जनमापीय प्रदूरं त्रिदिनाज्जयेत् ॥ १९ ॥

आखोः पुरीषं पयसा निपीय बद्धेर्बलादेकमहर्द्यहं वा ।

स्त्रियरूपहं वा प्रदूरास्त्रनद्याः प्रसह्य पारं परमाप्नुवन्ति ॥ २० ॥

अशोकवल्कलं पिष्ट्वा सताक्षर्यं तण्डुलाम्भसा ।

सक्षौद्रं तद्रसं पीत्वा प्रदूरान्मुच्यतेऽङ्गनाम् ॥ २१ ॥

भूम्यामलकमूलं तु पीतं तण्डुलवारिणा ।

द्वित्रैरेव दिनेनार्याः प्रदूरं दुस्तरं जयेत् ॥ २३ ॥

धात्रीरसं सितायुक्तं योनिदाहापहं पिबेत् ।

सौरमेयं पयो वाऽपि सस्तिं स्त्री यथाबलम् ॥ २३ ॥

शुण्ठीतिरीटयोश्चूर्णं मुक्तं सघृतशर्करम् ।

प्रबलं प्रदूरं हन्ति नार्यां वा कुटजाटकम् ॥ २४ ॥

रसाञ्जनं तण्डुलकस्य मूलं क्षौद्रान्वितं तण्डुलतोयपीतम् ।

असृग्दूरं सर्वमव निहन्ति श्वासं च मार्गी सह नागरेण ॥ २५ ॥

अशोकवल्कलकाथशृतदुग्धं सशीतलम् ।

यथाबलं पिबेत्प्रातस्तीव्रासृग्दरनाशनम् ॥ २६ ॥

कुशमूलं समुद्धृत्य पेषयेत्तण्डुलाम्बुना ।

एतत्पीत्वा त्र्यहं नारी प्रदूरात्परिमुच्यते ॥ २७ ॥

क्षौद्रयुक्तं फलरसं काष्ठोदुम्बरिजं पिबेत् ।
 असृग्दरविनाशाय शर्कराञ्च पयोन्नभुक् ॥ २८ ॥
 मलयूफलचूर्णस्य शर्करासहितस्य च ।
 मधुना मोदकं कृत्वा खादेत्प्रदरशान्तये ॥ २९ ॥
 अथ जीरकावलेहः—

जीरकं प्रस्थमेकं तु क्षीरं द्याढकमेव च ।
 प्रस्थार्धं लोधघृतयोः पचेन्मन्देन वह्निना ॥ ३० ॥
 लेहीभूतेऽत्र शीतेऽत्र सिताप्रस्थं विनिक्षिपेत् ।
 चातुर्जातिकणाविश्वमजाजीमुस्तबालकैः ॥ ३१ ॥
 दाडिमं रसजं धान्यं रजनी पटवासकम् ।
 वंशजं च तवक्षीरं प्रत्येकं शुक्तिसंमितम् ॥ ३२ ॥
 जीरकस्यावलेहोऽयं प्रमेहप्रदरापहः ।
 ज्वराबल्यारुचिश्वासतृष्णादाहक्षयापहः ॥ ३३ ॥

इति जीरकावलेहः ।

अथ मुद्गघृतम्—

मुद्गमाषविनिर्यूहे रास्नाचित्रकनागरैः ।
 सिद्धं सपिप्पलीबिल्वैः सर्पिः श्रेष्ठमसृग्दरे ॥ ३४ ॥
 नागरमत्र मुस्तम् ।

इति मुद्गघृतम् ।

अथ शाल्मलीघृतम्—

शाल्मलीपुष्पनिर्यासः पृश्निपर्णी तथैव च ।
 काश्मरीचन्दनं चैषां कल्केन स्वरसेन वा ॥ ३५ ॥
 गव्यं पचेद्घृतं प्रस्थं तत्सिद्धं तरुणी पिबेत् ।
 सर्वप्रदरनाशाय बलवर्णाग्निवर्धनम् ॥ ३६ ॥

इति शाल्मलीघृतम् ।

अथ काश्मरीघृतम्—

काश्मरीबाढमुद्गाश्च गुडूचीमधुकं वृषम् ।
 आजेन पयसा सिद्धमेतद्घृतमसृग्दरे ॥ ३७ ॥

इति काश्मरीघृतम् ।

अथ प्रदरारिः—

रसं गन्धं सीसं मृतमिति समं तैस्तु रसजं
समानं सर्वैः स्यात्तुलितमपि लोभं वृषरसैः ।
दिनं पिष्टं नाम्ना प्रदररिपुरेषोऽपहरति
द्विवल्लः क्षौद्रेण प्रदरमतिदुःसाध्यमपि च ॥ ३८ ॥

इति प्रदरारिः ।

इति श्रीयोगतरङ्गिण्यां प्रदररोगनिदानचिकित्साकथनं नाम
चतुस्त्रिंशदधिकशततमस्तरङ्गः ॥ १३४ ॥

अथ पञ्चात्रिंशदधिकशततमस्तरङ्गः ।

अथ सोमरोगनिदानम्—

स्त्रीणातिप्रसङ्गाद्वा शोकाच्चापि श्रमादपि ।
आमिचारिकयोगाद्वा गरयोगात्तथैव च ॥ १ ॥
आपः सर्वशरीरस्थाः क्षुभ्यन्ति प्रस्रवन्ति च ।
तस्यास्ताः प्रच्युताः स्थावान्मूत्रमार्गं व्रजन्ति हि ॥ २ ॥

तस्य लक्षणमाह—

बहला विमलाः शीता निर्गन्धा नीरुजः सिताः ।
स्रवन्ति चातिमात्रं ताः साऽशक्ता चातिदुर्बला ॥ ३ ॥
वेगं धारयितुं तासां न विन्दति सुखं क्वचित् ।
शिरसः शिथिलत्वं च मुखतालुप्रशोषणम् ॥ ४ ॥
मूर्छां जृम्भा प्रलापश्च त्वग्रूक्षा चातिमात्रतः ।
मक्ष्यैर्मोज्यैश्च पेयैश्च न तृप्तिं लभते सदा ॥ ५ ॥
सोमरोग इति ज्ञेयो देहसोमक्षयात्स्त्रियाः ।
शरीरधारणाच्चापि सोम इत्यभिशाब्दितः ॥ ६ ॥
तस्मात्सोमक्षयाद्देहो निश्चेष्टश्च भवेत्सदा ।

इति सोमरोगनिदानम् ।

अथ चिकित्सा—

कदलीनां फलं पक्वं धात्रीफलरसं मधु ॥ ७ ॥

शर्करासहितं पेयं सोमधारणमुत्तमम् ।
 माषचूर्णं च मधुकं विदारीं मधु शर्कराम् ॥ ८ ॥
 पयसा पाययेत्प्रातरपि धारणमुत्तमम् ।
 स एव सोमो रजसा सह मूत्रेण च स्रवेत् ॥ ९ ॥
 तेत्रैलापत्रचूर्णेन पाययेत्सह वारुणीम् ।
 जलेनाऽऽमलकीबीजकल्कं समधुशर्करम् ॥ १० ॥
 पिबेद्दिनत्रयेणैव श्वेतप्रदरनाशनम् ।
 तक्रौडनाहाररता संपिबेन्नागकेसरम् ॥ ११ ॥
 त्र्यहं तक्रेण संपिष्टं श्वेतप्रदरनाशनम् ।
 सोमरोगे चिरं जाते स्रवेन्मूत्रमभीक्ष्णशः ॥ १२ ॥
 मूत्रातीसारमित्येवं तमाहुर्बलनाशनम् ।
 तालकन्दं च वरुणं खर्जूरं कदलीफलम् ॥ १३ ॥
 पयसा पाययेत्प्रातरपि धारणमुत्तमम् ।
 तालकन्दं च खर्जूरं मधुकं च विदारिकाम् ॥ १४ ॥
 शर्करां मधु च प्राश्य मूत्रातीसारकं जयेत् ।
 चक्रमर्दकमूलं तु संपिष्टं तण्डुलाम्बुना ॥ १५ ॥
 प्रभातसमये पीतं जलप्रदरनाशनम् ।
 रजन्यावसृतापाठाकोष्ठं दारुफलत्रयम् ।
 लेहयेन्मधुना सार्धं बहुमूत्रापनुत्तये ॥ १६ ॥
 इति श्रीयोगतरङ्गिण्यां सोमरोगनिदानचिकित्साकथनं नाम
 षट्त्रिंशदधिकशततमस्तरङ्गः ॥ १३९ ॥

अथ षट्त्रिंशदधिकशततमस्तरङ्गः ।

अथ नागार्जुनकृतयोगसारोक्तस्त्रीद्वेषचिकित्सा—

अथ स्त्रीणां प्रिये द्वेषमभिधास्ये स तु त्रिधा ।
 देवादक्षपुरुषात्सपत्न्यादेश्च जायते ॥ १ ॥

अस्यायमर्थः—

देवादिति । विरुद्धनक्षत्रपरिणामादिदोषात्स प्रथमत एव जायते ।

अवक्षपुरुषादिति । अचतुरासमर्थकुरूपकुत्सितालापद्विरिद्रपुरुषसंयोगा-
द्वितीयः । सपत्न्यादेरिति । नानाप्रकाररचितकर्मादिजनितस्तृतीयो द्वेषः
स त्वनियतकाल एव जायते । तत्र प्रथमे विवाहकालिकविधानान्ध्रोमः
कर्तव्यः । ततः प्रदोषार्थे मक्तपुत्तलिकाद्वयं कृत्वा गन्धादिमिरम्यर्च्य
वस्त्रावृतं पिधाय जीवकतूलवर्तिकादीपसहितं शुक्लपुष्पमाल्यार्चितं
कुशविन्यस्तं कोणेषु चतुर्वर्णध्वजयुक्तं तस्याः स्त्रियाः संदर्शनीकृत्य
चतुष्पथे स्थापयित्वा । ‘ ॐ हूं हूं वशी कुरुष्व स्वाहा इति दशवारं
जपेत्ततः शुभं संपद्यते । द्वितीये तु लज्जालुमूलेन गजमदान्वितेन कर्पू-
रमिश्रितेनाङ्गलेपनं कृत्वा प्रसिद्धनवनारीविभ्रमधूपेन कृतगन्धधूपः
समालम्भनादिना कृतशृङ्गारवेषोऽनुगतामिमतस्थानसंबन्धिवृद्धस्त्रीचा-
तुवचनविमोहितां वस्त्रालंकारादिना प्रतार्य पुरुषोऽनिच्छन्तीं स्त्रियं
गच्छेत् । कुमारीणां भोजनमुत्सृजेत् । ततः संपद्यते सुखम् । तृतीये
तु म्रियङ्गुमयूरशिखाश्वेतपुनर्नवामूलं पिष्ट्वाऽमलपयसा समालोढ्य
स्त्रीयोनिं प्रक्षालयेत् । पिष्टेन सूकरमांसेन वितस्तिप्रमाणां पुत्तलिं गन्धा-
दिनाऽभ्यर्च्य स्त्रियं समुद्दिश्य श्मशाने वैकप्रहरे गते स्थापयेत् । कुमारीं
भोजयेत् । ततः संपद्यते शुभम् । ‘ अघोराक्षप्रियं जैनन हूं हूं स्वाहा ’
इति मन्त्रं दशवारं जपेत् ।

इति नागार्जुनकृतयोगसारोक्तस्त्रीद्वेषचिकित्सा ।

इति श्रीयोगतरङ्गिण्यां स्त्रीद्वेषचिकित्साथनं नाम षट्त्रिंशदधि-
कशततमस्तरङ्गः ॥ १३६ ॥

अथ सप्तत्रिंशदधिकशततमस्तरङ्गः ।

अथ योनिरोगनिदानम्—

विंशतिव्यापदो योनौ निर्दिष्टा रोगसंग्रहे ।

मिथ्याचारेण ताः स्त्रीणां प्रदुष्टेनाऽऽर्तवेन च ॥ १ ॥

जायन्ते बीजदोषाच्च दैवाच्च गृणु ताः पृथक् ।

सा फेनिलमुदावर्ता रजः कृच्छ्रेण मुञ्चति ॥ २ ॥

१ क. 'स्थानः । सं' । २ क. 'स्त्रीवृद्ध' । ३ क. 'ते स्थाने स्था' । ४ ग. 'शङ्खं त्रि' । ५
क. 'जन हूं' ।

वन्ध्यां नष्टार्तवां विद्याद्विप्लुतां नित्यवेदनाम् ।
परिप्लुतायां भवति ग्राम्यधर्मेण रुग्भृशम् ॥ ३ ॥

वातजमाह—

वातला कर्कशा स्तब्धा शूलनिस्तोदपीडिता ।
चतसृष्वपि चाऽऽद्यासु भवन्त्यनिलवेदनाः ॥ ४ ॥

पित्तजमाह—

सदाहं क्षीयते रक्तं यस्यां सा लोहितक्षया ।
सधातमुद्गिरेद्वीजं वामिनी रजसा युतम् ॥ ५ ॥
प्रसंसिनी संसते च क्षोभिता दुष्प्रजायिनी ।
स्थितं स्थितं हन्ति गर्भं पुत्रघ्नी रक्तसंस्त्रवात् ॥ ६ ॥
अत्यर्थं पित्तला योनिर्दाहपाकज्वरान्विता ।
चतसृष्वपि चाऽऽद्यासु पित्तलिङ्गोच्छ्रयो भवेत् ॥ ७ ॥
अत्यानन्दा न संतोषं ग्राम्यधर्मेण गच्छति ।
कर्णिन्यां कर्णिका योनौ श्लेष्मसृग्भ्यां च जायते ॥ ८ ॥
मैथुनाचरणात्पूर्वं पुरुषादतिरिच्यते ।
बहुशश्चातिचरणात्तयोर्बीजं न विन्दति ॥ ९ ॥

श्लेष्मजमाह—

श्लेष्मणा पिच्छिला योनिः कण्डूग्रस्ताऽतिशीतला ।
चतसृष्वपि चाऽऽद्यासु श्लेष्मालिङ्गोच्छ्रयो भवेत् ॥ १० ॥
अनार्तवा स्तनी षण्ठी खरस्पर्शा च मैथुने ।
अतिकामगृहीता या तरुणी त्वण्डिनी भवेत् ॥ ११ ॥

सर्वदोषप्रकोपजामाह—

विवृताऽतिमहायोनिः सूचीवक्त्राऽतिसंवृता ।
सर्वलिङ्गसमुत्थाना सर्वदोषप्रकोपजा ॥ १२ ॥
चतसृष्वपि चाऽऽद्यासु सर्वलिङ्गानुदर्शनम् ।
पञ्चासाध्या भवन्तीह योनयः सर्वदोषजाः ॥ १३ ॥

इति योनिदोषनिदानम् ।

अथ चिकित्सा—

योनिव्यापत्सु मूयिष्ठं शस्यते कर्म वातजित् ।
 स्नेहस्वेदनबस्त्यादिविशेषाद्वातजासु च ॥ १४ ॥
 स्निग्धस्विन्नां तथा योनिं दुःस्थितां स्थापयेत्समाम् ।
 मधुरौषधिसंसिद्धान्वेसवारांश्च योनिषु ॥ १५ ॥
 निक्षिप्य धारयेच्चापि पिचुतैलं यथाबलम् ।
 योनिशूलरुजादौस्थपशोफस्रावप्रशान्तये ॥ १६ ॥

अथ वचाद्यबलेहः—

वचोपकुञ्चिकाजार्जीकृष्णाधृषभसैन्धवम् ।
 अजमोदायवक्षारचित्रकं शर्करान्वितम् ॥ १७ ॥
 पिष्ट्वा प्रसन्नयाऽऽलोड्य खादेत्तद्घृतमर्जितम् ।
 योनिपाश्वर्तिहृद्रोगगुल्माशौविनिवृत्तये ॥ १८ ॥

इति वचाद्यबलेहः ।

रास्नाश्वगन्धाधृषकैर्योनिशूलहरं पयः ।
 गुडूचीत्रिफलादन्तीकाथैश्च परिषेचनम् ॥ १९ ॥
 नतवार्ताकिनीकुष्ठसैन्धवामरदारुभिः ।
 तैलात्प्रसाधितो धार्यः पिचुर्योनौ रुजापहः ॥ २० ॥
 वातलां कर्कशां स्तब्धामल्पस्पर्शां तथैव च ।
 कुम्भीस्वेदैरुपचरेदन्तर्वेश्मनि संवृते ॥ २१ ॥
 धारयेद्वा पिचुं योनौ तिलतैलस्य सा सदा ।
 पित्तलानां च योनीनां सेका यङ्गपिचुक्रियाः ॥ २२ ॥
 शीताः पित्तहराः कार्याः स्नेहनार्थं घृतानि च ।
 पिचवश्च घृताभ्यक्ताश्चन्दनाम्मःसमुक्षिताः ॥ २३ ॥
 योनौ स्थाप्याः स्त्रिया दाहकृच्छ्रप्राक्प्रशान्तये ।
 धात्रीरसं सितायुक्तं योनिदाहे पिबेत्सदा ॥ २४ ॥
 सूर्यक्रान्तामवं मूलं पिबेद्वा तण्डुलाम्बुना ।
 योन्यां बलासजुष्टार्यां सर्वं रूक्षोष्णमौषधम् ॥ २५ ॥
 तैलं साधु बधान्नं च पथ्यारिष्टं च योजयेत् ।
 पिपल्या मरिचैर्मर्षैः शताह्वाकुष्ठसैन्धवैः ॥ २६ ॥
 वर्तिस्तुल्या प्रदेशिन्या धार्या योनिविशोधिनी ।
 सुरामण्डोक्षितो धार्यः पिचुर्योनौ कफात्मनि ॥ २७ ॥

कण्डूपैच्छिल्यसंस्नावशैथिल्यविनिवृत्तये ।
 संनिपातसमुत्थानां कार्या योन्यां यदा क्रिया ॥ २८ ॥
 साधारणी दशाङ्गघ्निश्रीमदाक्वाथपिचुर्हितः ।
 सुगन्धीनां पदार्थानां कल्कचूर्णशृतैः कृतः ॥ २९ ॥
 योनौ दौर्गन्ध्यशमनो योनौ दौर्गन्ध्यभाजि च ।
 योन्यां तु पूयस्राविण्यां शोधनद्रव्यनिर्मितम् ॥ ३० ॥
 सगोमूत्रैः सलवणैः पिण्डैः संपूरणं हितम् ।

शोधनद्रव्याणि निम्बपत्रादीनि ।

गुडूचीत्रिफलादन्तीकथितोदकधारया ।
 योनिं प्रक्षालयेत्तेन तत्र कण्डूः प्रशाम्यति ॥ ३१ ॥
 मुद्गपुष्पं सखदिरं पथ्याजार्जीफलं तथा ।
 विकिं पूगं च संचूर्ण्य वस्त्रपूतं क्षिपेद्भुगे ॥ ३२ ॥
 योनिर्मवति संकीर्णां न स्रवेच्च जलं ततः ॥ ३३ ॥
 कपिकच्छूमवं मूलं क्वाथयेद्विधिना भवेत् ।
 योनेः संकीर्णताशान्तिः क्वाथेनानेन धावनात् ॥ ३४ ॥
 जीरकद्वितयं कृष्णा सुषवी सुरभिर्वचा ।
 वासकः सैन्धवश्चापि यवक्षारो यवानिका ॥ ३५ ॥
 एषां चूर्णं घृते किञ्चिद्दृष्ट्वा खण्डेन मोदकम् ।
 कृत्वा खादेद्यथाबहि योनिरोगाद्विमुच्यते ॥ ३६ ॥
 इति श्रीयोगतरङ्गिण्यां योनिरोगनिदानचिकित्साकथनं नाम
 सप्तत्रिंशदधिकशततमस्तरङ्गः ॥ १३७ ॥

(अथाष्टात्रिंशदधिकशततमस्तरङ्गः ।)

अथ योनिकन्दनिदानम्—

दिवास्वप्नादतिक्रोधाद्यायामादतिमैथुनात् ।
 क्षताच्च नखदन्ताद्यैर्वाताद्याः कुपिता यदा ॥ १ ॥
 पूयशोणितसंकाशो लकुचाकृतिसंनिभः ।
 उत्पद्यते तदा योनौ नाम्ना कन्दस्तु योनिजः ॥ २ ॥
 रूक्षं विवर्णं स्फुटितं वातिकं तं विमिर्दिशेत् ।
 दाहरागज्वरयुतं पैत्तिकं तं वदेद्भिषक् ॥ ३ ॥

नीलपुष्पप्रतीकाशं कण्डूमन्तं कफात्मकम् ।

सर्वलिङ्गसमायुक्तं संनिपात्तात्मकं वदेत् ॥ ४ ॥

इति योनिकन्दनिदानम् ।

अथ चिकित्सा—

त्रिफलायाः कषायेण सक्षौद्रेण च सेचयेत् ।

प्रमदा योनिकन्देन व्याधिना परिमुच्यते ॥ ५ ॥

मूषकक्राथसंसिद्धस्तिलतैलकृतः पिचुः ।

नाशयेद्योनिरोगांस्तान्धृतो योनौ न संशयः ॥ ६ ॥

आखोमांसं सपदि बहुधा सूक्ष्मखण्डीकृतं त-

तैले पाच्यं *ज्वलति नियतं +यावदेतन्न सम्पक् ।

तत्तैलाक्तं वसनमनिशं योनिदेशे दधाना

सत्यं पीडाजनकमबला योनिकन्दं निहन्ति ॥ ७ ॥

त्रिफलां द्वौ सहचरौ गुडूचीं सपुनर्नवाम् ।

शूकनासां हरिद्रे द्वे रास्नां मेदां शतावरीम् ॥ ८ ॥

कल्कीकृत्य घृतप्रस्थं पचेत्क्षीरे चतुर्गुणे ।

तत्सिद्धं पाययेन्नारीं योनिरोगात्प्रमुच्यते ॥ ९ ॥

इति श्रीयोगतरङ्गिण्यां योनिकन्दनिदानचिकित्साकथनं

नामाष्टात्रिंशदधिकशततमस्तरङ्गः ॥ १३८ ॥

अथैकोनचत्वारिंशदधिकशततमस्तरङ्गः ।

अथ गर्भोत्पादनविधिः—

नष्टार्तवचिकित्सा—

आर्तवादर्शने नारी मत्स्यान्सेवेत नित्यशः ।

काञ्जिकं च निलान्माषानुदश्विञ्च तथा दधि ॥ १ ॥

पीतं ज्योतिष्मतीपत्रं राजिकोशासनं ज्यहम् ।

शीतेन पयसा पिष्टं कुसुमं जनयेद्भ्रुवम् ॥ २ ॥

* क द्रवति । + क. यावदेतेन ।

१ ग. तिल° । २ ग. व्रीहज° ।

अन्ये योगाः सगुहश्यामादिकुसुमजननोपायाः पूर्वमुक्ताः ।

गर्भाविस्थायाह—

एवं योनेषु शुद्धासु गर्भं विन्दन्ति योषितः ।
अबुष्टे प्राकृते बीज जीवोपक्रमणे सति ॥ ३ ॥
बीजस्य पतनं नाऽऽगु ह्लादि मूत्रं च फेनिलम् ।
पुमःस्थाल्लक्षणेरेमिविपरीतैस्तु षण्ढकः ॥ ४ ॥
सक्षीरशाल्यन्नमुजा तिलमाषोत्तराशना ।
मासं स्थित्वाऽङ्गना गच्छेत्पुत्रकामा निजं पतिम् ॥ ५ ॥
समयोर्धन्ननिशयोः पुत्रः स्यात्कन्यकाऽन्यथा ।
चतुर्थे दिवसे गच्छेत्पुत्रकामो नरोऽङ्गनाम् ॥ ६ ॥
पुत्रः स्याच्छुक्रबाहुल्याद्दुहिता त्वार्तवेऽधिके ।
आदाविमं समुच्चार्य मन्त्रं पश्चाद्रतं चरेत् ॥ ७ ॥

स यथा—

‘ ॐ अहिरसि आयुरसि सर्वतः प्रतिष्ठाऽसि धाता त्वा दधातु ।
विनता त्वा दधातु ब्रह्मवर्चसी मवेत् ’ इति ॥

उक्तं च—

ब्रह्मा प्रजापतिर्विष्णुः सोमः सूर्यस्तथाऽश्विनौ ।
मगोऽथ मित्रावरुणां वीरं ददतु मे सुतम् ॥ ८ ॥
तच्चित्तोत्तानदेहा स्त्री तिष्ठेच्चापि समन्विता ।
एवं सा सुतमाप्नोति रूपायुर्बलशालिनम् ॥ ९ ॥
पुण्ये पुत्तलिकां कृत्वा हैमां वह्निप्रतापिताम् ।
क्षीरे निर्वप्य संतप्तं तस्मिन्नेच्छुलकाष्टकम् ॥ १० ॥
ऋतोश्चतुर्थदिवसे गर्भं धत्तेऽङ्गना सुखम् ।
लक्ष्मणां वटशृङ्गांश्च पिष्ट्वा क्षीरेण तिन्दुकान् ॥ ११ ॥
चतुरः पुत्रकामायाः सव्येतरपुटे पिबेत् ।
नसः सव्ये पुटे कन्यां लभतेऽन्नं न संशयः ॥ १२ ॥
काथेन ह्यगन्धायाः साधितं सघृतं पयः ।
पातः स्नात्वाऽबला पीत्वा गर्भं धत्ते न संशयः ॥ १३ ॥

पुत्रकारकयोगमाह—

तिलतैलदुग्धफाणितदधिघृतमेकत्र पाणिना मथितम् ।
पीतं सपिप्पलीकं जनयति पुत्रं परं महिला ॥ १४ ॥

एकपत्रपलाशस्य पत्रमेकं पयोन्वितम् ।
 निपीय लभते पुत्रवृत्तन्ते सर्वथाऽबला ॥ १५ ॥
 पुण्योद्धृतं लक्ष्मणाया मूलं पिष्टं च कन्यया ।
 ऋत्वन्ते घृतदुग्धाभ्यां पीत्वाऽऽप्नोत्यबला सुतम् ॥ १६ ॥
 नागकेसरमेकं तु पिष्ट्वा क्षीरेण याऽबला ।
 पिबेत्सा सुतमाप्नोति ऋत्वन्ते चिरजीविनम् ॥ १७ ॥
 शिवलिङ्गीफलमेकं ऋत्वन्ते याऽबला गिलति ।
 बन्ध्याऽपि पुत्ररत्नं लभते सा नात्र संदेहः ॥ १८ ॥
 एकस्य मातुलुङ्गस्य बीजानि सकलान्यपि ।
 ऋत्वन्ते दुग्धपिष्टानि पीत्वाऽऽप्नोत्यबला सुतम् ॥ १९ ॥
 श्वेतायाः कण्टकार्यास्तु मूलं पुण्ये समुद्धृतम् ।
 गोपयःपिष्टमबला पीत्वाऽऽप्नोत्यात्मजं तथा ॥ २० ॥
 बलासितासातिबलामधूकं वटस्य शृङ्गं गजकेसरं च ।
 एतन्मधुक्षीरघृतैर्निपीतं बन्ध्या सुपुत्रं नियतं प्रसूते ॥ २१ ॥
 कुरण्टमूलं धातक्याः कुसुमानि वटाङ्कुराः ।
 नीलोत्पलं पयोयुक्तमेतद्गर्भप्रदं परम् ॥ २२ ॥
 शूकरशिम्बीमूलं मध्यं वा दधिफलपयस्कम् ।
 पीत्वाऽथोमयलिङ्गीबीजं कन्यां न सूते स्त्री ॥ २३ ॥
 पीत्वा तण्डुलतोयेन तण्डुलीयजटामृतौ ।
 पतद्गर्भा च या नारी स्थिरगर्भा प्रजायते ॥ २४ ॥
 रोमराजी भवेद्यस्या वामतस्तु सुमूर्छिता ।
 तस्याः कन्यां विजानीयाद्दक्षिणे तनयं शुभम् ॥ २५ ॥
 उन्नते दक्षिणे कुक्षौ गर्भे च परिमण्डले ।
 पुत्रं सूतेऽन्यथा कन्यां वामे क्लीबं समेऽङ्गना ॥ २६ ॥
 उद्ध्रियमाणे छिन्ने कन्या पुत्रस्तु न च्छिन्ने ।
 मूले खरमञ्जरीः परीक्षणं कोष्ठगतगर्भे स्यात् ॥ २७ ॥

अथ फलघृतम्—

मुस्तं कुष्ठं हरिद्रे द्वे पिप्पली कटुरोहिणी ।
 काकोली क्षीरकाकोली विडङ्गं त्रिफला वचा ॥ २८ ॥
 मेढा रास्ना विशाला च देवदारु प्रियङ्गुका ।
 द्वे सारिवे शताह्वा च दन्ती मधुकमुत्पलम् ॥ २९ ॥

अजमोदा महामेदा चन्दनं रक्तचन्दनम् ।
 जातीपुष्पं तुगा क्षीरी कट्फलं हिङ्गु शर्करा ॥ ३० ॥
 एतैरक्षसमैः कल्कैर्घृतप्रस्थं भिषक्तमः ।
 चतुर्गुणेन पयसा विपचेद्गोमयाग्निना ॥ ३१ ॥
 पुष्यनक्षत्रसंपन्नं भाण्डे हेमादिजे स्थितम् ।
 सर्पिरेतन्नरः पीत्वा स्त्रीषु नित्यं वृषायते ॥ ३२ ॥
 या च बन्ध्या पिबेन्नारी या च कन्याप्रजायिनी ।
 पीत्वैतत्स्थिरगर्भा स्याद्या च सूता पुनः स्थिता ॥ ३३ ॥
 अनायुषं या जनयेद्या वा जनयते मृतम् ।
 सा च संजनयेत्पुत्रं दीर्घायुषमरोगिणम् ॥ ३४ ॥
 वेदवेदाङ्गशास्त्रज्ञं सर्वावयवसुन्दरम् ।
 नानेन सदृशं किञ्चिदौषधं चान्यदुत्तमम् ॥ ३५ ॥
 वर्तते मर्त्यलोकेऽत्र योषितां पुत्रदं परम् ।
 नाम्ना फलघृतं ह्यतद्भारद्वाजन निर्मितम् ॥ ३६ ॥
 अनुक्तं लक्ष्मणामूलं क्षिपन्त्यत्र चिकित्सकाः ।
 जीवद्वत्सैकवर्णाया घृतमस्मिन्प्रशस्यते ।
 आरण्यगोमयेनात्र वह्निज्वालाविधिः स्मृतः ॥ ३७ ॥

मेदा महामेदा तयोरभावे शतावरी द्विगुणा देया । काकोलीयुगला-
 भावेऽश्वगन्धा द्विगुणा देया । पुनर्ग्रहणं द्वैगुण्यार्थम् । जीवकर्षभकयो-
 रभावे विदारीकन्दो द्विगुणो देयः । एतस्य फलघृतस्यपाठो नानात-
 न्त्रेषु नानाविधः । तत्र हिङ्गुवचातगरजीवकर्षभका अधिकाः ।

इति फलघृतम् ।

इति श्रीयोगतरङ्गिण्यां गर्भोत्पादनविधिर्नैकोनचत्वारिंशदधि-
 कशततमस्तरङ्गः ॥ १३९ ॥

अथ चत्वारिंशदधिकशततमस्तरङ्गः ।

अथ मूढगर्भनिदानम्—

मयाभिधाततीक्ष्णोष्णपानाशननिषेवणात् ।
 यमे पतति रक्तस्य सशूलं दर्शनं भवेत् ॥ १ ॥

आचतुर्थात्तिथा मासात्प्रसवेद्रुर्भाविव्रवः ।
 ततः स्थिरशरीरस्य पातः पञ्चमषष्ठयोः ॥ २ ॥
 गर्भोऽभिघातविषमासनपीडनाद्यैः
 पक्वं द्रुमादिब फलं पतति क्षणेन ।
 मूढः करोति पवनः खलु मूढगर्भं
 शूलं च योनिजठरादिषु मूत्रसङ्गम् ॥ ३ ॥
 मुग्नोऽनिलेन विगुणेन ततः स गर्भः
 संख्यामुपैति बहुधा समुपैति योनिम् ।
 द्वारं निरुध्य शिरसा जठरेण कश्चि-
 त्कश्चिच्छरीरपरिवर्तितकुब्जदेहः ॥ ४ ॥
 एकेन कश्चिदपरस्तु भुजद्वयेन
 तिर्यग्गतो भवति कश्चिद्वाङ्मुखोऽन्यः ।
 पार्श्वाप्रवृत्तगतिरेति तथैव कश्चि-
 दित्यष्टधा गतिरियं ह्यपरा चतुर्धा ॥ ५ ॥
 संकीलकः प्रतिखुरः परिघोऽथ बीज-
 स्तेषूर्ध्वबाहुचरणैः शिरसा च योनिम् ।
 सङ्गी च यो भवति कीलकवत्सकीलो
 दृश्यैः खुरैः प्रतिखुरः स हि कायसङ्गी ॥ ६ ॥
 गच्छेद्भुजद्वयशिराः स तु बीजकाख्यो
 योनौ स्थितः सपरिघः परिघेण तुल्यः ॥ ७ ॥
 अपविद्धशिरा या तु शीताङ्गी निरपत्रपा ।
 नीलोद्धतशिरा हन्ति सा गर्भं स च तां तथा ॥ ८ ॥
 गर्भास्यन्दनमावीनां प्रणाशः श्यावपाण्डुता ।
 भवेदुच्छ्वासपूतित्वं शून्यताऽन्तर्भूते शिशौ ॥ ९ ॥
 मानसागन्तुभिर्मातुरुपतापैः प्रपीडितः ।
 गर्भो व्यापद्यते कुक्षौ व्याधिभिश्च प्रपीडितः ॥ १० ॥
 योनिसंवरणं सङ्गः कुक्षौ मक्कल एव च ।
 हन्युः स्त्रियं मूढगर्भा यथोक्ताश्चाप्युपद्रवाः ॥ ११ ॥

इति मूढगर्भनिदानम् ।

अथ चिकित्सा—

सूतिका कर्मकुशला वृद्धा दक्षाङ्गना मृशम् ।
 योनिं तु मूढगर्भायास्तैलेनाभ्यज्य पाणिना ॥ १२ ॥

संस्वेद्य मन्त्रं निवर्ति हस्तं योनौ निधाय च ।
 कीलस्य पाणिपादौ च समीकृतयोर्ध्वगौ धिया ॥ १३ ॥
 योनेरभिमुखं तस्य मूर्धानं विरचय्य च ।
 पाणिं निष्काश्य च ततो निजं कर्म समाचरेत् ॥ १४ ॥
 एष एव विधिः कार्यः परिधेऽपि तथा धिया ।
 बीजप्रतिखुरौ द्वौ तु योनिपृष्ठकटिग्रहैः ॥ १५ ॥
 उपाचरेत्तथा गर्भो गर्भिणी वैति नो मृतिम् ।
 मृते गर्भे भिषक्प्राज्ञश्छित्त्वा शस्त्रेण यत्नतः ॥ १६ ॥
 आकर्षेदल्पमल्पं तु तत्खण्डं योनितः शनैः ।
 न चोपेक्षेन्मृतं गर्भं मुहूर्तमपि पण्डितः ॥ १७ ॥
 सोऽन्यथा जननीं हन्ति रुद्धश्वासः पशुर्यथा ।
 मण्डलाग्रेण कर्तव्यं छेदमन्तर्विजानता ॥ १८ ॥
 वृद्धिपत्रं तु तीक्ष्णाग्रं नारीं हिंस्यात्कथंचन ।
 सचेतनं तु शस्त्रेण न कथंचन दारयेत् ॥ १९ ॥
 आत्मानं जननीं वाऽपि हन्यादाशु सचेतनः ।
 अभिघातमृतायास्तु गर्भः प्रस्यन्दते यदि ॥ २० ॥
 पाटयित्वोद्धरेज्जीवं यत्नाद्भक्षेत्रिजं यशः ।

‘स्त्रावप्रतिबन्धोपायमाह—

मधुकं शाकबीजं च पयस्या सुरदारु च ॥ २१ ॥
 अश्मन्तकः कृष्णतिलास्ताम्रवल्ली शतावरी ।
 वृक्षादनी पयस्या च तथैवोत्पलसारिवा ॥ २२ ॥
 अनन्ता सारिवा रास्ना पद्मा मधुकमेव च ।
 बृहतीद्वयकाश्मर्यक्षीरिशृङ्गत्वचो घृतम् ॥ २३ ॥
 पृथक्पर्णी बला शिग्रुः श्वदंष्ट्रा मधुयष्टिका ।
 शृङ्गाटकं विसं द्राक्षा कसेरु मधुकं सिता ॥ २४ ॥
 वत्सैते सप्त योगाः स्युरर्धश्लोकसमापनाः ।
 यथाक्रमं प्रयोक्तव्या गर्भस्त्रावे पयोन्विताः ॥ २५ ॥

गर्भरक्षणोपायमाह—

कपित्थबिल्वबृहतीपटीलेक्षुनिदिग्धिकाः ।
 मूलानि क्षीरासिद्धानि पायथेन्द्रिषगष्टमे ॥ २६ ॥

नवमे मधुकानन्तापयस्यासारिवाः पिबेत् ।
पयस्तु दशमे शुण्ठ्या शृतशीतं प्रशस्यते ॥ २७ ॥

शूलनिवारणोपायमाह—

सक्षीरा वा हिता शुण्ठी मधुकं देवदारु च ।
क्षीरिकामुत्पलं दुग्धं समङ्गामूलकं शिवाम् ॥ २८ ॥
पिबेदेकादशे मासि गर्भिणी शूलशान्तये ।
सिताविदारीकाकोलीक्षीरं वाऽपि मृणालिकाम् ॥ २९ ॥
गर्भिणी द्वादशे मासे पिबेद्वातघ्नमोषधम् ।
एवमाप्यायते गर्भस्तीव्रा रुक्च प्रशाम्यति ॥ ३० ॥
कुशकाशोरुबूकाणां मूलैर्गोक्षुरकस्य च ।
शृतं दुग्धं सितायुक्तं गर्भिण्याः शूलनुत्परम् ॥ ३१ ॥

कसेरुशृङ्गाटकपद्मकोत्पलं समुद्रपर्णीमधुकं सशर्करम् ।
सशूलगर्भस्रुतिपीडिताऽबला पयोविमिश्रं पयसाऽन्नमुक्पिबेत् ॥ ३२ ॥

गर्भिणीज्वरादिशान्त्युपायमाह—

चन्दनं सारिवालोध्रमृद्धीकाशर्करान्वितम् ।
क्वाथं कृत्वा प्रदातव्यं गर्भिण्या ज्वरशान्तये ॥ ३३ ॥
आम्रजम्बूत्वचाक्वाथैर्लाजसक्त्ववलेहिका ।
लीढ्वा निहन्ति ग्रहणीं गर्भिण्या दुस्तरामपि ॥ ३४ ॥

अथ ह्रीवेरादिकाथः—

ह्रीवेरारलुरक्तचन्दनबलाधान्याकवत्सादनी-
मुस्तोशीरयवासपर्पटविधाक्वाथं पिबेद्गर्भिणी ।
नानाव्याधियुतातिसारगदके त्वस्रस्रुतौ वा ज्वरे
योगोऽयं मुनिभिः पुरा निगदितः शूलामयेऽप्युत्तमः ॥ ३५ ॥

इति ह्रीवेरादिकाथः ।

गर्भिण्युपद्रवनिवारणोपायः—

गोधामांसं प्रयत्नेन गर्भिणीनां प्रदापयेत् ।
वातपित्तककोत्था ये ग्रहोत्था येऽप्युपद्रवाः ॥ ३६ ॥
गर्भिण्युपद्रवांस्तांस्तु गोधामांसमपोहति ।

गर्भपातनिवारणोपायः—

लज्जासुधातकीपुष्पमुत्पलं मधुलोधकम् ॥ ३७ ॥

जलस्थया स्त्रिया पीतं गर्भपातं निवारयेत् ।
 पतन्तं स्तम्भयेद्गर्भं कुलालकरमृत्तिका ॥ ३८ ॥
 मधुच्छागीपयः पीतं किं वा श्वेताऽपराजिता ।
 पारावतमलः पीतरूपहं तण्डुलवारिणा ।
 गर्मिणीगर्भतो रक्तं स्तम्भयेन्निरुपद्रवम् ॥ ३९ ॥
 शकराबिसतिलं समांशकं माक्षिकेण सह भक्षयते स्त्रिया ।
 नास्ति गर्भपतनोद्भवं मयं पापभीतिरिव तीर्थसेवया ॥ ४० ॥
 शृङ्गाटकं त्रिसं द्राक्षा कसेरुर्मधुकं सिता ।
 निवारयन्त्यमी गर्भपातं परमवेदनम् ॥ ४१ ॥
 कङ्कतीमूलमावद्धं कुमारीसूत्रकैः समैः ।
 कटिदेशे निताम्बिन्या गर्भपातं निवारयेत् ॥ ४२ ॥

मूढगर्भापकर्षणमाह—

पाठासुरससिंहास्यमयूरकुटजैः पृथक् ।
 नाभिवास्तिभगे लेपो मूढगर्भापकर्षणः ॥ ४३ ॥

सुखप्रसवोपायमाह—

मातुलुङ्गस्य मूलानि मधुकं मधुसंयुतम् ।
 घृतेन सह पातव्यं सुखं नारी प्रसूयते ॥ ४४ ॥
 तुषाम्बुपरिपिष्टेन मूलेन परिलेपयेत् ।
 लाङ्गल्याश्चरणौ सूते क्षिप्रमापन्नगर्भिणी ॥ ४५ ॥
 सुदर्शनात्पृश्निपर्ण्या अपामर्गस्य वा पृथक् ।
 नाभियोनिप्रलेपेन क्षिप्रं सूते निताम्बिनी ॥ ४६ ॥
 पुटदग्धभुजमकञ्चुकजलमधुपूरितेक्षणद्वन्द्वा ।
 सद्यो भवति विशल्या विमूढगर्भाऽपि गर्भवती ॥ ४७ ॥
 इहामृतं च सोमश्च चित्रभानुश्च भामिनि ।
 उच्चैःश्रवाश्च तुरगो मन्दिरे निवसन्तु ते ॥ ४८ ॥
 इक्षुममृतमपां समुद्धृतं वै तव लघुगर्भमिमं विमुञ्चतु स्त्रि ।
 तदनलपवनार्कवासवास्ते सह लवणाम्बुधरैर्दिशन्तु शान्तिम् ॥ ४९ ॥
 मुक्ताः पाशविपाशाश्च मुक्ताः सूर्यस्य रश्मयः ।
 मुक्तः सर्वभयाद्गर्भं एहि मा चिरमाचिरं स्वाहा ॥ ५० ॥

जलं व्यावनमन्त्रेण सप्तवाराभिमन्त्रितम् ।
पीत्वा प्रसूयते नारी दृष्ट्वा चोभयत्रिंशकम् ॥ ५१ ॥
कलारसाष्टभिः पक्षदिगष्टादशभिः क्रमात् ।
अर्कैश्च भुवनैर्वैदेरुभयत्रिंशकं वदेत् ॥ ५२ ॥

उभयत्रिंशयन्त्रम् ।

| | | |
|----|----|----|
| १६ | ६ | ८ |
| २ | १० | १८ |
| १२ | १४ | ४ |

इति यन्त्रं दर्शयित्वा

हिमवद्वाक्षिणे पार्श्वे सुरसा नाम यक्षिणी ।
तस्या नूपुरशब्देन विशल्या भव गर्भिणी ॥ ५३ ॥
इमं श्लोकं पठित्वा तु क्षिपेदक्षतपञ्चकम् ।
गर्भिण्युपरि सद्यः सा गर्भं मुञ्चति गर्भिणी ॥ ५४ ॥

मजाम्निवेदाशशिबाणखेटारसाद्रिपक्षा नवकोष्ठमध्ये ।
प्रसूतिकाले लिखितं गृहीत्वा मुखेन नारीप्रसवोऽतिशीघ्रम् ॥ ५५ ॥

अन्यच्च—

| | | |
|---|---|---|
| ८ | ३ | ४ |
| १ | ५ | ९ |
| ६ | ७ | २ |

बनितायाः प्रसूताया वातो रूक्षेण वर्धितः ।
तीक्ष्णैरशोधितं रक्तं रुद्ध्वा ग्रन्थिं करोति हि ॥ ५६ ॥
नाभ्यधः पार्श्वयोर्वस्तौ चस्तिमूर्धनि वाऽपि वा ।
आध्मानं मूत्रसङ्गश्च नाभिदस्त्युदरेऽतिरुक् ॥ ५७ ॥
एतद्भिषग्भिरुदितं मक्कल्लामयलक्षणम् ।
प्रसवस्य विलम्बे तु धूपयेदमितो मगम् ॥ ५८ ॥
कृष्णसर्पस्य निर्मोकैस्तथा पिण्डीतकेन वा ।
तन्तुना लाङ्गलीमूलं बध्नीयान्द्वस्तपादयोः ॥ ५९ ॥
सुवर्चलां विशल्यां वा धारयेदाशु सूतये ।

इक्षोरुत्तरमूलं स्वतनुमानेन तन्तुना ॥ ६० ॥
बद्ध्वा कट्यं तृ नियतं सुखं नारी प्रसूयते ।

अथ वातशुष्कगर्भस्य चिकित्सा—

गर्भां वातेन संशुष्का नोदरं पूरयेद्यवि ॥ ६१ ॥
तं बृंहणीयैः सांसद्भं दुग्धं मांसरसं पिबेत् ।
शुक्रार्तवमजाताङ्गप्रत्यङ्गं मरुताऽर्दितम् ॥ ६२ ॥
त्यक्तं जीवेन तत्तस्मात्कथितं चावतिष्ठते ।
शुक्रार्तवादिको वायुरुदराध्मानकृद्भवेत् ॥ ६३ ॥
कदाचिच्चेत्तदाऽऽध्मानं स्वयमेवोपजायते ।
तदा स गर्भो भवति लोके नागोदराह्वयः * ॥ ६४ ॥

इति श्रीयोगतरङ्गिण्यां मूढगर्भनिदानचिकित्साकथनं नाम चत्वारिंश-
दधिकशततमस्तरङ्गः ॥ १४० ॥

अथैकचत्वारिंशदधिकशततमस्तरङ्गः ।

अथ मेकल्लनिदानम्—

पृथिव्यां पतिते वत्से योनौ पीडनमिष्यते ।
अप्रवेशो यथा वायोस्तथा संरक्षणक्रिया ॥ १ ॥
वायुः प्रकुपितः कुर्यात्संरुध्य रुधिरं व्युतम् ।
सूताया हृच्छिरोबस्तिशूलं + मक्कल्लसंज्ञितम् ॥ २ ॥

इति मेकल्लनिदानम् ।

अथ चिकित्सा—

लङ्घनाभ्यञ्जनस्वेदाः कर्तव्याश्च यथोदिताः ।
क्रिया वातप्रमनः पूगाद्यावर्तिताम्बु च ॥ ३ ॥
हिताय सूतिकायाः स्वकुलाचारविधिं चरेत् ।
त्रिरात्रानन्तरं ग्राह्यं शोधनं च यथाबलम् ॥ ४ ॥

* एतस्याग्रेऽयं ग्रन्थो ग पुस्तके—अथापर पातनविधिः—

कटुतुम्ब्यहिनिर्मोककृतवेध-सर्षपैः । कटुतैलाञ्चितैर्धूपो योनेः पातयते परम् ॥ १ ॥
कचवेष्टे तथाऽङ्गल्या घृष्टे कण्ठे सुखं पतेत् । परामूलेन लाङ्गल्या सलिप्ते पाणिपादे वा ॥ २ ॥
इत्यपरः पातनविधिः । ग पुस्तके सर्वत्र मधुलशब्देनैव व्यवहारः क्रियते ।

उपकुञ्चीं पिप्पलीं च मदिरां लामतः पिबेत् ।
 सौवर्चलेन संयुक्तां योनिशूलनिवृत्तये ॥ ५ ॥
 यवक्षारं पिबेद्द्रव्यसर्पिषोष्णोदकेन वा ।
 मक्कलशोषशान्त्यर्थं किंवा दशजटाशृतम् ॥ ६ ॥
 त्रिकटुत्रिजातधान्यकचूर्णानि पुराणगुडमिश्राणि ।
 पीत्वैव सूतिका स्त्री जहाति मक्कलसंज्ञकं शूलम् ॥ ७ ॥
 शोणं बोलं सघृतं सगुडं गुटिकीकृतं गिलितम् ।
 मक्कलाभिधशूलं हन्ति समूलं सशोणितातङ्कम् ॥ ८ ॥
 हिङ्गुगुग्गुं ससर्पिष्कं भुक्तं मक्कलशूलनुत् ।
 झूषणं पिप्पलीमूलं दारु चव्यं सचित्रकम् ॥ ९ ॥
 रजंन्यौ हपुषाजार्जसक्षारं लवणत्रयम् ।
 कल्कमुष्णाम्बुना पीत्वा सुखेनाऽऽशु विरिच्यते ॥ १० ॥
 त्रिकटुकचातुर्जातककुस्तुम्बुरुचूर्णसंयुक्तम् ।
 खादेद्गुडं पुराणं नित्यं नारी मक्कलदलनाय ॥ ११ ॥
 इति श्रीयोगतरङ्गिण्यां मक्कलशूलनिदानचिकित्साकथनं नामैक-
 चत्वारिंशदधिकशततमस्तरङ्गः ॥ १४१ ॥

अथ द्विचत्वारिंशदधिकशततमस्तरङ्गः ।

अथ सूतिकारोगनिदानम्—

अङ्गमर्दो ज्वरः कम्पः पिपासा गुरुगात्रता ।
 शोफः शूलातिसारौ च सूतिकारोगलक्षणम् ॥ १ ॥
 मिथ्योपचारात्संक्लेशाद्विषमाजीर्णमोजनात् ।
 सूतिकायाश्च ये रोगा जायन्ते दारुणाश्च ते ॥ २ ॥
 ज्वरातिसारशोथाश्च शूलानाहबलक्षयाः ।
 तन्द्रारुचिप्रसेकाद्याः कफवातोद्भवाश्च ये ॥ ३ ॥
 कृच्छ्रसाध्या हि ते रोगाः क्षीणमांसबलाम्भितः ।
 ते सर्वे सूतिकानाम्ना रोगास्ते चाप्युपद्रवाः ॥ ४ ॥
 इति सूतिकारोगनिदानम् ।

अथ चिकित्सा—

अथ दशमूलकाथः—

दशमूलीशृतं तोयं कवोष्णं पिप्पलीयुतम् ।
पीतं तत्सूतिकारोगमुदग्रमपि कृन्तति ॥ ५ ॥

इति दशमूलकाथः ।

अथ निर्गुण्ड्यादिकाथः—

संयोजितो दलितया कणया कवोष्णो
निर्गुण्डिकालशुननागरजः कषायः ।
पीतो निहन्ति कफमारुतकोपजातं
सूत्यामयं सकलमेव सुदुस्तरं च ॥ ६ ॥

इति निर्गुण्ड्यादिकाथः ।

अथ देवदार्वदिकाथः—

सूतिकारोगशान्त्यर्थं कुर्याद्वातहरीं क्रियाम् ।
स्वेदोपनाहनाभ्यङ्गः सावगाहः प्रशस्यते ॥ ७ ॥
सुरदारुविश्ववचामृताघनकर्कटत्रिकण्टकामया-
कटुकाकिरातविषायवासनिदिग्धिकायुगधान्यकैः ।
गदपिप्पलीद्वयकृष्णजीरककटफलैश्च शृतो जये-
द्विधिवत्स सिन्धुजरामठो नवसूतिकासकलामयम् ॥ ८ ॥

इति देवदार्वदिकाथः ।

अथामृतादिकाथः—

सुतसलोहमादाय वारुण्यां विनिधापयेत् ।
सा पीता सूतिकातङ्कांस्तान्सर्वानपकर्षति ॥ ९ ॥
अमृतानागरसहचरभद्रोत्कटपञ्चमूलजलद्वजलम् ।
शृतशीतं पीतं मधुना सह शमयति सूतिकातङ्कम् ॥ १० ॥

इत्यमृतादिकाथः ।

अथ सहचरादिकाथः—

सहचरकुलत्थपुष्करदारुनिशादारुवेतसकाथः ।
पीतः सहिङ्गुलवणः शमयति शूलज्वरौ सूत्याः ॥ ११ ॥

इति सहचरादिकाथः ।

अथ मध्यमसौभाग्यशुण्ड्यवलेहः—

नागरस्य पलान्यष्टौ घृतस्थे च चतुष्पलम् ।
क्षीराढकेन संयुक्तं खण्डस्यार्धतुलां पचेत् ॥ १२ ॥
शताह्वाजीरकव्योषत्रिसुगन्धिजवानिका ।
कारवीमिशिचव्याग्निमुस्तानां च पलं पलम् ॥ १३ ॥
शुद्धाभ्रकायसंयोज्यं त्रिपलं च पृथक्पृथक् ।
स्वर्णं तारं ततो योज्यं यथा चाग्निबलं भवेत् ॥ १४ ॥
लेहीभूतमिदं सिद्धं घृतभाण्डे निधापयेत् ।
तद्यथाग्निबलं खादेत्सूतिका तु विशेषतः ॥ १५ ॥
बल्यं वण्यं तथा पुष्ट बलीपलितनाशनम् ।
वयसः स्थापनं हृद्यं मन्दाग्नेर्दीपनं परम् ॥ १६ ॥
आमवातप्रशमनं सौभाग्यकरमुत्तमम् ।
मक्कलशूलशमनं सूतिकारोगनाशनम् ॥ १७ ॥

इति मध्यमसौभाग्यशुण्ड्यवलेहः ।

अथापरा सौभाग्यशुण्ठी—

आज्यस्याञ्जलियुग्ममत्र पयसैः कंसं तुलार्धं तथा-
खण्डस्यापि पचेद्विचूर्णितमिदं विश्वौषधं प्रक्षिपेत् ।
प्रस्थार्धं गुडवद्विपाच्य विधिना मुष्टित्रयं धान्यकं
मिश्याः पञ्चपलं पलं कृमिरिपोः साजाजिजीरं तथा ॥ १८ ॥
व्योषाम्भोददलोरगेन्द्रैर्विडकामृङ्गस्य च प्रक्षिपेत्
तृट्कासज्वरपाण्डुरोगशमनं विड्भेदविध्वंसनम् ।
शूलारोचकनाशनं कृमिहरं मन्दाग्निसंदीपनं
सूतानां खलु खण्डनागरमिदं सौभाग्यदं सेवितम् ॥ १९ ॥
इत्यपरा सौभाग्यशुण्ठी ।

अथ पञ्चजीरावलेहः—

जीराह्लामिशिमैथिदीप्यहपुषाषट्कट्टुविश्वं पृथु-
र्वन्दाशीतकपित्थवेल्लबदरश्यामामयानागजम् ।

बैल्वं क्षीरगुडाज्यमाजनतुलार्धं प्रस्थपक्वं चतुः

कंसैलौषधकृष्णजीरमबलार्तीः पञ्चजीरो जयेत् ॥ २० ॥

इति पञ्चजीरावलेहः ।

अथ प्रतापलङ्केश्वरो रसः—

एकेन्दुचन्द्रानलवार्धिकुम्भिकलैकभागं क्रमशो विमिश्रम् ।

सूताभ्रगन्धोषणलोहशङ्खवन्योपलामस्मविषं च पिष्टम् ॥ २१ ॥

प्रसूतिवातेऽनिलदन्तबन्धे चाऽऽर्द्राभ्रमसा बल्लममुष्य दद्यात् ।

घातामये श्लेष्मगदेऽर्शसि स्यात्पुरासूतार्द्रात्रिफलायुतोऽयम् ।

सशृङ्गबेरद्रव एष हन्ति ससंनिपातं ज्वरमुग्ररूपम् ॥ २२ ॥

इति प्रतापलङ्केश्वरो रसः ।

इति सूतिकारोगनिदानचिकित्साकथनं नाम त्रिचत्वारिंशदधिक-

शततमस्तरङ्गः ॥ १४२ ॥

अथ त्रिचत्वारिंशदधिकशततमस्तरङ्गः ।

अथ स्तनरोगः—

सक्षीरौ वाप्यदुग्धौ वा दोषं प्राप्य स्तनौ क्षियाः ।

प्रदूष्य मांसं रुधिरं स्तनरोगाय कल्पते ॥ १ ॥

पञ्चानामपि तेषां हि रक्तजं विद्रधिं विना ।

लक्षणानि समानानि बाह्यविद्रधिलक्षणैः ॥ २ ॥

अथ स्तनशोथोपक्रमः—

शोथं स्तनोत्थितमवेक्ष्य भिषग्विदध्या-

द्यद्विद्रधावभिहितं बहुधा विधानम् ।

आमे विदह्यति तथैव गते च पाकं

स्यातां स्तनौ सततमेव विबृद्धिहीनौ ॥ ३ ॥

जलौकाभिर्हरेद्रक्तं न स्तनावुपनाहयेत् ।

पित्तघ्नानि तु शीतानि द्रव्याण्यत्र नियोजयेत् ॥ ४ ॥

१ ख. पुस्तके—वातानिलदन्तबन्धमाद्रांम्बुना धोरसुसनिपाते ।

निजानुपानैर्निजपथ्ययोगैः सर्वातिसारग्रहणीगिदेषु ॥

प्रतापलङ्केश्वरनामधेयो रसः प्रयुक्तो गिरिराजपुत्र्या । इति पाठः ।

योजयेद्वृणवत्सर्वं गतिं संरक्ष्य पाटयेत् ।
 लेपो विशालामूलस्य हन्ति पीडां स्तनोत्थिताम् ॥ ५ ॥
 पिप्पल्यास्तप्तलोहं च निर्वाप्य सलिलं पिबेत् ।
 दुःखस्तना च या नारी सा शीघ्रं सुखिता भवेत् ॥ ६ ॥
 सहरिद्रं कुमार्यास्तु मूलं पानीयपेषितम् ।
 स्तनरोगं हन्ति लेपात्किं वा कर्कोटिका जटा ॥ ७ ॥

इति स्तनशोथोपक्रमः ।

अथ स्तन्यरोगः—

विशस्तेष्वपि गात्रेषु यथा शुक्रं न दृश्यते ।
 सर्वदेहाश्रितत्वाच्च शुक्रलक्षणमुच्यते ॥ ८ ॥
 तदेव चेष्टयुवतेर्दर्शनात्स्मरणादपि ।
 शब्दसंश्रवणात्स्पर्शात्संहर्षाच्च प्रवर्तते ॥ ९ ॥
 सुप्रसन्नं मनस्तत्र हर्षणे हेतुरुच्यते ।
 आहाररसयोनित्वादेवं स्तन्यमपि स्त्रियाः ॥ १० ॥
 तद्देवापत्यसंस्पर्शाद्दर्शनात्स्मरणादपि ।
 ग्रहणाच्च शरीरस्य शुक्रवत्संप्रवर्तते ॥ ११ ॥
 स्नेहो निरन्तरस्तत्र प्रसवे हेतुरुच्यते ।
 गुरुभिर्विषमैरन्नेर्दुष्टैर्दोषैः प्रदूषितम् ॥ १२ ॥
 क्षीरं धात्र्याः कुमारस्य नानारोगाय कल्पते ।

सप्तविधक्षीरमाह—

लवणं तत्र चाम्लत्वं कटुकं फेनिलं तथा ॥ १३ ॥
 मांसधावनसंकाशं पीतामं च तथा परम् ।
 एतत्सप्तविधं क्षीरमशुद्धं जीवकोऽब्रवीत् ॥ १४ ॥
 मधुतैलघृतप्रख्यं कषायं च तदुत्तमम् ।
 करोति लवणं क्षीरमकाले मलनिर्गमम् ॥ १५ ॥
 कफं तु तत्रगं कुर्यादम्लं तु मुखपाकताम् ।
 मांसधावनसंकाशं छर्दनं कुरुते शिशोः ॥ १६ ॥
 फेनिलं श्वासकासौ च कटुपीते तु मूत्रले ।
 घृतप्रख्ये भवेत्पुष्टिस्तैलामे बलवान्भवेत् ॥ १७ ॥
 मधुप्रख्ये भवेद्भक्षः कषायो मारुतो भवेत् ।
 कषायं सलिलप्लावि स्तन्यं मारुतदूषितम् ॥ १८ ॥

कट्वम्ललवणं पीतराजिमत्पित्तसंगतम् ।
 कफजुष्टं घनं तोये निमज्जति सुपिच्छिलम् ॥ १९ ॥
 द्विलिङ्गं द्वन्द्वजं विद्यात्सर्वलिङ्गं त्रिदोषजम् ।
 अदुष्टं वारिनिक्षिप्तमेकी भवति पाण्डुरम् ॥ २० ॥
 मधुरं चाविवर्णं च तत्प्रसन्नं विनिर्दिशेत् ।

वातदुष्टस्तन्य उपायमाह—

तत्र वातात्मके स्तन्ये दशमूलीं त्र्यहं पिबेत् ॥ २१ ॥
 वातव्याधिहरं सर्पिः पीत्वा मृदु विरेचयेत् ।

पित्तदुष्टस्तन्य उपायमाह—

पित्तदुष्टेऽमृताभीरुपटोलं निम्बचन्दनम् ॥ २२ ॥
 धात्री कुमारश्च पिबेत्क्वाथं पीत्वा सशर्करम् ।

कफदुष्टस्तन्य उपायमाह—

कफदुष्टे घृतं पेयं यष्टीसैन्धवसंयुतम् ॥ २३ ॥
 राठपुष्पैः स्तनौ लिम्पेच्छिशोश्च दशनच्छदौ ।
 सुखमेवं वमेद्दालः कफक्रोपश्च शाम्भति ॥ २४ ॥

द्विदोषदुष्टस्तन्य उपायमाह—

द्वन्द्वदुष्टं द्वियोगाभ्यां पूर्वोक्ताभ्यां विशोधयेत् ।

त्रिदोषदुष्टस्तन्य उपायमाह—

स्तन्ये त्रिदोषसंदुष्टे शकृदामं जलोपमम् ॥ २५ ॥
 नानावर्णरुजं चाऽऽर्द्धं विबद्धमुपवेश्यते ।

क्षीरालसकमाह—

भ्रमारोचकघर्मास्यपाकतृष्णाज्वरादयः ॥ २६ ॥
 स्युर्यत्र तं विजानीयात्क्षीरालसकसंज्ञकम् ।

अथ स्तन्यविशुद्धिविधिः—

धात्री क्षीरविशुद्ध्यर्थं मुद्गयूषरसाशिनी ॥ २७ ॥
 मार्गिदारुवचाः पिष्ट्वा पिबेत्सातिविषामृताः ।
 पाठां मूवां च भूनिम्बदारुशुण्ठीकलिङ्गकाः ॥ २८ ॥
 सारिवानन्ततित्ताख्यास्ततः स्तन्यविशोधनम् ।

इति स्तन्यविशुद्धिविधिः ।

अथ स्तन्यवृद्धिः—

भूमिकूष्माण्डमूलस्य क्षीरपिष्टस्य या रसम् ॥ २९ ॥
 पिबेरसशर्करं तस्याः क्षीरं बहु विवर्धते ।
 शतावरी क्षीरपिष्टा पीता स्तन्यविवर्धिनी ॥ ३० ॥
 कबोष्णं कणया पीतं क्षीरं क्षीरविवर्धनम् ।
 धनकार्पासिकेक्ष्वाकुमूलं सौवीरकेण वा ॥ ३१ ॥
 विदारिकन्दस्वरसं पिबेद्वा स्तन्यवर्धनम् ।

अथ वज्रकाञ्जिकम्—

पिप्पली पिप्पलीमूलं चव्यं शुण्ठी यवानिका ॥ ३२ ॥
 जीरके द्वे हरिद्वे द्वे विडं सौवर्चलं तथा ।
 एतैरेवौषधैः पिष्टैरारनालं विपाचयेत् ॥ ३३ ॥
 तद्यथाग्निबलं पीत्वा प्रसूता सुखमश्नुते ।
 आमवातहरं वृष्यं कफघ्नं वातनाशनम् ॥ ३४ ॥
 तद्वज्रकाञ्जिकं नाम्ना स्त्रीणामग्निविवर्धनम् ।
 मक्कलशूलशमनं परं क्षीरविवर्धनम् ॥ ३५ ॥

इति वज्रकाञ्जिकम् । इति स्तन्यवृद्धिः ।

अथ सूतास्तनरक्षा—

तृतीयेऽह्नि चतुर्थे वा सूतास्तन्यं प्रवर्तते ।
 ज्वरभ्रमाङ्गमर्दाः स्युस्तेन तस्यास्तदा स्त्रियाः ॥ ३६ ॥
 तदुपद्रवशान्त्यर्थं रक्षामन्त्रेण मार्जयेत् ।
 प्रसूतां कुशतोयेन शतमष्टोत्तरं सूधीः ॥ ३७ ॥
 स यथा ॐ वीरमद्र प्रसूताया अस्या नाशय नाशय ।
 पयोहेतूनादनाशु ज्वराद्यांस्त्वमुमाज्ञया ॥ ३८ ॥

अथ स्तनमार्जनमन्त्रौ यथा—

चत्वारः सागराः पुण्याः स्तनयोः क्षीरवाहिनः ।
 सन्तु ते सुमगे नित्यं बालस्याऽऽयुर्बलप्रदाः ॥ ३९ ॥
 पीत्वा* बालोऽमृतरसं पयस्तव यथेच्छया ।
 दीर्घमायुरवाप्नोति देवाः प्राश्यामृतं यथा ॥ ४० ॥

इति सूतास्तनरक्षा ।

* क. 'पयोऽमृतरसं पीत्वा कुमारस्ते शुभावन्ते' इति सुश्रुतपाठः ।

अथ श्रीमल्लतैलम्—

अलंबुषाकणाकल्कैः सिद्धं तैलं करोति वनितायाः ।
 पिचुधरणनस्यदानात्कुचयुगलं श्रीफलाकारम् ॥ ४१ ॥
 श्रीपर्णारिसकल्काभ्यां तैलं सिद्धं तिलोद्भवम् ।
 तत्तैलं तूलकेनैव स्तनस्योपरि दापयेत् ।
 पतितावुत्थितौ स्यातामङ्गनायाः पयोधरौ ॥ ४२ ॥

इति श्रीमल्लतैलम् ।

अथ कासीसाद्यं तैलम्—

कासीसतुरगगन्धासावरगजपिप्पलीविपक्वेन ।
 तैलेन यान्ति वृद्धिं स्तनकर्णवराङ्गलिङ्गानि ॥ ४३ ॥
 इति कासीसाद्यं तैलम् ।

अथ करवीराद्यं तैलम्—

तालरालाचूर्णमेकद्विचतुर्भागमम्बुना ।
 अग्नौ हन्यात्पक्रमेतलेपो लोम क्षणार्धतः ॥ ४४ ॥
 हरितालभाग एको भागाः पञ्चैव शङ्खचूर्णस्य ।
 भागः पलाशमस्मन एवं लेपात्कचा न स्युः ॥ ४५ ॥
 करवीरशिफा दन्ती चित्रको धातकीति च ।
 रम्भाक्षारोदके तैलं प्रशस्तं लोमशातनम् ॥ ४६ ॥
 इति करवीराद्यं तैलम् ।

अथ कर्पूराद्यं तैलम्—

कर्पूरमल्लतकशङ्खचूर्णं क्षारो यवानामजमोदकं च ।
 तैलं विपक्वं हरितालमिश्रं लोमानि निर्मूलयति क्षणेन ॥ ४७ ॥
 इति कर्पूराद्यं तैलम् । इति लोमनिर्मूलीकरणम् ।

अथ योनिसंकोचीकरणम्—

मोचरससूक्ष्मचूर्णं क्षिप्तं योनौ स्थितं प्रहरम् ।
 शतवारं प्रसूताया अपि योनिः सूक्ष्मरन्ध्रा स्यात् ॥ ४८ ॥
 मङ्गापटोलिकां दत्त्वा प्रहरं काममन्दिरे ।
 शतवारं प्रसूताऽपि पुनर्भवति कन्यका ॥ ४९ ॥

बब्बूलकुसुमं लोधं दाडिमीमूलवल्कलम् ।

चूर्णीकृत्य क्षिपेद्योनौ योनिसंकोचनं परम् ॥ ५० ॥

सौराष्ट्रिकाटङ्कणसिन्धुशोषमायाफलेन्दुप्रकृता वटीयम् ।

शूतेन बब्बूलमवेन योनौ धृता च सूची गमनेऽसमर्था ॥ ५१ ॥

टङ्कणोऽमरहट्टी च कर्पूरो मधुना सह ।

वटीकृता धृता योनौ संकोचो जायते भगे ॥ ५२ ॥

इति योनिसंकोचीकरणम् ।

अथ रण्डादियोषिद्रर्भनिवारणपातनविधिः—

तालीसगैरिकं पीतं विडालपदमात्रकम् ।

शीताम्बुना चतुर्थेऽङ्घ्रि वन्ध्यां स्त्रीं कुरुते मृशम् ॥ ५३ ॥

पलाशबीजमध्वाज्यलेपात्सामर्थ्ययोगतः ।

योनिमध्य ऋतौ गर्भं न धत्ते स्त्री कदाचन ॥ ५४ ॥

धूपिते योनिरन्ध्रे तु निम्बकाष्ठेन युक्तितः ।

ऋत्वन्ते रमते या स्त्री न सा गर्भमवाप्नुयात् ॥ ५५ ॥

तैलाविलं सैन्धवखण्डमादौ निधाय रण्डा निजयोनिमध्ये ।

नरेण सार्धं रतमातनोति या सा न गर्भं लभते कदाचित् ॥ ५६ ॥

धत्तूरमूलिका पुष्पे गृहीता कटिसंस्थिता ।

गर्भं निवारयत्येव रण्डावेद्यादियोषिताम् ॥ ५७ ॥

तण्डुलीयकमूलानि पिष्ट्वा तण्डुलवारिणा ।

ऋत्वन्ते त्र्यहपीतानि वन्ध्याः कुर्वन्ति योषितः ॥ ५८ ॥

राजिकं तिलतैलं च पिष्ट्वा नारी ऋतौ पिबेत् ।

त्रिदिनं तेन गर्भस्य संभवो नैव जायते ॥ ५९ ॥

पिबति प्रसूतिसमये काञ्जिकयुक्तं जपामवं पुष्पम् ।

न विमर्ति सा प्रसूतिं धृतेऽपि तस्या न गर्भः स्यात् ॥ ६० ॥

मृतप्रिया प्रोषितभर्तृका या सुखेन सर्वैः सुरतं करोतु ।

पश्चाद्भगे सैन्धवदीप्यतैलैरगर्भदां पोटलिकां वृदातु ॥ ६१ ॥

जाता सगर्भेव यदा तदा सा गर्भस्य पातं सहसा करोतु ।

सदुग्धहिङ्गुसुपलाशबीजमपि प्रपीत्वा ननु गोप्यमेतत् ॥ ६२ ॥

गृञ्जनस्य च बीजानि तिलकारविके अपि ।
 गुडेन मुक्तमेतत्तु गर्भं पातयति ध्रुवम् ॥ ६३ ॥
 इति रण्डादियोषिद्वर्भनिवारणपातनविधिः ।

इति श्रीयोगतरङ्गिण्यां स्त्रीरोगनिदानचिकित्साकथनं नाम त्रिचत्वारिंशदधिकशततमस्तरङ्गः ॥ १४३ ॥

अथ चतुश्चत्वारिंशदधिकशततमस्तरङ्गः ।

अथ बालरोगनिदानम्—

त्रिविधः कथितो बालः क्षीरान्नोभयवर्तनः ।
 स्वास्थ्यं ताभ्यामदुष्टाभ्यां दुष्टाभ्यां रोगसंभवः ॥ १ ॥
 घातदुष्टं शिशुः स्तन्यं पिबन्वातगदातुरः ।
 क्षामस्वरः कृशाङ्गः स्याद्द्विषण्मूत्रमारुतः ॥ २ ॥
 स्वेदी भिन्नमलो बालः कामलापित्तरोगवान् ।
 तूष्णालुरुष्णसर्वाङ्गः पित्तदुष्टं पिबन्पथः ॥ ३ ॥
 कफदुष्टं पिबन्क्षीरं बालस्तु श्लेष्मरोगवान् ।
 निव्वार्दितो जडः शून्यकत्राक्षश्छर्दनः शिशुः ॥ ४ ॥
 शिशोस्तीव्रामतीव्रां च रोदनालक्षयेद्वज्रम् ।
 स्रोतांसि चाङ्गसंघांश्च पश्येद्यत्नान्मुहुर्मुहुः ॥ ५ ॥
 कुक्कुणकः क्षीरदोषाच्छिशूनामेव वर्त्मनि ।
 जायते तेन तन्नेत्रं कण्डुरं च स्रवेन्मुहुः ॥ ६ ॥
 शिशुः कुर्याल्ललाटाक्षिकूटनासावघर्षणम् ।
 शक्तो नार्कप्रभां द्रष्टुं न वर्त्मोन्मीलनक्षमः ॥ ७ ॥
 मातुः कुमारो गर्भिण्याः स्तन्यं प्रायः पिबन्नपि ।
 कासाग्निसादवमथुतन्द्राकाश्यारुचिभ्रमैः ॥ ८ ॥
 युज्यते कोष्ठवृद्ध्या तु तमाहुः पारिगर्भिकम् ।
 रोगं परिमवाख्यं च युञ्ज्यात्तत्राग्निदीपनम् ॥ ९ ॥
 तालुमांसे कफः क्रुद्धः कुरुते तालुकण्टकम् ।
 तेन तालुप्रदेशस्य निम्नता मूर्ध्नि जायते ॥ १० ॥

तालुपाते स्तनद्वेषः कृच्छ्रात्पानं शकृद्भवम् ।
 तृडक्षिकण्ठास्यरुजा ग्रीवादुर्धरता वमिः ॥ ११ ॥
 विसर्पस्तु शिशोः प्राणनाशनो बस्तिशीर्षजः ।
 पञ्चवर्णो महापद्मो रोगो दोषत्रयोद्भवः ॥ १२ ॥
 शङ्काभ्यां हृदयं याति हृदयाद्वा शुवं व्रजेत् ।
 क्षुद्ररोगे हि कथिते अजगल्यहिपूतने ॥ १३ ॥
 ज्वराद्या व्याधयः सर्वे महतां ये पुरादिताः ।
 बालदेहेऽपि ते तद्वद्विज्ञेयाः कुशलैः सदा ॥ १४ ॥

इति बालरोगनिदानम् ।

अथ ग्रहग्रस्तबालरोगनिदानम्—

रावण उवाच—

क्षणादुद्विजते बालः क्षणाच्चस्यति रोदिति ।
 नखैर्दन्तैर्दारयति धात्रीमात्मानमेव च ॥ १५ ॥
 उर्ध्वं निरीक्षते दन्तान्खादेत्कूजति जृम्भते ।
 भ्रुवौ क्षिपति दन्तोष्ठं फेनं वमति चासकृत् ॥ १६ ॥
 क्षामाङ्गो निशि जागर्ति शूनाङ्गो मिम्रविट्स्वरः ।
 मत्स्यशोणितगन्धिश्च न चाश्नाति यथा पुरा ॥ १७ ॥
 सामान्यग्रहजुष्टानां लक्षणं समुदाहृतम् ।
 एकनेत्रस्य गात्रस्य स्रावस्यन्दनकम्पनम् ॥ १८ ॥
 अर्धदृष्ट्या निरीक्षेत वक्रास्यो रक्तगन्धिकः ।
 दन्तान्खादति वित्रस्तः स्तन्यं नैवामिनन्दति ॥ १९ ॥
 स्कन्दग्रहगृहीतानां रोदनं चाल्पमेव च ।
 नटसंज्ञो वमेत्फेनं संज्ञावानतिरोदिति ।
 पूयशोणितगन्धत्वं स्कन्दापस्मारलक्षणम् ॥ २० ॥
 स्रस्ताङ्गो भयचकितो विहङ्गगन्धिः
 सास्रावव्रणपरिपीडितः समन्तात् ।
 स्फोटैश्च प्रचिततनुः सदाहपाके-
 विज्ञेयो भवति शिशुः क्षतः शकुन्या ॥ २१ ॥
 व्रणैः स्फोटैश्चितं गात्रं पङ्कगन्धं स्रवेदसृक् ।
 मिम्रवर्चा ज्वरो दाहो रेवतीग्रस्तलक्षणम् ॥ २२ ॥

अतीसारो ज्वरस्तृष्णा तिर्यक्प्रेक्षणरोदनम् ।
 नष्टनिद्रस्तथोद्विग्नो ग्रस्तः पूतनया शिशुः ॥ २३ ॥
 प्रसन्नवर्णवदनः शिराभिरभिसंवृतः ।
 मूत्रविड्गन्धबद्धाशी मुखमण्डिकया ग्रहे ॥ २४ ॥
 छर्दिः कासो ज्वरस्तृष्णा वसागन्धोऽतिरोदनम् ।
 स्तन्यद्वेषोऽतिसारश्च अन्धपूतनया भवेत् ॥ २५ ॥
 वेपते कासते क्षीणो नेत्ररोगो विगन्धिता ।
 छर्द्यतीसारयुक्तश्च शीतपूतनया भवेत् ॥ २६ ॥
 छर्दिस्पन्दनकण्ठास्यशोषमूर्च्छाविगन्धिता ।
 ऊर्ध्वं पश्येद्दशेद्वन्तान्नैगमेषग्रहं वदेत् ॥ २७ ॥

असाध्यलक्षणमाह—

प्रस्तब्धाक्षः स्तनद्वेषी मुह्यते वाऽनिशं मुहुः ।
 तं बालमचिराद्धन्ति ग्रहः संपूर्णलक्षणः ॥ २८ ॥
 विपरीततमः साध्यश्चिकित्सेदाचिराद्धितम् ।

इति ग्रहग्रस्तबालरोगनिदानम् ।

अथ चिकित्सा—

बालानामौषधदानमात्रामाह—

भैषज्यं पूर्वमुद्दिष्टं महतां यज्ज्वरादिषु ॥ २९ ॥
 देयं तदेव बालेऽपि मात्रा किं तु कनीयसी ।
 विडङ्गफलमात्रं तु जातमात्रस्य भेषजम् ॥ ३० ॥
 मासि मासि प्रयोक्तव्यं विडङ्गानां विवर्धनम् ।
 अब्दादूर्ध्वं कुमारानां दद्यात्कोलास्थिमात्रकम् ॥ ३१ ॥
 क्षीरान्नादे शिशौ कोलमन्नादे तदुदुम्बरम् ।
 क्षीरादस्यौषधं धात्र्यां क्षीरान्नादस्य चोभयोः ॥ ३२ ॥
 आत्मन्यन्नाशिनो देयमौषधं चेति जेज्जटः ।
 यथायोगं स्तनौ लिप्त्वा भैषज्यं पाययेच्छिशुम् ॥ ३३ ॥
 मात्रया लेङ्घयेद्धात्रीं शिशोर्नात्र विशोषणम् ।
 सर्वं निवार्यते बाले न स्तन्यं वार्यते क्वचित् ।
 स्तन्याभावे पयश्छागं गन्धं वा तनुणं पिबेत् ॥ ३४ ॥

बालानां ज्वरवान्तिरेककसनश्वासेषु शृङ्गीविषा
 कृष्णाब्दं मधुयुक्तथाऽऽर्द्रपटुहिङ्गवेलार्धमानाहके ।
 कृच्छ्रे मस्तुयुता झुटिर्द्विजगदे दंष्ट्रा शुनः कण्ठगा
 कार्श्ये क्षीरविदारिकाशृतघृतं दाहादिके नीलिका ॥ ३५ ॥
 मृत्पिण्डेनाग्नितप्तेन क्षीरसिक्तेन सोष्मणा ।
 स्वेदयेदुत्थितं नाभिं शोथस्तेनोपशाम्यति ॥ ३६ ॥
 दग्धेन च्छागशकृता नाभिपाकेऽवचूर्णनम् ।
 त्वग्भूत्या क्षीरिणां वाऽपि कुर्याच्चन्दनरेणुना ॥ ३७ ॥
 नाभिपाके शिलालोधप्रियङ्गुमधुकैः शृतम् ।
 तैलमभ्यञ्जने शस्तमेमिर्वाऽप्यवचूर्णनम् ॥ ३८ ॥
 बालो योऽचिरजातः स्तन्यं गृह्णाति नो तदा तस्य ।
 सैन्धवधात्रीमधुघृतपथ्याकल्केन घर्षयेज्जिह्वाम् ॥ ३९ ॥
 मुस्तामयावचाबाह्मीकतकं क्षौद्रसर्पिषा ।
 वर्णायुःकान्तिजननं लेहं बालस्य दापयेत् ॥ ४० ॥

अथ मूर्वाद्यवलेहः—

मूर्वाव्योषवचाकोलजम्बूत्वग्दारुसर्षपाः ।
 सपाठा मधुना लीढा स्तन्यदोषनिबर्हणाः ॥ ४१ ॥

इति मूर्वाद्यवलेहः ।

अथ भद्रमुस्ताक्राथः—

पीतं पीतं वमति यः स्तन्यं तन्मधुसर्पिषा ।
 द्विवार्ताकीफलरसं पञ्चकोलं च लेहयेत् ॥ ४२ ॥
 सक्षौद्रशर्करां तिक्तां लीढ्वा बालज्वरं जयेत् ।
 मद्रमुस्तामयानिम्बपटोलमधुकैः कृतः ॥ ४३ ॥
 क्राथः कोष्णस्तु बालानां सकलज्वरनाशनः ।

इति मद्रमुस्ताक्राथः ।

अथ पलंकषादिधूपः—

पलंकषावचाकुष्ठं गजचर्माविचर्म च ॥ ४४ ॥

निम्बस्य पत्रं माक्षीकं सर्पिर्युक्तं च धूपनम् ।

ज्वरवेगं निहन्त्याशु बालकानां विशेषतः ॥ ४५ ॥

इति पलंकषादिधूपः ।

अथ मूर्वाद्युद्धर्तनम्—

मूर्वानिशासर्षपरामसेनश्वेतासमङ्गाम्बुदकारवीणाम् ।

छागीपयोभिः सह पेयितानामुद्धर्तनं स्यान्मधुना शिशूनाम् ॥ ४६ ॥

इति मूर्वाद्युद्धर्तनम् ।

अथ बिल्वादिकाथावलेहौ—

शृङ्गयद्कृष्णातिविषं विचूर्ण्य लेहं विदध्यान्मधुना शिशूनाम् ।

कासज्वरच्छर्दिभिरर्दितानां समाक्षिकां वाऽतिविषामयैकाम् ॥ ४७ ॥

बिल्वं च पुष्पाणि च धातकीनां जलं सलोध्रं गजपिप्पलीं च ।

काथावलेहौ मधुना विमिश्रौ बालेषु योज्यावतिसारितेषु ॥ ४८ ॥

इति बिल्वादिकाथावलेहौ ।

अथ नागरादिकाथः—

नागरातिविषामुस्ताबालकेन्द्रयवेः शृतम् ।

कुमारं पाययेत्प्रातः सवातीसारनाशनम् ॥ ४९ ॥

इति नागरादिकाथः ।

अथ लोध्राद्यवलेहः—

लोध्रेन्द्रयवधान्याकधात्रीह्रीबेरमुस्तकम् ।

मधुना लेहयेद्बालं ज्वरातीसारनाशनम् ॥ ५० ॥

इति लोध्राद्यवलेहः ।

अथ मुस्ताद्यवलेहः—

घनकृष्णारुणाशृङ्गीचूर्णं क्षौद्रेण योजितम् ।

शिशोर्ज्वरातिसारघ्नं कासश्वासवमीहरम् ॥ ५१ ॥

इति मुस्ताद्यवलेहः ।

अथ समङ्गाद्यवलेहः—

समङ्गोत्पलमाञ्जिष्ठोत्तिरीटतिलचन्दनम् ।

छागीक्षीरेण सक्षौद्रं रक्तातीसारनाशनम् ॥ ५२ ॥

इति समङ्गाद्यवलेहः ।

अथाष्टमङ्गलम्—

पुष्करातिविषायासकणाशूङ्गीरजो लिहेत् ।
 मधुना मुच्यते बालः कासैः पञ्चभिरुच्छ्रितैः ॥ ५३ ॥
 तुगा च क्षौद्रसंलीढा कासश्वासौ शिशोर्जयेत् ।
 दुरालभां कणां द्राक्षां पथ्यां क्षौद्रेण लेहयेत् ॥ ५४ ॥
 त्रिरात्रं पञ्चरात्रं वा कासश्वासहरीं शिशोः ।
 चूर्णं कटुकरोहिण्या मधुना सह योजितम् ॥ ५५ ॥
 हिकां प्रशमयेत्क्षिप्रं शिशोश्छर्दिश्च दुस्तराम् ।
 षट्कोलत्रिफलारिष्टहरिद्राकथितं पिबेत् ॥ ५६ ॥
 बाह्विस्फोटवीसर्पज्वराणां शान्तये शिशुः ।
 कणोषणसिताक्षौद्रसूक्ष्मैलासैन्धवैः कृतः ॥ ५७ ॥
 मूत्रग्रहे प्रदातव्यो बालानां लेह उत्तमः ।
 घृतेन सिन्धुविश्वैलाहिक्कुमार्गीरजो लिहेत् ॥ ५८ ॥
 आनाहं वातिकं शूलं जयत्तोयेन वा शिशुः ।
 पिष्ट्वा गन्धर्वबीजानि त्वास्तुविद्भानिम्बुर्वोरिणा ॥ ५९ ॥
 नाभौ गुदे वा लेपेन शिशूना रेचनं परम् ।
 इन्दुलोचननेत्राणि शिखिभागं हि योजयेत् ॥ ६० ॥
 झुटिगन्धकमुद्गद्वारशतपुष्पा विचूर्णिताः ।
 माषद्वयं मवा दुग्धैः सेवयेद्दिनपञ्चकम् ॥ ६१ ॥
 रेचयेन्मृत्तिकां शुद्धा शिशूनां हितमौषधम् ।
 सूक्ष्मुन्दरीमलो माषो हरिद्रा बिल्वपत्रकम् ॥ ६२ ॥
 इदं सुरेशयववद्धूपनं यः प्रयोजयेत् ।
 निहन्ति रोदनं रात्रौ बालकस्य न संशयः ॥ ६३ ॥

फलत्रिकं लोधपुनर्नवे च सशृङ्गवेरं बृहतीफलं च ।
 आलेपनं श्लेष्महरं सुखोष्णं कुकूणके कार्यमुदीहरन्ति ॥ ६४ ॥
 व्योषं समृङ्गं समनःशिलालं करञ्जबीजं च सुपिष्टमेतत् ।
 कण्डूदितानामथ वर्त्मनां तु भेष्टं शिशूनां नयने विदध्यात् ॥ ६५ ॥
 त्यजेत्पयस्तु गर्भिण्या बालकः * पारिमर्शके ।
 औषधं मक्षयेदत्र विशेषादग्निदीपनम् ॥ ६६ ॥

तालुपाके यवक्षारमधुभ्यां प्रतिसारणम् ।
 हरीतकीवचाकुष्ठकल्कं माक्षिकसंयुतम् ॥ ६७ ॥
 पीत्वा कुमारः स्तन्येन मुच्यते तालुकण्टकात् ।
 मुखपाके तु बालानामाश्रसारमयोरजः ॥ ६८ ॥
 गैरिकं क्षौद्रसंयुक्तं भेषजं सरसाञ्जनम् ।
 दार्वीयष्ट्याभयाजाजीपत्रक्षौद्रैस्तु धावनम् ॥ ६९ ॥
 मुखपाकस्य तु श्रेष्ठं लेपस्त्वश्वत्थवल्कजः ।
 शङ्खपुष्प्यञ्जनरजो बालानां गुदपाकनुत् ॥ ७० ॥
 श्वजिह्वाभस्मना लेपः पीतं वा सितचन्दनम् ।
 वचा कुष्ठं तथा ब्राह्मी सिद्धार्थकमथापि च ॥ ७१ ॥
 सारिवा सैन्धवं चापि पिप्पली घृतमष्टमम् ।
 मेध्यं घृतमिदं सिद्धं पातव्यं मासमेव च ॥ ७२ ॥
 दृढश्रुतिः क्षिप्रमेधाः कुमारो बुद्धिमान्भवेत् ।
 न पिशाचा न रक्षांसि न भूता न च मातरः ॥ ७३ ॥
 बाधन्ते च कुमाराणां पिबतामष्टमङ्गलम् ।

इत्यष्टमङ्गलम् ।

अथ सोमघृतम्—

सिद्धार्थकवचां ब्राह्मीं शङ्खपुष्पीं पुनर्नवाम् ॥ ७४ ॥
 पयस्यां मधुयष्टीं च कटुतैलां फलत्रयम् ।
 सारिवे रजनैः पाठां मृङ्गदारुसुवर्चलाः ॥ ७५ ॥
 मञ्जिष्ठां त्रिफलां श्यामां वृषपुष्पं सगैरिकम् ।
 भिषक्पक्त्वा घृतप्रस्थं सम्यङ्मन्त्राभिमन्त्रितम् ॥ ७६ ॥
 प्रसवेद्गर्भिणी नारी षण्मासान्सा प्रयोजयेत् ।
 सर्वथा जनयेत्पुत्रं सर्वामयविवर्जितम् ॥ ७७ ॥
 अस्य प्रयोगात्कुक्षिस्थः स्फुटवाग्ब्याहरत्यपि ।
 योनिदुष्टाश्च या नार्यो रेतोदुष्टाश्च ये नराः ॥ ७८ ॥
 बन्ध्याऽपि लभते पुत्रं शूरं पण्डितमानिनम् ।
 जङ्गलदमूकत्वं पानादेवापकर्षति ॥ ७९ ॥

सप्तरात्रप्रयोगेण नरः श्रुतिधरो भवेत् ।

नाग्निर्दहति तद्वेश्म न वज्रमपि हन्ति च ।

न तत्र व्यथते बालो यत्राऽऽस्ते सोमसंज्ञकम्* ॥ ८० ॥

इति सोमघृतम् ।

अथ ग्रहग्रस्तबालरोगचिकित्सा—

तत्र सामान्यविधिः—

संभेदकूलद्वयमृत्तिकाया मूर्तिं विधायैककरप्रमाणाम् ।

त्रिलोचनां शूलकपालपाणिं जटाधरां रुद्रतनुं दधानाम् ॥

मुजङ्गभूषां भसितोज्ज्वलाङ्गीमङ्गीकृताशेषललामलीलाम् ॥ ८१ ॥

अत्र मूर्तेः समावाह्य रुद्रं सर्वग्रहाधिपम् ।

नन्दादिपूतनायुक्तं पूजयेच्चन्दनादिभिः ॥ ८२ ॥

विरच्य तण्डुलैश्चूर्णैश्चतुरस्रं करोन्मितम् ।

तत्र संस्थाप्य पूर्वास्यां तदर्चाया विधिं चरेत् ॥

तत्तन्मन्त्रैर्विचित्रैश्च नानोपकरणादिभिः ॥ ८३ ॥

तत्र क्रमो यथा—

गोमयलिप्तायां भूमौ तण्डुलचूर्णेन हस्तमात्रं चतुरस्रं कृत्वा तन्मध्ये पूर्वोक्तां ग्रहाधिपमूर्तिं संस्थाप्योमद्येति स्मृत्वाऽमुकनाम्नोऽमुकगोत्रो-
त्पन्नस्यैतस्य बालस्य शरीरस्थितसर्वग्रहशान्त्यर्थं सर्वग्रहबलिं ब्राह्मण-
द्वारा कारयिष्ये स्वयं वा करिष्ये इति संकल्प्य तस्यां सर्वग्रहप्राण-
प्रतिष्ठां विधाय 'सर्वग्रहाधिपतये हुं फट् स्वाहा' इति मन्त्रेण स्नान-
वस्त्रचन्दनाक्षतधूपदीपनैवेद्यसप्तपताकासप्तप्रदीपादिकं विधाय ततो
गुडोदकमैत्स्यमांससुरावटकान्नस्विन्नगोधूमादि विस्तीर्णवंशपात्रस्था-
यास्तस्याः पुरस्तात्परिवेश्य 'ॐ नमो भगवते गरुडाय त्र्यम्बकाय
सत्यसुवसत्यसुव हुं फट् स्वाहा इति मन्त्रं पठित्वा बालकेन मुष्टिमात्र-
मन्त्रं संग्राह्य पूर्वपारेवेशितेऽन्ने त्याजयेत् । ततोऽन्यन्मुष्टिमात्रमन्त्रं गृहीत्वा
'ॐ फट् वैनतेयाय नमः' ततोऽन्यदपि 'ॐ ह्रीं क्षः' इति वारत्रयं
बलिं दत्त्वा बालप्रमाणपुष्पमालां गृहीत्वा बालोपरि त्रिः परिभ्राम्य
'ॐ कारिणि स्वर्णपक्षि बालकं रक्ष रक्ष स्वाहा' इति मन्त्रेण तां

* ग. फलत्रयं त्वत्र दाक्षा काश्मर्य(स्तु) परुषकम् ।

१ क. 'य वस्तमुण्डोद' । २ क. मत्येयां ।

कण्ठेऽर्पयेत् । ततस्तत्सर्वं रात्रौ चतुष्पथे स्थापयित्वा पश्चादपश्यन्नेव
गृहमागच्छेत् । ततो माहेश्वरधूपेन बालं धूपयेत् । स यथा—

कार्पासास्थिमयूरपिच्छबृहतीनि*माल्यपि+ण्डीतक-
त्वङ्गमांसीदि×षदंशविट्पुषवचाकेशाहिनिर्मोककैः ।

—नागेन्द्रद्विजहिङ्गुशू=ङ्गमरिचैस्तुल्यैः कृतं धूपनं

८४ ॥ कृत्योन्मादपिशाचराक्षससुरावेशग्रहघ्नः स्मृतः ॥ ८४ ॥

इति माहेश्वरो धूपः ।

एवं त्रिदिने कुर्यात् । ततश्चतुर्थे दिने चतुरो ब्राह्मणान्मीजयेच्छुभं
भवति ।

इति सामान्यपूतनाविधिः ।

अथ विशेषविधिः—

प्रथमे दिवसे मासे वर्षे नन्दाशिशोर्ग्रहः ।

तया गृहीतमान्नस्य प्रथमं भवति ज्वरः ॥ ८५ ॥

कुन्थत्यनेकधा रोदित्याकारं कुरुतेऽपि च ।

स्तन्यं न गृह्णाति शिशुस्तद्वलिं शुभदं शृणु ॥ ८६ ॥

नदीकूलद्वयान्मृत्क्षामानीयास्याश्च पुत्तलीम् ।

कृत्वा शुक्रोपकरणैः शुक्रान्नकुसुमाम्बरैः ॥ ८७ ॥

शुक्रसप्तध्वजैः सप्तदीपैर्गन्धाक्षतादिभिः ।

गुडाम्बुमांसमत्स्याद्यैर्मध्याह्ने बलिमाहरेत् ॥ ८८ ॥

पूर्वस्यां दिशि पिष्टस्य वेदिकायां चतुष्पथे

अश्वत्थपत्रे सप्तांशान्कृत्वा दद्याद्वलिं शिशुः ॥ ८९ ॥

ॐ ह्रीं ह्रीं नन्दे प्रथमदिनमासवर्षग्रहे इमं बलिं गृह्ण गृह्ण पुन
बालं त्यज त्यज एतस्य सकलबाधां हन हन स्वाहा ।

इति बलिमन्त्रः ।

ततो यथाशक्ति हेम वैक्षिणां दद्यात् । ततोऽश्वत्थपत्रेण शान्त्युदकेन
बालमभिषिञ्चेत् 'शान्तिरस्तु तुष्टिरस्तु पुष्टिरस्तु यच्छ्रेयस्तदस्तु' इति ।
ततो रसोनसिद्धार्थमेषशूङ्गनिम्बपत्रशिवनिर्माल्यैर्बालं धूपयेत् ।

* क. बिल्वम् । + क. गेळफळ । × क. मोज्यारविट् । — क. हस्तिदन्तः । = क. गोशू-
भम् । ८ क. स्तन्यः ।

धूपमन्त्रो यथा—

‘ॐ नमो नारायणाय हन हन मुञ्च मुञ्च स्वाहा’ । ततश्चतुर्थेऽहनि चतुरो ब्राह्मणान्भोजयेत्ततः संपद्यते शुभम् ।

द्वितीये दिवसे मासे वर्षे गृह्णाति मातरा ।

मुनन्दा नामतस्तस्य प्रथमं भवति ज्वरः ॥ ९० ॥

उन्मीलयति नो नेत्रे सोऽङ्गमुद्वेजयत्यपि ।

न शेते रोदिति स्तन्यं न गृह्णाति च कुन्थति ॥ ९१ ॥

तस्या बलिर्यथा—

प्रस्थैकेन तण्डुलेन शरावं पूरयित्वा दधि गुडघृतमिश्रितं वेदिकां विधाय गन्धताम्बूलपीतपुष्पपीतसप्तपताकाः सप्तकलशाः सप्त दीपाः सप्तस्वस्तिका मत्स्यादि सर्वं संपाद्य पश्चिमस्यां दिशि चतुष्पथे संध्यायां बलिर्देयः । एवं दिनत्रयं कुर्यात् । ततः शान्त्युक्तेन स्नानम् । शिवनिर्माल्यसिद्धार्थकमार्जारलोमोशीरबालकघृतैर्बालं धूपयेत् ।

बलिधूपयोर्मन्त्रो यथा—

‘ॐ नमो रावणाय हन हन मुञ्च मुञ्च हुं फट् स्वाहा’ । ततश्चतुर्थेऽहनि चतुरो ब्राह्मणान्भोजयेत् ।

तृतीये दिवसे मासे वर्षे च पूतनानामग्रहः । तद्गृहीतलक्षणं यथा—

स्तन्यं न गृह्णाति निबद्धमुष्टिः क्रन्दत्यकस्मादुपरीक्षते च ।

उद्वेजयत्यङ्गमकाण एव कुमारकः पूनतया गृहीतः ॥ ९२ ॥

तद्वलिर्यथा—

नक्षत्रमयकूलमृत्तिकया द्विमुजां प्रलम्बपयोधरां त्रिनेत्रां बालं स्तन्यं पाययन्तीं लालयन्तीं च कृत्वा रक्तोपचारैः पूर्वोक्तैर्मत्स्यादिमिर्दाक्षिणस्यां दिशि चतुष्पथेऽपराह्णे बलिर्देयः । शिवनिर्माल्यसर्षपगुग्गुलुमेष-शृङ्गेर्धूपयेत् । एवं दिनत्रयम् ।

बलिधूपयोर्मन्त्रो यथा—

‘ॐ नमो रावणाय हन हन मुञ्च मुञ्च त्रासय त्रासय स्वाहा’ । चतुर्थे दिने चतुरो ब्राह्मणान्भोजयेत् । ततः संपद्यते शुभम् ।

चतुर्थे दिवसे मासे वर्षे गृह्णाति बालकम् ।

मुखमण्डितिका नाम्ना ग्रहस्तल्लक्षणं यथा ॥ ९३ ॥

उन्मीलयति दृग्द्वन्द्वं ग्रीवां नमयति क्षणात् ।

मुखमण्डितिकाग्रस्तः स्तन्यं गृह्णाति नार्भकः ॥ ९४ ॥

तद्वलिर्यथा—

नद्युमयकूलमुदा पुत्तलीं द्विभुजां कपालकर्तृकाहस्तां नीलोपचारे-
नीलदशध्वजैश्चतुर्द्रोपस्त्रयोदशस्वास्तिकैः सह बलिर्देयः । मत्स्यमांससु-
रान्नपिण्डं पत्रावल्यां स्थापयित्वा उत्तरस्यां दिश्यपराह्णे चतुष्पथे ।
' ॐ नमो रावणाय हन हन मुञ्च मुञ्च स्वाहा ' चतुर्थेऽहनि चतुरो
ब्राह्मणान्भोजयेत् । धूपोऽत्र माहेश्वर एव । एवं दिनत्रयम् । ततः
संपद्यते शुभम् ।

पञ्चमे दिवसे मासे वर्षे गृह्णाति बालकम् ।

ग्रहः स पूतना नाम्ना तल्लिङ्गं पूतनासवत् ॥ ९५ ॥

कुलालचक्रमृत्तिकया पूर्वोक्तलक्षणां पुत्तलिकां कृत्वा शुक्लगन्धोगु-
पचारैः पञ्चध्वजैः पञ्चवटकैः पञ्चदीपैः श्वेतपुष्पैः सहैशान्यां दिशि
चतुष्पथे नक्तं बलिर्देयः । शान्त्युदकेन बालमभिषिञ्चेत् । शिवनिर्मा-
ल्यसर्पनिर्मोकगुग्गुलुनिम्बपत्रवालकघृतैर्बालं धूपयेत् ।

उभयोर्मन्त्रो यथा—

' ॐ नमो नारायणाय नमश्चूर्णय स्वाहा ।

चतुर्थेऽहनि चतुरो ब्राह्मणान्भोजयेत् ।

षष्ठे दिवसे मासे वर्षे शकुनिर्नाम ग्रहस्तल्लक्षणम् ।

जाग्रत्यहर्निशं चोर्ध्वं वीक्षते गात्रमेदवान् ।

अतीसारी ज्वरी वाऽपि शकुनिग्रस्तबालकः ॥ ९६ ॥

तद्वलिर्यथा—

पिष्टकेन पुत्तलिकां कृत्वा शुक्लरक्तपीतैः पुष्पैरक्षतेर्मन्धैः प्रदीपैस्ता-
म्बूलेन च पीतदशध्वजदशस्वास्तिकदशवटकैः सह क्षीरजम्बूतिलमत्स्य-
मांससुरान्नपिण्डमाग्नेय्यां दिशि मध्याह्ने चतुष्पथे बलिर्देयः । शान्त्यु-
दकेन स्नानं शिवनिर्माल्यसर्पनिर्मोकपुसनिम्बपत्रैर्धूपः ।

उभयोर्मन्त्रो यथा—

' ॐ नमो नारायणाय चूर्णय हन हन स्वाहा । चतुर्थे ब्राह्मणभो-
जनं ततः शुभमुत्पद्यत इति ।

सप्तमे दिने मासे वर्षे वा शुष्करेवती नाम मातृका बालं गृह्णाति ।

शुष्करेवतिकाग्रस्तो गात्रमुद्वेजयत्यथ ।

मुष्टिं बध्नाति विभ्रान्तनेत्रः स्याद्बालकोऽसकृत् ॥ ९७ ॥

रक्तशुक्लैर्गन्धादिभिः कृशरासुरामांसमीनपिण्डं त्रयोदशशङ्कुली-
त्रयोदशदीपत्रयोदशस्वस्तिकैर्ध्वजैश्च सह पश्चिमस्यां दिश्यपराह्णे
ग्रामनिष्काशप्रदेशे बलिं दद्यात् । शान्त्युदकेन स्नानम् । ' ॐ नमो
रावणाय त्रैलोक्यविद्रावणाय संमोक्षय ज्वल ज्वल हन हन हुं फट्
स्वाहा ' गुग्गुलुमेषशृङ्गसर्षपोशीरवालकघृतैर्धूपयेद्बालम् । चतुर्थेऽह्नि
चतुरो ब्राह्मणान्भोजयेत् । ततः संपद्यते शुभम् ।

अष्टमे दिवसे मासे वर्षे आर्यका नाम पूतना । तद्ब्रस्तलक्षणं यथा—

गृध्रगन्धः पूतिगन्धो नाऽऽहारं विन्दतेऽसकृत् ।

उद्वेजयति गात्राणि बाल आर्यकयाऽऽहृतः ॥ ९८ ॥

रक्तपीतचन्दनपुष्पाभरणवस्त्रध्वजदीपैः सह मत्स्यमांसमद्यान्नवटक-
बलिः प्रत्यूषे पूर्वस्यां दिशि देयः । ' ॐ नमो रावणाय त्रैलोक्यविद्रा-
वणाय संमोक्षय संमोक्षय ज्वल ज्वल हन हन ॐ हुं फट् स्वाहा ' ।
अत्रापि माहेश्वरो धूपः । शान्त्युदकेनाभिषेकः । चतुर्थेऽह्नि ब्राह्मण-
भोजनम् ।

नवमे सूतिकानाम्नी पूतना तद्ब्रहीतलक्षणं यथा—

गात्रभेदो वमिभ्रान्तिर्मुष्टिबन्धोऽतिनिद्रता ।

सूतिकाग्रहग्रस्तस्य ज्वरश्चोत्पद्यते शिशोः ॥ ९९ ॥

तद्ब्रस्तबालकोपद्रवशान्तिर्यथा—

नद्युभयतटमृत्तिकायाः पुत्तलिकां द्विभुजां त्रिलोचनां कृत्वा शुक्ल-
वाससाऽऽच्छाद्य शुक्लपुष्पाद्यैः शुक्लत्रयोदशध्वजदीपस्वस्तिकैस्त्रयोदश-
वटकमत्स्यमांससुरान्नरुत्तरदिशि ग्रामनिष्काशप्रदेशे बलिर्देयः । शान्त्यु-
दकेनाभिषेकः । गुग्गुलुगोशृङ्गानिम्बपत्रश्वेतसर्षपघृतैर्धूपः । ' ॐ नमो
रावणाय चतुर्भुजाय हन हन स्वाहा ' । इति बल्युत्सर्गमन्त्रः । चतुर्थे
ब्राह्मणभोजनम् ।

दशमे दिवसे मासे वर्षे निर्ऋता नाम पूतना ।

उद्वेजयति गात्राणि रोदित्यां कुरुतेऽपि च ।

मूत्रं पुरीषं गृह्णाति बालो निर्ऋतया हृतः ॥ १०० ॥

समुद्रमृत्तिकया महानदीकूलद्वयमृत्तिकया वा पूर्ववत्पुत्तलीकां कृत्वा रक्तचन्दनरक्तपुष्परक्तवस्त्ररक्तपञ्चध्वजपञ्चदीपपञ्चस्तिकपञ्चपूरिका-
मत्स्यमांसान्नादिभिर्वायव्यां दिशि संध्यायां बलिर्देयः । शान्त्युदकेन स्नानम् । काकविष्ठागोमांसगोशृङ्गरसोनमाज्जिलोमनिम्बयत्रघृतैर्बालकं धूपयेत् । ' ॐ नमो रावणाय चूर्णिताय मुञ्च मुञ्च स्वाहा । ' चतुर्थे ब्राह्मणभोजनं ततः संपद्यते सुखम् ।

एकादशे पिलपिण्डिका नाम पूतना ।

पिलपिण्डिकया ग्रस्तो नाऽऽहारं विदन्ते शिशुः ।

ऊर्ध्वहृष्टिर्गात्रभङ्गयुक्तः क्रन्दति दीर्घशः ॥ १ ॥

पिष्टकेन पूर्ववत्पुत्तलीं कृत्वा पूर्वोक्तैः पीतैरुपचारैः पूर्वोक्तस्थाने बलिः । निर्माल्यमहिषशृङ्गपुरनिर्मोकघृतैर्बालकं धूपयेत् । ' ॐ नमो रावणाय चूर्णिताय मुञ्च मुञ्च स्वाहा ' चतुर्थे ब्राह्मणभोजनम् । ततः संपद्यते शुभम् ॥ १ ॥

द्वादशे दिवसे मासे वर्षे कामुका नाम बालग्रहः ।

कामुकातः शिशुर्हासं कुरुते तर्जयत्यपि ।

मुहुर्मुहुर्निश्वासिति कृशो हुं न करोति च ॥ २ ॥

क्षीरेण पुत्तलीं कृत्वा गोस्तण्डुलरजोयुता ।

श्वेतगन्धादिनाऽभ्यर्च्य सप्तदीपध्वजादिभिः ॥ ३ ॥

मत्स्यमांससुरापुष्पभक्तकरम्भैस्तद्वलिर्मतः ।

ऐशान्यां दिशि नक्तं तु चतुर्मूर्गे तदर्पणम् ॥ १०४ ॥

ॐ नमो रावणाय मुञ्च मुञ्च हन हन स्वाहा " इति मन्त्रेण बलिधूपौ देयौ । निर्माल्यपुरनिर्मोकसर्षपघृतैर्धूपः । शान्त्युदकेनाभि-
षेकः । चतुर्थेऽह्नि ब्राह्मणभोजनम् । एवं दिनत्रयं कर्तव्यं ततः शुभं संपद्यते ।

इति रावणकृते कौमारतन्त्रे पूतनाविधानम् ।

इति श्रीयोगतरङ्गिण्यां बालरोगनिदानचिकित्साकथनं नाम

चतुश्चत्वारिंशदधिकशततमस्तरङ्गः ॥ १४४ ॥

(अथ पञ्चचत्वारिंशदधिकशततमस्तरङ्गः ।)

अथ विषनिदानम्—

स्थावरं जङ्गमं चेति विषं प्रोक्तमकृत्रिमम् ।
 कृत्रिमं गरसंज्ञं तु क्रियते विविधौषधैः ॥ १ ॥
 स्थावरं जङ्गमं चेति द्विविधं विषमुच्यते ।
 मूलाद्यात्मकमाद्यं स्यात्परं सर्पादिसंभवम् ॥ २ ॥
 निद्रां तन्द्रां कुमं दाहं संपाकं रोमहर्षणम् ।
 शोथं चैवातिसारं च कुरुते जङ्गमं विषम् ॥ ३ ॥
 स्थावरं तु ज्वरं ह्रिक्कां दन्तहर्षं गलग्रहम् ।
 फेनच्छर्द्यरुचिश्वासं मूर्च्छां च कुरुते विषम् ॥ ४ ॥
 इङ्गितज्ञो मनुष्याणां वाक्चेष्टामुखवैकृतैः ।
 जानीयाद्विषदातारमेभिलिङ्गैश्च बुद्धिमान् ॥ ५ ॥
 न ददात्युत्तरं पृष्टो विवक्षुर्मोहमेति च ।
 अपार्थं बहुसंकीर्णं भाषते चापि मूढवत् ॥ ६ ॥
 हसत्यकस्मात्स्फुटति चाङ्गुलीभिलिखेन्महीम् ।
 वेपथुश्चास्य भवति त्रस्तश्चान्योन्यमीक्षते ॥ ७ ॥
 विवर्णवक्त्रो ध्यामश्च नखैः किञ्चिच्छिनत्यपि ।
 वर्तते विपरीतं च विषदाता विचेतनः ॥ ८ ॥
 आलभेत सकृद्दीनो करेण च शिरोरुहान् ।
 उद्वेष्टनं मूलविषैः प्रलापो मोह एव च ॥ ९ ॥
 जृम्भणं वेपनं श्वासो ज्ञेयं पत्रविषेषु च ।
 मुष्कशोफः फलविषैर्दाहोऽन्नद्वेष एव च ॥ १० ॥
 भवेत्पुष्पविषैश्छर्दिराध्मानं श्वास एव च ।
 त्वक्सारनिर्यासविषैरुपयुक्तैर्भवन्ति हि ॥ ११ ॥
 आस्यदौर्मन्ध्यपारुष्यशिरोरुक्कफसंस्रवाः ।
 फेनागमः क्षीरविषैर्विद्धमेदो गुरुजिह्वता ॥ १२ ॥
 हृत्पीडनं धातुविषैर्मूर्च्छा दाहश्च तालुनि ।
 प्रायेण प्राणघातीनि विषाण्येतानि निर्दिशेत् ॥ १३ ॥
 सद्यः क्षतं जायते यस्य जन्तोः स्रवेद्रक्तं पच्यते चाप्यमीक्षणम् ।
 कृष्णीमूतं क्लिन्नमत्यर्थपूति क्षतान्मांसं शीर्यते यस्य चापि ॥ १४ ॥

तूष्णा मूर्छा ज्वरदाहौ च यस्य दिग्धाहतं तं मनुजं व्यवस्येत् ।
लिङ्गान्येतान्येव कुर्यादभिन्नैर्वर्णे विषं यस्य दत्तं प्रमादात् ॥१५॥
इति स्थावरविषम् ।

अथ जङ्गमविषम्—

वातपित्तकफात्मानो भोगिमण्डलिराजिलाः ।
यथाकमं समाख्याता ह्यन्तरा द्वन्द्वरूपिणः ॥ १६ ॥
दंशो भोगिकृतः कृष्णः सर्ववातविकारकृत् ।
पीतो मण्डलिजः शोथो मृदुः पित्तविकारवान् ॥ १७ ॥
राजिलोत्थो भवेद्दंशः स्थिरः शोथश्च पिच्छिलः ।
पाण्डुस्त्रिग्वधोऽतिसान्द्रासृक्सर्वश्लेष्मविकारकृत् ॥ १८ ॥
मघार्द्राकृत्तिकाश्लेषाभरणीषु प्रयत्नतः ।
पूर्वासु च प्रदष्टस्य कस्यचिज्जोवितं भवेत् ॥ १९ ॥
नवमी पञ्चमी पष्ठी तथा कृष्णचतुर्दशी ।
चतुर्थी चात्र दष्टानां सर्पैः कस्यापि जीवनम् ॥ २० ॥
अश्वत्थदेवायतनश्मशानवल्मीकसंध्यासु चतुष्पथेषु ।
याम्ये च पैत्र्ये परिवर्जनीयाः कुक्षौ शिरोमर्मसु ये च दष्टाः ॥२१॥
दार्ढीकराणां विषमाशु हन्ति सर्वाणि चोक्तानि यथाक्रमेण ।
अजीर्णपित्तातपपीडितेषु बालेषु वृद्धेषु बुभुक्षितेषु ॥ २२ ॥
क्षीणक्षते मेहिनि कुष्ठजुष्टे रूक्षेऽबले गर्भवतीषु चापि ।
शस्त्रक्षते यस्य न रक्तमेति राज्यो लताभिश्च न संभवन्ति ॥२३॥
शीताभिरङ्घ्रिश्च न रोमहर्षो विषाभिभूतं परिवर्जयेत्तम् ।
जिह्वं मुखं यस्य च केशपातो नासावसादश्च सकण्ठभङ्गः ॥२४॥
कृष्णः सरक्तः श्वयथुश्च दंशो हन्वोः स्थिरत्वं च स वर्जनीयः ।
वर्तिर्धना यस्य निरेति वक्त्राद्रक्तं स्रवेदूर्ध्वमधश्च यस्य ॥ २५ ॥
दंष्ट्रानिपाताश्चतुरोऽपि यस्य तं चापि वैद्यः परिवर्जयेत् ।
उन्मत्तमत्यर्थमुपद्रुतं वा हीनस्वरं वाऽप्यथ वा विवर्णम् ॥ २६ ॥
सारिष्टमत्यर्थमवेगिनं च जह्याद्द्रुतं तत्र न कर्म कुर्यात् ।

अथ दूषीविषमाह—

जीर्णं विषमौषधिभिर्हतं वा दावाग्निवातातपशोषितं वा ॥ २७ ॥

स्वभावतो वा गुणविप्रहीनं विषं हि दूषीविषतामुपैति ।
 वीर्यातिभावान्न निपातयेत्तत्कफान्वितं वर्धगुणानुबन्धि ॥ २८ ॥
 तेनार्दितो भिन्नपुरीषवर्णो विगन्धिवैरस्ययूतः पिपासी ।
 मूर्छाभ्रमं गद्गदवाग्वमिं च विचेष्टमानोऽरतिमाप्नुयाद्वा ॥ २९ ॥
 आमाशयस्थे कफवातरोगी पक्वाशयस्थेऽनिलपित्तरोगी ।
 भवेत्समुद्ध्वस्तशिरोरुहाङ्गो विलूनपक्षस्तु यथा विहङ्गः ॥ ३० ॥
 स्थितं रसादिष्वथ वा यथोक्तान्करोति धातुप्रभवान्विकारान् ।
 कोपं च शीतानिलदुर्दिनेषु यात्याशु पूर्वं शृणु तस्य रूपम् ॥ ३१ ॥
 निद्रा गुरुत्वं च विजृम्भणं च विश्लेषहर्षावथ चाङ्गमर्दः ।
 ततः करोत्यन्नमदाविपाकावरोचकं मण्डलकोठजन्म ॥ ३२ ॥
 मांसक्षयं पादकरप्रशोथं मूर्छां तथा छर्दिमथातिसारम् ।
 दूषीविषं श्वासतृषाज्वरांश्च कुर्यात्प्रवृद्धिं जठरस्य चापि ॥ ३३ ॥
 उन्मादमन्यज्जनयेत्तथाऽन्यदानाहमन्यत्क्षपयेच्च शुक्रम् ।
 दुःसाध्यमन्यज्जनयेच्च कुष्ठं तांस्तान्विकारांश्च बहुप्रकारान् ॥ ३४ ॥
 दूषितं देशकालान्नदिवास्वप्नैरभीक्षणशः ।
 यस्मात्संदूषयेद्धातून्स्तस्माद्दूषीविषं स्मृतम् ॥ ३५ ॥
 साध्यमात्मवतः सद्यो याप्यं संवत्सरोषितम् ।
 दूषीविषमसाध्यं तु क्षीणस्याहितसेविनः ॥ ३६ ॥
 सौभाग्यार्थं स्त्रियः स्वेदरजोनानाङ्गजान्मलान् ।
 शत्रुप्रयुक्तांश्च गरान्प्रयच्छन्त्यन्नमिश्रितान् ॥ ३७ ॥
 तैः स्यात्पाण्डुः कृशोऽल्पाग्निर्गरश्चास्योपजायते ।
 मर्मप्रधमनाध्मानं हस्तयोः शोथं एव च ॥ ३८ ॥
 जठरं ग्रहणीदोषो यक्ष्मा गुल्मः क्षयो ज्वरः ।
 एवंविधस्य वाऽन्यस्य व्याधेरलिङ्गानि दर्शयेत् ॥ ३९ ॥

इति दूषीविषनिदानम् ।

अथ लूताविषनिदानम्—

यस्माल्लूनतृणं प्राप्ता मुनेः प्रस्वेदबिन्दवः ।
 तस्माल्लूतास्तु भाष्यन्ते संख्यया तास्तु षोडश ॥ ४० ॥
 तामिदंष्ट्रे दंशकोऽथ प्रवृत्तिः क्षतजस्य च ।
 ज्वरो दाहोऽतिसारश्च गदाः स्युश्च त्रिदोषजाः ॥ ४१ ॥

पिटका विविधाकारा मण्डलानि महान्ति च ।
 शोथा महान्तो मृदवो रक्ताः श्वावाश्चलास्तथा ॥ ४२ ॥
 सामान्यं सर्वलूतानामेतद्वंशस्य लक्षणम् ।
 दंशमध्ये तु यत्कृष्णं श्यामं वा जालकावृतम् ॥ ४३ ॥
 देग्धाकृति विषं पाकः स्वेदशोथज्वरान्वितम् ।
 दूषीविषाभिर्लूताभिस्तं दष्टमिति निर्दिशेत् ॥ ४४ ॥
 शोथः श्वेता सिता रक्ता पीता च पिडका ज्वरः ।
 प्राणान्तिको भवेद्दाहः श्वासहिक्काशिरोग्रहाः ॥ ४५ ॥
 आदंशाच्छोणितं पाण्डु मण्डलानि ज्वरोऽरुचिः ।
 लोमहर्षश्च दाहश्च लूतादूषीविषादिते ॥ ४६ ॥

मूषकविषमाह—

मूर्छाङ्गशोथवैवर्ण्यक्लेदमन्दश्रुतिज्वराः ।
 शिरोगुरुत्वं लालासृक्छादं दष्टे तु मूषकैः ॥ ४७ ॥

कुकण्टक(गिरधोरा) विषमाह—

काश्यं श्यावत्वमथ वा नानावर्णत्वमेव वा ।
 मोहोऽथ वर्चसो भेदो दष्टः स स्यात्कुकण्टकैः ॥ ४८ ॥

वृश्चिकविषमाह—

दहत्यग्निरिषाऽऽदौ तु भिनत्तीवोर्ध्वमाशु च ।
 वृश्चिकस्य विषं याति दंशः पश्चात्तु तिष्ठति ॥ ४९ ॥
 दष्टोऽसाध्यस्तु हृद्घ्राणरसनोपहतो नरः ।
 मांसैः पतद्भिरत्यर्थं वेदनातो जहात्यसून् ॥ ५० ॥

कणभविषमाह—

विसर्पः श्वयथुः शूलं ज्वरश्छर्दिस्थापि च ।
 लक्षणं कणभैर्दष्टे दंशश्चैवावशीर्यते ॥ ५१ ॥

मण्डूकविषमाह—

हृष्टलोमोच्चिटिङ्गेन स्तब्धलिङ्गो भृशार्तिमान् ।
 दष्टः शीतोदकेनेव सिक्तान्यङ्गानि मन्यते ॥ ५२ ॥

एकदंष्ट्रार्पितः शूनः सरुजः पीतकः सतृट् ।
छर्दिनिद्रा च सविषैर्मण्डूकैर्दष्टलक्षणम् ॥ ५३ ॥

मत्स्यविषमाह—

मत्स्यास्तु सविषाः कुर्युर्दाहं शोथं तथा ज्वरम् ।

जलौकाविषमाह—

कण्डूं शोथं ज्वरं मूर्छां सविषास्तु जलौकसः ॥ ५४ ॥

गृहगोधिकाविषमाह—

विदाहं श्वयथुं तोदं स्वेदं च गृहगोधिका ।

शतपथादिविषमाह—

दंशे स्वेदं रुजं दाहं कुर्याच्छतपदीविषम् ॥ ५५ ॥

कण्डूमान्मशकैरीषच्छोथः स्यान्मन्दवेदनः ।

असाध्यकीटसदृशमसाध्यं मशकक्षतम् ॥ ५६ ॥

मक्षिकाविषमाह—

सद्यः प्रस्त्राविणी श्यावा दाहमूर्छाज्वरान्विता ।

पिटका मक्षिकादंशे तासां तु स्थगिका सुहृत् ॥ ५७ ॥

चतुष्पदादिजीवविषमाह—

चातुष्पाद्भिर्द्विपाद्भिर्वा नखदन्तैः क्षतं च यत् ।

शीर्यते पच्यते वाऽपि स्रवति ज्वरयत्यपि ॥ ५८ ॥

अविषत्वमाह—

प्रसन्नदोषं प्रकृतिस्थितं तमन्नाभिकामं सममूत्रविट्कम् ।

प्रसन्नवर्णेन्द्रियचित्तचेष्टं वैद्योऽवगच्छेद्विषं मनुष्यम् ॥ ५९ ॥

अथ श्वविषमाह—

अस्तो भ्रान्तः सतापः श्वसनकसनवान्पीतवृक्कीटमूत्रः

सोन्मादो मुक्कमाणो दशति च मनुजं याति कालक्रमेण ।

मेघाकाले विशेषात्प्रभवति विकलोऽसाध्यतामाप्नुयाच्च

प्रायो वातप्रधानोऽखिलमलकलितः सारमेयेन दष्टः ॥ ६० ॥

इति विषनिदानम् ।

आदौ सर्पविषचिकित्सा—

कार्या सद्यः सर्पदष्टे मणिमन्त्रौषधक्रिया ।

अचिन्त्यो हि प्रभावोऽस्ति मणिमन्त्रौषधस्य यत् ॥ ६१ ॥

मूलं तण्डुलवारिणा पिबति यः प्रत्यङ्गिरासंभवं

निष्पिष्टं शुचिभद्रयोगादिवसे तस्याहिभीतिः कुतः ।

दर्पादेव फणी यदा दशति तं मोहान्वितं मूढधीः

स्थाने तत्र तदैव याति नियतं वश्यं यमस्याचिरात् ॥ ६२ ॥

मसूरं निम्बपत्राभ्यां खादेन्मेषगते रवौ ।

अब्दमेकं न भीतिः स्याद्विषार्तस्य न संशयः ॥ ६३ ॥

दंशस्योपरि बध्नीयात्तत्क्षणाच्चतुरङ्गुलम् ।

क्षौमादिभिर्वेणिकया सिद्धमन्त्रैश्च मन्त्रवित् ॥ ६४ ॥

अम्बुवत्सेतुबन्धेन बन्धेन स्तभ्यते विषम् ।

न जायते विषोद्वेगो बीजनाशादिवाङ्कुरः ॥ ६५ ॥

सत्त्वमालम्ब्य दष्टव्यस्तत्क्षणादुरगो रिपुः ।

तदैव निर्विषो मर्त्यो जायते भोगिभक्षितः ॥ ६६ ॥

श्लेष्मणः कर्णगूथस्य वामनासिकया कृतः ।

लेपो हन्याद्विषं घोरं नृमूत्रासेचनं तथा ॥ ६७ ॥

कुलिकामूलनस्येन कालदष्टोऽपि जीवति ।

शिरीषपुष्पस्वरसे सप्ताहं मरिचं सितम् ॥ ६८ ॥

स्थापितं सर्पदष्टानां पाननस्याञ्जने हितम् ।

बन्ध्याकर्कोटिकामूलं छागक्षीरेण पेषितम् ॥ ६९ ॥

नस्यं काञ्जिकसंपिष्टं विषोपहतचेतसः ।

नक्तमालफलव्योषबिल्वमूलनिशाद्वयम् ॥

सौरसं पुष्पमाजं च मूत्रं बोधनमञ्जनम् ॥ ७० ॥

यः पिबति पुष्पयोगे जलपिष्टं सितपुनर्नवामूलम् ।

तत्संनिधौ न वर्षं वृश्चिकभुजगाः प्रसर्पन्ति ॥ ७१ ॥

तण्डुलीयकमूलं हि पिष्टं तण्डुलवारिणा ।

सोषणं पीतमात्रं तु निर्विषं कुरुते नरम् ॥ ७२ ॥

मूलतामरिचं चाम्बुपिष्टं दष्टेन भोगिना ।

पीतमात्रं हरेत्तूष्णं विषमं विषमञ्जसा ॥ ७३ ॥

घृतमधुनवनीतं पिप्पलीशृङ्गवेरं
मरिचमपि च दद्यात्सप्तमं सैन्धवेन ।
यदि भवति सरोषं तक्षकेणापि दष्टोऽ-
गदमिह खलु पीत्वा निर्विषं तत्क्षणेन ॥ ७४ ॥

प्रपौण्डरीकं सुरदारुमुस्तं कालानुसारी कटुरोहिणी च ।
स्थौणेयकं ध्यामकगुग्गुलूनि पुंतागतालीससुवर्चलाश्च ॥ ७५ ॥
कुटंनटैलासितसिन्दुवाराच्छिफाश्च कुष्ठं तगरं प्रियङ्गु ।
लोधाञ्जने काञ्चनगैरिकं च समागधं सैन्धवचन्दने च ॥ ७६ ॥
सूक्ष्माणि चूर्णानि समानि कृत्वा माण्डे निदध्यान्मधुसंयुतानि ।
एषोऽगदस्ताक्षर्य इति प्रदिष्टो विषं निहन्यादपि तक्षकस्य ।
पानाञ्जनाभ्यञ्जननस्ययोगे प्रयुज्यमानो भिषजा जवेन ॥ ७७ ॥

इति प्रपौण्डरीकादिरगदः ।

अथ सर्पविषहरा वर्तिः—

जयपालस्य मज्जानं भावयेन्निम्बुकद्रवैः ।
एकविंशतिवारांस्तु ततो वर्तिः प्रकल्पयेत् ॥ ७८ ॥
मनुष्यलालसा घृष्टा ततो नेत्रे तथाऽञ्जयेत् ।
सर्पदष्टविषं जित्वा सा जीवयति मानवम् ॥ ७९ ॥

इति सर्पविषहरा वर्तिः ।

अथ तीसटात्—

कपित्थकाश्मर्यशिरीषधातुपुष्पाणि पिष्ट्वा सलिलैरनुष्णैः ।
पीतानि सर्पस्य विषं निहन्धुर्विषं महामण्डलिनां च कुष्ठम् ॥ ८० ॥
त्वक्सप्तपर्णात्कुटजात्सनिम्बादब्दामयोशीरनतानि ताप्यम् ।
लोध्रं विदध्यान्नवमं नवाङ्गं *प्राचेतसं चूर्णमुदाहरन्ति ॥ ८१ ॥
लीहेऽथ हैमे त्वथ राजते वा स्थितं सदा सद्धानि मूषतीनाम् ।
क्षौद्रेण लीढं सचराचराणि विषाणि हन्याद्भुवि मामवानाम् ॥ ८२ ॥
कपोतबिड्मर्त्यशिरोरुहाणि सङ्गाविषाणां शिखिपिच्छकाग्रम् ।
यवस्य धान्यस्य तुषस्य बीजं कार्पासकं चाध्युषिता च माला ॥ ८३ ॥
इत्यौषधीभिः परिकल्पितोऽयं धूपोऽगदः स्याद्भुजगास्तुयुक्ते ।
गृहे विधेयः कुशलैरनेन निघ्नन्ति सर्पाश्च तथाऽऽस्रवश्च ॥ ८४ ॥

आस्तिकागदमाह—

श्लेष्मान्तकत्वक्क्षवकं गुडूची सृपद्रुमत्वग्बृहतीद्वयं च ।
 एषोऽगदः सर्वविषाणि हन्यादास्तीकनाम्ना मुनिना प्रदिष्टः ॥ ८५ ॥
 इति सर्पविषेचिकित्सा ।

अथ वृश्चिकविषप्रतीकारः—

आरक्तवृन्तापामार्गपत्रं मुक्तं तदैव हि ।
 वृश्चिकेन नरं विद्धं कुरुते सुखिनं भृशम् ॥ ८६ ॥
 पानीयपिष्टजेपालकल्कलेपेन सर्वथा ।
 विषं वृश्चिकविद्धस्य मस्मी भवति तत्क्षणात् ॥ ८७ ॥
 नवसागरहरिताले पिष्टे तोयेन लेपनादंशे ।
 तत्क्षणमेव हि जयतो वृश्चिकविद्धस्य दुर्धरं क्ष्वेडम् ॥ ८८ ॥
 अजाक्षीरेण संपिष्टा शिरीषफलमिश्रिता ।
 उपकुल्या विषं हन्ति वृश्चिकस्य न संशयः ॥ ८९ ॥
 मनःशिलाकुष्ठकरञ्जबीजशिरीषकाश्मीरमवैः समांशैः ।
 गुटी कृताऽऽस्ये विधृता च लिप्ता संहारिणी वृश्चिकवैकृतस्य ॥ ९० ॥
 अवतारयत्यधो नीतमूर्ध्वमारोपितं तु वर्धयति ।
 वृश्चिकगरलं विधिवत्सायकपुङ्खामवं मूलम् ॥ ९१ ॥
 द्विरदपुरीषसमुत्थच्छत्रकबहुवारफलकृता गुटिका ।
 वृश्चिकविषस्य कुरुते संक्रमणं नैव पाणिधृता ॥ ९२ ॥

तत्र मन्त्रः—

ॐ आदित्यरथवेगेन विष्णुबाहुबलेन च ।
 सुपर्णपक्षघातेन भूम्यां गच्छ महाविष ॥ ९३ ॥
 ‘ ॐ पक्षियोगिपादाज्ञा श्रीशिवोत्तमप्रभुपादाज्ञा भूम्यां गच्छ महा-
 विष ’ इति मन्त्रं वृश्चिकविद्धकर्णे त्रिःसप्तवारं जपेत् ।
 दंशं स्पृष्ट्वाऽप्येकविंशतिवारं जपेत्सर्वथा निर्विषो भवति ।
 इति तीसटात् । इति वृश्चिकविषप्रतीकारः ।

अथ श्वविषप्रतीकारः—

काकोदुम्बरिकामूलं धत्तूरफलसंयुतम् ।
 पीतं तण्डुलतोयेन सारमेयविषापहम् ॥ ९४ ॥

*कारस्करफलं सेव्यं क्रमवृद्धं दिने दिने ।

सारमेयविषं हन्ति मासेन न हि संशयः ॥ ९५ ॥

तैलार्कदुग्धपल्लैः सगुडैरमीभिर्धौगः समैरिति चतुर्भिरलर्कदृष्टे ।

स्यात्सारमेयविषहा शरपुङ्खया वा धतूरबीजयुतपिष्टकपिप्पली वा ॥

धतूरस्य शिफा पेया कणाक्षीरेण पेयिता ।

अङ्कोटवंशजा वाऽपि श्वविषघ्नी प्रयत्नतः ॥ ९७ ॥

इति श्वविषप्रतीकारः ।

अथ नखदन्तविषप्रतीकारः—

पिचुमन्दशमीवटकल्कयुतं कथितं जलमाशु विलेपनतः ।

नखदन्तविषाणि निहन्ति नृणां विषमाण्यखिलान्यपि सत्यमिदम् ॥ ९८ ॥

इति नखदन्तविषप्रतीकारः ।

अथ मक्षिकाविषप्रतीकारः—

सोमवल्कोऽश्वकर्णश्च गोजिह्वा हंसपद्मपि ।

रजन्यौ गैरिकं लेपो मक्षिकापिटकापहः ॥ ९९ ॥

इति मक्षिकाविषप्रतीकारः ।

अथ वरटीविषम्—

मरिचं नागरोपेतं सिन्धुसौवर्चलान्वितम् ।

फणिवल्लिरसैर्लेपाद्भवन्ति तद्वरटीविषम् ॥ १०० ॥

इति वरटीविषम् ।

अथ भ्रमरविषम्—

नागरं गृहकपोतपुरीषं बीजपूरकरसो हरितालम् ।

सैन्धवं च विनिहन्ति विलेपादाशु भृङ्गजनितं विषमेतत् ॥ १ ॥

तमायःस्वेदतामृङ्ग्या वराह्याश्च विषर्षणात् ।

वृकव्याघ्रतरक्षर्ष्यसृगालद्वीपिवाजिन्मम् ॥ २ ॥

रुधिरं स्रावयेद्दंशाद्देहलोहशलाकया ।

इति भ्रमरविषम् ।

अथ मूषकविषम्—

अङ्गारधूसमञ्जिष्ठारजनीलवणोत्तमैः ।
 लेपो जयत्याखुविषं कोशातक्यथ वा सिता ॥ ३ ॥
 कुष्ठं वचामदनकोशवतः फलं च
 संयोजितं तदिति चूर्णमिदं चतुर्णाम् ।
 गोमूत्रपीतमखिलाखुविषं निहन्ति
 कोशातकीकथनमापिबतो नराणाम् ॥ ४ ॥

इति मूषकविषम् ।

अथ मण्डूकविषम्—

शिरीषबीजैः कुलिशद्रुमस्य क्षीरेण पिष्टैः कृतलेपनानाम् ।
 विषं विनाशं व्रजति क्षणेन मण्डूकदंशप्रभवं नराणाम् ॥ ५ ॥

इति मण्डूकविषम् ।

अथ स्त्रीविद्धविषप्रतीकारः—

शनौ निमन्त्रयेद्यष्टिं पूर्वं पुष्करिणीस्थिताम् ।
 रवौ प्रातस्तत्र गत्वा विद्वान्संयतमानसः ॥ ६ ॥
 तडागसंस्थितस्तम्भात्काष्ठमानीय खण्डशः ।
 पिबेद्बद्धः प्रमुच्येत नार्या विद्धेन्द्रियोऽपि च ॥ ७ ॥

इति स्त्रीविद्धविषप्रतीकारः ।

अथ शृङ्गीमत्स्यविषप्रतीकारः—

कृष्णवेत्रस्य निष्काथः कल्को वा घृतमिश्रितः ।
 शृङ्गीमत्स्यविषं हन्ति धूमो वा बर्हिपक्षजः ॥ ८ ॥

इति शृङ्गीमत्स्यविषप्रतीकारः ।

अथ पिपीलिकादिविषप्रतीकारः—

पिपीलिकाभिर्दृष्टानां मक्षिकामशकैस्तथा ।
 गोमूत्रेण वरो लेपः कृष्णवल्मीकसृत्कृतः ॥ ९ ॥

इति पिपीलिकादिविषप्रतीकारः ।

अथ शतपदीविषम्—

लेपः प्रदीपतैलस्य खर्जूरविषनाशनः ।

हरिद्राद्वयलेपो वा सगैरिकमनःशिला ॥ १० ॥

इति शतपदीविषम् ।

अथ स्थावरविषप्रतीकारः—

अथ सर्वविषनाशिनी महाविद्या—

दक्षिणकरगतं कांस्यपात्रस्थं जलं वामकरानामयाऽऽलोड्य सप्तवारं वक्ष्यमाणमन्त्रेण मन्त्रयेत् । ततस्तत्पात्रं दक्षिणकरस्थं वामकरे गृहीत्वा दक्षिणकरेण जलमादाय सप्तवारं शिरसि क्षिपेत्सप्त जुलुकानि पाययेत्सर्वस्थावरविषान्मुच्यते ।

मन्त्रो यथा—

‘ ॐ गुरुके पायशरण उर्ब्वीब्वीचारिभारविषमांगटी ’ इमं शाबरमन्त्रं कर्णे सप्तवारं जपेत् । ‘ ॐ नमो भगवते श्रीघोणे हर २ दूर २ पर २ वर २ वष २ ल २ र २ लां ३ हर २ मां ३ सर २ शं २ क्षव २ क्षीं २ ह्रीं २ भगवति घोणेयः ३ सं ३ सः २ वर २ रस ४ खण्डावररूपे ह्रीं ३ वरविहङ्गममानुषयोगक्षेमं वद् शेखरिशेखरिखः ३ स्वाहा सप्तवारं प्रजप्तेन तोयेन किल विद्यया ।

अनया प्रोक्षितो मर्त्यो मुच्यते विषतोऽखिलात् ॥ ११ ॥

तक्षकेणापि यो दष्टो विषं वा येन मक्षितम् ।

तावुभावपि जायेते विमुक्तौ विषमाद्विषात् ॥ १२ ॥

विषं दृष्ट्वा यदा मन्त्री मन्त्रमावर्तयेत्सकृत् ।

याति निर्विषतां तूर्णमपि मारशतं विषम् ॥ १३ ॥

इति सर्वविषनाशिनी महाविद्या ।

अथ विषज्वरपातो रसः—

पाययेद्विषमोक्तारं तत्क्षणाद्वस्तशोणितम् ।

किं वा छागं पयः पश्चाद्वामयेदा विषक्षयम् ॥ १४ ॥

स्थिरी भवति तत्कोष्ठं यदाऽसौ निर्विषस्तदा ।

शीतोपचारा वा सेकाः शीताः शीतस्थलस्थितः ॥

विषार्तविषवेगानां शान्त्यै स्युरमृतं यथा ॥ १५ ॥

भूनागताम्रं शिखिपिच्छताम्रं जहद्विषं वा फणभृन्मणिं वा ।
 प्रक्षाल्य तद्वारि निपीय मर्त्यो विषं जयेत्स्थावरजङ्गमाख्यम् ॥ १६ ॥
 मरिचं निम्बपत्राणि सैन्धवं मधुसर्पिषा ।
 घ्नन्ति पीतानि वेगेन विषं स्थावरजङ्गमम् ॥ १७ ॥
 अङ्गोलमूलनिष्काथं फाणितं सघृतं लिहेत् ।
 तैलाक्तश्चित्रनानाङ्गगरदोषविषापहः ॥ १८ ॥
 शर्कराचूर्णसंयुक्तं चूर्णं ताप्यसुवर्णयोः ।
 लेहः प्रशमयत्युग्रं नानायोगकृतं विषम् ॥ १९ ॥
 रङ्गं विषं टङ्कणमूषणं च तुत्थं समांशं कुरु देवदात्याः ।
 रसेन पिष्टो विषवज्रपातो रसो भवेत्सर्वविषैकहन्ता ॥ २० ॥
 निष्कोऽस्य संजीवयति प्रयुक्तो नृमूत्रयोगेण च सर्वथैव ।
 जराविषेणाऽऽकुलितं तथाऽन्यैर्दुष्टैर्विषैर्घूर्णितमातुरं च ॥ २१ ॥

इति विषवज्रपातो रसः ।

इति स्थावरविषप्रतीकारः ।

अथ लूताविषम्—

कटभ्यर्जुनकासीसशेलुक्षीरिद्रुमत्वचः ।
 कषायकल्कचूर्णाः स्युः कीटलूताव्रणापहाः ॥ २२ ॥
 रजनीद्वयमस्त्रिष्ठापतङ्कगजकेसरैः ।
 शीताम्बुपिष्टैरालेपः सद्यो लूताविषापहः ॥ २३ ॥
 गिरिकर्णीद्वयं शेलुः पाटला द्वे पुनर्नवे ।
 कपित्थश्च शिरीषश्च लेपो लूताविषापहः ॥ २४ ॥

इति लूताविषम् ।

विषमुक्तनिषेधमाह—

विरुद्धाध्यशनक्रोधक्षुधाव्यायाममैथुनम् ।
 वर्जयेद्विषमुक्तोऽपि दिवास्वापं विशेषतः ॥ २५ ॥
 पयो गव्यं नव्यं घृतमतिसितं नूतनसिता
 मृदुमौद्गः सूपो समरिचपटोलीफलरसः ।
 अपि स्निग्धं मुग्धं दधि च सितभक्तं किल मिथो
 विभक्तं तत्पथ्यं गदितमिह पथ्यं विषजुषाम् ॥ २६ ॥

छत्री झझरपाणिश्च चरेद्रात्रो तथा दिवा ।
 तच्छायाशब्दवित्रस्ताः पलायन्ते भुजंगमाः ॥ २७ ॥
 सोत्कम्पः पुलकावृतः प्रति मुहूर्वक्त्रं समाह्लोकते
 दन्तेनाधरपल्लवं दशति चेत्सीत्कारमुत्कूजति ।
 यस्तापं जडतां च याति नितरां दष्टः स उत्कण्ठते
 रन्तुं वष्टि चितां मलाम्बरवतीं रौद्रीं श्मशानस्थलीम् ॥ २८ ॥
 नासावर्त्म विहाय यस्य पवनो वक्त्रेण याति द्रुतो
 नेत्रे चातिविकासिते वहति यो ग्रीवां च वक्रामलम् ।
 चन्द्रं पश्यति भानुबिम्बसदृशं सूर्यं शशाङ्काकृतिं
 दष्टो याति भुजंगमेन सदनं वैवस्वतस्याचिरात् ॥ २९ ॥
 यो मर्त्यो नीलकण्ठोऽस्म्यहमिति मनसा भावयन्मध्यनाडी—
 मार्गेणोर्ध्वं समीरं नयति च वपुषः शून्यतां ध्यायमानः ।
 संदृष्टस्तक्षकेणाप्यथ गिलितमहाकालकूटोऽपि मूर्च्छां
 प्राप्तोऽप्याश्वेव भूयो भवति स मनुजो निर्विषस्तत्क्षणेन ॥ ३० ॥
 इति श्रीयोगतरङ्गिण्यां विषनिदानचिकित्साकथनं नाम षट्चत्वारिंशद-
 धिकशततमस्तरङ्गः ॥ १४९ ॥

अथ षट्चत्वारिंशदधिकशततमस्तरङ्गः ।

विरुद्धाहारोऽपि विषवत्तरं मारयतीति विषरोगानन्तरं
 विरुद्धाहारो भण्यते—

विरुद्धमपि चाऽऽहारं विद्याद्भूविषोपमम् ।
 तद्विधाय भिषक्स्थाप्यो भोजनावसरे नृपैः ॥ १ ॥
 कालक्रमेण सद्यो वा विरुद्धाहारसेवनम् ।
 निहन्ति मानवं तस्माद्विरुद्धमशनं त्यजेत् ॥ २ ॥
 व्याधिमिन्द्रियदौर्बल्यं मरणं वा प्रयच्छति ।
 विरुद्धमशनं तस्माद्वर्जयेदात्मवाञ्छरः ॥ ३ ॥

दुग्धं शाककुलत्थमीनमदिरावल्लीफलक्षारप-

द्वम्लैर्मांसकरीरजाम्बवदधिक्षौद्रैः पृथग्वाऽपृथक् ।

दुष्टं स्यादधि उष्णलाकुचपयस्तैलासवाङ्ग्यायुधैः*

स्तैलेनाप्यथ तक्रमाज्यकदलीधानापयःसक्तुभिः ॥ ४ ॥

इदं संयोगविरुद्धम् ।

अथ कालविरुद्धं यथा—

मुहूर्तपञ्चकादूर्ध्वं क्षीरं मजति विक्रियाम् ।

तदेव द्विगुणे काले विषवद्भ्रान्ति मानवम् ॥ ५ ॥

अक्रथितं दश घटिकाः क्रथितं द्विगुणाश्च ताः पयः पथ्यम् ।

अथ वा मधुररसाढ्यं यावत्तावत्पयः पथ्यम् ॥ ६ ॥

अथ विशिष्टसंयोगविरुद्धं यथा—

मत्स्यमांसगुडमुद्गमूलकेः कुष्ठमावहति सेवितं पयः ।

शाकजाम्बवसुरासवः पुनर्मरियत्यबुधमाशु सर्पवत् ॥ ७ ॥

एणैर्मुर्गैर्मयूरैश्च तित्तिरैर्लविकादिभिः ।

सर्वैर्जाङ्गलमांसैश्च क्षीरं न प्रतिषिध्यते ॥ ८ ॥

अम्लेष्वामलकं पथ्यं लवणेषु च सैन्धवम् ।

कषायेष्वभया शस्ता कटुवर्गेषु नागरम् ॥ ९ ॥

पटोलं तिक्तवर्गेषु मधुरेषु तु शर्करा ।

एतैः सह हितं दुग्धमेतदन्यैर्विकारकृत् ॥ १० ॥

रात्रिक्षीरं न सेवेत यदि सेवेत न स्वपेत् ।

यदि स्वपेद्धरत्यायुस्तस्मात्पथ्यं दिवा पयः ॥ ११ ॥

विवर्णं विरसं चाम्लं दुर्गन्धिग्रथितं पयः ।

वर्जयेत्कामलापाण्डुशोफकुष्ठादिरोगकृत् ॥ १२ ॥

न रात्रौ दधि भुञ्जीत न चाप्यघृतशर्करम् ।

नामुद्गसूपं नाक्षौद्रं नोष्णं नाऽऽमलकैर्विना ॥ १३ ॥

शस्यते दधि नो रात्रौ शस्तं चाम्बुघृतान्वितम् ।

रक्तपित्तकफोत्थेषु विकारेषु हितं न तत् ॥ १४ ॥

हेमन्ते शिशिरे चापि वर्षासु दधि शस्यते ।

शरद्रीष्मवसन्तेषु प्रायशस्तद्धि गर्हितम् ॥ १५ ॥

ज्वरासृक्कुष्ठबीसर्पपित्तपाण्ड्वामयभ्रमान् ।
 प्राप्नुयात्कामलां चोग्रां विधिं हित्वा दधिप्रियः ॥ १६ ॥
 नैव तक्रं कृशे दद्यान्नोष्णकाले न दुर्बले ।
 न मूर्छाभ्रमदाहेषु न रोगे रक्तपित्तजे ॥ १७ ॥
 चातपित्ते तथा चोग्रे कफोत्थेष्वामयेषु च ।
 मार्गावरोध उष्णे च वायौ तक्रं प्रशस्यते ॥ १८ ॥
 उष्णेन दिव्यसलिलेन वराहगोधा-
 मांसेन याति विकृतिं मधु मूलकैश्च ।
 तक्रेण चोष्णमपि तुल्यघृतं घृतं च
 कांस्ये दशाहमुषितं च तथा घृतं च ॥ १९ ॥

गोधातित्तिरलावर्हिपललान्येरण्डतैलाग्निना
 मत्स्यास्त्वैक्षवमाधवैरथ पृषदक्षामिषाण्यासवैः ।
 तैलैः सर्षपजैः कपोतपललं सिद्धं विरुद्धं तथा
 नानैकत्र तु पाचितानि तरसा व्यापादयन्त्यङ्गिनम् ॥ २० ॥
 हारीतस्य पलं हि दारुरजनी शूलेन विद्धा निशा
 वह्नौ पाचितमत्ति मानवमथो कौसुम्मतैलैरपि ।
 प्रोतं केनचिदेव भासपललं शूलेन दुष्टं मतं
 वारुण्या बिसकण्टिका सह तथा कुल्माषकैश्चाहिता ॥ २१ ॥
 दुष्टं पायसमन्वितं कृशरया चन्द्रस्तु निम्बूरसै-
 स्तैलैः सार्धमफेनकं किटिवसासिद्धो विरुद्धो वकः ।
 सर्पिःक्षौद्रवसाम्बुतैलमपृथक्कृत्वा द्विशो वा त्रिशो
 मिस्सा पर्युषिता तथा मुहुरनुष्णोष्णीकृता नो हिता ॥ २२ ॥
 अत्युष्णं वमिरेककृन्निगदितं वृन्ताकमापाचितं
 पिण्याकेन तु साधिता सह विरेकाय स्मृतोपोदका ।
 सूपो माषमवस्तु मूलकयुतः शूलामंगुलमप्रदो
 दुष्टं लाकुचमाज्यदुग्धगुडदध्यन्नं समाधं पृथक् ॥ २३ ॥
 संकुर्मक्तपयःपलैः समधितैर्दुष्टः पृथग्वाऽपृथक्-
 तीक्ष्णं क्षौद्रकणागुडैः सह तथा स्वात्काकमाची भृशम् ।

स्नेहे निस्तलने झषस्य तलिता किंवोषिता यामिनीं
काम्पिल्लस्तु सतक्र एवमहिमैर्भल्लातमन्नादिमिः ॥ २४ ॥

इति श्रीयोगतरङ्गिण्यां विरुद्धाहारकथनं नाम षट्चत्वारिंश-
दधिकशततमस्तरङ्गः ॥ १४६ ॥

अथ सप्तचत्वारिंशदधिकशततमस्तरङ्गः ।

अथ षाण्ढ्याधिकारः—

अमवति न हि पुंस्त्वं यस्य पुंसः प्रकामं
स न भवति समर्थस्त्रीषु गन्तुं कथंचित् ।
न च सुखमुपयाति प्रायशो बालकानां
समुदयति च लज्जा तस्य दृष्ट्वा सपुत्राम् ॥ १ ॥
वितरति न हि कन्यां कोऽपि षण्ढाय पुंसे
त्यजति च परिणीता सुन्दरी तं स्मरार्ता ।
उपहसति तमुच्चैः कामहीनं मनुष्यं
तत इह कथयिष्ये षण्ढतायाश्चिकित्साम् ॥ २ ॥
षाण्ढ्यानि कानिचिद्दोषरक्तदुष्टेन रेतसा ।
पृथक्पृथग्भवन्त्यन्यन्मनोघ्नेन च हेतुना ॥ ३ ॥
अन्यदोजःक्षयादन्यद्वेतःक्षेण्येन तद्भवेत् ।
आसेक्यश्च सुगन्धी च कुम्भीकश्चेर्ष्यकस्तथा ॥ ४ ॥
एते षण्ढा बीजदोषदुराचरणपाप्मभिः ।
एकाङ्गमपि षण्ढं हि वदन्त्यन्येऽगदंकराः ॥ ५ ॥
मर्मच्छेदजमेकं तदपरं सहजं स्मृतम् ।
एवमष्टादशविधं षाण्ढ्यं समुपजायते ॥ ६ ॥

स्वहेतुजमाह—

अतिव्यवायशीलस्य दोषा दुष्टाः स्वहेतुभिः ।
शुक्रनाडीगताः शुक्रं दूषयन्ति पृथक्पृथक् ॥ ७ ॥

वातदुष्टशुक्रमाह—

तत्र वातविदुष्टे तु शुक्रे स्तः शोणमेचकौ ।
वर्णौ तोदादयः सर्वे जायन्ते गात्रसंधिषु ॥ ८ ॥

पित्तदुष्टशुक्रमाह—

पित्तेन दुष्टे तस्मिंस्तु नीलपीतप्रभे मते ।
दाहदोषादयो देहे लोहगन्धश्च जायते ॥ ९ ॥

श्लेष्मदुष्टशुक्रमाह—

शुके तु श्लेष्मणा दुष्टे श्वेतवर्णोऽभिजायते ।
पूतिगन्धश्च वपुषि कण्ड्वर्तिगुरुतादयः ॥ १० ॥

रक्तदुष्टमाह—

रक्तेन दुष्टे शुके तु गन्धः कुणपवद्भवेत् ।
अनल्पं च भवेच्छुक्रमतः कुणपनामकम् ॥ ११ ॥

द्विदोषदुष्टमाह—

यच्छुक्रं दूषितं वातश्लेष्मभ्यां ग्रन्थिलं हि तत् ।
द्विदोषवर्णपीडाभिरुपयुक्तं च जायते ॥ १२ ॥
दूषितं श्लेष्मपित्ताभ्यां शुक्रं पूयसमं भवेत् ।
श्लेष्मपित्तरुजावर्णगन्धं चापि प्रजायते ॥ १३ ॥
प्रदुष्टं वातपित्ताभ्यां क्षीणशुक्रं प्रजायते ।
तद्वर्णवेदनागन्धयुक्तं क्षीणाभिधं हि तत् ॥ १४ ॥

त्रिदोषदुष्टमाह—

त्रिदोषदुष्टं यच्छुक्रं तन्मूत्रमलगन्धवत् ।
तद्वर्णवेदनायुक्तमसाध्यमतिदुःखदम् ॥ १५ ॥

क्लैब्यजननदोषमाह—

तैस्तैर्मावैरहृद्यैस्तु रिरंसोर्मनसि क्षते ।
ध्वजः पतत्यंतो नृणां क्लैब्यं समुपजायते ॥ १६ ॥
तीक्ष्णैरम्लोष्णलवणैरतिमात्रोपसेवितैः ।
सौम्यधातुक्षयो दृष्टस्तस्मात्क्लैब्यं परं स्मृतम् ॥ १७ ॥

शुक्रक्षयहेतुमाह—

अतिव्यवायशीलो यो न च वाजीक्रियारतः ।
ध्वजमङ्गमवाप्नोति स शुक्रक्षयहेतुकम् ॥ १८ ॥

शुक्रजननक्रममाह—

पित्रोरत्यल्पबीजत्वादासेक्यः पुरुषो भवेत् ।
स शुक्रं प्राश्य लभते ध्वजोच्छ्रायमसंशयम् ॥ १९ ॥

सौगन्धिकदोषमाह—

यः पूतियोनौ जायेत स सौगन्धिकसंज्ञकः ।
स योनिशेषसोर्गन्धमाघ्राय लभते बलम् ॥ २० ॥

कुम्भीकदोषमाह—

स्वे गुदे ब्रह्मचर्याद्यः स्त्रीषु पुंवत्प्रवर्तते ।
कुम्भीकः स तु विज्ञेय ईर्ष्यकं शृणु चापरम् ॥ २१ ॥

ईर्ष्यकदोषमाह—

बुद्ध्वा व्यवायमन्येषां व्यवाये यः प्रवर्तते ।
ईर्ष्यकः स तु विज्ञेयो हृग्योन्याख्योऽपि स स्मृतः ॥ २२ ॥

एकाङ्गदोषमाह—

या शुक्रं यस्य बध्नाति तस्यामेव स पुरुषः ।
अन्यस्यां जायते क्लीब एकाङ्गं तं विदुर्बुधाः ॥ २३ ॥

मर्मच्छेददोषमाह—

शुक्रवाहिशिरामर्मच्छेदाद्वाऽश्मरिशोधनात् ।
क्लृप्तं संजायते नृणां तन्मर्मच्छेदजं स्मृतम् ॥ २४ ॥

महाषण्ढमाह—

यो मार्यायासृतौ मोहादङ्गनेव प्रवर्तते ।
तत्र स्त्रीचेष्टिताकारो महाषण्ढो भवेन्नरः ॥ २५ ॥
असाध्यं सहजं षण्ढमेतदाहुर्मनीषिणः ।
मर्मच्छेदजमप्येवं यच्च विद्मन्निधरेतसः ॥ २६ ॥

इति पुरुषषण्ढ्यनिदानम् ।

अथ स्त्रीषण्ढ्यनिदानम्—

स्त्रीणामार्तवमप्येवं पृथग्दोषैर्द्विंशस्त्रिंशः ।
रक्तेन च विदुष्टं हि नापत्यजननक्षमम् ॥ २७ ॥

पूर्वोक्तान्येव नामानि विद्यादेवां भिषग्वरः ।

बीजदोषा अपि क्लृब्धे गणिता निष्फला यतः ॥ २८ ॥

इति स्त्रीषाण्डयनिदानम् ।

अथ शुक्रार्तवयोर्लक्षणम्—

स्फटिकामं द्रवं स्निग्धं मधुरं मधुगान्धि च ।

शुक्रमिच्छन्ति केचित्तु तैलक्षौद्रनिभं वरम् ॥ २९ ॥

शशास्त्रप्रतिमं यत्तु यद्वा लाक्षारसोपमम् ।

तदार्तवं प्रशंसन्ति यद्वासो न विरञ्जयेत् ॥ ३० ॥

शुद्धार्तवां यदा नारीं शुद्धशुक्रः पुमान्वजेत् ।

सा तदा गर्भमाधत्ते नान्यथेति विनिश्चितम् ॥ ३१ ॥

बलवीर्यप्रमातेजोमेधावीर्यायुरान्वितः ।

तयोः संजायते पुत्रः पुंस्त्रियोः शुद्धरेतसोः ॥ ३२ ॥

इति शुक्रार्तवयोर्लक्षणम् ।

अथ वाजीकरणविधिमाह—

नरो वाजीकरान्योगान्सम्यक्शुद्धो निरामयः ।

आसप्तति प्रकुर्वीत वर्षादूर्ध्वं तु षोडशात् ॥ ३३ ॥

न तु वै षोडशोनस्य सप्ततेः परतो न च ।

आयुष्कामो नरः स्त्रीभिः संयोगं कर्तुमर्हति ॥ ३४ ॥

शुष्कं रूक्षं यथाकामं क्षयकाण्यतिपाण्डुताः ।

अतिव्यवायाज्जायन्ते रोगाश्चाऽऽक्षेपकादयः ॥ ३५ ॥

स्त्रीसेवनान्मेहमेदोवृद्धिरङ्गे च मार्दवम् ।

त्यजेत्पूज्यशुचिस्थाने लोकाध्यक्षं च मैथुनम् ॥ ३६ ॥

आयुष्मन्तो मन्दजरावपुर्वर्णबलान्विताः ।

स्थिरोपचितमांसाश्च भवन्ति स्त्रीषु संयुताः ॥ ३७ ॥

अथ स्त्रीगमन क्रतुदिनमर्यादामाह—

ऽपहाद्वसन्तशरदोः पक्षाद्वर्षानिदाघयोः ।

हेमन्ते शिशिरे चापि कामं सेवेत कामिनीम् ॥ ३८ ॥

ग्लानिः कायाग्निदौर्बल्यं धात्विन्द्रियबलक्षयः ।

क्षयवृद्धशुपदंशाश्च रोगाश्चान्येऽतिदुर्जयाः ॥ ३९ ॥

अकालमरणं च स्याद्व्रजतस्त्रियमन्यथा ।

अथ स्त्रीसङ्गनिषेधः—

रजस्वलामकामां च मलिनामप्रजामपि ॥ ४० ॥
 वर्णवृद्धां वयोवृद्धां तथा व्याधिप्रपीडिताम् ।
 हीनाङ्गीं कुटिलां द्वेष्यां योनिदोषसमन्विताम् ॥ ४१ ॥
 स्वगोत्रां गुरुपत्नीं च तथा प्रव्रजितामपि ।
 संध्ययोः श्राद्धदिवसे संक्रान्तिदिवसेऽपि च ॥ ४२ ॥
 नरो नितम्बिनीं नैव भजेदायुर्विवृद्धये ।
 रजस्वलां चतुर्थाहान्नरस्याऽऽसेवनात्पुनः ॥ ४३ ॥
 वृष्ट्यायुस्तेजसां हानिरधर्मश्च ततो भवेत् ।

सेवनयोग्यां स्त्रियमाह—

वयोरूपगुणोपेतां तुल्यशीलगुणान्वयाम् ॥ ४४ ॥
 अतिकामोऽतिकामाढ्यां हृष्टो हृष्टामलंकृताम् ।
 सेवेत प्रमदां मर्त्यो वाजीकरणबृंहितः ॥ ४५ ॥

मैथुनान्ते हितमाह—

स्नानं सशर्करं क्षीरं रसो भक्ष्याश्च गौडिकाः ।
 व्यजनं स्वप्नसेवा च व्यवायान्ते हितानि तु ॥ ४६ ॥

तत्र शुक्रदोषनिवारणार्थं भेषजमाह—

तत्राऽऽद्याञ्छुक्रदोषांस्त्रीन्स्नेहस्वेदादिभिर्जयेत् ।
 क्रियाविशेषैर्मतिमांस्तथैवोत्तरवस्तिभिः ॥ ४७ ॥
 पाययेत नरं सर्पिर्भिषक्कुणपरेतसि ।
 धातकीपुष्पखदिरदाडिमार्जुनसाधितम् ॥ ४८ ॥
 ग्रन्थीभूते सटीसिद्धं पालाशे वाऽथ भस्मनि ।
 परूषकवटादिभ्यां पूयप्रख्येऽत्र साधितम् ॥ ४९ ॥
 प्रागुक्तं वक्ष्यते यच्च तत्कार्यं क्षीणरेतसि ।
 विट्प्रमे तु पिबेत्सर्पिः सिद्धं चोशीराहिङ्गुभिः ॥ ५० ॥
 स्निग्धं वान्तं विरिक्तं च निरूढमनुवासितम् ।
 योजयेच्छुक्रदोषार्तं सम्यगुत्तरवस्तिना ॥ ५१ ॥
 दुर्गन्धे पूयसंकाशे मज्जप्रख्ये तथाऽऽर्तवे ।
 पिबेत्तद्वन्नश्रियः क्लृप्तं चन्दनक्लृप्तमेव वा ॥ ५२ ॥

विधिमुत्तरवस्त्यन्तं कुर्याद्वार्तवशुद्धये ।
 स्त्रीणां स्नेहादियुक्तानां सर्वास्वार्तवरुक्षु वै ॥ ५३ ॥
 कुर्यात्कल्कान्पिचूंश्चापि पथ्यान्याचमनानि च ।
 मनोघ्नजे तु कर्तव्या निदानविपरीतता ॥ ५४ ॥
 वक्ष्यमाणो विशिष्टोऽपि विधेयो विधिरादरात् ।
 सौम्यधातुक्षयोत्थेऽत्र निदानपरिवर्जनम् ॥ ५५ ॥
 अभ्यङ्गस्नानदुग्धाज्यब्रह्मचर्यसितासवम् ।
 जाङ्गलामिषयूषाश्च वरवासःस्रगादयः ॥ ५६ ॥
 साधुसौधास्थितिर्वर्यसुगान्धिव्यसेवनम् ।
 विधिर्वाजीकरः सर्वः कर्तव्यश्च विजानता ॥ ५७ ॥
 शुक्रक्षयोत्थे षाण्ड्ये तु ब्रह्मचर्यं विशेषतः ।
 वृष्यो विधिः समस्तोऽपि वक्ष्यमाणोऽत्र शस्यते ॥ ५८ ॥
 आसेव्यादेः प्रतीकारो निदानेन सहोदितः ।
 निबद्धं स्वं यथा रेतस्तथा कृत्वा रतं सह ॥ ५९ ॥
 तद्योनिगलितं बीजं युक्त्या तूलेन संहरेत् ।
 यथा सा न विजानाति तथा तस्या भगे क्षिपेत् ॥ ६० ॥
 तद्बीजं तत्र भवति स पुमान्मदनोपमः ।
 यत्र यत्र करोत्येवं तत्र तत्र स पुरुषः ॥ ६१ ॥

अथ सामान्यविधिः—

चूर्णं विदार्याः सुकृतं स्वरसेनैव भावितम् ।
 सर्पिः क्षौद्रयुतं लीढ्वा दश गच्छेन्नरोऽङ्गनाः ॥ ६२ ॥
 एवमामलकं चूर्णं स्वरसेनैव भावितम् ।
 शर्करामधुसर्पिभ्यां युक्तं लीढ्वा पयः पिबेत् ॥ ६३ ॥
 एतेनाशीतिवर्षोऽपि युवेव परिहृष्यति ।
 विदारीकन्दकल्कं च घृतेन पयसा नरः ॥ ६४ ॥
 उदुम्बरसमं भुक्त्वा वृद्धोऽपि तरुणाश्नयेत् ।
 अश्वत्थफलशृङ्गाग्रमूलत्वक्निःशृतं पयः ॥ ६५ ॥
 पीत्वा सशर्करं चैव वृद्धोऽपि तरुणायते ।
 स्वयंगुप्तेक्षुरकयोर्बीजचूर्णं सशर्करम् ॥ ६६ ॥
 धारोष्णेन नरः पीत्वा पयसा न क्षयं व्रजेत् ।
 माषाणां पलमेकं तु संयुक्तं सधुसर्पिषा ॥ ६७ ॥

तल्लीदृवा तु पिबेत्क्षीरं तेन वाजी मवेन्नरः ।
 कर्षं मधुकचूर्णस्य घृतक्षौद्रसमन्वितम् ॥ ६८ ॥
 पयोनुपानं यो लिह्यात्स गच्छेद्दश चाङ्गनाः ।
 गृष्टीनां वृद्धवत्सानां माषपर्णीभुजां गवाम् ॥ ६९ ॥
 यत्क्षीरं तत्प्रशंसन्ति बलकामेषु जन्तुषु ।
 शर्करायाः पलैकं स्यादेकं गव्यस्य सर्पिषः ॥ ७० ॥
 प्रस्थो विदारीचूर्णानां पिप्पल्याः प्रस्थ एव च ।
 अर्धाढकं तुगाक्षीर्याः क्षौद्रस्याभिनवस्य च ॥ ७१ ॥
 तत्सर्वं मूर्छितं तिष्ठेद्भाजने घृतमाविते ।
 मात्रामग्नेः समां तस्य प्रातः प्रातः प्रयोजयेत् ॥ ७२ ॥
 एष वृष्यः परं योगः कण्ठ्यो बृंहण एव च ।

अथ पूपलिकापाकः—

कुडवश्चूर्णितानां स्यादात्मगुप्ताफलस्य च ॥ ७३ ॥
 कुडवश्चैव तत्सर्वं विपचेत्क्षीरसर्पिषा ।
 पेक्षां पूपलिकां खादेवृद्धाः स्युर्यस्य योषितः ॥ ७४ ॥

इति पूपलिकापाकः ।

अथ रसालाकरणविधिः—

दधामाढकमीषदम्लमधुरं खण्डस्य चन्द्रद्युतेः
 प्रस्थं क्षौद्रपलं पलं च हविषः शुठ्याश्चतुर्माषिकाः ॥
 अक्षार्धं मरिचाद्विगृह्य तु पुनर्द्वौ माषकावेकतः
 कृत्वा शुक्लपटे शनैः करतलेनोन्मथ्य विस्रावयेत् ॥ ७५ ॥
 मृद्धाण्डे मृगनाभिचन्दनरसस्पृष्टेऽगुरुधूपिते
 सत्कर्पूररजोरजस्पृशि मृशं दिव्या रसाला भवेत् ॥
 या पीता परमेश्वरेण सुरसा सेयं रसाला तथा
 राज्ञां मन्मथदीपनी सुरुचिरा कान्ता च नित्यप्रिया ॥ ७६ ॥

इति रसालाकरणविधिः ।

अथ बृहदश्वगन्धायं घृतम्—

शुमवेशोत्थितमच्छं मूलशतं सम्यगश्वगन्धायाः ।
 पुण्येऽहनि तत्क्षुण्णं विपचेद्ब्रोणेऽम्मसोऽग्निना विद्वान् ॥ ७७ ॥

ज्ञात्वाऽष्टमागशेषं गृह्णीयात्तद्रसं सुपरिपूतम् ।
 द्वे अत्र पलशते वै दद्याच्छागस्य शुद्धमांसस्य ॥ ७८ ॥
 सर्पिष्प्रस्थमथैकं गव्यं पयसश्चतुर्गुणं दद्यात् ।
 कल्कानक्षसमांशानूर्ध्वमतः संप्रवक्ष्यामि ॥ ७९ ॥
 काकोल्यौ मृद्वीके द्वे मेदे जीवकर्षभौ स्वयंगुप्ताम् ।
 एलां पष्टीमधुकं माषच्छदमुद्रपण्यौ च ॥ ८० ॥
 जीवन्तीमुपकुल्यां बलाविदारीवरीश्चापि ।
 दत्त्वा सम्यग्विपचेत्सर्पिरथोद्धृत्य माजने सुदृढे ॥ ८१ ॥
 मधुशर्करयोः कुडवं दत्त्वा संस्थापयेच्च ततः ।
 तल्लीह्वा पाणितलं मुञ्जीत तथा यथेष्टमाहारम् ॥ ८२ ॥
 क्षीणक्षतशिशुवृद्धाः क्षीणेन्द्रियबलवर्णमांसाश्च ।
 प्राश्यैतज्जलमन्ते पुष्टिबलारोग्यतेजसां वृद्धिः ॥ ८३ ॥
 उपयुज्य सर्पिरेतत्सप्ततिवर्षोऽपि पूरुषः सद्दसा ।
 बह्वशः स्त्रियोऽधिगच्छति नश्यति शुक्रक्षयः कापि ॥ ८४ ॥
 पुत्रार्थिनी च नारी लभते तनयं सुवन्ध्याऽपि ।
 उपयुक्ते यः पुरुषस्त्रीन्मासान्सार्धमासं वा ॥ ८५ ॥
 नारीशतं स गच्छेन्नैव भवेद्योषितां तृप्तिः ।
 खालित्यवलीपलितैर्न चास्य देहोऽभिभूयते क्षिप्रम् ॥ ८६ ॥
 घातव्याधिमिरार्तास्तथैव हृद्दस्तिरोगार्ताः ।
 अचिरादपि मुञ्जानाः सर्पिररोगाय भवतीह ॥ ८७ ॥
 एवं जगद्धितार्थं सर्पिरिदं वाजिगन्धायाः ।
 श्रेष्ठं वाजीकरणं निर्दिष्टं पूर्वमश्विभ्याम् ॥ ८८ ॥

इति बृहदश्वगन्धाद्यं घृतम् ।

अथ शतावरीघृतम्—

घृतं शतावरीगर्मक्षीरे दशगुणे गवाम् ।
 विपचेत्तन्निपीयाऽऽशु महद्दलमवाप्नुयात् ॥ ८९ ॥

इति शतावरीघृतम् ।

अथ लघुवाजिगन्धाद्यं घृतम्—

कल्केन वाजिगन्धाया विपचेद्घृतमुत्तमम् ।
 चतुर्गुणमजाक्षीरं दस्वोद्धृत्याथ शीतले ॥

सितां समां प्रदायाद्याकूलपुष्टिविवृद्धये ॥ ९० ॥

इति लघुवाजिगन्धाद्यं घृतम् ।

अथ गोक्षुरादिचूर्णम्—

गोक्षुरक्षुरकौ शतमूलीवानरिनागबलाऽतिबला च ।

चूर्णमिदं पयसा निशि पेयं यस्य गृहे प्रमदाशतमस्ति ॥ ९१ ॥

इति गोक्षुरादिचूर्णम् ।

अथ स्वर्णमाक्षिकादिचूर्णम्—

माक्षीकधातुगदपारदलोहचूर्णं

पथ्याशिलाजनुविडङ्गघृतानि योऽद्यात् ।

एकोनविंशतिदिनानि गदार्तितोऽपि

साशीतिकोऽपि रमयत्यबलां युवेव ॥ ९२ ॥

इति स्वर्णमाक्षिकादिचूर्णम् ।

अथ पायसविधिः—

गवां विरूढवत्सानां सिद्धं पयसि पायसम् ।

गोधूमशमितासूत्रैः सितासर्पिर्विमिश्रितम् ॥ ९३ ॥

भुक्त्वा हृष्यति जीर्णोऽपि दशवारांस्तुरङ्गवत् ।

इति पायसविधिः ।

अथ माषादिचूर्णम्—

पिप्पलीलवणोपेतौ बस्ताण्डो क्षीरसर्पिषा ॥ ९४ ॥

साधितौ मक्षयेद्यस्तु स गच्छेत्प्रमदाशतम् ।

बस्ताण्डसिद्धे पयसि भावितानसकृत्तिलान् ॥ ९५ ॥

यः खादेत्स नरो गच्छेत्स्त्रीणां शतमपूर्ववत् ।

कुलीरकूर्मनकाणामण्डान्येवं हि भोजयेत् ॥ ९६ ॥

उच्चटाचूर्णमप्येवं क्षीरेणोत्तममुच्यते ।

शतावर्युच्चटाचूर्णं पेयमेवं सुखाम्बुना ॥ ९७ ॥

घृतलिप्तमाषविदलं दुग्धे सिद्धं सिताज्यसंयुक्तम् ।

मुक्तं तदेव कुरुते तरुणीभिरतीव दुस्तोषम् ॥ ९८ ॥

त्रिकण्टकात्मगुप्तानां बीजचूर्णं सशर्करम् ।

क्षीरं चानुपिबन्गच्छेद्दशवाराभिरन्तरम् ॥ ९९ ॥

माषपिप्पलिशालीनां यवगोधूमयोस्तथा ।

शर्करापिप्पलीयुक्तं चूर्णं तद्वृष्यमिष्यते ॥ १०० ॥

इति माषादिचूर्णम् ।

अथ माषाद्यं घृतम्—

माषाणामात्मगुप्ताया बीजानामाढकत्रयम् ।

जीवकर्षमकौ वीरा मेदा वृद्धिः शतावरी ॥ १ ॥

मधुकं चाश्वगन्धा च साधयेत्कुडवोन्मितान् ।

समे तस्मिन्घृतप्रस्थं द्रव्याद्दशगुणं पयः ॥ २ ॥

विदारीणां रसप्रस्थं प्रस्थमिक्षुरसस्य च ।

दत्त्वा मृदग्निना साध्यं सिद्धं सर्पिर्विपाचयेत् ॥ ३ ॥

शर्करायास्तुगाक्षीर्याः क्षौद्रस्य च पृथक्पृथक् ।

मागाश्चतुष्पला वाऽत्र पिप्पल्याः स्रावयेत्पलम् ॥ ४ ॥

पलं पूर्वमतो लीढा ततोऽन्नमुपयोजयेत् ।

यदीच्छेदक्षयं शुक्रं शेषसः स्तब्धतामपि ॥ ५ ॥

इति माषाद्यं घृतम् ।

अथ गोधूमाद्यं घृतम्—

गोधूमतः पलशतं निष्काश्य सलिलाढके ।

पादावशेषे पूतेऽत्र द्रव्याणीमानि दापयेत् ॥ ६ ॥

गोधूममुञ्जातफलं माषो द्राक्षाषरूषकम् ।

काकोली क्षीरकाकोली विदारी सशतावरी ॥ ७ ॥

अश्वगन्धा सखर्जूरा मधुकं त्र्यूषणं सिता ।

मल्लातकं चाऽऽर्त्मगुप्ता सममागानि कारयेत् ॥ ८ ॥

घृतप्रस्थं पचेदेव क्षीरं दत्त्वा चतुर्गुणम् ।

मृदग्निनाऽथ सिद्धेऽस्मिन्द्रव्याण्येतानि निक्षिपेत् ॥ ९ ॥

त्वगेले पिप्पलीं धान्यं कर्पूरं नागकेसरम् ।

यथालाभं विनिक्षिप्य सिताक्षौद्रपलाटकम् ॥ १० ॥

दत्त्वेक्षुदण्डेनाऽऽलोढ्य विधिवद्विनियोजयेत् ।

शाल्योदनेन मुञ्जीत पिबेन्मांसरसेन वा ॥ ११ ॥

केवलं वा पिबेद्वृष्यं पलमात्रप्रमाणतः ।

न तस्य लिङ्गशैथिल्यं न च शुक्रक्षयो भवेत् ॥ १२ ॥

बल्यं परं वातहरं शुक्रसंजननं परम् ।
 परमोजस्करं चैव पुष्टिवर्णबलप्रदम् ॥ १३ ॥
 शुक्रकृच्छ्रप्रशमनं वृद्धानां चापि शस्यते ।
 पलद्वयं तदश्रीयाद्दशरात्रमतन्द्रितः ॥ १४ ॥
 स्त्रीणां शतं च मजते पीत्वा चारु पिबेत्पयः ।
 अश्विभ्यां निर्मितं चैव गोधूमाद्यं रसायनम् ॥ १५ ॥
 जलद्रोणेऽथ गोधूमक्राथस्तच्छेष आढकम् ।
 मुद्गाढकस्य तत्स्थाने तत्समं तालमस्तकम् ॥ १६ ॥

इति गोधूमाद्यं घृतम् ।

अथ जीवन्तीयं घृतम्—

जीवन्त्यतिबलाभेदाकाकोलीद्वयजीवकैः ।
 समभागीकृतैः कृष्णाकाकनासारसायनैः ॥ १७ ॥
 रास्नामदनयष्ट्याह्वसरलाभीरुचन्दनैः ।
 स्वयंगुप्तासटीशृङ्गीकलशीसारिवाढकैः ॥ १८ ॥
 सहदेवावराविश्वापिप्पलीमूलवजनैः ।
 पिष्टैस्तैलं घृतं पक्वं क्षीरेणाष्टगुणेन च ॥ १९ ॥
 तद्वन्नमनुवासरे ज्ञेयं बलशुक्राग्निवर्धनम् ।
 बृंहणं वातपित्तघ्नं गुल्मानाहहरं परम् ॥ २० ॥
 नस्ये पानेऽस्य संयुक्तमूर्ध्वजन्तुगदापहम् ।

इति जीवन्तीयं घृतम् ।

अथ गुडकूष्माण्डकावलेहः—

कूष्माण्डकात्पलशतं सुस्निग्धं निष्कुलीकृतम् ॥ २१ ॥
 प्रस्थं च घृततैलस्य तस्मिंस्तप्ते निधापयेत् ।
 त्वक्पत्रधान्यकव्योषजीरकैलाद्विपानलम् ॥ २२ ॥
 षड्ग्रन्थाचव्यमातङ्गपिप्पलीशुङ्गबेरकम् ।
 शुङ्गाटकं कसेरूणि प्रवालं तालमस्तकम् ॥ २३ ॥
 चूर्णीकृत्य पलांशं च गुडस्य तुलया पचेत् ।
 शीतीभूते पलान्यष्टौ मधुनः संप्रकल्पयेत् ॥ २४ ॥

कफपित्तानिलहरं मन्दाग्नीनां च दीपनम् ।
 कृशानां बृंहणं श्रेष्ठं वाजीकरणमुत्तमम् ॥ २५ ॥
 प्रमदासु प्रसक्तानां ये च स्युः क्षीणरेतसः ।
 क्षयेण च गृहीतानां परमेतद्भिषग्विजितम् ॥ २६ ॥
 कासं श्वासं ज्वरं हिक्कां हन्ति च्छर्दिमरोचकम् ।
 गुडकूष्माण्डकं ख्यातमश्विभ्यां समुदाहृतम् ॥ २७ ॥

इति गुडकूष्माण्डकावलेहः ।

अथ बृहत्कूष्माण्डपाकः—

कूष्माण्डस्य तुलां निधाय विधिवत्स्विन्नां प्रपिष्टां पुन-
 र्युक्तां कर्षमितैः सुचूर्णिततमैर्व्योषाल्लजीराग्निमिः ।
 चातुर्जातवराबलात्रयवरीतालीसमेथीत्रिवृ-
 हन्तीवारणपिप्पलीक्षुरतिलद्राक्षात्रिकण्टाम्बुदैः ॥ २८ ॥
 चव्याश्वामयचारवानरिसटीयष्टीतुगापिप्पली-
 मूलाब्जैः सलवङ्गशाल्मलिजयाकङ्कोलजातीफलैः ।
 जातीकोशविदारिसिन्धुमुसलीशृङ्गाटकैः सर्पिषः
 प्रस्थेनाभ्रपलेन चापि सितया साधं तुलामानया ॥ २९ ॥
 युक्त्या साधु विपाच्य माजनगतं कृत्वा यथाग्निं प्रगे
 कूष्माण्डस्य रसायनं सुललितं शुद्धो नरः शीलयेत् ।
 वृष्यं बृंहणमग्निदीपनकरं यक्षमाम्लपित्तापहं
 पाण्डुश्वासजिदम्लपित्तशमनं मेहादिरोगप्रणुत् ॥ ३० ॥
 एतेनातिबली बलीविरहितः स्त्रीणां युवेव व्रजे-
 द्बृहन्द्ं बृहत्तरो नरोऽतिललितः प्रज्ञाप्रभापूजितः ।

इति बृहत्कूष्माण्डपाकः ।

अथ महाकूष्माण्डपाकः—

कूष्माण्डस्य पचेलिमस्य बृहतः खण्डांस्तुलासंमितां-
 स्तद्बीजान्विगतत्वचश्च विपचेन्मन्देन सप्तांश्चिषा ॥ ३१ ॥
 पक्वान्किञ्चिद्मूनमूढहृदयः पिष्ट्वा शिलायां शनै-
 स्तत्कल्कं सुरभीघृतेन कुडवद्वन्द्वेन संभर्जयेत् ।

शीते तत्र वरा वरी सठिमिशीश्रीखण्डवंशीबला
 वेलालाघनषट्कटुक्षुरहयोशीराजमोदानिवृत् ॥ ३२ ॥
 कुष्ठं कट्फलमूसलीगजकणातालीसजीरद्वय-
 द्राक्षागोक्षुरवृद्धदारुहुतभुग्यष्टीलवङ्गाम्बुजम् ।
 शृङ्गीचारजवानरीकुमुदिकाखर्जूरबैमीतकं
 कङ्कालो हपुषाविदारिलवणश्रेष्ठश्चतुर्जातिकम् ॥ ३३ ॥
 जातीकोशसुवर्णमाक्षिकयुगं शृङ्गाटकं शालमली-
 त्वक्चैषां मृदुलं रजः पिचुमितं प्रत्येकमत्र क्षिपेत् ।
 अभ्रं वाऽपि पलप्रमाणममलं ताम्रं सलोहं मृतं
 प्रत्येकं पिचुयुग्मकं च सितया साकं तुलामानया ॥ ३४ ॥
 सपाच्यानलयोगतो विरचयेच्चक्रीं यथाग्निं प्रगे
 तामद्यादपि सायमम्बु कियदाचामेच्च ताम्बूलभुक् ।
 कूष्माण्डस्य रसायनं निगदितं वाजीकरं स्त्रीजुषा-
 मश्विभ्यां कफवातपित्तगदजिह्वुक्रार्तवातक्कुनुत् ॥ ३५ ॥
 वृष्यं चाप्यतिबृंहणं क्षयहरं जीर्णज्वरघ्नं वमि-
 मेहच्छेदि च रक्तपित्तविजयि स्यादम्लपित्तापहम् ।
 रक्तातौ च विडामयप्रदरयोः पाण्डौ प्रसूत्यामये
 मन्दाग्रौ जठरामयेऽरुचिशिरःपीडाङ्गपीडासु च ॥ ३६ ॥
 आबल्ये पालिते वलीषु नयनश्रोत्रामये शस्यते
 बाहे सर्वशरीरजेऽपि पवनास्त्रे पाण्डुकृच्छ्रेषु च ॥ ३७ ॥

इति महाकूष्माण्डपाकः ।

अथाश्वगन्धापाकः—

अश्वगन्धाप्रस्थमेकं पचेत्क्षीरे चतुर्गुणे ।
 घृतप्रस्थं समादाय खण्डप्रस्थत्रयं तथा ॥ ३८ ॥
 प्रस्थाधांश्च तिलान्माषान्पाचयेन्मृदुब्राह्मिना ।
 व्योषं त्रिजातं हपुषां शताह्वां शतमूलिकाम् ॥ ३९ ॥
 दीप्यपौष्करकाजार्जिं सटीं गोक्षुरकं बलाम् ।
 यवानीं ग्रन्थिकं लोहं नागं शुल्बं पलं परम् ॥ ४० ॥
 दत्त्वा सिद्धेऽत्र विधिवत्प्रातः खादेद्यथाबलम् ।
 सर्ववातामयान्हन्ति कटिप्रष्ठगदस्थितान् ॥ ४१ ॥

अस्थिमज्जं तथा शोफं संधिवातं सुदारुणम् ।
वर्ध्महृद्रोगगुल्मार्शःकासश्वासप्रमेहनुत् ॥
अश्विभ्यां विहितो योगो वाजीकरणमुत्तमम् ॥ ४२ ॥

इत्यश्वगन्धापाकः ।

अथ गोक्षुरपाकविधिः—

प्रस्थं गोक्षुरसूक्ष्मचूर्णमुदितं दुग्धाढके पाचितं
जातीपत्रलवङ्गलोहमरिचं कर्पूरमाकलकम् ।
अग्धेः शोषमजाजियुग्ममुसलीधात्रीकणाकेशरं
जातीकोशपलैलदीप्यनलदं शुण्ठीकुबेराक्षजम् ॥ ४३ ॥
त्वक्पत्रं करिकेसरं गजकणारात्रीर्बलाबीजकं
चीनीकन्दयवानिकुङ्कुमतुगाकर्षद्वयं योजयेत् ।
तुल्यं शर्करया तदर्धविजयां प्रस्थार्धकं गोघृतं
युक्त्या वैद्यवरेण निर्मितमिदं प्रौढाङ्गनाद्विषम् ॥ ४४ ॥
वीर्यस्तम्भनतुष्टिपुष्टिजनकं वाजीकरं कामिनां
मुक्तो गोक्षुरपाक एष हरिणीनेत्राविलासास्पदम् ॥ ४५ ॥

इति गोक्षुरपाकविधिः ।

अथ कपिकच्छुपाकः—

प्रस्थं स्वगुप्तबीजानां सूक्ष्मं चूर्णकृतं मिषक् ।
पचेत्पञ्चाढके दुग्धे मृत्पात्रे मृदुवाहिना ॥ ४६ ॥
प्रस्थार्धं गोघृतं दत्त्वा द्विप्रस्थां शर्करामपि ।
जातीफलं जातिपत्रं कङ्कोलं नागकेशरम् ॥ ४७ ॥
लवङ्गं दीप्यमाकलमब्धिशोषं त्रिकद्वयः ।
त्रिजातं हेमजीरं च प्रियङ्गुं गजपिप्पलाम् ॥ ४८ ॥
प्रत्येकं कर्षमादाय मक्षयेत्पलमात्रया ।
प्रमेहक्षैण्यकृच्छ्राश्मगुल्मशूलानिलामये ॥ ४९ ॥
शस्तोऽयं स्त्रीषु गर्भार्थं षण्ढानां शुक्रवृद्धये ।
प्रसूतानां हितो रक्तविकारविनिवारकः ॥ ५० ॥
पुंसां वाजीकरो बल्यश्चक्षुष्यः कामवर्धनः ।
कामिनीदर्पविध्वंसकर्ता निधुवने नृणाम् ॥ ५१ ॥

नास्त्यनेन समो योगो दस्राभ्यां निर्मितः शुभः ।
कपिकच्छुबीजपाको दीपनः पाचनः परः ॥ ५२ ॥

इति कपिकच्छुपाकः ।

अथ बृहन्मुसलीपाकः—

मुसलीकन्दचूर्णं तु क्षीरेऽष्टगुणिते पचेत् ।
प्रस्थं घनेऽत्र दातव्यं चूर्णमेषां पृथक्पलम् ॥ ५२ ॥
व्योषं त्रिजातहपुषे शताह्वा शतमूलिका ।
अजाजी दीप्यकश्चैव चित्रको गजपिप्पली ॥ ५४ ॥
यवानी ग्रन्थिकं धात्रीसठीगोक्षुरधान्यकम् ।
अश्वगन्धामयीमोचाः सिन्धुशोषो लवङ्गकम् ॥ ५५ ॥
जातीफलं जातिपत्री नागकेसरकं क्षुरः ।
बला चातिबला नागबला मर्कटिबीजकम् ॥ ५६ ॥
यष्टीशाल्मलिनिर्यासशृङ्गाटाम्बुदजोङ्गकम् ।
त्वक्क्षीरिका वालकश्च कङ्कोलाकलकं हिमम् ॥ ५७ ॥
लुञ्जितानां तिलानां तु प्रस्थार्धमिह योजयेत् ।
भस्म सूतपलार्धं तु पलमभ्रकलोहयोः ॥ ५८ ॥
सर्वद्विगुणखण्डस्य पाकं कृत्वाऽत्र योजयेत् ।
मेषज्यानां गणं सर्वं वटीकुर्याद्विचक्षणः ॥ ५९ ॥
अर्धमुष्टिमितास्तासु शुभेऽहनि विचक्षणः ।
इष्टदेवं समभ्यर्च्य खादेदेकामहर्मुखे ॥ ६० ॥
ततः किञ्चित्पयः पेयं खादेद्वीढकमुत्तमम् ।
मन्दाग्निगुल्ममेहार्शःश्वासकासव्रणक्षयान् ॥ ६१ ॥
कामलां पाण्डुरोगं च शुक्रक्षैण्यं च वृक्क्षयम् ।
वातरोगं पित्तरोगं कफरोगं तथैव च ॥ ६२ ॥
पाण्ड्यं च प्रदरं स्त्रीणां शुक्रदोषमुरःक्षतम् ।
रजोदोषं मूत्रकृच्छ्रं मूत्राघातं तथाऽश्मरीम् ॥ ६३ ॥
मलदोषं तथाऽऽनाहं कार्श्यमाबल्यमुल्बणम् ।
वातरक्तं च हन्त्येष मुसलीकन्दलेहकः ॥ ६४ ॥

अग्निकृत्कान्तिकृत्तेजोवृद्धिकृत्कामवृद्धिकृत् ।
 अश्विभ्यां निर्मितो योगो वलीपलितनाशनः ॥ ६५ ॥
 क्षीणशुक्रान्नरान्दृष्ट्वा नारीश्च क्षीणवीर्यकाः ।
 तालमूल्यवलेहोऽयं निर्मितो धरणीतले ।
 नास्त्यनेन समो योगो विशेषाच्छुक्रवृद्धये ॥ ६६ ॥

इति बृहन्मुसलीपाकः ।

अथाश्वगन्धापाको योगसारात्—

संचूर्णं तुरगीविदारिमुसलीगोक्षूरकं तत्पृथग्-
 द्व्याम्रांशं मृदु पाचितं च महिषीदुग्धाढके गोघृतम् ।
 द्व्याम्रं चक्षुरबीजमर्कटिमवं मोचारसं पालिकं
 जातीपत्रिलवङ्गजातिफलकं भीरुचतुर्जातकम् ॥ ६७ ॥
 शुक्त्यंशं पृथगत्र केशरजटामांस्यब्धिशोषं तुगा-
 जाजीग्रन्थिकशोथहात्रिकदुकं धात्रीजलाकलकम् ।
 कङ्कूलोच्चटपद्मबीजचविकाकर्षांशचूर्णं पृथ-
 ग्द्विप्रस्थासितशर्करामृतरसं कर्षं च मन्दाग्निना ॥ ६८ ॥
 युक्त्या वैद्यवरेण पाचितमिदं संप्रेक्ष्य सात्म्यं बलं
 प्रातः सेवितमौषधं पिचुयुगं दुग्धं तदन्ते पिबेत् ।
 रागातो जठोऽपि नित्यमसकृत्कन्दर्पदर्पोद्धृतं
 रामाणां शतकं विजित्य हि भवेत्तेजःप्रतापोद्धृतः ॥ ६९ ॥
 वातं पित्तकफक्षयं च कसनं पाण्डुप्रमेहादिका-
 स्त्रित्वा मन्मथकान्तिविग्रहधरः पाकोऽश्वगन्धाभिधः ॥ ७० ॥

इत्यश्वगन्धापाको योगसारात् ।

अथ बृहत्सौभाग्यशुण्ठी—

नागरं खण्डशः कृत्वा प्रस्थमात्रं मिषग्वरः ।
 अजादुग्धाढकद्वन्द्वे विपचेन्मन्दवह्निना ॥ ७१ ॥
 घनीभूते तु पयसि शुण्ठीं तस्मात्समुद्धरेत् ।
 अतिसूक्ष्मं च निष्पेक्ष्य शोषयेदातपे दिनम् ॥ ७२ ॥
 घृतमानां समावाप्य तद्दुग्धं तु पुनः पचेत् ।
 यावत्पिण्डत्वमायाति ततस्तत्र च मिश्रयेत् ॥ ७३ ॥

चातुर्जातं तुगां वेल्लं धान्यकं जीरकद्वयम् ।
 मिशिमाकलुकं कुष्ठं लवङ्गं च शतोत्ररीम् ॥ ७४ ॥
 तालमूलीं त्रिकटुकं कपिकच्छुं च षट्कटु ।
 जातीफलं जातिकोशं शृङ्गाटं वृद्धदारकम् ॥ ७५ ॥
 त्रिवृतं पद्मबीजं च त्रिफलां च बलात्रयम् ।
 जले सेव्यं वाजिगन्धाचन्दनागरुकारवीः ॥ ७६ ॥
 कङ्कोलमजगन्धां च द्राक्षामक्षोटचारजम् ।
 अजमोदां च वातामनारिकेलगरं तथा ॥ ७७ ॥
 कर्पूरमभ्रकं लोहं वङ्गं ताम्रं शिलाजतु ।
 स्वर्णमाक्षिकमप्येतत्प्रत्येकं कर्षसंमितम् ॥ ७८ ॥
 चूर्णीकृत्य क्षिपेत्तत्र पाणिभ्यां मर्दयेद्बृहत् ।
 ततः खण्डतुलां पक्त्वा तथा तच्चक्रिकां चरेत् ॥ ७९ ॥
 खण्डनागरकं नाम्ना भैषज्यमिदमुत्तमम् ।
 यथाबलमिदं खादेत्प्रातर्नक्तं च भेषजम् ॥ ८० ॥
 स्त्रीणामतिहितं नात्र पथ्यापथ्यविचारणा ।
 क्षये पाण्डौ ज्वरे कासे श्वासे मन्दानले तथा ॥ ८१ ॥
 संग्रहण्यां रक्तगुल्मे प्रदरे सोमरोगके ।
 रक्तपित्ते चाम्लपित्ते सर्ववातामयेषु च ॥ ८२ ॥
 पित्तरोगेषु सर्वेषु वातपित्तगदेषु च ।
 धातुशोषे प्रमेहे च रजोदोषे स्वरक्षये ॥ ८३ ॥
 दुग्धक्षये मूत्ररोगे कामलायां गलग्रहे ।
 सूतिकापवनव्याधौ शस्तमेतन्न संशयः ।
 एषा सौभाग्यदा शुण्ठी स्त्रीणां पुत्रप्रदोत्तमा ॥ ८४ ॥

इति बृहत्सौभाग्यशुण्ठी ।

अथामृतभल्लातकम्—

भल्लातकानां पवनोज्झितानां वृन्तच्युतानां तु यदाढकं स्यात् ।
 घृष्टेष्टिकाचूर्णकणैर्जलेन प्रक्षाल्य संशोध्य च मारुतेन ॥ ८५ ॥
 शुष्काणि तानि द्विदलीकृतानि विपाचयेदप्सु चतुर्गुणासु ।
 पादावशेषं परिपूतशीतं क्षीरेण तुल्येन पुनः पचेत्तु ॥ ८६ ॥
 तत्पादशेषं पुनरेव शीतं घृतेन तुल्येन विपाचयेत्तत् ।
 तदर्धया शर्करया विमिश्र्य पश्चात्स्वजेनोन्मथनं विधाय ॥ ८७ ॥

सत्र्यूषणं त्रैफलचन्द्रमांसीत्रिवृच्च वांशीखदिरामृतं च ।
 सचन्दनाकल्लकचीनवासं सदेवपुष्पं मुसलीद्वयं च ॥ ८८ ॥
 कङ्कोलमोचाह्वयदीप्ययुग्मं नतं समातङ्गकणाविदारि ।
 मेदाद्वयं लोहरसेन्द्रवङ्गमभ्रं तथा कुङ्कुमकं च कर्षम् ॥ ८९ ॥
 जातीफलं मुस्तकजातिपत्रीकुबेरजीरागरुसाब्धिशोषम् ।
 *तत्सतरात्रादुपयुज्य वीर्यं सुधाकरादप्यधिकं लभेत ॥ १९० ॥
 प्रातः प्रबुद्धः कृतदेवकार्यो मात्रां भजेदात्मशरीरयाग्योम् ।
 × × × न चान्नपाने परिहार्यमस्ति ॥ १९१ ॥
 यथेष्टचेष्टां विचरेत्प्रयोगान्नरो भवेत्काञ्चनराशिगौरः ।
 अनल्पमेधा नरुसिंहवीर्यो दृढेन्द्रियो व्याधिगतः सुबुद्धिः ॥ १९२ ॥
 कृन्ता विशीर्णा पुनरेव भव्याः केशा विशीर्णाः पुनरेव नव्याः ।
 विशीर्णकर्णाङ्गुलिनासिकोऽपि कृम्यर्दितो मिन्नगलोऽपि कुष्ठी ॥ १९३ ॥
 शुष्कः पुनः स्याद्भूतमूलशाखस्तर्यथा माति नवाम्बुसिक्तः ।
 बृहस्पतेरप्यधिकं हि बुद्ध्या ग्रन्थं विशालं च नवं करोति ॥ १९४ ॥
 गृह्णाति सद्यो न च विस्मृतिं च कसेति कल्पायुरनल्पवीर्यम् ।
 कुर्वन्निभं कल्पमनलबुद्धिं जीवन्नरो वर्षशतं सुखी स्यात् ॥
 पुष्टान्मयूराश्नयति स्वरेण बलेन नागं तुरगं जवेन ॥ १९५ ॥

इत्यमृतमल्लतकम् ।

अथ रतिवल्लभारूपपूगपाकः—

पूगं दक्षिणदेशजं वृक्षपलोन्मानं मृशं कर्तये-
 तच्छिन्नं जलयोगतो मृदुतरं संकुट्य चूर्णीकृतम् ।
 तच्चूर्णं पटशोधितं वसुगुणे गोशुद्धदुग्धे पचे-
 द्द्व्याज्याञ्जलिसंयुतेऽतिनिविष्टे दद्यात्तुलाधां सिताम् ॥ १९६ ॥
 पक्वं तज्ज्वलनात्क्षितिं प्रतिनयेत्तस्मिन्पुनः प्रक्षिपे-
 द्यद्यत्तत्तदुदाहरामि च जवाद्दृष्ट्वाऽऽवरात्संहिताः ।
 पृष्ठा नामबला बला सचपला जातीफलालिङ्गिता-
 जातीपत्रकपत्रपत्रकयुतं तच्च त्वचा संयुतम् ॥ १९७ ॥
 विश्वा वारणवारि वसिष्ठवरा वांशी वरी वान्शी-
 द्राक्षा सेक्षुरगोक्षुराऽथ महती खजूरिका क्षीरिका ।

धान्याकं सकसेरुकं समधुकं शृङ्गाटकं जीरकं
 पृथ्वीकाऽथ यवानिका वरटिका मांसी मिशी मेथिका ॥ ९८ ॥
 कन्देष्वत्र विदारिकाऽथ मुसली गन्धर्वगन्धा तथा
 कर्चूरं करिकेसरं समरिचं चारस्य बीजानि च ।
 बीजं शाल्मलिसंभवं करिकणाबीजं वरा जीवजं
 श्वेतं चन्दनमत्र रक्तमपि च श्रीसंज्ञपुष्पैः समम् ॥ ९९ ॥
 सर्वं चेति पृथक्पृथक्पलमितं संचूर्ण्य तत्र क्षिपे-
 त्सूतं वङ्गभुजंगलोहगगनं सन्मारितं स्वेच्छया ।
 कस्तूरीघनसारचूर्णमपि च प्राप्तं यथा प्रक्षिपे-
 त्पश्चादस्य तु मोदकान्विरचयेद्विल्वप्रमाणानथ ॥ १०० ॥
 तान्मोक्ताऽतिसदा यथानलबलं भुञ्जीत नाम्लं रसं
 पूर्वस्मिन्नशिते गते परिणतिं प्राग्मोजनान्दक्षयेत् ।
 नित्यं श्रीरतिवल्लभाख्यममुकं यः पूगपाकं मजे-
 त्स स्याद्दीर्घविवृद्धिवृद्धमदनो बाजीव शक्तो रतौ ॥ १ ॥
 दीप्ताग्निर्बलवान्बली विरहितो हृष्टः स पुष्टः सदा
 वृद्धो योऽपि युवेव सोऽपि रुचिरः पूर्णेन्दुवत्सुन्दरः ॥ २ ॥

इति रतिवल्लभाख्यपूगपाकः ।

अथ महाकामेश्वरः—

एतस्मिन् रतिवल्लभे यदि पुनः सम्यक्खुरासानिका
 धतूरस्य तु बीजमर्ककरमः पाथोऽब्धिशोषस्तथा ।
 सन्माजूफलकं तथा खसफलं पक्त्वाऽपि यः क्षिप्यते
 चूर्णार्धा विजया तदा स हि मवेत्कामेश्वरः संज्ञया ॥ ३ ॥

इति महाकामेश्वरः ।

अथ कामसुन्दरो मोदकः—

मेथी गुडूची मुसली सटी च विदारिकन्दस्त्रिसुगन्धिसिन्धुः ।
 धात्री लवङ्गेश्वरमोक्षुराश्च शतावरी मोचरसश्च पैर्ण्यः ॥ ४ ॥
 कृष्णांश्वगन्धाकदलीजकन्दनागाह्वजातीफलजातिपत्रम् ।
 गृङ्गीधनीयाह्वयकट्फलं च चूर्णान्मृताभ्रं द्विगुणं नियोज्यम् ॥ ५ ॥

सर्वतुर्यांशविजया सर्वद्विगुणशर्करा ।

पिण्डि च मधुसर्पिभ्यां माषौ टण्कोऽथ वा मितिः ॥ ६ ॥

इति कामसुन्दरो मोदकः ।

अथ मूलकामेश्वरो रसः—

शरपुङ्खुरवा जयायास्त्वग्वर्षांश्च जटात्वचः ।

चाम्पेयमूलजात्पक्वविदारीकन्दजं रजः ॥ ७ ॥

समुद्रफलजं चूर्णमजगन्बोत्थबीजजम् ।

बीजं चातिबलायाश्च पृथक्पलमितं रजः ॥ ८ ॥

तुल्यशक्राशनस्याम्भश्रूणं तुर्यांशमिष्यते ।

तद्भावनौषधेषु स्याच्चूर्णाद्विगुणशर्करा ॥ ९ ॥

अतिश्वेता तयोक्तस्तु तुर्यांशं जातिकाफलम् ।

मात्रा स्यात्पञ्चभिः शाणैर्मूलकामेश्वरो रसः ॥ २१० ॥

इति मूलकामेश्वरो रसः ।

अथ कामदेववटी सारसंग्रहात्—

कुष्ठं कट्फलसैन्धवं त्रिकटुकं मेथीयवानीद्वयं

वासामोचरसं विदारिमुसलीजातीफलं चित्रकम् ।

जीरं चापरजीरकं गजकणाद्राक्षाभयावानरी

तालीसं त्रिसुगन्धिकं त्रिलवणं वैभीतकं शृङ्गिका ॥ ११ ॥

रम्भाकन्दशतावरीहयसटीयष्टीप्रियालामृता

जातीपत्रलवङ्गकेसरजलं गोक्षूरकं शाल्मली ।

धात्रीमाषपुनर्नवाश्च कनकं शृङ्गाटकं मस्तकी

मांसी चापि बलात्रयं च नलदं भार्गभिर्कर्णस्तिलाः ॥ १२ ॥

कङ्कोलं करहाटकं च विजयः श्रीरुद्रगन्धा कुहू-

र्मज्जा पद्मकबीजमेतदखिलं चूर्णकृतं स्निग्धकम् ।

एतत्कर्षमितं पृथक्पृथगथो तुर्यांशतुल्यां जयां

तस्या अर्धमितं मृताश्रकमहो बङ्गं तदर्धं क्षिपेत् ॥ १३ ॥

लोहं मारितमेतदर्धममलं सूतं तदर्धं सूतं

सर्वेभ्यो द्विगुणा सिताऽथ मधुना चाऽऽज्येन संमिश्रयेत् ।

कार्यास्तस्य पलार्धमानवटिकाः खादेद्यथाग्निं प्रगे
 नक्तं चापि जराविपत्तिशमनीमेकां च दुग्धं पिबेत् ॥ १४ ॥
 एषा सौगतिसिंहनामभिषजा लोके प्रकाशीकृता
 हम्मीराय महीभुजे शतवधूसंभोगभाजे मृशम् ।
 एषा वीर्यकरी महाभयहरी क्षुद्रोदतेजस्करी
 कान्तिस्थौल्यमतिप्रकाशजननी चित्तामयध्वंसिनी ।
 तारुण्योद्धतकामिनीजनमहादर्पद्विपानां महा-
 सिंही सर्वमनोविनोदनवती श्रीकामदेवाभिधा ॥ १५ ॥
 इति कामदेववटी सारसंग्रहात् ।

अथ कामदेवचूर्णं वृन्दात्—

पलं गोक्षुरबीजस्य द्विपलं कपिकच्छुरम् ।
 पलं नागबलाबीजं पलमेकं शतावरी ॥ १६ ॥
 विदारीकन्दचूर्णस्य पलद्वयमथापरम् ।
 त्रपूसबीजं द्विपलं वाजिगन्धापलत्रयम् ॥ १७ ॥
 वासा च तालमूली च गुडूचीरक्तचन्दनम् ।
 त्रिसुगन्धिकणाधात्रीलवङ्गं नागकेशरम् ॥ १८ ॥
 एतानि कर्षमात्राणि सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत् ।
 बालशाल्मलिमूलं च भवेदेकैकविंशतिः ॥ १९ ॥
 कुशकाशशिफासप्तशर्करासमयोजितम् ।
 दुष्टशुक्रं वीर्यहानिं मूत्रकृच्छ्राणि यानि च ॥ २० ॥
 मूत्राघातं मूत्रदोषं जपेच्छुक्रविकर्धनम् ।
 शतं गच्छति च स्त्रीणां हयतुल्यपराक्रमः ॥ २१ ॥
 बन्ध्या पुत्रमवाप्नोति भुक्त्वा चूर्णमिदं क्रमात् ।
 कामदेवाभिधं चूर्णं धन्वन्तरिनिरूपितम् ॥ २२ ॥

इति कामदेवचूर्णं वृन्दात् ।

अथ मदनमञ्जरी वटिका—

चत्वारो व्योषमागास्तदनु त्रिगदितं भागयुग्मं च बङ्गं
 मागैकं शम्भुबीजं त्रितयमपि मृतं तत्समा सिद्धमूली ।

चातुर्जातिं सजातीफलमरिचकणानागरं देवपुष्पं
जातीपत्रं च भागद्वितयमथ पृथक्सर्वमेकत्र चूर्णम् ॥ २३ ॥
सर्वद्व्यंशा सिता स्याद्घृतमधुसहिता मोदकीकृत्य चैत-
त्खादेदग्निं समीक्ष्य प्रसभमभिनवानन्दसंवर्धनाय ।
योगो वाजीकराख्योऽयमिह निगदितो भैरवानन्दनाम्ना
निःशेषव्याधिहन्ता दलितबहुवधूद्दामकन्दर्पदर्पः ॥ २४ ॥
इति मदनमञ्जरी वटिका ।

अथ वज्रेश्वरादिवटी—

वज्रं मृतं मृतं लोहं मृगनामिश्रं कुङ्कुमम् ।
अभ्रक पारदश्चैव हिङ्गुलुर्गन्धकस्तथा ॥ २५ ॥
मस्तकी नागफेनश्च कवाबाजातिपत्रकम् ।
जातीफलं च त्वक्चारं शुण्ठीमर्कटिबीजकम् ॥ २६ ॥
बला तुगा च कर्पूरो लवङ्गं पिप्पली तथा ।
आकलकरमश्चैव नागो भुजगवल्लरी ॥ २७ ॥
नागकेसरमुस्ताग्नि चन्दनं चव्यकं सठी ।
मरिचं पत्रकं यष्टी शाल्मलीत्वक् च कट्फलम् ॥ २८ ॥
वर्षाभूर्मुसली चैव क्षीरकन्दः शतावरी ।
कृष्णाश्वगन्धा कनकं मांसी मोचरसो बला ॥ २९ ॥
भृङ्गराजश्च गोकण्टः कङ्कोलः सयवानिकः ।
समुद्रशोषबीजानि त्रिपश्चाशद्भिरोषधैः ॥ ३० ॥
योजयेत्समभागेश्च सूक्ष्मचूणाकृतैर्मिषक् ।
अष्टांशां विजयां शुद्धां सितां सर्वसमां क्षिपेत् ॥ ३१ ॥
गुटिका मधुसर्पिभ्यां कर्षमात्रा विधीयते ।
प्रभाते वाऽथ मध्याह्नं संध्यायां वा विशेषतः ॥ ३२ ॥
एकां खादेदनु पिबेत्पयः शर्करया युतम् ।
बलवृद्धिमवाप्नोति रेतोवृद्धिं विशेषतः ॥ ३३ ॥
रेतःस्तम्भं वयःस्तम्भं बलीपलितनाशनम् ।
क्षेण्यज्वरातिसारांश्च ग्रहणीं नाशयेदपि ॥ ३४ ॥
नारीवश्यकरं चैव नारीद्रवकरं तथा ।
कान्तिदं प्रतिमादं च बुद्धिमेधाविवर्धनम् ।
संवत्सरप्रयोगेण सर्वव्याधिविनाशनम् ॥ ३५ ॥
इति वज्रेश्वरादिवटी ।

अथ कामेश्वरो मोदकः—

सम्यङ्मारितमभ्रकं कटुफलं कुष्ठाश्वगन्धा*मृता-
 मेथीर्मोचरसं विदारिमुसलीगोक्षूरकेशूरकम् ।
 रम्भाकन्दशतावरीमजमुदामाषांस्तिलान्धान्यकं
 यष्टीनागबलाकचूरमदनं जातीफलं सैन्धवम् ॥ ३६ ॥
 भाङ्गीकर्कटशृङ्गिकात्रिकटुकं जीरद्वयं चित्रकं
 चातुर्जातिपुनर्नवागजकणाद्राक्षाभयावासकम् ।
 बीजं मर्कटिशालमलित्रिफलकं चूर्णं समं कल्पये-
 च्चूर्णांशा विजया सिता द्विगुणिता मध्वाज्ययोः पिण्डितम् ॥ ३७ ॥
 कर्षार्धां गुष्टिकामथ द्विगुणितं संसेव्य पेयं पयः
 श्वेताढ्यं प्रबलासु वीर्यकरणे स्तम्भेऽप्यसौ कामिनाम् ।
 रामावश्यकं सुखातिसुखदं रम्भाङ्गनाद्रावकं
 सौन्दर्यप्रतिभाविभानि च पदं भैषज्यमेतन्मतम् ॥ ३८ ॥
 क्षीणे पुष्टिकरं क्षयक्षयकरं हन्त्याशु सर्वामयं
 कासश्वासग्रहातिसारशमनं मन्दाग्निसंदीपनम् ।
 दुर्नामग्रहणीप्रमेहनिचयश्लेष्मातिरक्तप्रणु-
 न्नित्यानन्दकरं विशेषकवितावाचाविलासोद्भवम् ॥ ३९ ॥
 धत्ते सर्वगुणं महास्थिरदशाध्यानावसानाकुल-
 मभ्यासेन निहन्ति मृत्युपलितं कामेश्वरो वत्सरात् ।
 सर्वेषां हितकारको निगदितः श्रीनित्यनाथेन च
 वृद्धानां हि तनौ मनोभवकरः प्रौढाङ्गनासंगमे ।
 सिद्धोऽयं मम दृष्टप्रत्ययकरो राजा सदा सेव्यताम् ॥ ४० ॥
 इति कामेश्वरो मोदकः ।

अथ महाकामेश्वरो मोदकः—

कङ्कोलो बृहदेलिकागजबलावीरावरीन्दीवरी-
 वासावत्सकबीजवारणकणाविश्वोपकुल्योषणम् ।
 बीजानि त्रपुसत्रिकण्टकसणामाषेश्वराणां तथा
 मज्जानो बदरीविमीतकशिवाधात्रीप्रियालोद्भवाः ॥ ४१ ॥

* क. 'बला' इति पाठान्तरम् ।

१ क. 'तिमावभातिवचदं भै' ।

तालीसं शिवकन्दलामृतलतागाङ्गेरुकीबीजकं
 शृङ्गीधान्यकचित्रकं समुसलीहीरासटीमेथिकाः ।
 दार्दीयुग्वृषमोऽथ मेदसुमहामेदे च काकोलिका
 तद्वत्क्षीरकवायसी निगदिता वृद्धिस्तथा मृद्विका ॥ ४२ ॥
 शालूकद्वयराजिकाद्वयपृथग्जीराजमोदाद्वयं
 श्रीखण्डद्वयमन्दिशोषमुसली मांसी सर्वांशी मिसिः ।
 जातीपत्रिलवङ्गमर्ककरमः काश्मीरकं दाडिमं
 चातुर्जातकलोणिकाकुमुदिकाजातीफलं यष्टिका ॥ ४३ ॥
 झाक्षास्वाखसवलकलं मदनकं शृङ्गाटशुभ्रोषणं
 जम्बूपद्मकपुष्कराह्वकदलीकन्दाश्वगन्धास्तिलाः ।
 माषाः शाल्मलिबीजवल्कलरसामूलं च पौनर्नवं
 कर्षांशं विजयाऽखिलार्धतुलया देयाऽथ शुक्त्यंशकाः ॥ ४४ ॥
 रसरसकमुजङ्गास्तारतापीजवङ्गा
 गगनतरणिसारा वेधमुख्यास्तुषाराः ।
 द्विगुणितसितमेतच्चूर्णमोलं विद्वध्या-
 त्तदनु मधुहविभ्यां प्राश्य पेयं पयोऽनु ॥ ४५ ॥
 यक्षमाणं ग्रहणीगदं गुदरुजामानाहप्लीहोदरा-
 त्तयुन्मादानलसाद्वर्धकसनापस्मारमेहाश्मरीः ।
 शूलं श्वासमरोचकं ज्वरमुरोरोगं क्रिमिं कामलां
 पाण्डुत्वं च हलीमकं च जयति श्रीमानयं लीलया ॥ ४६ ॥
 रेतःक्षीणमलं करोति मदनोन्मादेन मन्दानलं
 पक्त्या गुर्वशनस्य दीनवपुषं कान्त्या जडं मेधया ।
 कान्ताटीशतसङ्कसङ्करजयोद्दामश्रिया कामिनं
 दुर्बीजं शुभरेतसं सुतनयं कुर्यात्त्वलंकारिणम् ॥ ४७ ॥
 पारीन्द्रं च पराक्रमेण तुरगं वेगेन तारापतिं
 कान्त्या च द्विरदं बलेन शिसिनं नादेन बुद्ध्या बुधम् ।
 नासत्यावधरी करोति वपुषा लावण्यलक्ष्मीजुषा
 श्रीकामेश्वरसेवया गतवया अप्येति यूनः श्रियम् ॥ ४८ ॥
 इति महाकामेश्वरो मोदकः ।

अथ चन्द्रोदयो रसः—

पलं मृदुः स्वर्णदलं रसेन्द्रं पलाष्टकं षोडशगन्धकस्य ।
 शोणैश्च कार्पासमवैः प्रसूनैः सर्वं विमर्द्याथ कुमारिकाद्भिः ॥४९॥
 तत्काचकुम्भे निहितं गुगाढे मृत्कर्पटैस्तद्विवसत्रयं च ।
 पचेत्क्रमाग्नौ सिकताख्ययन्त्रे ततो रजः पल्लवरागरम्यम् ॥ ५० ॥
 निगूह्य चैतस्य पलं पलानि चत्वारि कर्पूररजस्तथैव ।
 जातीफलं सोषणमिन्द्रपुष्पं कस्तूरिकाया इह शाण एकः ॥५१॥
 चन्द्रोदयोऽयं कथितोऽस्य माषो मुक्तो हि वल्लीदलमध्यवर्ती ।
 मदोन्मदाद्यां प्रमदाशतानां गर्वाधिकत्वं श्लथयत्यकाण्डे ॥ ५२ ॥
 शृतं घनीभूतमतीव दुग्धं मृदूनि मांसानि समण्डकानि ।
 माषान्नपिष्टानि भवन्ति पथ्यमानन्ददायीन्यपराणि चात्र ॥५३॥

वलीपलितनाशनस्तनुभृतां वयस्तम्मनः

समस्तगदखण्डनः प्रचुरयोगपञ्चाननः ।

गृहेषु रसराडयं वसति यस्य चन्द्रोदयः

स पञ्चशरदर्पितो मृगदृशां भवेद्बल्लभः ॥ ५४ ॥

रतिकाले रतान्ते वा पुनः सेव्यो रसोत्तमः ।

अभ्यासात्साधकः स्त्रीणां शतं जयति नित्यशः ॥ ५५ ॥

मानहानिं करोत्येष प्रमदानां तु निश्चितम् ।

स्थावरं जङ्गमविषं विषमं विषवारि च ॥ ५६ ॥

न विकाराय भवन्ति साधकेन्द्रस्य वत्सरात् ।

मृत्युंजयो यथाऽभ्यासान्मृत्युं जयति देहिनाम् ॥

तथाऽयं साधकेन्द्रस्य जरामरणनाशनः ॥ ५७ ॥

दाक्षिणात्याः शोणकार्पासद्रवमेव गृह्णन्ति ।

पाश्चात्यास्तत्पुष्पेणैव यावदार्द्रत्वं मर्दयन्ति ॥

उभयथैव निष्पत्तेरदोषः । शास्त्रान्तरेऽस्य मकरध्वजो नाम ।

इति चन्द्रोदयो रसः ।

अथ कामबाणो रसः—

सूतेन्द्रामृतमब्धिषोषसुमनाजातीफलाकल्करा-

फेनाश्वाह्वजहाश्च देवकुसुमं कर्पूरकस्तूरिकाम् ।

पिष्ट्वा तत्समभागिकं मुनिमितेः कृष्णाहिवल्लीरसै-
 र्माष्यं पक्वफले निधाय सजले तन्नारिकेलोदरे ॥ ५८ ॥
 क्षीरद्रोणयुगे विषाच्य विधिवत्तज्जीर्णदुग्धं हरे-
 त्सूक्ष्मं स्वर्णयुतं विधाय पयसा बलुत्रयं सेवयेत् ।
 ताम्बूलेन समं निशासु समये कामाग्निसंदीपनं
 षण्ढोऽपि प्रमदां विजित्य तनुते कान्तिं तनोति स्त्रियाः ॥ ५९ ॥
 बुद्धिं चातिबलं ददाति नितरां युक्त्याऽनुपानैरयं
 वृद्धानां मदनोदयं वितनुते स्यात्कामबाणो रसः ।
 इति कामबाणो रसः ।

अथ कामदेवो रसः—

तारं हिङ्गुलसीसकाभ्रकमुतं लोहं च वङ्गं तथा
 वृद्धाशै रसमस्मना रसपतेः सर्वं च खल्वे शुभे ॥ ६० ॥
 मद्योन्मत्तजयारसेन मुसलीनीरेण तत्सप्तधा
 सिद्धोऽयं किल कामदेवरसराष्ट्राज्ञां मवेद्वल्लभः ।
 बल्लैकप्रमितोऽनुपानसहितः सर्वान्गदाल्नाशयेत्
 स्तम्भे निस्तुषमृष्टजाणकजयाजातीसिताज्यैर्युतः ॥ ६१ ॥
 पुष्टौ साज्यसिताविदारिमुसलीयुक्तः प्रभाते लिङ्गे-
 त्स्त्रीणां यौवनदर्पगर्बितशतानां द्रावणे बिक्रमः ॥ ६२ ॥
 इति कामदेवो रसः ।

अथ मृत्युंजयो रसः—

बलिः सूतो निम्बूरससमरसो मस्म सिकता-
 ह्वये यन्त्रे कृत्वा समरविकणाटकूणरजः ।
 त्रिघस्रं लुङ्गाम्मोलवकदलितः क्षौद्रहविषाऽ-
 वलीढो माषैकं द्रवयति समस्तं गद्गणम् ॥ ६३ ॥
 जरां वर्षेकेण क्षपयति च पुष्टिं वितनुते
 तनौ तेजः स्फारं रमयति बधूनामपि शतम् ।
 रसः श्रीमान्मृत्युंजय इति गिरीशेन गदितः
 प्रमावं को वाऽन्यः कथयितुमपारं प्रभवति ॥ ६४ ॥
 लुङ्गाम्मोलवकदलित इति । मातुलुङ्गद्रवं कणशो दत्त्वा त्रिदिनं
 मर्हयेदित्यर्थः ।
 इति मृत्युंजयो रसः ।

अथाऽऽनन्दो रसः—

शुद्धं रसं समविषं प्रहरं विमर्द्य
 तद्गोलकं कनकचारुफले निधाय ।
 दोलागतं पञ्च दिनं विषमुष्टितोये
 प्रक्षाल्य तत्पुनरपीह तथा द्विवारम् ॥ ६५ ॥
 तत्सूतकं गिरिशलोचनयुग्मगन्धं
 युक्त्याऽवहार्यं कुरु मस्म समं च तस्य ।
 वैक्रान्तमस्म जयपालनवांशकार्थं
 सर्वैर्विषं द्विगुणितं मृदितं च खल्वे ॥ ६६ ॥
 घस्रन्नयं कनकभृङ्गरसेन गाढ-
 मावेश्य भाजनतले विषधूपमाजि ।
 भृङ्गद्रवेण शिथिलं लघुकाचकूपी-
 मापूर्य रुद्धवदनं सिकताख्ययन्त्रे ॥ ६७ ॥
 तां वासरार्धमुपदीप्य निसर्गशीतां
 दृष्ट्वा विचूर्ण्य गदशालिषु शालिमात्रम् ।
 आनन्दसूतमखिलामयकुम्भिसिंहं
 गद्याणकार्थसितया सह लिङ्गं पश्चात् ॥ ६८ ॥
 रोगानुरूपमनुषानमपि प्रकाशं
 क्षोणीभुजां प्रचुरपूजनमाप्नुहि त्वम् ।
 कीर्त्या विशो धवलया स्फुटमिन्दुकान्त्या
 वैद्येश्वरेतिबिरुदं भज वैद्यराज ॥ ६९ ॥

तथा द्विवारमिति । पूर्ववदखिलं द्विः कुर्यात् । गिरिशलोचनयुग्मे-
 ति । षड्गुणयुक्तेति यावत्काचकूप्यादौ ।

इत्यानन्दो रसः ।

अथामङ्गनिगडो रसः—

मिहिरकुलिशमुक्तातालवैक्रान्तभास्व-
 न्मणिकुजमणिमस्मान्येकमागानि कृत्वा ।
 कनकरजतताप्यव्योमसत्त्वानि चत्वा-
 र्यखिलसमरसेन्द्रं गन्धकं सर्वतुल्यम् ॥ ७० ॥

मृदुविदलितमेतच्छोणकार्पासपुष्पा-
 म्बुभिरमलतरैस्त्रिर्भावयित्वा विशोष्य ।
 क्रमदहनविपक्वं वालुकाकाचकुम्भे
 त्रिदिनमथ कलांशेनाच्छहालहलेन ॥ ७१ ॥
 युतमथ मरिचेन्दुत्वक्पयोजातिकोशा-
 मरकुसुमसृगाण्डैर्भावयेज्जायतेऽसौ ।
 मदननिगडनामा माषमात्रो दिनादौ
 निशि च भुजगवल्लीपर्णखण्डेन मुक्तः ॥ ७२ ॥
 तदनु सुरभि दुग्धं पेयमल्पं सिताढ्यं
 पुनरपि ससिताभ्रं चारुताम्बूलमद्यात् ।
 इह समुदितमन्नं पथ्यमाह द्विजन्मा
 मुनिरखिलगदानामन्तके ख्यातवीर्ये ॥ ७३ ॥
 एनं संसेव्य मर्त्यो रमयति रमणीवृन्दमानन्दतुन्द-
 मामन्दं तस्य शुक्रं क्व च न च भवति प्रत्यहं वर्धते च ।
 षण्ठः षाण्ड्यं जहाति प्रबलतरमपि प्रौढिमाप्नोति गाढं
 शेफः पातित्ययुक्तं गतनवतिसमस्यापि मर्त्यस्य चारु ॥ ७४ ॥
 किं बहुना कश्चित्तेन गृहेऽसौ यस्य नरस्य वसत्यसमस्य ।
 पञ्चशरस्य शरस्य शरव्यं भवतीह सदा महिलाहृदयस्थः ॥ ७५ ॥
 मेहान्विंशतिमेष हन्ति सहसा यक्षमाणमुग्रं जये-
 दानाहग्रहणीग्रहान्मलपयति प्रौढं विधत्ते बलम् ।
 पाण्डुं खण्डयति प्रसह्य रचयत्यशौविनाशं भृशं
 पित्ताभ्रं दलयत्यवश्यमुदरव्याधिं विलुम्पत्यपि ॥ ७६ ॥
 ओजःकान्तिबलप्रभेदधिषणाहृद्गन्तनासाश्रुति-
 प्रौढिं देहदृढत्वमग्निपटुतां पुंसः प्रकुर्यादयम् ।
 रोगो नास्ति स यो न शान्तिमुपयात्येतेन भूमीतले
 भूमीपव्रजपूजितेन स्वप्नीप्रेमास्पदेनानिशम् ॥ ७७ ॥
 इत्यनङ्गनिगडो रसः ।

अथ प्रमदेभाङ्कुशपाठः—

विशुद्धो रसो मासमुन्मत्ततैले दशाहानि तैले तथो*षर्बुदेषु ।
 त्रिपाच्योऽहर्निशं तच्च तैलं पलं जीर्यते तत्समो गन्धनामा ॥ ७८ ॥

कृतां कज्जलिं तां विनिक्षिप्य कूप्यां मृदुस्वर्णपात्राणि सूताष्टमांशात् ।
 ततो मस्मसादर्कयामं विधाय स्वशीतं समादाय सिन्दूरकल्पम् ॥७९॥
 इयहं खाखसत्वक्कषायैर्विमर्द्य इयहं वैजयीजातिसारैर्विनैकम् ।
 तथा कोकिलाक्षस्य घस्रं कषायैर्विद्वार्याथ मूमौ क्षिपेद्गोलकं तम् ॥८०॥
 मृदा द्व्यङ्गुलोन्मादमाच्छाद्य पश्चादरण्योपलङ्घन्द्ववर्हिं विधाय ।
 सुशीतं मृदुस्वेदमाह्नं रसेन्द्रं गृहीत्वा ततो मागमानं वदामः ॥८१॥
 रसाद्वयोमवैक्रान्तजातीप्रसूनं लवङ्गं द्विभागं त्रिभागं मुजङ्गम् ।
 *सितं कान्तमस्म विषं केसराख्यं त्रिजातं तथा वङ्गमस्म समस्तम् ॥८२॥
 अहेः फेनतापीजयो+रर्धभागं विमर्द्याथ यामं मरुद्मू×प्रसूनैः ।
 विद्वारीवरावासकैर्नागवल्लीबलाशालमलीमर्कटीमूलजातैः ॥ ८३ ॥
 षयोमिश्च गोधा=हृद्घिरम्भासमुत्थैः शताह्वामहावीप्यमुण्डीसमुत्थैः ।
 ◡महापत्रिकायटिहस्तिद्रवैश्च विमाढ्यं त्रिवारं ततो गोलमस्य ॥८४॥
 दिनं स्वेदयेत्खाखसत्वक्कषायैर्निबध्याम्बरे द्रोलकायन्त्रमध्ये ।
 अकूपारशोषस्य तैलेन माढ्ये द्विवारं तथा स्वर्णबीजस्य तैलैः ॥८५॥
 तथा वैजयैर्जातिसारस्य तैलैर्द्विवारं विमाढ्योऽथ गोलं निबध्य ।
 ततो मृत्पटैस्त्रिधराधारयन्त्रे पचेत्पूर्ववत्स्वाङ्गशीतं ततस्त्रिः ॥८६॥
 उशीरेण भाव्यः सुगन्धेन तद्वत्तथाऽजागुडेनाथ कस्तूरिकाङ्गिः ।
 विमाढ्यं शिवद्विद्रकुचाङ्गिः शिफालीद्रवैः शातपत्रोद्भूतैः सिद्ध एषः
 तमेनं स्वतुर्याशकपूरयुक्तं निषेवेत बलुद्वयेनामितं च ।
 लवङ्गं सितापुष्पसारोऽनुपानं हितं क्षीरपानं विवर्ज्योऽम्लवर्गः ॥ ८८ ॥
 पठित्वा च पञ्चाक्षरं मन्त्रराजं कुमारीश्च यन्त्राणि वै पूजयित्वा ।
 निषेवेत पूर्वोक्तरीत्या रसेन्द्रं निषेवेदसौ कामिनीसङ्गमं च ॥ ८९ ॥
 त्रिदोषघ्न एषोऽबलागर्वहारी वशी कार्यकारी महास्तम्भकारी ।
 सदा पुंस्त्वजोत्थानकारी नराणां तथा पातकारी न चार्वाक् च कारी
 यद्येकरात्रादपि नूतनयोषासङ्गाच्च्युतं वीर्यबलाद्विरिच्यते ।
 तथाऽपि तुल्यो द्रवकालयुक्तेस्तेजोबलं नैव जहाति किञ्चित् ॥ ९१ ॥

* क. रौप्यमस्म । + रसापेक्षया सार्धभागम् । × क. अर्कपुष्पैः । = क. भावणी । ◡ क.
 जातिपत्री ।

१ विजयबीजतैलेर्जातीफलतैलैः । २ क. अरण्योपलङ्घन्द्ववर्हिः । ३ क. त्रिगसुन्धेन ।
 ४ क. कुङ्कुमकेसरेण । ५ क. केतकीकुतनरसैः । ६ क. कुक्षी । ७ क. पत्री । ८ क. योगिनी ।

रसमेनं सेवयित्वा न सेवेत स्त्रियं यदि ।

निर्गच्छेन्नेत्रयोर्वीर्यं नेत्रनाशस्तदा भवेत् ॥ ९२ ॥

नाङ्गं शैथिल्यमावं व्रजति न च कटिस्तुट्यते तस्य कान्ति-

र्हमामा जायतेऽष्टादशविधमतुलं नाशमेति प्रमेहम् ।

नष्टं वीर्यं प्रपन्नं प्रभवति यदि पुमान्सेवते रम्यकान्तां

षण्ढो वा बाजितुल्यो जनयति च महाबाजितुल्यांश्च पुत्रान् ॥ ९३ ॥

एनं रसं च प्रमदा निषेवेत्कुमारितुल्याऽऽप्तवयाऽपि सा स्यात् ।

एतद्रसास्वादनतः पुमांस्तां युवाऽपि यातुं न समर्थ एव ॥ ९४ ॥

गर्भशयगतान्दोषान्हन्ति वातकफोद्भवान् ।

प्रमदेमाङ्कुशो नाम रसराजः सुसिद्धिदः ॥ ९५ ॥

हरिबधूरतितः पती रसाया यवनपतिर्वनितासहस्रयुक्तः ।

स तु युवतिरतीविधातुकामः प्रणतिपरः स बभूव बुद्धिनाथे ॥ ९६ ॥

प्रमदेमाङ्कुशसंज्ञं रसमस्मै बुद्धिनाथोऽदात् ।

राजा प्रीत्याऽदात्कौरवपञ्चकवह्नुनागध्रुवकरं तस्मै ॥ ९७ ॥

इति प्रमदेमाङ्कुशो रसः ।

अथ पुष्पधन्वा रसः—

हरमुजगलोहं साभ्रकं चाग्निमाष्यं

विजयकनकयष्टीशाल्मलीनागवल्या ।

घृतमधुपयस्वण्डं पुष्पधन्वा द्विवल्लो

रमयति बहुकान्ता वीर्यमायुर्नराणाम् ॥ ९८ ॥

इति पुष्पधन्वा रसः ।

अथ पञ्चसायकः—

सूतं मस्मीकृतं शुद्धं गगनं दरदं तथा ।

अम्बिशोषं नागफेनं जातीपत्रीफलं तथा ॥ ९९ ॥

अर्कहाटांस्तथा बोधावानरीकोकिलाक्षकान् ।

एतानि सममागानि खल्वे चूर्णीकृतानि वै ॥ १०० ॥

विजयाशाल्मलीमूलमसितस्वर्णबीजकैः ।

शताह्वापोस्तमधुकनागवल्लीदलद्रवैः ॥ १ ॥

मार्गांशकर्पूरयुतो रसोऽयं पञ्चसायकः ।

मात्रावल्लभ्यं चास्य मधुत्रितयसंयुतः ॥ २ ॥

पथ्यं क्षीरं यथासात्म्यं गच्छेच्च प्रमदाशतम् ।

निशामुखे रसो ग्राह्योऽम्लवर्गं च वर्जयेत् ॥ ३ ॥

इति पञ्चसायकः ।

अथ प्रमदानन्दो रसः—

कणाजातिजं हिङ्गुलं टङ्गुणं च

वराटं विषं हेमबीजं च विश्वम् ।

मृशं मर्दयेन्निम्बुनीरेण यामं

तथा धूर्ततोयेन मृङ्गीरसेन ॥ ४ ॥

अबुध्रे च मेहे विकारग्रहण्यां

कफे वातशूले सुतौ खण्डमेहे ।

प्रशस्तः सितासेवितः शुक्रकाशी

रसः सर्वदाऽऽनन्दनामा प्रसिद्धः ॥ ५ ॥

चपलानवयौवनमिहमदाप्रमदाशतदर्पहरः सहसा ।

कथितो मृगुणा मुनिना शतशोऽनुमितो रसिके रसराजपरः ॥ ६ ॥

इति प्रमदानन्दो रसः ।

अथ मदनकामेश्वरः—

बलिं पारदं नागफेनं समांशं विमर्द्याहिवल्लीरसैर्याममात्रम् ।

वटी बल्लमात्रा सिताढ्या हि सेव्या पुनर्मोजनं नैव कार्यं तदन्ते ॥ ७ ॥

पयो माहिषं सेवनीयं निशादौ मजेन्मैथुनं निम्बुनीरं सिताढ्यम् ।

पिबेद्वीजमुक्त्यै पुनर्मैथुनं च रसः कामदेवेशनाम्ना प्रसिद्धः ॥ ८ ॥

इति मदनकामेश्वरः ।

अथ नारीमत्तगजाङ्कुशः—

पारदं स्वर्णनागाभ्रं वङ्गं तीक्ष्णं सतारकम् ।

मनःशिलामाक्षिकं च यथोत्तरविवर्धितम् ॥ ९ ॥

सर्वाधांशं चाहिफेनं शुद्धमेकत्र मर्दयेत् ।

स्वर्णाह्विजयापत्ररसेन सुरपुष्पतः ॥ १० ॥

करहाटात्काञ्चनारात्पिप्पल्या आवणीद्वयात् ।

नागवल्ल्याः कुङ्कुमाच्च रसेन च पृथक्त्रयम् ॥ ११ ॥

एवं सिद्धो रसो नाम्ना नारीमत्तगजाङ्कुशः ।

काश्मीरकं चानुपानं सुरपुष्पयुतं समम् ॥ १२ ॥

प्रत्यूषे बल्लमेकं तु खादेवम्लादि वर्जयेत् ।
पीबरोरुस्तनश्रोणीनारीशतमनुव्रजेत् ॥
रसमेनं सेवयित्वा प्रमेहादिविनाशनम् ॥ १३ ॥

इति नारीमत्तगजाङ्कुशः ।

अथ पञ्चबाणो रसः स्तम्भने—

रसाभ्रनागायसगन्धवङ्गं कापर्दिकं तत्सममागयोजितम् ।
रसेन हेम द्विगुणं विमिश्रितं क्षीरेण भाव्यं च गवां त्रिवारम् ॥ १४ ॥
एकाधिकाविंशजयारसस्य ततश्च दद्यात्कनकस्य सप्त ।
लवङ्गजातीफलकुङ्कुमं तथा कङ्कोलकाकलगजेन्द्रकाच्च ॥ १५ ॥
कृष्णाहरेश्चन्दनतोयभाव्यः प्रत्येकमेकस्य च सप्त भावनाः ।
दर्पेण चैकां च ददीत भावनां सिद्धो रसः स्यादिति पञ्चबाणः ॥ १६ ॥
वीर्यस्य वृद्धिं च करोति पुंस्त्वं नष्टेन्द्रियाणां हि सुखावहं च ।
येषां गृहे चागणिता रमण्यस्तेनैव कार्यो रसराज एषः ॥
कान्ताप्रियत्वं बहुशुक्रतां च शेफाभिवृद्धिं दृढतामुपैति ॥ १७ ॥
इति पञ्चबाणः ।

अथ शृङ्गाराभ्रम्—

वयोमाभ्रौ चन्द्रवारीमकणगजगदत्वग्दलं चोचमांसी
तालीसं जातिकोशं सुरकुसुममदापारदं चेति शाणम् ।
शाणार्धं विश्वकृष्णोषणशिवपूतनाक्षद्विशाणं सुगन्धं
सैलं जातीफलं तत्पृथगथ विधिना मेलयित्वाऽम्मसैव ॥ १८ ॥
वक्ष्यः कार्याः परूषाद्रवदिनवदने मक्षयेत्ताश्चतस्रः
सान्द्रं पर्णं च तोयं तदनु परिहरत्यग्निमान्द्यामरोगान् ।
शृङ्गाराभ्रं प्रमेहक्षयकफकसबन्धासशूलाम्लपित्ता-
सृक्पित्तच्छर्दिपाण्डुश्वसनगदतृषो हन्ति वृष्यं विशेषतः ॥ १९ ॥
इति शृङ्गाराभ्रम् ।

अथ षण्मुखरसः—

हरार्कायोवङ्गाभ्रकवलिकलैकद्विजलधिं
द्विषादाञ्जिशन्दिर्मिलितमनलैऽशैर्मुदि पुनः ।

द्वयहं पक्वं कूप्यां भवति सिकतायन्त्रजुषित-

स्तलस्थः षण्ढत्वप्रलयकृदयं षण्मुखरसः ॥ ३२० ॥

इति षण्मुखरसः ।

अथ रसराजः—

क्ष्वेडाहिफेनफलिनीविषमुष्टिदिग्धे

वस्त्रे निबध्य रसगन्धकस्वर्पराणि ।

गौर्यां पचेत्तदनु लावपुटैः शतेन

सौवर्णबीजजठरे विनियोजितानि ॥ २१ ॥

निष्पेषयेद्दशदशान्तरतश्च तेषां

तोयैरपूपमुपकल्प्य विशुष्कमर्कैः ।

तत्कर्दमे प्रतिपुटं प्रविधाय दिग्ध-

मेवं पुटेदधिशतं रसराज एषः ॥ २२ ॥

रेतःस्तम्भं विधत्ते वपुषि च घनतामग्निमान्द्यं निहन्त्या-

द्यक्षमाणं च क्षणेन क्षपयति सहसा पौरुषं व्यातनोति ।

उच्चैःशूलप्रमेहानिलकफगदहृद्रोगपाण्डुप्रतिश्या-

कासश्वासोदराक्षिथवणमुखगदानाशु खाद्यवश्यकम् ॥ २३ ॥

इति रसराजः ।

अथ महाराजवटीरसः—

बीजं ब्रह्मतरोर्विधाय बहुधा खण्डं त्रियामोषितं

छागे दुग्धवरेऽथ शुष्कमथ तद्गन्धेन तिथ्यंशिना ।

युक्तं काचघटीच्युतं हुतमुजो योगेन कृत्वा ततः

सत्त्वं तस्य निगृह्य काचघटिते भाण्डे मुखं स्थापयेत् ॥ २४ ॥

तत्तैलं बल्लर्मादाय ताम्बुलीपत्रगं चरेत् ।

क्षिप्त्वा तत्र रसं बल्लमङ्गुल्यग्रेण मर्दयेत् ॥ २५ ॥

युक्त्वा तां कज्जलीं मुक्त्वा ताम्बूलं शीलयेदनु ।

शाकाम्लमाषषट्कादिवर्जितं पथ्यमाचरेत् ॥ २६ ॥

अनेन रसराजेन षण्ढोऽपि पुरुषायते ।

अपूर्ववच्छतं गच्छेद्द्वनितानामदो गणान् ॥ २७ ॥

पुरुषोऽशीतिवर्षीयोऽप्यनेन तरुणो भवेत् ।
 स रोगो नास्ति नानेन यः प्रशाम्यति देहिनः ॥ २८ ॥
 बलीपलितविध्वंसी योगोऽयं क्षयकुष्ठजित् ।
 वातपित्तकफातङ्कहस्तिपञ्चाननः परम् ॥ २९ ॥
 नास्त्यनेन समं लोके किञ्चिदन्यद्रसायनम् ।

इति महाराजवटीरसः ।

अथ राजवटीरसः—

इयामधत्तूरसुरसाकाशमर्दपुनर्नवाः ॥ ३० ॥
 बिल्वमार्कवदूर्वे च पिप्पलीरुबुवासकाः ।
 सोमराजीचक्रमर्दतिलपर्णीद्विवाकराः ॥ ३१ ॥
 एतेषां स्वरसैस्त्रिभिर्मावयेन्निर्मलाम्बरम् ।
 परिणाहे च दैर्घ्ये च हस्तमात्रं भिषग्वरः ॥ ३२ ॥
 आतपे शोषयेद्बुद्ध्या प्रतिवारं तृणोत्तरैः ।
 ततः पलमितं गन्धं पेषयेच्चतुराज्यकम् ॥ ३३ ॥
 तत्पिष्ट्वा लेपयेद्बुद्ध्या तद्वर्तिस्तस्य कल्पयेत् ।
 अयःशलाकयाऽऽविध्य तस्याः पुच्छं मुखं पुनः ॥ ३४ ॥
 प्रज्वाल्याधःस्थिते पात्रे शाणसर्पिः स्रवेच्च यत् ।
 गृहीत्वा काचपात्रे तत्स्थापयेद्विष्टमन्त्रितम् ॥ ३५ ॥
 नागवल्लीदले तच्च चतूरक्तिककामितम् ।
 गृहीत्वा पारदं बल्लं शुद्धं तत्र च निक्षिपेत् ॥ ३६ ॥
 अङ्गुल्या मृदु संमर्द्य तयोः कज्जलिकां चरेत् ।
 खादेत्तद्वटिकां प्रातः पथ्यं दुग्धौदनं लघु ॥ ३७ ॥
 दिनानि मनुसंख्यानि पश्चान्मुहुं ससैन्धवम् ।
 त्रिसप्ताहे व्यतीते तु शाकमाषाम्लवर्जिते ॥ ३८ ॥
 ककारषट्करहितं मोजनं पथ्यमुत्तमम् ।
 कुष्ठमष्टादशविधं प्रमेहक्षयकामलाः ॥ ३९ ॥
 हृद्रोगग्रहणीपाण्डुकासश्वासमगंदराः ।
 व्रणाश्च विविधाः सर्वे कृमिशूलानिलार्तयः ॥ ४० ॥
 आमवाताक्षिवदनकर्णस्याऽऽतङ्ककसंचयाः ।
 अग्निमान्द्यं च षाण्ड्यं च रक्तपित्तं भ्रमस्तृषा ॥ ४१ ॥

मूर्छां तन्द्रा सहद्रोगा जठराण्यखिलानि च ।
 अजीर्णानि च सर्वाणि वलयः पलितानि च ॥ ४२ ॥
 नश्यन्त्यनेन योगेन सत्यं शिववचो यदि ।
 नास्त्यनेन समो योगो वृष्यः कुत्रापि भूतले ॥ ४३ ॥

इति राजवटीरसः ।

अथ मदनकामेश्वरो रसः—

तारं वज्रं सुवर्णं च ताम्रं सूतं च गन्धकम् ।
 लोहं क्रमविवृद्धानि कुर्यादेतानि मात्रया ॥ ४४ ॥
 विमर्द्य कन्यकाद्रावैर्न्यसेत्काचमये घटे ।
 विमुञ्च्य पिठरीं मध्ये धारयेत्सैन्धवे भृते ॥ ४५ ॥
 पिठरीं मुद्रयेत्सम्यक्ततश्चुह्यां निवेशयेत् ।
 वह्निं शनैः शनैः कुर्याद्दिनैकं तत उद्धरेत् ॥ ४६ ॥
 स्वाङ्गशीतं च संचूर्ण्य भावयेदर्कदुग्धकैः ।
 अश्वगन्धा च काकोली वानरी मुसली सरा ॥ ४७ ॥
 त्रिं त्रिवेलं रसैर्माष्यं शतावर्याश्च भावयेत् ।
 पद्मकन्दकसेरुणां रसैः काशस्य भावयेत् ॥ ४८ ॥
 कस्तूरीव्योषकपूरकङ्कालैलालवङ्गकम् ।
 पूर्वचूर्णादिष्टमांशमेतच्चूर्णं विमिश्रयेत् ॥ ४९ ॥
 सर्वैः समो शर्करां च दत्त्वा शाणोन्मितं पिबेत् ।
 गोदुग्धद्विपलेनैव मधुराहारसेवकः ॥ ५० ॥
 अस्य प्रभावात्सौन्दर्यं बलं तेजो विवर्धते ।
 तरुणी रमयेद्बह्वीर्न च हानिः प्रजायते ॥ ५१ ॥

इति मदनकामेश्वरो रसः ।

अथ पूर्णेन्दुरसः—

शाल्मल्युत्थैर्द्रवैर्मर्द्यं पक्षैकं शुद्धसूतकम् ।
 यामद्वयं पचैदाज्यैर्वज्रैर्वद्ध्वाऽथ मर्दयेत् ॥ ५२ ॥
 दिनैकं शाल्मलीद्रवैर्मर्दयित्वा वटीकृतम् ।
 वेष्टयेन्नागवल्याऽथ निक्षिपेत्काचमाजने ॥ ५३ ॥

माजनं शाल्मलीद्रावैः पूर्णं यामद्वयं पचेत् ।
 बालुकायन्त्रमध्ये तु द्रवे जीर्णे समुद्धरेत् ॥ ५४ ॥
 द्विगुञ्जं मक्षयेत्प्रातर्नागवल्लीदलान्तरे ।
 मुसलीं ससितां क्षीरं पलैकं पाययेदनु ॥ ५५ ॥
 रसः पूर्णेन्दुनामाऽयं सम्यग्वीर्यकरो भवेत् ।
 कामिनीनां सहस्रैकं नरः कामयते ध्रुवम् ॥ ५६ ॥

इति पूर्णेन्दुरसः ।

अथ वीर्यरोधिनी गुटिका—

नागवल्लीदलद्रावैः सप्ताहं शुद्धसूतकम् ।
 मर्दयेत्क्षालयेद्मलैश्चतुर्निष्कप्रमाणकम् ॥ ५७ ॥
 विषकन्दगतं कृत्वा विषेणैव निरोधयेत् ।
 ततः सूकरमांसस्य गर्भे क्षिप्त्वाऽथ शोषयेत् ॥ ५८ ॥
 संध्याकाले बलिं दत्त्वा कुक्कुटं वारुणीच्युतम् ।
 ततश्चुह्यां लोहपात्रे तैले धत्तूरसंभवे ॥ ५९ ॥
 क्षिप्त्वा विंशत्पले पाच्यं यद्रसं मांसपिण्डगम् ।
 संध्यामारभ्य मन्दाग्नौ यावत्सूर्योदयं पचेत् ॥ ६० ॥
 हठाज्जागरणं कुर्यादन्यथा तन्न सिध्यति ।
 प्रातरुद्धृत्य गुटिकां क्षीरमाण्डे ततः क्षिपेत् ॥ ६१ ॥
 ततः क्षीरं शुष्यते यत्क्षिप्रं प्रत्ययकारकम् ।
 रतिकाले मुखे धार्या गुटिका वीर्यरोधिनी ॥ ६२ ॥
 क्षीरं पीत्वा रमेद्रामां कामाकुलकलान्विताम् ।
 मुखस्थां धारयेदन्तैस्तदा वीर्यं न मुञ्चति ॥ ६३ ॥

अथ हिरण्यगर्भगुटिका—

उत्कृष्य मूलं विषजं विदध्याद्गर्भेऽस्य सूतं कनकां(क)स्य पिष्टम् ।
 संवेष्टयेत्कोलमवेन तत्तु मांसेन पश्चात्पचनेन यामम् ॥ ६४ ॥
 धत्तूरबीजोद्भवतैलगर्भे संबद्धतां याति मुखस्थितोऽयम् ।
 संमोगकाले दृढतां करोति वीर्यस्य दुग्धं मज्जतां नराणाम् ॥ ६५ ॥

इति हिरण्यगर्भगुटिका ।

अथान्यो रसरजः—

नागाहिफेनफलिनीविषमुष्टिविलेपिते ।
 वस्त्रे निर्बध्य विधिवद्रसगन्धकसर्परम् ॥ ६६ ॥

गौर्यां पचेल्लावपुटे शतेन च नियोज्य तु ।
 ऊर्ध्वाधो हेमबीजानि पेषयेद्दशतः क्रमात् ॥ ६७ ॥
 तेषां तोयैः पुनः कृत्वा पूषिकामर्कशोषिताम् ।
 तत्कर्दमैः प्रतिपुटं दिग्धां कृत्वा पुटेच्छतम् ॥ ६८ ॥
 रसराजो भवत्येष सर्वरोगहरो रसः ।
 जम्बूवर्णोऽतिकठिनो रूक्षो वीर्यबली भवेत् ॥ ६९ ॥
 जातीफललवङ्गाभ्यां रतौ वीर्यं निरोधयेत् ।
 पटुदीप्यशिवाविश्वैर्वैश्वानरविवर्धनः ॥ ७० ॥
 क्षयघ्नस्तु तथाऽर्शोघ्नस्तक्रकृष्णामयान्वितः ।
 ग्रहण्यां जातिकोशेन रेके कुटजवारिणा ॥ ७१ ॥
 प्रमेहे शाल्मलीद्रावैर्बद्ध्याऽक्षिगदे हितः ।
 सामे वाऽपि निरामे वा समे वा विषमे ज्वरे ॥ ७२ ॥
 देयो नताब्दकटुकाकारविश्वसृतेन वै ।
 रास्नाम्मसा वातरोगे पित्तरोगे सिताद्भुटिः ॥ ७३ ॥
 अक्षत्वचा कफव्याधौ पाण्डुरोगेऽजमूत्रकैः ।
 अश्मर्यामश्मभेदेन कुष्ठे वल्गुजवायसैः ॥ ७४ ॥
 मगंदरे गुडेनैव व्रणे पौनर्नवायुतः ।
 मेदोरोगेऽम्बुमधुना प्रदरेऽशोकवारिणा ॥ ७५ ॥
 शूले हिङ्गुकरआम्यामरुचौ रुचकेन वा ।
 छर्द्यां धात्रीरसेनैव क्षेण्ये पर्णेन दापयेत् ॥ ७६ ॥
 द्राक्षारसेन शोषे च संज्ञानाशे किरातकैः ।
 मूर्छायां चन्दनाम्भोभिर्विद्रव्यौ वरणाम्बुना ॥ ७७ ॥
 सर्वेष्वन्येषु रोगेषु ताम्बूलीदलयोगतः ।

इत्यन्यो रसराजः ।

अथ कामिनीमदनञ्जनो रसः—

शुद्धसूतसमं गन्धं रक्तोत्पलदलद्रवैः ॥ ७८ ॥
 मर्दितं बालुकायन्त्रे यामं संपुटकं पचेत् ।
 रक्तागस्त्यद्रवैर्माष्यं दिनैकं सितया सह ॥ ७९ ॥
 यथेष्टं मक्षयेच्चानु कामयेत्कामिनीशतम् ॥ ८० ॥

इति कामिनीमदनमञ्जनो रसः ।

अथ महासुगन्धितैलम्—

कर्पूरागरुचोचबोलनलिकालाक्षासटीधातकी-
 पुष्पैः सप्तदलैलवालुसुरसैः शैलेयमांसीप्लवैः ।
 एलाकुङ्कुमरोचनादमनकश्रीवासजातीफलैः
 कङ्कोलैः क्रमुकैर्जटामदमुराकौन्तीलवङ्गामयैः ॥ ८१ ॥
 बालोशीरमृणालजातिकुसुमस्थौणेयचण्डानरवैर्जाती-
 पत्रकुलीरपद्मकयुतैः स्पृक्कान्वितैः पालिकैः ।
 लाक्षायोजनवल्लिलोध्रसलिलैस्तैलं विपच्याऽऽढकं
 तेनाभ्यज्य तनुं जरा न हि भवेत्स्त्रीणां परं बल्लभः ॥ ८२ ॥
 शुक्राढ्यो द्युतिमाननल्पतनयः षण्ढोऽपि रत्युत्सुको
 बन्ध्या गर्भवती भवेदपि तथा वृद्धाऽपि सूते सुतम् ।
 कण्डूस्वेदविचर्चिकामलहरं दौर्गन्ध्यकुष्ठापहं
 दस्राभ्यां परिकीर्तितं बहुगुणं तैलं सुगन्धाभिधम् ॥ ८३ ॥

इति महासुगन्धितैलम् ।

अथ रतिवल्लभाख्यं तैलम्—

सितचन्दनागरुकुङ्कुमामरदारुसिङ्गकसारिषा-
 मृगनाभिरक्तपटीरवालकमुस्तकुन्दुरुधान्यकैः ।
 तगरैलवालुकबोलकुष्ठपतङ्गमृङ्गलवङ्गकैः
 रजनीशवीरणमूलपीतपटीरयोजनवल्लिभिः ॥ ८४ ॥
 दलनागकेसरजातिकोशमुरासठीबहुलानरवै-
 र्झलिकाविडालजटावचावरशीघ्रजातिफलैरपि ।
 मृदुपेषितैस्तिलजं चतुर्दधिवारिधारिजतूदके
 न समेन साधु विपाचयेदिदमाख्यया रतिवल्लभम् ॥ ८५ ॥
 रतिवल्लभस्य विलेपनादचिरेण पञ्चशरप्रम-
 वोऽबलासु खरोचिरप्यबलो बली भवतीन्द्रवत् ।
 मन्थरप्रमदागणेन न तुष्यति प्रसमं रतौ
 शतहायनोऽपि समीरपित्तकफामयेन समुज्झितः ॥ ८६ ॥

इति रतिवल्लभाख्यं तैलम् ।

अथ पञ्चसायकः—

द्राक्षातुलामुपादाय जलद्रोणचतुष्टये ।
 पक्त्वा चतुर्थशेषं तु तं कषायमुपाहरेत् ॥ ८५ ॥
 दत्त्वा गुडतुलां तन्न धातकीप्रस्थमेव च ।
 निरवाय स्थापयेद्धूमौ यावत्पाशो वरो भवेत् ॥ ८६ ॥
 ततस्तत्सारमादाय वारुणीयन्त्रतः शनैः ।
 पुनस्तं वारुणीयन्त्रे समारोप्य तमाहरेत् ॥ ८७ ॥
 एवं तु दशधा सारं पौनःपुन्येन संहरेत् ।
 ततस्तस्मिंश्चतुर्जातजातीकोशलवङ्गकम् ॥ ८८ ॥
 कर्पूरकुङ्कुमं चापि यथालाभं नियोजितम् ।
 तं यथाग्निबलं मर्त्यः पिबेत्सर्वक्षयापहम् ॥ ८९ ॥
 मासेन सह चान्नेन स्निग्धेन मधुरेण च ।
 नरो नवतिवर्षीयोऽप्यनेन दश कामिनीः ॥ ९० ॥
 प्रत्यहं रमयत्येव युवेव न च ह्रीयते ।
 पञ्चसायकनामेदं रसायनमुदाहृतम् ॥ ९१ ॥

इति पञ्चसायकः ।

अथ कामिनीविधूननः—

कज्जलीकृतसुगन्धकशम्भोस्तुल्यभागकनकस्य च बीजम् ।
 मर्दयेत्कनकतैलयुतं स्यात्कामिनीमद्विधूनन एषः ॥ ९२ ॥
 अस्य बल्लयुगुलं ससितं वा सेवितं हरति मेहगदौघान् ।
 वीर्यदार्यकरणे कमनीयो द्रावणेऽयमुदितस्तरुणीनाम् ॥ ९३ ॥

इति कामिनीमद्विधूननः ।

अथ सिद्धलक्ष्मीश्वरो रसः—

अष्टांशहेमचपले शिखिमूषिकायां
 संजार्य षड्गुणबलिं क्रमशोऽधिकं च ।
 ऊर्ध्वं पयोऽग्निमधरे विनिधाय धीराः
 सिद्धीः समग्रमतुलाः स्वकरे कुरुध्वम् ॥ ९४ ॥

अष्टांशेत्युपलक्षणे । हेमेतिचपले रसे । शिखीति लोहितसारमूषायां
 च । अधिकमिति शतगुणपर्यन्तम् ।
 इति सिद्धलक्ष्मीश्वरो रसः ।

अथ लक्ष्मीविलासो रसः—

पलं कृष्णाभ्रचूर्णस्य तदर्धौ रसगन्धकौ ।
 कर्पूरस्य तदर्धं च जातीकोशफले तथा ॥ ९५ ॥
 वृद्धदारुकबीजं च बीजमुन्मत्तकस्य च ।
 त्रैलोक्यविजयाबीजं विदारीकन्दमेव च ॥ ९६ ॥
 नारायणी तथा नागबला चातिबला तथा ।
 बीजं गोक्षुरकस्यापि+ऐलजं बीजमेव च ॥ ९७ ॥
 एतेषां कार्ष्णिकं चूर्णं गृहीत्वा वारिणा ततः ॥ ९८ ॥
 निष्पिष्य वटिका कार्या त्रिगुञ्जाफलमानतः ।
 निहन्ति संनिपातोत्थान्गदान्घोरान्सुदारुणान् ।
 वातोत्थान्पैत्तिकांश्चापि नास्त्यत्र नियमः क्वचित् ॥ ९९ ॥
 कुष्ठमष्टादशाख्यं च प्रमेहान्विंशतिं तथा ।
 नाडीव्रणं व्रणं घोरं गुदामयमगंदरम् ॥ १०० ॥
 गलशोथमन्त्रवृद्धिमतीसारं सुदारुणम् ।
 कासपीनसयक्ष्मार्शःस्थौल्यदौर्गन्ध्यमेव च ॥ १ ॥
 आमवातं सर्वरूपं सर्वशूलविनाशनम् ।
 उदरं कर्णनासाक्षिस्त्रीणां गदनिषूदनम् ॥ २ ॥
 वटिकां प्रातरेकैकां खादेन्नित्यं यथाबलम् ।
 अनुपानमिह प्रोक्तं मांसं पिष्टं पयो दधि ॥ ३ ॥
 वारितक्रसुरासीधुसेवनात्कामरूपधृत् ।
 वृद्धोऽपि तरुणस्पर्धी न च शुक्रस्य संक्षयः ॥ ४ ॥
 न च लिङ्गस्य शैथिल्यं न केशा यान्ति पक्वताम् ।
 नित्यं शतं स्त्रियो गच्छेन्मत्तधारणविक्रमः ॥ ५ ॥
 द्विलक्षयोजनी दृष्टिर्जायते पौष्टिकः परः ।
 प्रोक्तः प्रयोगराजोऽयं नारदेन महात्मना ॥ ६ ॥
 रसो लक्ष्मीविलासस्तु वासुदेवे जगद्गुरौ ।
 अभ्यासाद्यस्य भगवाँल्लक्षनारीषु बल्लभः ॥ ७ ॥

इति लक्ष्मीविलासो रसः ।

अथ वीर्यस्तम्भनम्—

सदाहिफेनविमर्दितपारदे कनकबीजरसेन विमर्दिते ।
समसिताविजये यदि भक्षिते न रजनी न दिवा न दिवाकरः ॥ ८ ॥
इति वीर्यस्तम्भनम् ।

अथ जातीफलवटिका—

जातीफलार्ककरहाटलवङ्गशुण्ठी-
कङ्कोलकेसरकणाहरिचन्दनं च ।
एतत्समानमाहिफेनमचन्द्रमभ्रं
सर्वैः समं न सहते रतिबिन्दुपातम् ॥ ९ ॥
घृतमधुभ्यां वटिका टङ्कमिता ।
इति जातीफलवटिका ।

अथ लोहादियोगः—

लोहं ताम्राभ्रसूतं सुरकुसुमजलं चन्द्रसंजातिपत्रं
पत्रं जातीफलैलासमारिचकरहाटाजमोदाहिफेनम् ।
सामुद्रं सिन्धुशोषावपि घृतमधुना मर्दयित्वाऽस्य ठङ्कं
खादेदन्नेऽतिजीर्णे नियतमिह रतौ स्तम्भनं रेतसः स्यात् ॥ ४१ ॥
इति लोहादियोगः ।

अथान्यप्रकारः—

खसफलशुण्ठीकाथः षोडशशेषेण गुडेन निशि पीतः ।
कुरुते रतेन पुंसो रेतःपतनं विनाऽम्लेन ॥ ११ ॥
चटकाण्डं तु संगृह्य नवनीतेन पेषयेत् ।
तेन प्रालिप्तपादस्य शुक्रस्तम्भः प्रजायते ।
यावन्न स्पृशते भूमिं तावत्स्वान्नात्र संशयः ॥ १२ ॥
खसफलतिलमेकं शुण्ठीकर्षं सितापलद्वन्द्वम् ॥
एतच्चूर्णं पयसा पीतं रेतोरतं ध्रुवं धत्ते ॥ १३ ॥

अथ भोगपुरंदरवटी—

हिङ्गुलं च चतुर्जातं लवङ्गोषणचन्दनम् ।
जातीकेसरकं कृष्णा चाकल्लमाहिफेनकम् ॥ १४ ॥
कस्तूरीन्दुसमं सर्वं तत्समे विजयासिते ।
क्षुद्रकोलमिता कार्या गुटी भोगपुरंदरी ॥ १५ ॥

शुक्रस्तम्भकरी ह्येषा बलमांसविवर्धिनी ।

नरश्चटकवद्गच्छेच्छतवारं स्थिरेन्द्रियः ॥ १६ ॥

इति भोमपुरंदरवटी ।

अथानङ्गमेखला गुटिका—

विषमुष्टिं द्व्यब्धिशेषोऽहिफेनोऽकलकः समाः ।

मृङ्गनीरेण गुटिका कार्या प्रकृतिरूपतः ॥ १७ ॥

सायाङ्गे भक्षयेद्दीर्यरोधिनी कामवर्धिनी ।

निम्बुनीरेण चोत्तारो गुटिकाऽनङ्गमेखला ॥ १८ ॥

इत्यनङ्गमेखला गुटिका ।

अथानङ्गमेखलो मोदको वसन्तराजात्—

अहिफेनं पलमितं वरं दुग्धाढके पचेत् ।

जातीफलं चतुर्जातं जातीकोशं लवङ्गकम् ॥ १९ ॥

व्योषमाकारकरममजमोदां पतङ्गकम् ।

कङ्कोलं चन्दनं चापि कुङ्कुमैणमदेन्दुकान् ॥ ४२० ॥

जातीफलाद्यं भैषज्यं प्रत्येकं कर्षसंमितम् ।

मृगनाभिं च कर्पूरं प्रत्येकं माषयुग्मकम् ॥ २१ ॥

सितं ह्यष्टपलं दत्त्वा युक्त्या गुरुमुखोत्थया ।

संमेल्य गुटिका कार्या यथादेहं यथाबलम् ॥ २२ ॥

महाबलकरी वृष्या रतिरागविवर्धिनी ।

शुक्रस्तम्भकरी पुंसां वनितानां समागमे ॥ २३ ॥

षाण्डुकासक्षयश्वासशूलमेहव्रणभ्रमान् ।

निहन्ति जनयत्यग्निं सर्वदैव प्रपूजितः ॥ २४ ॥

उक्तप्रमाणाद्धां तु गुटिकां ब्रुवते परे ।

अनङ्गमेखलो नाम शिवेन समुदीरितः ॥ २५ ॥

इत्यनङ्गमेखलो मोदको वसन्तराजात् ।

अथ कर्पूरादिलेपनम्—

कर्पूरं दृक्कणं सूतं तुल्यं मुनिरसं मधु ।

संमर्द्य लेपयेद्विद्धं स्थित्वा घामं तथैव च ॥ २६ ॥

ततः प्रक्षाल्य रमयेद्वनितानां शतं सुखम् ।

वीर्यस्तम्भकरं सम्यक्सम्यङ्गनागार्जुनोदितम् ॥ २७ ॥

इति कर्पूरादिलेपनम् ।

अथाहिफेनयोगः—

अहिफेनं दुग्धशुद्धं रक्तिकात्रितयोन्मितम् ।

बिन्दुवेगं ध्रुवं धत्ते सितया निशि भक्षितम् ॥ २८ ॥

इत्यहिफेनयोगः ।

अथैषा सौरतगुटिका—

पारदगन्धकचम्पककेसरसुरसकुसुमकरहाटाः ।

अजमोदाम्बुधिशोषौ जातीपत्रं च जातिफलम् ॥ २९ ॥

प्रत्येकं भागैकं भागद्वितयं च शुद्धमहिफेनम् ।

वनबदरसदृशगुटिकाः कार्या मधुनाऽथ भक्षयेदेकाम् ॥ ३० ॥

यामेऽतीते ललनासविधे स्थित्वा जवानिकाकर्षम् ।

तैलाद्रं भुञ्जीयादनुपानं चैतदेतस्य ॥ ३१ ॥

लिङ्गं कठिनतरं स्याद्वीर्यस्तम्भं भवेद्यामम् ।

एषा सौरतगुटिका सत्यं सत्यं च शुक्ररोधकरी ॥ ३२ ॥

इत्येषा सौरतगुटिका ।

अथ वीर्यरोधनगुटी रससिन्धोः—

रसं कनकतैलेन मर्दयेद्दिनसप्तकम् ।

विषग्रन्थि समुत्कृष्य सार्धं गद्याणकत्रयम् ॥ ३३ ॥

हेम तैलं च निक्षिप्य तन्मुखं रोधयेद्विषात् ।

सप्तभिर्मुक्तिकामिश्रं वेष्टयित्वा विशोषयेत् ॥ ३४ ॥

माहिषमांसपिण्डे तु स्थले क्षिप्त्वाऽथ सीवयेत् ।

मांसं तत्पोटलीं कृत्वा दृढं वस्त्रेण वेष्टयेत् ॥ ३५ ॥

तत्क्षणं वेष्टयेत्सप्तमृत्साकर्पटसंज्ञकैः ।

गोमयेन च संलेप्य गोलं तत्पूजयेद्भिषक् ॥ ३६ ॥

हस्तत्रयमितो गर्तो गोशकृत्पिण्डपूरिताः ।

तन्मध्ये निक्षिपेद्गोलं दग्ध्वा शीतं समुद्धरेत् ॥ ३७ ॥

तत्रस्था गुटिका ग्राह्या दिव्यकौतुकदायिनी ।

सा मुखे येन निक्षिप्ता रमयेत्सोऽङ्गनाशतम् ॥ ३८ ॥

यावत्सा गुटिका वक्त्रे तावन्न द्रवते नरः ।
इति वीर्यरोधिनी गुटी रससिन्धोः ।

अथ जातीफलगुटिका—

जातीफलं टङ्कमितमहिफेनं च टङ्ककम् ॥ ३९ ॥
अजमोदा चैकटङ्कां चन्द्रसं चैकटङ्ककम् ।
सितोपला त्रिटङ्का स्यात्पञ्चटङ्को गुडो मतः ॥ ४० ॥
बुद्ध्या संभेल्य गुटिकाः कार्या द्वादश तुल्यशः ।
तत्रैकां मक्षयेद्धीमाञ्शुक्रस्तम्भकरीं ध्रुवम् ॥ ४१ ॥

इति जातीफलगुटिका ।

अथ पतङ्गयोगः—

टङ्कं पतङ्गचूर्णस्य जातीपत्रस्य टङ्ककम् ।
अहिफेनस्य टङ्कं हि दरवं टङ्ककयुग्मकम् ॥ ४२ ॥
अर्धं वाऽप्यथ वा सर्वं चूर्णं खादेद्यथाबलम् ।
पिबेदनु पयः स्वल्पं वीर्यस्तम्भं करोति हि ॥ ४३ ॥
महायोगोऽयमुदितः शुक्रस्तम्भकरः परः ।

इति पतङ्गयोगः ।

अथ लेपनम्—

श्वेताश्वमारमूलत्वक्करहाटाजमोदकम् ॥ ४४ ॥
कृष्णधत्तूरबीजानि सम्यग्जातीफलं तथा ।
एतेषां वारिपिष्टानां गुटिका मरिचोन्मिता ॥ ४५ ॥
एकया मणिलेपो हि नरमूत्रनिघृष्टया ।
वीर्यं संस्तम्भयत्येव सत्यमत्र न संशयः ॥ ४६ ॥

इति लेपनम् ।

किरिनव्यवसापूर्णे हूर्जखररके धिया ।
रक्तकार्पासिकावर्त्या दीपः शुक्रानिरोधकृत् ॥ ४७ ॥

अथ ध्वजवृद्धीकरणम्—

मल्लातकास्थिजलशूकमथाब्जपत्र-
मन्तर्विदह्य मतिमान्सह सैन्धवेन ।
एतद्विरुढबृहतीफलतोयपिष्ट-
मालेपयेन्महिषविड्बिमलीकृतेऽङ्गे ।

स्थूलं महद्वरतुरंगमतुल्यमाशु

शेफं करोत्यभिमतं न हि संशयोऽस्ति ॥ ४८ ॥

कासीसतुरगगन्धासारिवगजपिप्पलीविपक्वेन ।

तैलेन यान्ति वृद्धिं स्तनकर्णवराङ्गलिङ्गानि ॥ ४९ ॥

सेवालसैन्धवसरोरुहिणीदलानि

मल्लातकानि च फलानि च कण्टकार्याः ।

हैयंगवीनमपि माहिषमश्वगन्धा-

कन्दं सुधीः प्रणिदधीत दिनानि सप्त ॥ ४९० ॥

तैरुद्धृतैस्तदनु यन्माहिषीपुरीषे-

णोद्धृत्य लिङ्गमुपलेपितमादरेण ।

तस्याग्रतः खरतुरंगमतंगजानां

लिङ्गानि लाघवपदं परमं प्रयान्ति ॥ ५१ ॥

अथ वा—

उन्मत्तकस्वरसपेषितवाजिगन्धा-

कन्दोपगूढमहिषीनवनीतमादौ ।

धार्यं फल वृषमवाहनवल्लभस्य

निःशेषबीजरहिते कतिचिद्दिनानि ॥ ५२ ॥

उद्धर्तितं तदनु यन्माहिषीपुरीषे-

र्धत्तूरकाम्बुनवनीतविलेपितं च ।

तत्साधनं निधुवनप्रणयोद्धृतानां

नारीवराङ्गदलनक्षमतां वधाति ॥ ५३ ॥

क्षौद्रं क्षुद्रातगरमरिचैः पिप्पलीसैन्धवाभ्यां

प्रत्यक्पुष्पीयवतिलगुडश्चेतसिद्धार्थमाषैः ।

श्लक्ष्णीभूतैर्भवति मिलितं वाजिगन्धासनाथैः

श्रोणीश्रोत्रस्तनकचशिरःशेफसां वृद्धिकारी ॥ ५४ ॥

इति राजमार्तण्डात् ।

इति ध्वजवृद्धीकरणम् ।

अथ योनिसंकोचीकरणम्—

उत्पलानि सपद्मानि क्षीरेणाऽऽज्येन पेषयेत् ।

गुटिकां सुकृशां कृत्वा नारीयोनौ प्रवेशयेत् ।

दशवारश्चमूताऽपि पुनर्भवति कन्यका ॥ ५५ ॥

अथान्यः—

मृङ्गापोटलिका दत्ता प्रहरं काममन्दिरे ।
नितम्बिन्याः करोत्येव कुमारीभगवद्भगम् ॥ ५६ ॥

अथान्यः—

जातीफलमहिफेनं दार्वी चेति त्रिभिः समा मङ्गा ।
चरटीछत्रयुताऽसौ गुटिका संकोचनी योनेः ॥ ५७ ॥

अथान्यः—

बभ्रूलशिम्बीस्वरसमावितं घर्मशोषितम् ।
दाडिमीत्वग्रजस्तत्तु युक्त्या गुञ्जाचतुष्टयम् ॥ ५८ ॥
योनी विनिहितं स्थाप्यं कामिन्या प्रहरं धिया ।
सा प्रसूताऽपि दशधा पुनर्मवति कन्यका ॥ ५९ ॥

अथान्यप्रकारः—

चरटीछत्रपानीयधावनादपि ते गुणाः ।

अथान्यः—

मोचचूर्णं विनिक्षिप्तं योनिं संकोचयेत्परम् ॥ ४६० ॥
इति योनिसंकोचीकरणम् ।

अथ योषिद्द्रावणम्—

शम्बुकर्मांसस्वरसपिष्टेन्दुखदिरोद्भवाम् ।
चणकामां गुटीं दत्त्वा योनौ द्रवति कामिनी ॥ ६१ ॥
सिन्धुक्षौद्रमहाराष्ट्रीलिसालिङ्गोपभोगतः ।
सद्यो द्रवति कामार्ता योषिन्नात्र विचारणा ॥ ४६२ ॥
इति योषिद्द्रावणम् ।

इति श्रीयोगतरङ्गिण्यां षाण्ढ्यवाजीकरणादिकथनं नाम सप्तचत्वारिंशदधिकशततमस्तरङ्गः ॥ १४७ ॥

रिंशदधिकशततमस्तरङ्गः ॥ १४७ ॥

अथ अष्टचत्वारिंशदधिकशततमस्तरङ्गः ।

अथ संक्षेपतः सर्वरोगचिकित्सा—

कैराताम्बुदपर्पटं ज्वरगदे तक्रं ग्रहण्यमयेऽ-
न्तरीसारे कुटजः कृमौ कृमिरिपुर्दुर्नामकेऽङ्कुरम्

पाण्डौ किट्टमथ क्षये गिरिजतु श्वासे तु माग्यैषधं
 मेहे त्वामलकं क्षये तृषि जलं संतप्तहेमाश्रितम् ॥ १ ॥
 शूले हिङ्गुकरञ्जमामपवने तैलं रुधोर्मूत्रशुक्
 श्रेष्ठा प्लीहि कणा विषे शुकतरुः कासे तु कण्टारिका ।
 वातव्याधिषु गुग्गुलुश्च लशुनः स्याद्वक्तपित्ते वृषोऽ-
 पस्मारे तु वचासवागथ गरे हेमोदरे रेचनम्(?) ॥ २ ॥
 वातास्रे तु गुडूचिकाऽर्दितगदे माषेण्डरी मेदसिं
 क्षौद्राम्मः प्रदरे तिरीटमरुचौ लुङ्गो व्रणेऽग्रं पुरम् ।
 शोके मद्यमथाम्लपित्तरुजि तु द्राक्षाऽथ कृच्छ्रे वरी
 कूष्माण्डाम्बु दृगामये तु त्रिफलोन्मादे पुराणं घृतम् ॥ ३ ॥
 कुष्ठे खादिरसारवार्यथ पयो निद्राक्षये माहिषं
 श्वित्रे बाकुचिफलवजजीर्णरुजि तु स्वापो मये शोषणम् ।
 छर्दी लाजमधूर्ध्वजन्तुविकृतौ नस्यं सतीक्ष्णौषधं
 शूले पार्श्वमवे तु पुष्करजटा मूर्छासु शीतो विधिः ॥ ४ ॥
 कार्श्ये मांसरसोऽश्मरीषु गिरिमिदुल्लेषु सेतुत्वचा
 मोक्षोऽस्य तु विद्रधौ जतुरसैर्हिध्मासु नस्यं हितम् ।
 बाहे शीतविधिर्भगंदरगदे मूर्वालताश्वास्थिनी
 घृष्टे रासमलोहितैः स्वरगदे मध्वन्वितं पौष्करम् ॥ ५ ॥
 इति संक्षेपतः सर्वरोगचिकित्सा ।

इति श्रीयोगतरङ्गिण्यां संक्षेपतः सर्वरोगचिकित्साकथनं नामाष्टचत्वारिंशदधि-
 कशततमस्तरङ्गः ॥ १४८ ॥

अथ ग्रन्थप्रशस्तिः—

शारीराम्बुरुहाणि नादनिनदा सम्यक्चिकित्सोदका
 द्रव्याख्यानखगा सुयोगलहरी नाड्यादिबोधाटवी ।
 सत्सूतादिविधानमीननिवहा धातुक्रियाशैवला
 नाम्ना योगतरङ्गिणी भुवि चिरं जीयादियं संहिता ॥ १ ॥
 आयुर्वेदसुधासमुद्रलहरी कीर्तीन्दुदुग्धोदधि-
 र्गताज्ञानतमोवितानमलिनीभूतात्मनां दीपिका ।
 श्रेयःश्रेणिलताम्बुसेकरचना संपन्मृगीवागुरा
 भूयाद्योगतरङ्गिणी बुधमिषक्तोषाय कोशावनिः ॥ २ ॥

सूर्याचन्द्रमसौ निरस्ततमसौ यावच्चिरं राजतो
यावद्देवतरङ्गिणी सयमुना भुव्यस्ति भव्यस्थितिः ।

यावद्धारिधयः प्रभूतनिधयः सन्त्यत्र सक्षमाभूत-
स्तावद्योगतरङ्गिणीसमभिधा जीयादियं संहिता ॥ ३ ॥

लोकाः सन्तु निरामयाः प्रतिगृहं धर्माणि शर्माण्यपि
स्फूर्जन्तु प्रसमं मखं प्रतिलवं कुर्वन्तु भूमीसुराः ।

अस्तु स्वस्तिमती निरीतिरखिला संपन्नसस्याऽवनिः
श्रेयःश्रेणिजुषो भवन्तु धरणीपालाः प्रजापालकाः ॥ ४ ॥

दुगन्तपातेन मिषग्वुधाश्चेन्मनागपीमामवलोकयन्ति ।

त्रिमल्लमदृश्य कृतिः कृतार्था तदा भवेद्योगतरङ्गिणीयम् ॥ ५ ॥

इति ग्रन्थप्रशस्तिः ।

इति बृहद्योगतरङ्गिणी समाप्ता ।



